

विषयानुक्रमणिका ।

विषय.	संख्या.	पृष्ठ.
साखी क्या है ?		९
अवतरणिका ।		१-७२
१ गुरुदेव को अंग ।	९१	३
२ सतगुरु को अंग ।	१०६	१७
३ गुरु पारख को अंग ।	६७	११
४ गुरुशिष्यहेरा को अंग ।	५०	३९
५ निगुरा को अंग ।	६०	४६
६ साधु को अंग ।	२२१	५३
७ भेष को अंग ।	८१	७९
८ भीख को अंग ।	१५	८७
९ संगति को अंग ।	८९	८९
१० सेवक को अंग ।	३९	९९
११ दासातन को अंग ।	२७	१०३
१२ भक्ति को अंग ।	७३	१०७
१३ सुमिरन को अंग ।	१७९	११५
१४ परिचय को अंग ।	१३२	१३५
१५ प्रेम को अंग ।	९०	१५०
१६ विरह को अंग ।	१११	१५९

१७ चितावनी को अंग ।	२०१	१७२
१८ उपदेश को अंग ।	२४	१२३
१९ शब्द को अंग ।	७४	२०२
२० विश्वास को अंग ।	४०	२१०
२१ सती को अंग ।	२७	२१४
२२ पतिव्रता को अंग ।	५४	२१७
२३ विभिचारिन को अंग ।	२६	२२३
२४ मूरमा को अंग ।	१५६	२२६
२५ स्वारथ को अंग ।	६	२४२
२६ परमारथ को अंग ।	८	२४३
२७ विपर्यय को अंग ।	६७	२४४
२८ रस को अंग ।	१९	२६२
२९ मन को अंग ।	१२२	२६४
३० माया को अंग ।	७८	२७७
३१ १. कनक कामिनी को अंग ।	६९	२८५
३२ काल को अंग ।	७९	२९१
३३ समरथ को अंग ।	५१	३०१
३४ चानक को अंग ।	२९	३०६
३५ आत्म अनुभव को अंग ।	२९	३०९
३६ सहज को अंग ।	८	३१३
३७ मध्य को अंग ।	२९	३१४
३८ भेद को अंग ।	४४	३१७

३९ साक्षीभूत को अंग ।	५	३२२
४० एकता को अंग ।	१८	३२३
४१ व्यापक को अंग ।	५१	३२५
४२ जीवतमृतक को अंग ।	४९	३३०
४३ सजीवन को अंग ।	१६	३३६
४४ बेहद को अंग ।	३६	३३७
४५ अविहद को अंग ।	६	३४१
४६ भ्रमविध्वंस को अंग ।	६८	३४२
४७ सारग्राही को अंग ।	११	२४९
४८ असारग्राही को अंग ।	१०	३५०
४९ पारख को अंग ।	६९	३५१
५० बेली को अंग ।	१३	३५९
५१ कथनी को अंग ।	१८	३६०
५२ करनी को अंग ।	३३	३६२
५३ लगनी को अंग ।	३२	३६६
५४ निजकर्ता को अंग ।	४१	३६९
५५ कर्मौठी को अंग ।	९	३७३
५६ सूक्ष्ममार्ग को अंग ।	४१	३७४
५७ भाषा को अंग ।	७	३७९
५८ मंडित को अंग ।	३६	३८०
५९ निंदा को अंग ।	२७	३८४
६० आनदेव को अंग ।	६	३८७

६१. प्रकृतिगुण को अंग ।	११	३८७-
६२. काम को अंग ।	२१	३८९-
६३. क्रोध को अंग ।	६	३९१.
६४. लोभ को अंग ।	५	३९२.
६५. मोह को अंग ।	१६	३९३.
६६. मद को अंग ।	१०	३९४-
६७. मान को अंग ।	३६	३९६
६८. आशातृष्णा को अंग ।	२५	३९९
६९. कष्ट को अंग ।	२३	४०२.
७०. दुःख को अंग ।	१९	४०६
७१. कर्म को अंग ।	३१	४०७
७२. स्वाद को अंग ।	१३	४१०
७३. मांसाहार को अंग ।	४७	४१२.
७४. नशा को अंग ।	३२	४१७.
७५. विवेक को अंग ।	१०	४१०
७६. विचार को अंग ।	२४	४२१
७७. धीरन को अंग ।	११	४२४
७८. क्षमा को अंग ।	९	४२५
७९. शील को अंग ।	११	४२६
८०. सन्नोप को अंग ।	१२	४२८
८१. साँच को अंग ।	२२	४२९

८२	दया	को	अंग ।	२२	४३१
८३	दीनता	को	अंग ।	१६	४३४
८४	विनती	को	अंग ।	२५	४३६
	प्रश्नोत्तर	को	अंग ।	७४	४४०
	अनुक्रमणिका । (अकारादिक्रमसे)				१-१६३
	शुद्धिपत्र ।	१६४
	शुभनामावली	१६६

आत्मज्ञान में सहायक उत्तम ग्रंथ ।

नाम.	मूल्य.
साखी ग्रंथ (विस्तृत महत्वपूर्ण भूमिका, विरलटीका टिप्पणों सहित)	३—०—०
ब्रह्मनिरूपण सटीक ।	३—०—०
सत्यकवीर शब्दामृत (गुजराती दूसरी आवृत्ति)	१—६—०
कवीर साहेब का जीवन चरित्र	०—६—०
गुरु महिमा पूर्णो माहात्म्य (आ. तीसरी) ...	०—६—०
ज्ञान स्वरोदय ।	०—२—६
पन्न स्वरोदय ।	०—१—६
दुर्लभ योग—(तीसा जंत्र, तत्त्व स्वरोदय) ...	०—१—६
मोक्षसोपान (स० कवीर सा० सच्चै उपदेश भा० १)	१—८—०
निर्पक्षज्ञान प्रश्नोत्तर	२—८—०
गृहस्थाश्रम धर्म वर्णन	०—६—०
कवीर साहेबका बीजक (गुजराती रमैनी विभाग)	१—८—०
संन्यापाठ सटीक (गुजराती तथा हिंदी) ...	०—५—०
कवीर कल्पतरु भजनमाला (गुजराती) ...	०—८—०
कवीर सुधा (रेखता—शूलना) गुजराती टाइपमें...	०—१२—०
साखियो (गुजराती टीका साथे)	०—०—६
शंका—समाधान—मयंक सटीक	१—०—०
कवीरचटमहिमा -), वंदगो विचार -), सत्यनाम =)	
सद्गुरु कवीर साहेब का बडा फोटू साखी के सहित =); छोटा -)	
पं. श्रीहजूर साहेब, कवीरचट, धर्मदासजी, प्राकृत्य; कवीरसाहेब	
और राजा वीरमिह । व्यवस्थापक—कवीर धर्मवर्धक कार्यालय	
सीयाबाग, बड़ौदा.	

साखी ग्रन्थ क्या है ?

‘ साखीग्रन्थ ’ इस शब्द के सुनते ही बहुतों के मन में तो यही आया कि क्या इस पुस्तक में गवाहों के बयान हैं ?। सचमुच उनकी यह धारणा किसी अंश में ठीक है; क्योंकि सहस्रकवीरने भी स्वयं गवाह बनकर जनता-जनार्दन के सामने बड़ी ही निर्भीकता से अनेकवार खुले बयान दिये हैं। उनके बयानों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखी ग्रन्थ है।

साखी यह शब्द साक्षी का अपभ्रंश है। “ ज्ञातृत्वे सति तदस्थत्वं साक्षित्वम् ” अर्थात् झगड़े के मूल को जानते हुए भी वादी और प्रतिवादियों के पक्षपात से जो रहित हो उसे साक्षी (साखी, गवाह) कहते हैं। सहस्रकवीर साम्प्रदायिक कलह के मूल (परस्पर की अज्ञानता) को जानते हुए भी साम्प्रदायिक पक्षपात की दृष्ट से कोसों दूर थे। एक सर्वहितैषी तटस्थ व्यक्ति की तरह वे सबों को हितोपदेश दिया करते थे, यही कारण था कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर बन सके थे। अपनी इस तटस्थता और सर्वहितैषिणा का वर्णन उन्होंने कई जगह किया है।

कविरा खड़ा बजार में, सबकी चाह खैर।

• ना काहू से दोसती, ना काहू से बैर ॥

(बीजरु)

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को मुलझाने में समर्थ होता है। बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता। सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था। इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दीनों के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था। आइने अकबरि में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था। ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखते हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था। कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था। इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावें देहरा, मुसलमान मसीत ।

दास कबीर तहाँ ध्यावही, जहाँ दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि केरा ।

तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा ॥'

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अछह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि में खोजो, यही करीपा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कटापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाहियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती हैं । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझु देखु मन मांदि ।

विनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांदि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन . संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को मुलझाने में समर्थ होता है। बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता। सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था। इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दोन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था। आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था। ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखने हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था। कवि जायसी के समय तरु—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था। इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावें देहरा, मुसलमान मसीत ।

दास कबीर तहाँ ध्यावही, जहाँ दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि बेरा ।

तीरथ मूर्ति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा ॥'

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि मँखोजो, यहीं करीमा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कदापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाडियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती हैं । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझु देखु मन मांदि ।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांदि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

सन्धयोऽखिलवृत्तीना ममावाश्चावभासिताः ।

निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते ॥

सम्पूर्ण वृत्तियों की सन्धि, और सृष्टि में उनका अभाव ये सब जिस निर्विकार चेतन से प्रकाशित होते हैं, उसको कूटस्थ कहते हैं। कूटस्थ की असंगता का विचार करनेवाला स्वयं उस पद को प्राप्त हो जाता है; इस लिये उसका विचार सदैव करना चाहिये।

असद्ग एव कूटस्थः सर्वदा नास्य किञ्चन ।

भवत्यतिशय स्तेन मनस्येवं विचार्यताम् ॥

(पं० कू० ७०)

कूटस्थ चेतन सदैव असंग है, इसके जन्मादिक अतिशय कुछ भी नहीं होते; अतः मुमुक्षु को सदैव ऐसा ही विचार करना चाहिये।

इसी कूटस्थ का नाम अन्तर्यामी है; क्यों कि वह सर्वों के भीतर रह कर सत्ता स्फूर्ति देता है। जैसा कि चूहदारण्यरु के अन्तर्यामी ब्राह्मण में लिखा है।

“अदृष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोताऽपतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता,
नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टानान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता
नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैपत आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽनोन्यदार्तम्”।

जो किसीके देखने में नहीं आता हुआ भी स्वयं देखता है, किसी के सुनने में नहीं आता हुआ भी स्वयं

सुनता है, तथा मन और बुद्धि का विषय नहीं होता हुआ म्रयं उनको विषय करता है। इसके अतिरिक्त देखनेवाला सुननेवाला संकल्प करनेवाला और जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है। यही अविनाशी आत्मा तुम्हारा अन्तर्यामी है।

“ असद्गो न हि सज्जते ” इत्यादिक श्रुतियों के अनुसार सबों से भिन्न होने के कारण साक्षीचेतन किसी में सक्त नहीं होता। साक्षी की भिन्नता का वर्णन सद्गुरु ने भी कई स्थलों पर किया है।

सबका साखी मेरा साईं ।

ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाहीं ।

सुमति पचीस पांच से करले यह सब जग भरमाया ।

अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया ॥

जाग्रत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई ।

रासज तामस सात्त्विक निर्गुन इनते आगे सोई ।

सृष्टम थूल कारन महाकारन इन मिलि भोग बखाना ॥

नेजस विश्व पराग आत्मा इनमें सार न जाना ।

परा पसन्ती मधमा वैखरि चौबानी ना मानी ।

पांच कोष नीचे कर देखो इनमें सार न जानी ॥

पांच ज्ञान औ पांच कर्म की यह दश इन्द्री जानो ।

चित्र सोइ भन्तःकरण बखानों इनमें सार न मानों ॥

कुरम सेस किरकिला धनंजय, देवदत्त, कहँ देखो ।

चौदह इंद्री चौदह इंद्रा, इनमें अलख न पेखो ॥

त्तत् पद त्वंपद और असौपद, वाच लच्छ पहिचाने ।

जहदलच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने ॥

सद्गुरु मिल सत शब्द लखावै, सार शब्द बिलगावै ।

कहे कवीर सोई जन पूरा जो न्यारा करि गावै ॥

साक्षीपद प्राप्त होने पर ही मनुष्य संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है; क्योंकि यह संसार काजल की कोठरी और काटो की बाह है, जरासा चूका और गया ।

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।

बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन हार ॥

काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट ।

तोटी कारी ना भई, रहा जो ओट हि ओट ॥

(साखी ग्रंथ पृ० १०४)

असंग ही का नाम साक्षी है; अतः साक्षीपद की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार झगड़ों का अन्त नहीं हो सकता, और झगड़ों के निपटारे बिना निर्वाणपद भी नहीं मिल सकता, इस बात का भी सद्गुरु ने विशद रूप से वर्णन किया है ।

झगग एरु बडो राजा राम, जो निरुवारै सो निरवान ।

ब्रह्म बड़ा की जहां से आया, वेद बड़ा की जिन्हि उपजाया ।

ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा की रामहिं जाना ।

भ्रमि भ्रमि कचिरा फिरै बदास, तीरथ बड़ा कि तीरथ-टास

(बीजक)

सद्गुरु ने अपनी वाणी में साक्षी के लिये वहीं २ गवी शब्द का भी प्रयोग किया है

हिन्दू कटू तो हूँ नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।

पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं ।

गैबी आया गैब से, यहाँ लगाया ऐव ।

उलटि समाना गैब में, छुटि गया सब ऐव ॥

(साखी प्र० पृ० ३१६)

स्वरूप (साक्षी) को प्राप्त होना ही गैब में उलट के समाना है ।

निजरूप की विशेषता ।

साक्षी का निजरूप उसमें भी आगे है; क्योंकि साक्षी तो किसी साक्ष्य की अपेक्षा से है, इस लिये साक्ष्य (संसार) के अभाव में साक्षीपन भी नहीं रहता । साक्ष्य (संसार) हृद है और साक्षी (द्रष्टा, चैतन) बेहद है; परन्तु परमतत्व कुछ और ही है, जिसका सद्गुरु ने इस प्रकार वर्णन किया है ।

हृद बेहद दोनों तर्जी, अवरन किया मिलान ।

कहाँहिं कवीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥

(मा० पृ० ३३७)

हृद और बेहद से परे होने पर परमपद की प्राप्ति से अवर्णनीय आनन्द और प्रकाश का मिलन इस साखी से बोधित होता है । इसी भाव-मुद्राशु को पकड़ने के लिये

उर्दू के एक कवि ने भी बड़ी लम्बी उडान मारी थी; परन्तु अन्त में विफल होकर आप अन्धेरे के खन्दक में गिरे गये । सुनिये—

“ न तो मैं रहा न तो तू रहा, रही सो बेखबरी रही ”

सत्यतः वह जीव और ईश्वर से परे का पद है; किन्तु प्रज्ञानघन होने के कारण अन्धकार नहीं प्रकाश है ।

उसी अवर्णनीय निजरूप को प्राप्त करनेवाले महात्मा भी दयालु होने के कारण साक्षी बनकर अपने निर्णायक वचनों के द्वारा अनेक जटिल समस्याओं को सुरझाया करते हैं । स्वरूप साक्षी के बोधक और निर्णायक होने के कारण सद्गुरु के वचन भी साक्षीवचन हैं । ऐस ही साखी वचनों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखीग्रन्थ है ।

साक्षी सुचेताश्चितिमात्ररूपः संवर्णितो येन निजात्मदेवः ।
अन्वर्थसंज्ञा गुणतस्ततोऽभूत्“साखी”ति विद्वानिगुहं भजे तत् ।

महन्त विचारदास शास्त्री ।

॥ सत्-कवीर ॥

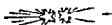
साहेब कवीर

के

साखी-ग्रंथ

की

अवतरणिका ।



लेखक —

श्रीमान् पूज्य सा० बनमाली गुरुश्री अरविंद ।

बी ए. एल्एल्., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट.

। सत्-नाम ॥

॥ अवतरणिका ॥

॥ खंड-पहला ॥

माधकी की इस अवस्था में ऐसा महत्व तथा सत्वपूर्ण विशाल-
काय साखी—ग्रन्थ की अवतरणिका अंकित करना मेरे लिये एक
अत्यन्त कठिन तथा सुदुस्तर समस्या है । पर श्रीमान् पंडित मोती-
दासजी साहेब, सम्पादक वो दीवान, कगीर मंदिर, सियावाग, बडोदा
की ऐसी प्रेम-प्रेरणा है कि बिना कुछ लिखे छुटका भी नहीं प्रतीत
होता । उक्त पंडित साहेब को उचित था कि किसी सुयोग्य तथा
प्रशिष्ट व्यक्ति को खोज डूंढकर और उन पर इसका भार सौंप कर सर्गाग-
मुन्दर तथा पूर्ण मर्मभेदी अवतरणिका तैयार कराते । परन्तु जो
डूंढने का कष्ट न उठावें, घर बैठे बैठे खाना खाना चाहें, तो उनको
तथा उनके पाठरुग्ण को सहज में जो कुछ रुखा सूखा मिल जाय,
उसी पर निर्वाह तथा संतोष कर लेने के लिये, भी सदा तैयार रहना
चाहिये । क्योंकि,

“ जब आवें संतोष-धन, सब धन धूलि समान । ”

(देखो साखी-ग्रंथ, पृष्ठ ४२५)

“ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाभ्यात्प्रमायया ”

संसार में जितने पदार्थ—चेतन अथवा जड़ (The conscious or the unconscious), जंगम वा स्थिर (The movables or the immovables),—विराजमान हैं, उनमें से प्रत्येक के बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग कई गुणा अधिक हैं। उसका प्रकटरूप, उसके गुणरूपों का केवल अंशमात्र है। उसका अव्यक्त, उसके व्यक्त से असंख्यगुणा भी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि, व्यक्त सदा सान्त होता है और अव्यक्त सदा से अनन्त होता आया है। उदाहरणार्थ, सिनेमा (Cinematograph) के चित्र-पट (Screen) और फिल्म (Film) को ले लो। पट के ऊपर फिल्म का जितना भाग एक समय में दृष्टि-गोचर होता है, उसका अनेकगुणा भाग रील (Reel) में अदृश्यरूप से लिपटा पड़ा है, जो क्रम से उघड़ कर, पट पर अपना चित्र फेंकता जाता है। मानो, अव्यक्त क्रमशः व्यक्त होता हुआ भूतकाल के गाल में समाता जाता है। इसी प्रकार आत्मारूपी अनन्त रील (The infinite reel of the soul) में चोलाखुरूपी अपरिमित फिल्म (The infinite film of the surface personalities) लपेटा पड़ा है, जो अपने समयानुकूल समार पट पर अवतरण होता रहता है। यही बात कबीर साहेब की वाणी में इस प्रकार कही जा सकती है कि आत्मारूपी अनन्त फिरकी (The infinite shuttle of the soul) में, भ्रमीरूपी अनन्त सूत (The infinite thread of the wool) लिपटा है, जो समय पाकर संसार रूपी तानी (Warp) पर अवतरण करता हुआ नाना प्रकार के शरीर रूपी वस्त्र बुनता रहता है। इसी बात का भगवान कृष्ण ने गीता में इस प्रकार से गाया है:—

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्वन्यानि संयाति नवानि देही ।”

(गी० अ० २ श्लो० २२)

‘ जेमे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है ; वैसे जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त करता है । ’

जिसको अपना पेहरन (Coat etc.) अपनी इच्छा के अनुसार बनाने का युक्ति नहीं मात्स्य है, उसको दर्जों के फेरे में जाने की आवश्यकता बराबर बनी रहती है । पर जिसको स्वयं ज्ञान हो गया है, वह अपना कार्य आपसे ही करके स्वावलम्बन (Self-reliance) का पाठ संसार को सिखाता है । इसी प्रकार जिसको आत्म-अनुभव मन्मथ् रीति से हो गया है, वह जिस प्रकार का शरीर जिस समय जिस रीति से ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है । यथा,

“आत्मानं मृजामि अहम् ” (गीता अ० ४ श्लो० ७)

“ अपने रूप को रचना हूं अर्थात् प्रकट करता हूं । ” अन्यथा दर्जों रूपां काल वा कर्म, भाग्य (Fate) वा प्रारब्ध के चक्र में पड़कर, उसके बनाये शरीर को विवश होकर धारण करना पड़ता है । अज्ञानी मटा अशक्त रहता है और सज्जानी अनुभवों से सशक्त है । यह काल के बस में रहता है और यह काल से उभर हो जाता है, जिसको कालातीत के नाम से पुकारते हैं । वह कर्म जन्य प्रारब्ध, संचित अथवा भाग्य की ठोकरी खाता रहता है और यह कर्मों के बीच में रह कर भी इन बलों से छू तक नहीं जा

—“ पद्मपत्रमिवाम्भसा ” (गी० अ० ५ श्लो० १०)

“ जल से कमल के पत्ते की सट्टा ” । वह जन्म और मरण के फन्दे में पुनः पुनः आता रहता है, “ पुनः पुनः वक्ष्यापद्यने मे ” (कठोपनिषद्), और यह फन्दे से एकदम बाहर हो जाता है । इसको नहीं इच्छा हो तो, नहीं शरीर धारण करे और यदि इच्छा हो तो, वर्तमान शरीर को कायाकल्प कर दे अथवा जैसा शरीर जिस रीति से धारण करना चाहे, कर सके । गर्भ में प्रवेश करके भी जन्म ले सके, यथा, राम, कृष्ण आदि और गर्भ में बिना प्रवेश किये भी, जैमे, त्रिधा, महादेव आदि । यह दोनों प्रकार में, योनिज औ अयोनिज, (Sexual & Asexual) जन्म लेने में समर्थ हो जाता है । जो प्राणी-विद्या (Biology) से अभिज्ञ हैं, वे जानते हैं कि सत्सार में मनुष्य तथा अमैथुनी, दोनों तरह की सृष्टि नित्यप्रति हो रही है । वर्षाकाल में असंख्य छोटे २ मेढकों (Towds, amphibia) की उत्पत्ति, जमे हुए जल में अगणित कीटिया, अन्नफलादि में नाना-प्रकार के कोटानुकोटि प्राणिया प्रतिशत जन्म धारण करती हैं । अंडज, पिंडज, ऊष्मज, जलज, अन्नज प्राणियों की उत्पत्ति अहर्निश हो रही है । यह युक्तियुक्त नहीं कि अयोनिज सत् के सत् मुक्त होते हैं और योनिज सत् के सत् बद्ध होते हैं । अन्तर इतना ही है कि आम-अनुभवी जिस प्रकार चाहे उसी प्रकार से सत्सार में व्यक्त अर्थात् प्रकटरूप ले सक्ता है और अज्ञानी को प्रिय होकर प्रेरित प्रकार में संसार में जन्म लेना पड़ना है । भगवान् विष्णु क्षीर-मन्द में अयातरूप में पड़े हैं, उनका नाभि से कमल निकलना है और कमल में त्रिधा जन्म प्रकट होते हैं, और उनसे सृष्टि की रचना आरम्भ हो जाती है । जब यह मभव है, तो साहेब करीर को क्षीर समुद्र रूप त्तर ताग्य के कमनीय कमल में प्रकट होने तथा मनों का सृष्टि करने में कौन सी बड़ी विस्मयास्पद तथा विवादास्पद की बात है । जब महादेवकी

बिना मा-त्राप के संसार में व्यक्तरूप ले सक्ते हैं तो, यदि कबीर साहेब ने भी बिना मा-त्राप के संसार में प्रकट होकर, उनका अनुसरण कर, गांता के नीचे लिखे वचन को प्रमाणित कर दिखाया, तो हममें आशंका ही क्या है ? —

“ प्रकृतिं स्वाधिष्ठाय संभवामि आत्मपायया । ”

(गी० अ० ४ श्लो० ६)

“अपनी प्रकृति को आधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।”

“ Brooding over nature, which is mine own, yet I am born through My own Power, *Maya*, the power of thought that produces form ” (The Bhagwad-Gita by Annie Besant & Bhagwandis. P. 74)

माया का अर्थ यहाँ पर वह विचार-शक्ति या तपो-बल है जो रूप प्रकट करती है। जब अयोनिज जन्म-घटनायें भूतकाल में हुई और निर्यप्रति होती रहती हैं, तो ऐसी घटना यदि साहेब कबीर ने भी स्वसामर्थ्य से (By the form-producing power of thought or meditation) संसार में उपस्थित करी तो, इससे चकित होकर, असंभ्र ! असंभ्र !! महा असंभ्र !!! कहकर चिल्लाने से क्या मतलब ?

पक्षपात-रहित सनातनी भाइयों को तो स्पष्ट हो ही गया होगा, परं दलील की खोज निकालनेवाले आर्य भाई हास्यपूर्ण कटाक्ष करते ही जायेंगे कि, ‘ क्या कबीर साहेब मुनुगा (Insect) या जो फलों में उलबन हुआ ? ’ कबीर साहेब क्या थे वह तो आगे माहम होगा, पर अपने यहाँ की मनुष्य वर्ण देखो हे ? उठानो मयार्थ प्रकाश, निकालो सृष्टि प्रकृति. खोलो पत्र ४३ और पट्टी प्रश्नोत्तरों को:—

“ (प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक; क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता, क्योंकि

“ मनुष्या ऋषयश्च ये । ततो मनुष्या अजायन्त । ”

यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है । इस प्रमाण से यहाँ निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मायाप के सन्तान है । (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा दोनों में ? (उत्तर) युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पाठन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इस लिये युवावस्था में सृष्टि की है । (प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं । ” (मत्स्य-प्रकाश पत्र १४३)

देवता न, एक ही बार सैकड़ों सहस्रों मनुष्य, युवा और सुरतिया धड़ाधड़ आकाश से बर्षा-विन्दु की सदृश गिरे और फिर उन लोगों ने मैथुनी सृष्टि की । एक पुरुष को कमल में व्यक्त होने में कटाक्षपूर्ण हंसी उड़ाते हैं और अपने यहाँ के निराधार सहस्रों मनुष्यों की अमैथुनी उत्पत्ति को युक्तियुक्त बताते हैं ! प्रकाशरात्रियों तथा मानवसृष्टिवादियों (Evolutionists & Anthropologists) ने पूछ कर देखा कि वे युक्तियुक्त बताते हैं वा हंसी उड़ाते हैं । दूसरों को छोटी पुछी निहारनी और अपनी मोटी ढेदर की बात तक नहीं कहना, कदा तक न्यायव्यंग है ! चरन दूमे बड़नी को त्रिम्ब वहना छेद ।

इनके अतिरिक्त, ईशई, मुसलमान आदि अन्य धर्म-बन्धु ऐसे चमत्कारों को तो, अपने यहा अवश्य मानते हैं। यदि दूसरों के यहा न माने तो, कोरा दुराग्रह के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता है। भाइ, सम्यक् आत्म-अनुभवी तो, इसी शरीर को ऐसी काया-कल्प कर सकता है कि पूर्ण ओर पर शरीर के रूप, वर्ण, आकृति आदि सब के सब में ऐसी भिन्नता आ जाती है कि पहचान तक में न आवे। दोनों समय के फोटो (चित्र) तक न मिले। और एक शरीर छोड़ कर दूसरा नया वाञ्छित शरीर लेना या अलग से खडा कर देना उनके लिये सरल वो सहज है। पुराने कोट (Coat) को नया बनाना, उसके प्रत्येक सूत्र को केवल स्वच्छ नहीं, बल्के नये सूत्रगत दृढ बनाना अधिक कठिन है। दूसरा नया कपडा लेकर नया कोट बनाना आसान है। पर ये सब बातें मन से ऊपर की हैं। कैसे कहा जाय और कौन समझे ! यथा,

“क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझनेवाला है ?”
 स्वय अनुभव करने की वस्तु को प्रतीति दूसरों की कयनी से क्या कर हो सकती है ? हा, उसकी धुधली झलक (Shadowy reflection) कराने को चेष्टा की जा सकती है। इसमें सफलता की बात दूर रहती है। पर त्रिपय इतना सूक्ष्म तथा गहन है कि, लिखने पढने से यदि दूरस्य झांकि (Distinct flash) का भी अनुमान हो जाय, तो बहुत समझना चाहिये। क्योंकि, इसका कहना सुनना, समझना समझाना, दोनों ही अत्यन्त कठिन तथा अति दु साध्य हैं। कहने सुनने में श्रोता भी फेर पटा कि, कुछ का कुछ परिणाम निकल पडता है। माखन ऐसा सरल पदार्थ गगला (वक Crane) जैसा टेढा थन जाता है। सुनो,

एक था भिखमंगा (Beggar) जो जन्म का अंधा था । उस
 बेचारे ने अपनी जीवनी भर में कभी भी माखन (Butter) नहीं
 खाया था । मांगना मांगना किसी ऐसे सद्-गृहस्थ के द्वार पर
 पहुँचा चो दयाइ तथा उदारहृदय का था । जिस समय भिखमगे ने
 उसके द्वार पर आगज मारी उस समय उस गृहस्थ ने माखन खाने को
 हाथ में लिया ही था । उसने समझा कि अपने खाने के पहिले यदि
 इमर्से से थोड़ा अपने अतिथि को खिला देयें, तो बहुत अच्छा हो ।
 चउ, जरा उमसे पूछ तो सही । वस, झट से घर के बाहर निक
 कर, द्वार पर खडे भूखे भिखमगे को पूछा—भाइ, माखन खाओगे ?
 भिखमगा—माखन कैसा होता है, दयालो ? मैंने तो चिन्दर्गा भर में
 कभी भी माखन नहीं खाया है ।

गृहस्थ—एकदम सुफेद, वक्रु जैसा ।

भिखमंगा—वक्रु कैसा होता है ?

गृहस्थ—ऐसा, हाथ को टेढा करके बताया ।

भिखमगा—(चौक कर) मैं ऐसी टेढी मेढी चीज कदापि नहीं खाऊगा ।
 यह तो मेरे गले में अटका कर मेरे प्राणों को अस्पृश्य ले लेंगा ।
 आपकी चीज आप को ही मुझकर हो । मैं अपना रास्ता
 लेता हूँ । ऐसा कहता हुआ और उस गृहस्थ को उल्टा
 पुलटा सुनाता हुआ आगे चन्ता बना । गृहस्थ क नारना
 पुकारने पर भी उनकी तरफ मुए तक न फेरा ।

देखो, जरासा सुनने समझाने में परक पडा और माखन ऐसा
 कोमल, प्रिय, सुन्दर तथा प्राणनर्धक पदार्थ कठिन, कर्कश, भयकर तथा
 प्राणनाशक प्रतीत होने लगा । जब ऐसे साधारण प्रिय में इस
 प्रकार का अदृचन समझने-समझाने में आ पटती है तो, जो सूक्ष्म प्रिय
 केवल स्वय अनुभव-सिद्ध है, उसका क्या पूछना ? क्योंकि,

“ भाश्रयो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा ” (कटोपनिषद्)

चेतना की साधारण स्थिति (Ordinary consciousness) में मनुष्य अपने आपको बहिष्करण तथा अन्तःकरण में लीन और आत्मसात् (Involved and identified) किये हुये इन्हीं पर निर्भर करता है । शरीर तथा इस छोटे बाहरी व्यक्तित्व (This external bit of his personality or this outer little self) को ही सब कुछ समझे हुये है । उसकी ऐसी मान्यता सदा बनी रहती है कि, “ शरीर से वह जीता है, आँख से वह देखता है, कान से वह सुनता है, मन से वह विचारता है, इत्यादि इत्यादि । ” परन्तु यह भावना तथा अनुभव कि, “ उस से शरीर जीवन धारण करता है, उससे आँख देखता है (येन चक्षुषि पश्यति केन-उपनिषद्), उससे कान सुनता है (येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्-के० उ०), उससे मन विचारता है (येन आहु. मनो मतम्-के०उ०) इत्यादि इत्यादि ” कठिन साधना करने के उपरान्त साधक को कुछ कुछ प्रतीत होने लगते हैं । अभी तो साहेब कबीर की वानी में ‘ ओरी के पानी बरेड़िये जाय ’ की दशा हो रही है । पर्पाकाठमें खपडेपोश (नडियागाले tiled) मकान पर जत्र पानी बरसता है तो ढालें छाननी के नीचले भाग से, जहा टोटी सी लगी रहती है, ऊपर का सब पानी सिमट सिमट कर निकलता है । छाननी के इस निचले भाग को “ ओरी ” (Baves) कहते हैं और छाननी के सब से ऊपरवाले भाग को ‘ बरेडी ’ कहते हैं । नियम तो यह है कि, बरेडी का पानी ओरी द्वारा निकला करे, नकि ओरी का पानी बरेडी के ऊपर चढा करे । पर साहेब कबीर उक्त सरल पर सम्यक्, ग्रामीण पर सारगर्भा वानी द्वारा जन साधारण की चेतना-स्थिति का कैसा समुचित चित्र (Photo) खींच कर बताते हैं ! पर्पा को सत्-ज्ञान सत्-आदेश अथवा ब्रह्म-ज्ञान ब्रह्म-आदेश समझे, बरेडी को आत्मा अथवा ब्रह्म समझे, ओरी को करण (अन्त-

तथा ब्रह्मिः) ममज्ञो । पानी पडने की जगह सत्तार ममज्ञो । समुचिन तो यह था कि, आत्मा स्वच्छ जलहय सत्-ज्ञान वा सत्-आदेशों को औररूप इन्द्रियों द्वारा संसार पट पर चरितार्थ करके इसको निर्मूल करता । पर ऐसा न करके सासारिक प्रिय-वासना रूपो दुर्गन्ध जल को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके, ऊपर की चढाकर आत्मा को कलुषित तथा मलिन आररणों में आच्छादित कर रहा है । यही जनसमुदाय की पिपील-करणो है, जिसको सद्गुरु साहेब देख कर बोल उठे "ओरिया के पानी बरेड़िये जाय ।" सीधी और शुद्ध स्थिति का सरस तथा मर्मभेदी वर्णन तो, नीचे लिखी साखी में है, जो मननीय और माननीय भी है—

“ कवीर सीप समुद्र का, खारा जल नहि लेय ।

पानी पीवै स्वाति का, शोभा सागर देय ॥ ”

सा० प्र० पृ० २१८

जैसे सीप समुद्र में वास करते हुये भी समुद्र के खारे जल को न लेका, स्वाति नद्य के वर्षा-बून्द को अपने भीतर धारण कर, मोना तैयार करके सागर को शोभायुक्त करता है । वैसे ही सत्-पुरुष संसार में रहते हुये भी संसार के प्रिय वासना में लित न होकर, अपने सत्-ज्ञान से संसार को शोभायमान करते हैं । कहा गये सिंह उपाध्याय जी, पोथाधारी-गाली जी, अभिमानी दलीलराज जी जो साहेब कवीर की उटपटांग बोलनेवाले, भुनुगा आदि घृणित नामों से पुकारते हैं ? ऐसे सत्-गुरु, मम-उपदेष्टा वो दिव्य-द्रष्टा को जो उटपटांग बोले उनको जो बुलु कहा जाय वही थोड़ा है । क्या, त्वप-उलटे चोर कोतवाल की टंढे !

साधारण मानव-स्थिति में कर्ता-पुरुष (Creative soul) सोआ (Sleep-bound) रहता है, अथवा घर के झगड़ों के शान्त होने की बात देखता रहता है, अथवा प्रकृति के मोहिनिरूप से चकाचौंध होकर अपने आपको भूला हुआ रहता है। प्रकृति के स्वामी बनने के बदले इसीका दास बना हुआ रहता है। स्वामी होकर दासी का दास बना ! कैसा भृगुपतन है ! ! इस पतित अवस्था में पड़ा हुआ जीव यदि वेदव्यास, मुनि वाल्मीकि, योगेश्वर कृष्ण, आचार्य्य शंकर, स्वामी रामानन्द, साहेब कबीर आदि स्वराटों (Self-masters) और सम्राटों (World-masters) की शक्तियों तथा चमत्कारों पर आशंका करे तो, इसमें कोई आश्चर्य की बात ही नहीं। जो गीदड़ मूखे पत्तों की खरखराहट से भयभीत होता रहता है, वह वनराज केसरी के सामर्थ्य का अन्दाज़ा कैसे लगा सकता है ? भारतवर्ष के नामी पहिल्लमान गामा की ताकत का पना संसार के नामी योद्धा (World-champion) जयिस्को को लगा, क्षयो-पीड़ित कंकालशेषों को क्या लगना है ? सिंह के बल को भूधराकार वृक्ष उलाड़नेहार मद्रमस्त हस्ति ही जानना है, चूहा (Under Mouse) नहीं। वसन्त के गुण को कौबिल जानकर मरन हो जाता है, काक क्या समझे ? " करी च सिंहस्य बल न मूषकः, पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः । " इसी प्रकार साहेब कबीर की सचोट आध्यात्मिक कविता को (Where more is meant than meets the ear-Milton) जग-विख्यात कर्मीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने Kabin'-Poem (कबीर साहेब की कविता) अंगरेजी भाषा में प्रकाशित कर साहेब के मत्स्ययो तव्य प्रशंसक Under the 1 में मद्रमेश्वरी भूमिका लिगाकर समुचित मान दिया। परन्तु चुन्करों को चपल

लेखक, पश्चिमीय साहित्य-सेना माला (Men of Letters Series) के लकरी के फकीर लेखक, कविता के चोर दो कोर के रगड़नेवाले, पैमे पैमे पर कलम बसनेवाले (Penny-a-liner) कवीर माहेंव का सृज कविय-शक्ति तथा रहस्यमय उक्तियों को क्या जाने, पहचानें और मान करें ! “ गुणी गुण वेत्ति न च वंति निर्गुणी ” माहेंव की सिद्धियों को बादशाह शिकंदर शाह छोटा और उनके गुरु संखनकां शाह जानें । उनके आत्मबल का परिचय बलख बुखारे के बादशाह सुल्तान अहमद शाहको मिला, जो “ बन्दीछोड ” का पद उन्हें दिया । जड़-मूर्तियों पर उनके प्रभाव के द्वारे में धर्मदासजी तथा गोलकाण्डा के बादशाह, यानाशाह के मन्त्री के जमाई गोथाना, मद्र-चालम के राममन्दिर के पुजारा को पता चला । कर्तापुरुष का धातें कर्तापुरुष ही जानें या जिनको वो जनार्थि वं जानें ।

“ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः । ”

ऐसे कर्ता-पुरुषों (creative souls) के मनोमय कोष में भी कर्तृत्व-शक्ति (creative mind) भरी रहती है । ये महापुरुष संकल्पमात्र में कठिन में कठिन कार्य सम्पादन किये हैं और कर सकते हैं, जो निम्नस्थों के मस्तिष्क में समा नहीं सकते । इसमें इन विचारों का भी कुछ दोष नहीं । जैसी स्थिति, वैसा ज्ञान । जैसी समझ, वैसा वार्ता । आप्रा के ताजमहल की बूर्जियों (towers) पर से जो जमुना का विस्तृत और साहसना दृश्य दिखाई देता है वो नीचे के कमरों में से बैठे बैठे कैसे माझूम पड़ेगा ! कुछ ऊपर चढ़े तो ऊपर चढ़ो का बात समझे । कुछ “ गगन-मंडल ” में उड़े तो उड़ेहुओं का तमाशा देखे । कुछ उन्नत कार्य करे तो, उन्नतों का कार्य समझ में आवे । ध्यान घर के मुनो जो एक महान तत्ववेत्ता (जिन्होंने अपने

जीर्ण, शार्ण, काले कुर्वन्ते, शरीर के अंग प्रत्यंग को तपोबल द्वारा परिवर्तन कर—transforming the minutest cells of his body by tapas Shakti ह्यष्टपुष्टः स्वस्व रोगमुक्त—immune from disease—सर्वांग—सुन्दर, काया-कल्प यो काया-कंठन बना चुके है) बर पूर्वक आत्म-अनुभव की बात कहते हैं :-

“ All these things we observe and reason of in terms of this embodiment of mind in matter; for these sheaths or koshas (कोष) are formations in a more and more subtle substance reposing on gross matter as their base. Let us imagine that there is a mental world in which mind and not matter is the base. There sense would be a quite different thing in its operation. It would feel mentally an image in mind and throw it out into form in more and more gross substance; and whatever physical formations there might already be in that world, would respond rapidly to the mind and obey its modifying suggestions. Mind would be masterful, creative, originative, not as either obedient to matter and merely reproductive or else in struggle with it.”

(Arya by Sri Aurobindo)

“ In more detail, particular forces, movements, powers, beings of a higher world can throw themselves on the lower to establish appropriate and corresponding forms which will connect them with the material domain and, as it were, reproduce or project their action here.”

(The Riddle of this world by Sri Aurobindo).

महान् नव्योना श्री अरविन्द के उक्त कथन का सारांश यह
 ..अथवा कि, मायारण मानव-स्थिति में मनोमय-कोष का आधारभूत

जड प्रकृति है। उच्च चेतना के मसर्ग से तब यह मन शुद्ध तथा (Spiritualised) हो जाता है, तब यह निम्न कल्पित रूप का अपन में गड़ा कर जड जगत में फेरता है उस रूप को तब प्रकृति स्थूल रूप में धारण कर जगत में चरितार्थ करती है। ऐसा स्थिति के मनोमय कोष में श्यामिन्, कर्तृन् तथा मूलस्वर मठा स्थित हैं। अन्यथा यह प्रकृति या नाम बना रहता है। सिंह हाकर, अज्ञान में गोंदड़ को अपना प्रारंभ समझ कर, उमा में लड़ता भीन्ता रहता है। उम रहस्य को मत्र कोई कसे जान या समझे। यथा—

“ नित उठ सिंह सियार (Jaekal) मे जूझे ।

कबीर के पद जन विरला जूझे ॥ ”

(साहेब कबीर)

आगे चलकर उक्त तन्त्रवेत्तानी और भी स्पष्ट कर दत है कि, उच्च आत्मा या कर्तापुरुष अपने मूर्ख या सत्-छाक में अपन तब का इस प्रकार से स्थूल जगत अथवा भ्रूलोक पर फेंक करता है कि उसका एक प्रतिरूप जगत में मादम पड जो उमका कार्य्य यहा पर किया करे। ऐसी अवस्था में यह अपन जेना, व्यक्त तथा अव्यक्त, क्षर तथा अक्षर, (Mutable and immutable personal impersonal selves) रूपा में सचेत विराजमान रहता है। एक दूसरे में सम्बन्ध नेतार के तार (Radio Transmitter and Radio Receiver) की तरह अदृश्यरूप में मठा खगा रहता है, जैसा के साहेब कबीर ने अपन शेर में स्पष्ट रूप में सकेत किया है —

•रइता (Immutable), पुरुष कबीर है.

चलता (Projected mutable personality) हैमो मेख।

कहाँ कहां म्बालकर स्पष्ट कर दिया है। यथा—

“अब हम अविगतसे चलि आये, काहू भेद मरम नहिं पाये ।
ना हम जन्मे गर्भ वसेगा, बालक होय दिखलाये ।
काशी शहर जंगल विच डेरा, तहां जुलाहा पाये ।
ये विदेह देह धरि आये, काया कबीर कढाये ।”

माहेश्वर कबीर के इसी विलक्षण अवतरण तथा उनकी अनादि योग—
माया को कवचोन्द्र खीद्रनाथ टागोर इस प्रकार अंगरेजी में लिखते हैं:—

“Brahma did not hold the crown; the God
Vishnu was not anointed as king; the power of
Shiva was still unborn; when I was instructed in
yoga. I became suddenly revealed in Benares.”

(Kabir's Poem by Ravindranath Tagore).

इस विषय को और विस्तार रूप दिया जा सकता है। पर
समझदार के लिये काफी है। नासमझ को कहा तक समझाना !
अन्त में, गरीब साहेब के सत्य वचन को सामने रख कर, इस प्रकरण
को यहीं छोड़कर, आगे बढ़ना ही उचित प्रतीत होता है :—

“गगन मंडल से उतरे, सतगुरु, पुरुष कबीर ।
जलज मांढि पोढन किये, सब पीरन के पीर ॥”

[ग्रंथ साहेब]

अर्थात् सत्-गुरु, सत्-पुरुष, सब पीरों के पीर, माहेश्वर कबीर,
(मन्वत् १४५५ के जेठ की पूर्णिमा के ब्राह्म मुहूर्त में) गगन
मंडल से उतर कर, (काशी के लहर तालाब में) कमल पुष्प पर
प्रकट हुये ।

॥ खंड-दूसरा ॥

“ गुणाः पूजाम्थान न च लिंगं न च उयः । ”

(भवभूति)

“ गुण पूज्य है, नकि, वर्ण, आश्रम अथवा उमर । ”

जो कोई अपने को कुलीन मान कर, दूसरों को कुठहीन समझ कर, वृणा को दृष्टि से देखता है, और जो कोई अपने को कुठहीन मानकर, दूसरों को कुलगान समझकर, आदर का दृष्टि में देगता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ (Deluded) हैं। एं जो कोई अप का उच्च वर्ण का समझ कर दूसरों को नीचा देखता है, और जो का अपने को नीच वर्ण का समझकर दूसरों को उच्चा देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। तथा जो कोई गेरुआ वा भगवा बल धारण करने में अथवा घौला कपडा या तिलक छाप (Trade-mark, व्यापार-चिन्ह) केवल लगाने से अपने आत्मा ब्रह्मनिष्ठ अथवा भक्तराज समझ कर, दूसरों को त्रिपय-लित्त अथवा समझता है, और जो कोई गृहस्थ मादा शरीर पर सादा कपडे रखने में अपने को रगे ब्राध का अपेक्षा निरुष्ट मानता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। इसी प्रकार जो कोई अपने को केवल बडी उमरवाला (Older in age) समझ कर, दूसरों को अपने से कमअरु समझता है, और जो कोई अपने को फक्त छोटी उमरवाला समझ कर, दूसरों को अपने में अरुमंड समझता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। क्योंकि,

“ यत् भूतयोर्नि परिपश्यन्ति धीराः । ” (श्रुति)

“ जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजः । ” (स्मृति)

“ जन्मार्थस्य यतः । ” (वेदान्त)

“ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । ” (गीता)

माराश यह निकला कि धीर, स्थिर बुद्धियाले धीमान लोग उस
 एक निम्न विभु के गर्भ से निकले हुये सभी को जानते है। जन्म से सब
 कोई शूद्र पैदा होता है, संस्कार से श्रेष्ठ बनता है। इस जीवलोच
 मे यह जीवात्मा उसी भगवान का ही सनातन अग्र है। पुराण
 पुरान अथवा बाइबिल (Bible) के अनुसार भी सब मनुष्य व
 आदमी एक मनु अथवा आदम से पैदा हुये है। सब के कुल वे
 मूल पुरुष तो, वही एक ही निकलना है। फिर कुलीन कौन औ
 कुलहीन कौन, ऊंचा कौन और नीचा कौन ? ऐसे गम्भीर ज्ञान
 माननीय प्रमाण तथा सार्वभौम इतिहास के सामने रहते हुये भी
 किमी के गुण की तरफ न देख कर, केवल “ जोलाहा ” “ जोलाहा ”
 पुकार कर, अपमानित करते जाना, कहा तक न्याय-संगत है ? पूजा
 गुण को करनी चाहिये, न कि, कुल और कपड़ों की। पिछले खंड में
 बताया जा चुका है कि साहेब कवीर कहा से आये।
 उनका कुल जो मूल अक्षर पुरुष है। वह गीता की भाषा में
 साक्षात् ऊर्ध्वमूलः अधःशास्त्रः थे। परन्तु थोड़ी देर के लिये यदि
 मान भी लिया जाय कि साहेब कवीर जोलाहे के घर में हुये वा पले
 तो इसमें घृणा से नाक निकारने की कोनसी बात है ? सिलमिले
 चार घर बाहर दोनों की सुनो, —

ब्राल्मीकि मित्रात के घर पैदा होकर, राहगीर, बटमार और
 हथियारा के जीवन व्यतीत कर, पीछे सत्-संग से मुनि-पद को पाये।
 वशिष्ठ जी चेट्या के पुत्र होकर, अपने तपोबल से भगवान रामचन्द्र
 के गुरु बने। नारद दासी-पुत्र होकर, भक्ति के प्रभाव से देवर्षि
 कहाये। हजरत ईशा (Christ) बिना बाप के पैदा होकर, भी एक
 महान धर्म (Christianity) का प्रवर्तक बने। अगस्त्य बिना मा

के घट से उत्पन्न होकर भी ऋषि पद को पाये । कृष्ण अहार (जिस को सामाजिक स्थिति जोलाहे को ऐसी है) के घर में होकर अपना पल कर जगत्-गुरु बने । फिर साहब कबीर के प्रति इतना रगडा झगडा क्यों ? उन पर आश्चर्य से आख फारने से क्या मतलब ? सत सुलसो दासजी ने भी गुणग्राहकता की ओर ध्यान खींचते हुये, अपनी रामायण में इस प्रकार अंकित कर, प्रशमनीय उदारता का परिचय दिया है —

“मज्जन फल देखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकड मराळा ॥
 मुनि आचरज करइ जनि कोई । संत-संगति-महिमा नहिं गोई ।
 बालपीकि नारद घटयोनि । निज निज मुखन कही निज होनी॥”

“सत्-सगरूपी तीर्थ में स्नान करने का फल तत्काल दिखाई देता है कि कौए कोयल और बगुले हस हो जाते हैं । यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्यों कि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है । माल्याकि, नारद और अगस्त्य ने अपनी उत्पत्ति अपने मुखों से कही है ।”

जब नीच से नीच कुल में उत्पन्न होकर तथा घृणित से घृणित तरीके से जन्म लेकर भी सत् के सग से उच्च से उच्च पद तथा मान को मनुष्य प्राप्त कर लेता है, तो जा स्वयं सत् के अवतार साहब कबीर थे उनका क्या पूछना ? प्रिस्तार के भय से पुथली-पुत्र ऋषि जावाली, नियोग से उत्पन्न धर्मराज युधिष्ठिर आदि का उल्लेख करना ठीक नहीं प्रतीत होता । पर ऊपरी आडम्बर को छोडकर सदा भीतरी गुण पर ध्यान देना चाहिये । व्यक्तित्व की कीमत होती है, न कि, जातीयता की । क्योंकि,

‘ जातिमात्रेण न कश्चित् दृश्यते पूज्यते कश्चित् ।’

राम क्षत्रिय वंश अथवा जाति के थे और रामण ब्राह्मण कुल अपना जाति का था । पर राम भगवान कहाये कि जिनका नाम आज

लम्बों वर्ष के प्राद भी सत्र वर्षों के लोगों की जिह्वा से आदरपूर्वक निकरता है। और रागण राक्षस कहाया जो कि अत्र नरु घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। फिर यही राम के कुत्र में लत्र कुत्र हुये। उनका कोन नाप करता है ? फिर लत्र कुत्र के त्रण में जो जो हुये उनके नाम नरु लत्र नहीं जानते। सदा नत्र की तरफ दृष्टि रखनी चाहिये, नकि ऊपर के आरण के ऊपर। सहैत्र नं कैमा सचोट उपमा—सहित साग्नी कही है।

“ जात न पूठा साथ की, पूठ लीजिये ज्ञान ।

मोल करो तलवार की, पडी रहन टो म्यान ॥”

साधु की जाति पाति की कीमत नहीं, उसके ज्ञान की कामत है। तलवार क चमकिले म्यान (Sword-cuse) को बाहर हटा कर, तलवार की कीमत करनी चाहिये। भगवत—भक्त तथा तन्मयता प्राप्त हुये में जाति पाति का प्रश्न रहता ही नहा। उह भगवान का एक स्वरूप बन जाता अथवा बना रहता है। यथा,

“ वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।

उद्वेगो ज्ञानतपसा पूता मद्भावम आगताः ॥ ”

(गीता)

‘ राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थितियाले मेर शरण हुए उद्वेग से पुरुष ज्ञानरूप तप से परित्र हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होचुके हैं।’ जब बल्लभ बुम्बारे के बादशाह सुल्तान अहमदशाह का साहज कमीर के आमत्र का परित्रय मिला तत्र वधे माधुलोग माहन को ‘ उन्दीठांड ’ कह कर चिठा उठ और खुद ‘ सुल्तान, साहज के पेटों पर गिर कर कातर स्वर से विनति करने लगा —

“ हमारी जान बकशो, आप तो खुद खुदा की जात, पान धो साफ ही ”

कमाल रवींद्रनाथ टागोर ने भी इसी अमेद भाव को अंगरेजी में निम्न प्रकार दर्शाया है ।

“ It is needless to ask of a saint the caste to which he belongs

For the priest, the warrior, the tradesman, and all the thirty-six castes alike are seeking for God

It is but folly to ask what the caste of a saint may be.

The barber has sought God, the washerwoman, and the carpenter Even Ravid was a seeker after God The Rishi Swamichi was a tinner by caste Hindus & Moslems alike have achieved that End where remains no mark of distinction

(Kabir's Poems by Ravidranath Tagore)

दिसाने क्या ही सच कहा है !

“ जान पान न पूछे कोई, हरि को भजे सो हर को होई । ”

॥ खंड-तीसरा ॥

“ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पंडितं बुधा ”

(गीता)

“ उस ज्ञानरूप अग्नि-द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले पुरुष को बुद्धिमान जन पंडित कहते हैं । ”

बुद्धिमानों के पंडित और मूर्खों के पंडित में भेद है । बुद्धिमानों की दृष्टि में वह पंडित है जिसने अपने ज्ञान के प्रभाव से कर्म के बन्धन को छिन्न भिन्न कर डाला है । और मूर्खों की नजर में वह पंडित है जो मोटी मोटी प्रख्यात पुस्तकों (वेद, कितेब—The Vedas, the Bible, the Koran, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, रामायण, भागवत, महाभागवत, गीता आदि) को पाठ तथा कथा मनोहर रूप से किया करे । पाठ तथा कथा के ज्ञान में परे रहने अथवा विपरीत आचरण करने से भी पंडित नाम ज्यों का त्यों बना रहता है । फोनोग्राफ के रेकर्ड (Phonographic Record) की तरह दूमरे के मन को खुदा किया करे, पर अपने तो अशान्त होकर उक्त रेकर्ड को सदृश चक्र में फिरा करे । तोते (पोपट) की तरह मोठों स्वर से “ सोऽई ” का जाप सिखाया तथा किया भी करे, पर अपने सत्य-रूप से सदा भिन्न रह कर, विपरीत करनी करता हुआ, कर्म के बन्धन-रूप पंजरे में उक्त तोते की तरह ज़ुमरा भी रहे । ज्ञानी पंडित स्वकीय संकल्पों को फिनारे करता हुआ, प्रभुप्रेरित कर्मों को निष्काम तथा निश्चल भाव से संपादन करता हुआ भी कर्मों के फन्दे से सदैव अलग रहता है । पर मूर्ख-पंडित शास्त्र तथा ज्ञान

की बात चिन्हा चिन्हा कर पढ़ता अथवा सुनाता हुआ भी अपने को उससे सदैव वंचित रखता है। यथा,

“शास्त्राण्यधित्यापि भवन्ति मूर्खाः ।

यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥” (नीति)

“शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते हैं। जो शास्त्रज्ञान के अनुकूल आचरण करता है वही विद्वान् है।”

एक-शाली हो अथवा पद्-शास्त्री हो, द्विवेदी हो वा चतुर्वेदी, पर यदि जो वेदों, शास्त्रों के ज्ञान को आत्मसात् नहीं किया, जो ज्ञान को धूर्त दुकानदार की तरह केवल दूसरों के मन को आकर्षण कर, पैसा आदि भावने के निमित्त दिखावा-गृह (Show-room) में रखे रहता है, जो शास्त्र-ज्ञान से तन्मयता न प्राप्त कर, अपने आचरण से उसको स्फुट नहीं करता है, वह शास्त्रा-भ्रूख है। और जो वेदान्त आदि शास्त्रों की मारा-मारी (Intellectual fights disputes and quarrels) से त्रिस्तुत अनभिज्ञ रहकर भी, यदि अपने रूप में स्थित होकर अपना वर्तान तथा आचरण को शुद्ध रूप में प्रगट करता रहता है, वह अपठित-विद्वान् है। नीति के उक्त भाग को साहेब कवीर ने सरल ग्रामीण उपमा के साथ निम्न साखी में कैसा सचोट स्फुट किया है !

“ करनी दिन कथनो कथै, अज्ञानी दिनरात ।

कूकर ज्यों भूक्त फिरे, सुनी सुनाई वात ॥”

(सा० प्र० पृ० ३६१ सं. ४)

उक्त अर्थ में हम कहा करते हैं कि साहेब कवीर “अपठित विद्वान्” थे, और गीता के अनुसार “ बुद्धिमानों के पंडित ”

थे, अक्षर रूप में “ ऊर्ध्वमूल ” थे और शरीर रूप में “ अधः-शाख ” थे । यह बात बिल्कुल ठीक है कि साहेब व्याकरण, वेदान्त आदि ग्रन्थों के मूल, भाष्य अथवा महाभाष्य को रटे हुये नहीं थे, और न उनको ये सत्र रटने की जरूरत ही थी ! वह न्याय के “ अन्वय ” “ व्यतिरेक ” आदि के प्रपञ्च को रगड़ से अलग थे, और न उनको ये सत्र रगड़ में पड़ने को कुछ आवश्यकता ही थी । द्रव्य में गुण है कि गुण में द्रव्य है ऐसे निरर्थक शाखायों अथवा वाद-विवादों से परे थे, और न उनको ये सत्र वादविवादों की आमन्यकता ही थी । उनको तो “ एके अनेके अनेके सौ एके ” (Unity in diversity) का प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct perception) था । फिर उनको बेकार झगड़ा से क्या मतलब ? व्याकरण पढ़ा जाता है लौकिक तथा वैदिक साहित्यों को समझने के लिये, और साहित्य पढ़े जाते हैं प्रकृति वी पुरुष के ज्ञान के लिये । परन्तु पुस्तकों से सदा परोक्ष (indirect) ज्ञान हुआ करता है । फिर जिस साहेब करीर को प्रकृति वी पुरुष का सहज तथा ग्रन्थज्ञ ज्ञान था, उनको उक्त पगवियों (stump-) पर माथापची करके परोक्ष ज्ञान लेने से क्या मतलब ? इंगर (mountain) खोद कर ऊंदर (mouse) निकालने से क्या प्रयोजन ? सुनो और समझो:—

एक था राजा जो पठित था । उसके कोप में फोटानुमोट रुपये, बहुत सोने वी बहुमूल्य रत्न आदि पड़े रहते थे । उसकी आलमारियों (Book-Shelves, almirahs) में वेद वेदान्त, इतिहास पुराण आदि अनेक ग्रन्थ भी प्रसज्मान थे । राजकीय कार्य से अत्रकाण निडने पर ग्रन्थों को राय अमजोरान भी प्रिया करता था तथा कयको से इनकी कथा भी सुना करता था । उसकी रानी कुछ भी पढ़ी लिखी

नहीं थी। पर सांसारिक घटनाओं को विचार-पूर्वक देखा करता था और आप ही आप कुछ मन्तव्य निकाल कर मनोमय कोष में एकत्रित किया करती थी। संसार के सब पदार्थों का एकमात्र स्वामी, भगवान को, दिल से समझती थी। राजा के पुरोहित तो खूब पड़े लिखे थे और अच्छे कथक्कड़ भी थे। मोटी मोटी पोथियां वो थैलियां घर में तयार साथ भी रखा करते थे। कथा की पूर्णाहृतियों के समय पर पोथिया फलों से तर हो जातीं और छिद्रुड़ी हुई थैलियां रुपयों से भर कर फूल जातीं। कथा के आरम्भ करते ही पूर्णाहृति के दिन को तिथि उनके ध्यान में उपस्थित होजाती थी। भार्या (Coming) पूर्णाहृति की आमदनों का हिसाब दिनरात में कई बार जोड़ लिया करते थे। अभिष्ट से कम की आड़का मदैव लगी रहती थी। फिर दूसरी जगह कथा करने का प्रोग्राम (Programme) आपही आप रचकर मन को समझाते बुझाते। इसी उधेड़-धुन में जीवन का अधिक समय बीता करता था। निन्नावे का फेरा ही ऐसा है। उमर तो साठ तक पहुंच कर शरीर को कुछ झुका चुकी थी पर तृष्णा तो वर्षाकाल के तरुण तरुण के ऐसा दिन दूना वो रात चौगुना सीधी ही बढ़ती जाती थी। जैसे राजा को दो तिन लड़के लड़कियां थीं वैसे पुरोहित जी को भी। एक दिन पुरोहित जी अपने घर के निकटवर्ती राजमहल में पधारे। राजा ने पुरोहित से कहा कि गीता का कुछ ज्ञान सुनाओ। पुरोहित ने एवमरतु कहकर :-

अन्तवन्त इमे देश् नित्यस्योक्ताः शरीरिणः—

के आधार पर शरीर को मरणशील, अन्तवाला तथा आत्मा को नित्य और अनन्त, अनेक प्रमाणों तथा रोचक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया। वार्ता के बीच बीच में राजा रानी को (जो कौसी

दूसरे विचार में मग्न थी) पुकारा करते थे कि जिसमें वह भी इस तान को ग्रहण करे। वह एक बार आई और थोड़ी देर सुन कर चली गई। थोड़ी देर के बाद पुरोहित भी अपनी यत्कृता समाप्त कर राजा को खुश कर, दक्षिणा रूप नगद नारायण (Cash) पर हाथ भरते हुये अपने घर को सिधारे। दैन्ययोग से दो ही दिन के बाद राजा तथा पुरोहित के बच्चे लड्डके महामारी (Cholera) रोग से ग्रस्त हुये ओ लाख दवादारू करने पर भी दोनों ही के शरीर का अंत होही गया। इधर राजा आर्तनाद से रोते थे और उधर पुरोहित भी छाती पीट पीट कर चिन्हा रहे थे। रानी शान्त तथा प्रसन्न चित्त में बैठ रही थी। लोग विस्मय में आकर रानी से पूछने लगे। उसने यही कहा कि शरीर नागमान है, ऐसा तो मुझे अनेक मृत्यु-घटनाओं में प्रत्यक्ष ही था, पर आत्मा नित्य है यह पुरोहित के परसों के प्रवचन से सिद्ध ही होगया है। फिर रुदन करके शोर मचाने की कीन सा जगह है' इसके अतिरिक्त सारा सत्तार का एकमात्र स्वामी भगवान है। वही न्यामानुसार सब को देता है और ले भी लेता है। यह देव, न देव, दिया हुआ भी ले लेने, इसमें किसी का क्या चारा है? थोड़े ही सरल और सच्चे सद्दों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, समर्पण आदि के मूल मंत्र बता दो और उन पर प्रतीक कर दिखादी। विचारो, तीनों के सामने एक ही घटना समानरूप से उपस्थित है। अपठित अक्लान्त है और पठित राजा तथा पोथाघाती पुरोहित व्याकुल है। साहब ने कैसा ठोक कहा है—

नजर नहीं आवत आत्म-उद्योति।

कहत कवीर सुनो भाइ साधो, घर घर वांचत पोथी। न०

भाइ, आत्म-उद्योतिगले को पोथा पोथी की आवश्यकता नहीं है। परम-हंस रामकृष्ण जी क्या पढ़े थे? उन्होंने कीन सा पोथा लिखा

हे ! परन्तु उच्च से उच्च कोटि के विद्वान् स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे भी उनको अपने गुरु के नाम से पुकारने में फखर (Pride) समझते थे । उनके नाम पर सेवा-आश्रम आदि खोलने में कल्याण ममझते थे । जगत में विख्यात फ्रेन्च लेखक रोमा रोलाण्ड (Roman Rolland) ने उनका विस्मय-जनक जीवन लिखा है । हज़रत ईशा (Christ) अपना हस्ताक्षर (Signature) भी करना नहीं जानते थे । पर आज करीब दो हज़ार वर्ष के बाद भी उनकी उक्तिया प्रमाणरूप से कही जाती हैं । लोगों में उनकी प्रतिष्ठा ऐसी बढ़ी कि उनकी जन्मतिथि से ईशवी सन् वा सम्वत का आर्विभाव हुआ, जो आजतक चाहू है और आगे भी चाहू रहेगा । पोथा पोथियो को बहुत पढने से तो किसी को सत्य-ज्ञान न होकर उल्टा भ्रम बढ़ जाता है और कभी कभी धुंवरारा भो बन जाता है । अनेको को तो मिथ्या अभिमान का ऐसा गाढा रंग चढ़ जाता है जो जीवन के अंत तक साफ होता ही नहीं । बढके दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है । " पयःपानं भुजंगाना केरलं त्रिष-वर्धनम् " की दशा होती जाती है । अप्ठरूप दूधपान साप में त्रिष ही उत्पन्न करने का निमित्त बनता जाता है । मन में पांडित्य का अहंकाररूप मल ऐसा भर जाता है कि सत्-ज्ञानरूप ब्रह्म (सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म-उपनिषद्) में लीन होने की जगह भ्रम में चकर मारते रहते हैं । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि गुजरात में एक प्रख्यात ब्रह्मनिष्ठ, गीता के ज्ञान के मन्दिर का रचानेवाले, अपने को विद्या के पंडित माननेवाले, भ्रमनिष्ठ सबूत हुये और इस प्रदेश से बाहर मुस्र छिपा कर भागे फिरते हैं । पहले बहुत दिन तक गुप्त रही । पर अब तो सर्व साधारण (Public) में एकदम प्रकट होगई । ननु नच अगर मगर को जगह भी नहीं रही । यथा:—

अविद्यायां अन्तरे वर्तमाना : स्वयं धीरा : पंडितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥
(उपनिषद्)

आत्मा असंग है (असंगोऽयं आत्मा) का उलटा पाठ पढ़ कर धार कुर्कर्म में रत होते हुये भी अपने को पंडित वो ब्रह्मनिष्ठ कहते ही जाते हैं । असत् पदार्थ वो विषयों से गला जोड़ते हैं और सत् ब्रह्म को अपना प्रीतम (Beloved) बनाना छोड़ बैठते हैं । कवोन्द्र रवीन्द्र ने साहेब के इसी भाव को अंगरेजी में इस प्रकार व्यक्त किया है—

I have learned the Sanskrit language, so let all men call me wise; but where is the use of this, when I am floating adrift, and parched with thirst, and burning with the heat of desire ?

Kabir says : " To no purpose do you bear on your head this load of pride and vanity. Lay it down in the dust and go forth to meet the Beloved. Address Him as your Lord."

(Ravindranath Tagore).

केवल वेद कितेव के पठन पाठन से, शास्त्र पुराण की कथा करने कराने से, अहंब्रह्म वो शिवोऽहं अथवा राम राम और श्याम श्याम के चिह्नाने से, तिलक छाप करने कराने से, साहेब की साखी शब्दों को ढोल मंजीरा पर गाने बजाने से भी (जैसा के साहेब स्वयं कहते हैं—

माला पहिरें टोपी पहिरें, छाप तिलक अनुमाना ।

साखी-शब्द गावत, भूले, आत्म खबरि न जाना ॥

कबीर साहेब का वीजक, शब्द नं. ४

आत्मा की खबर नहीं पड़ती और कर्म के फास भा नहा छूटत । हा, इनसे परोक्ष ज्ञान मिल सकता है। छिपी हुई अग्नि कुछ ऊपर खुली हो सकती है । उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है । परन्तु ये सब प्रत्येक की हो, यह निश्चय नहा । और अभ्यासी को कुछ अधिक सहारा मिलता है । अनुभव मिलाने को जगह मिलती है (to compare spiritual experiences), दृढता आती है । पर मचमुच में है यह गुरुगम्य गत । जब बाहरी अथवा भीतरी सत्-गुरु (External or internal true guide) से भेंटा हो जाता है । तब उस सूक्ष्म आत्मज्ञान में कुछ गति भी होने लगती है और ज्ञानोदय से कर्म का पन्दा भी कट जाता है । यथा,

“ कर्म फास छूटै नहीं, बंतो करो उपाय ।
सत्-गुरु मिलै तो ऊबै, नहि तो बकौ खाय ॥ ”

(सा० प्र० पृ० ४०)

न नरेण अवरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधाः चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणोयान् हि अतर्क्य अणुप्रमाणात्

(कठ-उपनिषद्)

॥ खंड-चौथा ॥

• निवृत्त—रागम्य गृहं तपोवनं । ”

• वीतरागशाले का घर ही तपोवन है । ”

स्थान की विशेषता उसके कामों की विशेषता पर निर्भर है । इसमें कोई सदेह नहीं कि कृत्रिम अथवा स्वाभाविक दृश्य (Artificial or natural scenes) का प्रभाव मरल चित्त के ऊपर असर्य पड़ता है । पर्यदि चित्त की कोई भी वृत्ति वेग से जाग उठी हो तो, इन दोनों के प्रभाव को दूर फेंक कर अपनी ही स्थापित रस्तों हैं । कभी कभी तो उनके माने हुये परिणाम से विलकुल विपरीत फल देखाता है । जैसे. लोगों में ऐसी मान्यता है कि एकान्त स्थल में मन शान्त होजाता है और शुद्धता को भी प्राप्त करता है । ठीक है, कितने मनुष्यों को एकान्त भेगन से उक्त दोनों तरह के लाभ मिले हैं और दूसरों को भी मिल सके हैं । पर प्रत्येक को एकान्त से ऐसे लाभ मिले, यह कोई निश्चित नियम नहीं । क्योंकि घोर से घोर पाप की नींव एकान्त में ही ढाली जाती है । हत्या भी निर्जन और नीरव स्थान में की जाती है । कामों को विषय-तृष्णा भी अकेले ही में अधिक सताती है । उठायो कवि कालीदास के मेघदूत को । विचार के साथ अध्ययन करो एकान्त स्थित यज्ञ की भीतरी दशा को और उसके कामातुर उद्गार को । किसीने कैसा ठीक कहा है !

“ स्थानं विरिक्तं यतिनाम् विमुक्तये,

कामातुराणां अति कामकारणं । ”

यतियों के लिये एकान्त स्थान मुक्ति का साधन होता है और कामातुरों के लिये काम के वेग को अत्यन्त बढ़ानेवाला बन जाता है ।

अतः सब कुल अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रक्ता है। दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है। राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, वा के साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभी के दृषणों में एकलम परे रहे। जोन-मुक्त के पद को पाये। ऋषियों मुनियों में उनका इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अन्तिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे। परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये त्रिभामित्रजी कामाक्षी हो फरे और अकुन्तला का उत्पत्ति करी। फिर युवती होने पर उसी अकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहमा गर्भ भी ठहर गया। विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को। महान्माथों के प्रभाव से जल स्थल आदि जड पदार्थ भी तीर्थ बन गये। उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चट्टी है कि मरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचते ही शान्ति मिलने लगती है। फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निवास में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है। हनुमान गढ़ी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर विदित हैं और महाराजा लायबल केम (Maharaja Libel case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म का आड में अधिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है। चन्द दिनों की बात है कि बृहभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पञ्चा गुलाम बन गये। जहा पर रामनेही रहा करते थे वहा पर गड्ढेही रहने लगे। जहा पर विरागी रहा करते थे वहा पर रागी तथा विध्वंस

अतः सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रखता है। दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-ब्राजा है। राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, खा क साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभों के दृषणों में एकदम परे रहे। जीवन-मुक्त के पद को पाये। ऋषियों मुनियों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अन्तिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे। परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये त्रिश्वामित्रजी कामातुर हो फसे और शकुन्तला की उत्पत्ति करी। फिर युवती होने पर उसी शकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया। त्रिचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को। महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड पदार्थ भी तीर्थ बन गये। उनके गतानरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चलती है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचते ही शान्ति मिलने लगती है। फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निग्राम में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है। हनुमान गढ़ी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर प्रिदित हैं और महाराजा लायण्ट केस (Maharaja Label case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड में शिकार करनेवाले का मंडः फोर डाला है। चन्द्र दिनों की बात है कि बल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पक्का गुलाम बन गये। जहाँ पर रामस्नेही रहा करते थे वहाँ पर राडस्नेही रहने लगे। जहाँ पर त्रिरागी रहा करते थे वहाँ पर रागी तथा त्रिपरा

जना का अड्डा बना। जहाँ धारणा, ध्यान का अभ्यास चलता था वहाँ गुरु शिष्य राग रग में मस्त हैं। व्यक्ति-गत आचरण से तपोभूमि रगभूमि बन जाती है और रगभूमि तपोभूमि बन जाती है, वैराग्य-आश्रम (Penitence-house) रागभवन (pleasure-house) बन जाता है और गृहस्थों का घर तपस्यास्थल बन जाता है। इसमें घर बाहर की, मकान मंदिर की कोई बात नहीं। कितने वैरागी ब्रह्मचारी वास्तव में घरवारी हैं। और कितने गृहस्थ घरवारी असल में ब्रह्मचारी हैं। वन, इसी प्रकार के घरवारी-ब्रह्मचारी, त्यागी-गृही, जीवन-मुक्त साहेब करीर, राजा जनक के ऐसा विदेही-देही थे। उन्होंने आत्म-परिचय में उद्घाटन भी किया है -

“ थे विदेह देह धरि आये, काया कवीर कड़ाये । ”

मान भी लिया जाय कि उनके घर में छोड़े और धोड़े नाम की दो लड़कियाँ रहती थीं और कमाल वो कमाली नाम के लड़का वो लड़की भी रहा करती थी, तौभी साहेब के महत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ता, यदि राजा जनक रानी सहित घर में रहते हुये भी विदेही कहला सकते हैं, रामजी सती सीता के साथ सहवास करते हुये, लख कुश लड़कों को उत्पन्न करते हुये भी भगवान का अवतार बन सकते हैं, कृष्णजी अपनी प्रेमस्वरूपा स्वकीया महिला तथा भक्ति-परायणा परकीया गोपांगनाओं के मध्य में निराजते हुये भी योगारूढ और योगेश्वर बने रह सकते हैं तो, साहेब कवीर को सत्-पुरुष कहने और मानने में कौन सा अडचन आ पड़ता है ? यहाँ पर साहेब की जीवन-घटनाओं से कुछ उल्लेख करना आनन्दकर प्रतीत होता है। इनको विचार-पूर्वक पढ़ कर अपनी राय कायम करनी चाहिये। हठ वश न मानने से साहेब को सत्-पुरुषता में जरि भी कमी कदापि नहीं आने पावेगी।

कुछ लोगों का ऐसा न्याय है कि, कपाल तथा कमाली माह्व कर्षर के निज पुत्र तथा पुत्रो था । पर नोचो लिखी घटनाओं में, कुछ अन्यथा ही बोध होता है । सुन लो, आगे जेसा मन में जावे वसा समझा करना और कहा करना । कोई किसी का मुह थोटे ही गोक सक्ता है । किसीने ठीक कहा है—ससार का मुह भमार । तथा—जना विचित्रा अद्भुतभावभाङ्गी । अर्थात् खोपडी खोपडी का मनि न्यारो ।

शाहनशाह सिकन्दर लोदी (Emperor Sikander Lodi) १५ वीं शताब्दी में दिल्ली के सम्राट्-सिंहासन पर शोभाप्रमान थे । उनके पीर अथवा गुरु जेखत-शो शाह थे । यह राजगुरु शम्भजी का स्थान झूसी में इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गया-जमुना के सगम पर था । अभी भी शायद उनकी कब्र मौजूद है । उक्त शम्भजी कर्षर माह्व के ज्वलन्त प्रभाव को देख सुन कर मन ही मन गूर जलामूना करते थे । कभी कभी यह भीतरी अग्नि हाल में बडोदा राजमहल के घेरे (Compound) में फूटे भूगंडे के समान ऊपर जा जाया करती थी । समय समय पर ऐसी द्वेषाग्नि से पीड़ित होकर शम्भजी अपने शागिर्द (सेवक) उक्त सिकन्दर बादशाह का उत्तेजित कर साहेब कर्षर को अनेक प्रकार की ऐसी क्रूर यातनायें दिलाया करते थे कि जिनको सुनकर कलेजा काप उठता है । पर चन्दन ज्यों ज्यों घिसा जाता है त्यों त्यों उसका सुगन्ध दो सुवास, फूटता दो फैलता जाता है, हेना (मेहदी) ज्यों ज्यों पीसी जाती है त्यों त्यों सूखी लाली निकलती आती है, सोना ज्यों ज्यों तपाया जाता है त्यों त्यों उसका रंग चउता जाता है । अन्त में एक घटना ऐसी आ बनी कि शम्भजी दो साहेब कमार के सामने सर झुकाता पटा और हमेंगे के उिये

मुक्तकूट से 'पारों क पीर' तथा 'गुरुओं के गुरु' कहना जो मानना पड़ा।

निष्पथभात्र से सुनो जो Rev. I. E. Key, D. Litt. of London (लन्दन के साहित्याचार्य्य माननीय एफ० ई० काय साहेब अपन Kabir & His Followers (कबीर एण्ड हिज फालोअर्स) नामक पुस्तक में लिखते हैं —

One day, when Kabir was walking on the banks of the Ganges with a certain Shukh Taqqi the corpse of a child was seen floating by, Shukh Taqqi challenged Kabir to raise it to life. This he did, and taking it home he adopted it as his own son. The Shukh said, 'you have indeed shown great perfection (Kamal)' So the boy was named Kamal. The story of the coming of Kamali is similar. According to some accounts she was a child who had died in the house of a neighbour and Kabir raised her to life. According to others, the daughter of Shukh Taqqi, who had already been eight days in the grave.

अथात् एक दिन जब गंगा की तट पर साहेब कबीर जखनका क माय टहल रहे थे एक बच्चे की लाश पानी में दहलता हुई नजदीक नगर आई। जेखतकी न साहेब कबीर को मुर्द को निन्दा कर देन को लकारा। यह साहेब न कर दिखाया, और बच्चे का घर पर ले जाकर अपना पुत्र बना लिया। इस पर शेख ने कहा, "आपन मचमुच म प्रडा कमाल (चमकार) दिवाई।" प्रस, उम् बच्चे का नाम 'कमाल' रखा गया। इमा प्रकार 'कमाली' की भी कथा है।

काई कोई कहते हैं कि साहेब कबीर ने अपने किसी पड़ोसी की मरी लड़की को जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली और किसी के मतानुसार यह शखतकी हा की लड़की थी जा आठ दिन तक कमर म मरी पड़ी रही था । और साहेब ने उसको जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ला । ”

सभन हे कि पिठली ही बात ठीक हो । यह शखतकी ही को लकड़ी होगी । क्योंकि, इन घटनाओं के पश्चात्, शखतकी शाह साहेब कबीर का परम प्रशसक तथा भावुक मक्त बन गया । ठीक है—

‘सच्चाई वा हरेक आलम में जाहरा हो ही जाता है ।

जो इसको देख पाता है वा शेदा हो ही जाता है ॥ ’

मुद्दे को जिन्दा होना अपना करना काई अत्यन्त असम्भव बात नहा है । जिसने इस सम्बन्ध में मृत्यु-घटनाओं को विचार-पूर्वक अनलोकन किया है या प्रमाणिक पुरुषों से सुना है, अपना जिसने शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy and Physiology) को ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया है, अपना जिसने प्रत्याहार (Self-abstention or self withdrawal) का थोड़ा भी अभ्यास किया है, उसको सभन अपना असम्भव की बातें समय में आ सकती हैं । विचार-शून्य निरक्षर भद्राचार्य, त्रास्रही, मूढ़ अपना अनम्यासी कल्पि नहा समझ सकता । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि बंगाल के एक वैद्यराज की लड़की पन्द्रह सोलह घंटा (Fifteen or Sixteen hours) तक मरा रही डाक्टर वैद्य सभों ने मृत प्रतलाया । लोग स्मशान भूमि पर ल गये । उसके मृत शरीर पर जलाने के लिये जल लकड़ी रखी गई तत्र उसने आँखें खोलीं । कुछ लोग भयभात होकर भाग गये । उसका पतिने डाक्टर को बोझाया । यह औषध आदि के प्रयोग से जा उठा और

अभी तक जीवित है। मैं जानते में भी नीरंगी लाल पाटीदार को भी इसी प्रकार की दशा हुई थी। ऐसी अनेक घटनायें (Cases) होती हैं। जो विचारता है उसको कुछ पता चलता है। शरीर-शास्त्र (Physiology) के अनुसार मृत्यु की दो अवस्थाएँ (stages) हैं। एक का नाम व्यापारिक-मृत्यु (Somatic or Constitutional death) और दूसरे का नाम आणविक-मृत्यु (molecular or cellular death) है। पहली अवस्था में प्राणी के बाहरी व्यापार नष्ट-प्रायः हो जाते हैं और वह सर्वथा निश्चेष्ट बन जाता है। फेफसे तथा हृदय (Lungs and heart) की गति यन्त्रो (Stethoscope and pulsometer) से भी नहीं माप पड़ती। पर-पारदर्शी-प्रकाश (x rays) आदि के प्रयोग से हाल में एक हठयोगी पर अनुभव किया गया है कि इनमें अत्यन्त सूक्ष्म कंपन (Very slight vibrations) बने रहते हैं। दूसरी अवस्था में शरीर के अंग-प्रत्यंग के छोटे से छोटे अंग (Cells) जीवन-हीन हो जाते हैं और उनसे दुर्गंध (Putrefaction) निकलना आरम्भ हो जाता है। पहली अवस्था में कोई प्राणी अथवा मनुष्य चाहे कितने ही दिन पड़ा रहे फिर से जीवित हो सकता है। दूसरी अवस्था में कदापि नहीं। पहली अवस्था कभी कभी रोग के प्रभाव से अथवा साप आदि विषैले जन्तु के काटने से भी उपस्थित हो जाती है। इस अवस्था में पड़े मनुष्य को औषध अथवा आत्म-विद्युत् (Personal Magnetism) के प्रभाव से पुनः जीवित किया जा सकता है। इसी अवस्था में पड़े कमाल तथा कमाली को साहेब कवीर ने अपने आत्म-विद्युत् की धारा देकर, उनमें प्रसुप्त तथा प्रच्छन्न चेतना (Dormant and covered consciousness) को जागृत कर, पुनः जीवित किया। अपना पुत्र तथा पुत्री बनाई। इसमें शंका वा संदेह

चरने का कोई जगह नहीं है। साहेब में उच्च से उच्च कोटि का आत्म-चल विद्यमान था, इसका परिचय तो अनेकानेक स्थानों में मिल चुका है। साधारण मनुष्यों के लिये ऐसा करना असमर्थ है। साहेब के लिये यह सहज था। पर अन्यायी इस मृत-प्राय अवस्था में अपने आपको स्वेच्छापूर्वक (Voluntarily bringing the state of human hibernation or yogic trance) ला सकता है और आपही आप पुन जीवित हो सकता है। जिण्डो इस विषय में अधिक जानने का इच्छा हो उसको उचित है कि जाव्यात्मिक-अन्वेषण (Psychological Researches) असमय-अन्त्येष्टि (Premature Burial) नाडी विचार (Pulsation), हठ-याग (yoga of self-abstraction or withdrawal) सम्बन्धी प्रमाणिकग्रन्थों को अध्ययन कर अथवा अनुभवी का संग करें। निस्तार क भय म केवल दो प्रमाणिक उदाहरण एक माननीय वैज्ञानिक ग्रन्थ से दिये जाते हैं।

' In Delhi 1889, Dr H E Sen and his brother, Mr Chandra Sen Municipal Secretary, examined a well-known yogi devotee in a self-induced trance in which he appears to have been sealed or sealed in Buddha fashion. They found that the pulse had ceased to beat altogether nor could the slightest heart-beat be detected by the stethoscope. The yogi was placed in a small sub-terraneous masonry cell and the door locked and sealed by the City-Magistrate. At the expiration of thirteen-three days the cell was opened and the devotee found just where he was placed but with a death like appearance,

the limbs having become stiff as in rigor mortis. He was brought from the vault and the mouth rubbed with honey and milk and the body massaged with oil. In the evening manifestations of life returned. He was fed with a spoonful of milk, and in three days was able to eat his normal diet, and was alive seven years after."

(Lyon's Medical Jurisprudence for India, by L. A. Waddell, C. B., C. I. E. LL. D., M. B., F. L. S., Seventh Edition 1921, page 79).

" We all three felt the pulse of colonel Townshend first; it was distinct though small and thready, and his heart had its usual beating. He composed himself on his back, and lay in a still posture some time; which I held his right hand, Dr. Baynard laid his hand on his heart, and Mr. Skrine, held a clean looking-glass to his mouth. I found his pulse sink gradually, till at last I could not feel any by the most exact and nice touch. Dr Baynard could not feel the least motion in his heart, nor Mr. Skrine discern the least soil of breath on the bright mirror he held to his mouth. Then each of us by turns examined his arm, heart and breath, but could not by the nicest scrutiny discover the least symptom of life in him. This continued about half an hour. As we were going away (thinking him dead),

we observed some motion about the body, and upon examination found his pulse and the motion of his heart gradually returning; he began to breath gently and speak softly."

(The said Medical Jurisprudence for India, page 81).

“ दिल्ली में डाक्टर एच. सी. मेन और उनके भाई, महाराज चन्द्रसेन, म्युनीसीपल (सुधराई) मंत्रा ने एक पन्नासन लगाये ममाधिस्य योगी की परीक्षा १८८९ ई. में की। उन लोगों ने देखा कि नाश चलनी विन्कल बन्द हो गई और फेफसे तथा दिल का चाल जानने के यंत्र से भी दिल का जरासा भी धडकना नहीं मालूम पडने लगा। योगी को एक पक्के तहखाने में रख दिया गया और नगर के मेडिस्ट्रीट साहेब ने दरवाजे बन्द करा दिये और ताले में मोहर लगा दिये। तेरास (३३) दिन के व्यतीत होने के उपरान्त वह तहखाना खोला गया और वह योगी वहीं पर विराजमान था जहां पर रखा गया था, परन्तु मुख पर मुदनी छाई हुई थी और हाथ पर मृत पुरुष का भाति कड़े होगये थे। उसको तहखाने से बाहर लाया गया, मुख में दूध-और मध मले गये, और शरीर में तेल मालिश किया गया। सायकाल में जीवन के चिन्ह छोटने दीख पडे। उसको खाने के लिये एक चमचा दूध दिया गया, और वह तीन दिन में अपना नैथिक भोजन करने के योग्य हो गया। तदुपरान्त वह सात वर्ष तक जीवित रहा। ”

(लॉयन-कृत मेडिकल जुरिस्पुडेन्स १९२१, पृ. ७९)

“ हम लोग तीनों ने कर्नल टैनशेन्ट की नाटी देखी; लघु और क्षीण होने पर भी, यह प्रकृत थी, और उनका हृदय ययारोति

घड़क रहा था । वह अपने पीठ के बल पड़ गये, और थोड़ी देर तक विलकुल चुपचाप लेटे रहे; मैंने उनका दहना हांथ धरा, डाक्टर वेनार्ड ने उनके हृदय-स्थल पर हांथ धरा, और महाशय स्क्राइन ने उनके मुख के पास एक स्वच्छ दर्पण (आरसी) रखा । मुझे उनकी नाड़ी शनैः शनैः डूबती मालूम पड़ी, अन्त में बहुत यत्न करने पर भी, उनकी नाड़ी विलकुल ही नहीं मालूम पड़ने लगी । डा० वेनार्ड को उनके दिल की घडकन जरी भी नहीं मालूम पड़ने लगी, और न म० स्क्राइन ही को उनके मुख के पास रखे निर्मल दर्पण पर श्वास का दूषित धब्बा ही मालूम पडा । तब हम लोगों ने धारावारी उनके बांह, दिल और श्वास की परीक्षा की, परन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म परीक्षा करने पर भी, उनमें जीवन का जरा सा भी चिन्ह नहीं पाया । यह अवस्था आधे घंटे तक वर्तमान रही । ज्योंहि हम लोग उठे (यह जानकर कि वह मर गये), उनके शरीर पर कुछ गति दीख पड़ी, और परीक्षा करने पर पता चला कि उनकी नाड़ी तथा दिल की घडकन आहिस्ते आहिस्ते लौट रही हैं; वह धीरे धीरे श्वास लेने लगे और बोलने भी लगे ।

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ८१)

उक्त कथनों का सारांश यह निकला कि मनुष्य रोग वा विप के प्रभाव से तथा आत्म-संकोचन-प्रक्रिया (Process of self-withdrawal) से मृतवत बन जा सकता है । पहले दोनों का प्रभाव समय पाकर आपही आप, अथवा औषध के प्रयोग से नष्ट हो सकता है । अथवा जैसा के साहेब कबीर ने कमाल कमाली को आत्म-मिचुत (Personal magnetism) द्वारा पुनः जीवित किया, वैसा किया जा सकता है । यह कोई असंभव बात नहीं है । पर ऐसा

वात्म-विशुत् अपने में उपस्थित चाहिये । अन्यथा केवल डोंग से काम नहीं चलेगा । अच्छा, अब छोई घोई का वात बाकी रही ।

कुल लोगों की ऐसी मति है कि छोई नाम को एक साधु-सेवा तथा घोई नाम का एक वेश्या दोनों की दोनों साहेब कबीर की लिया र्थ और छोई से कमाळ को कमाळी नामी सन्तान पैदा हुई । पर विचार कर देखने से मालूम होगा कि जैसे साहेब कबीर, कमाळ को कमाळी के धर्मपिता (Foster-father) थे, वैसे ही उक्त दोनों शिष्यों के धर्म-गुरु तथा धर्मोद्धारक थे । पर जो लोग द्वेषाग्नि से पीड़ित हैं, अथवा विषय-यायु के झकोडे से क्षण क्षण में क्षत वो क्षुब्ध, नष्ट वो भ्रष्ट होते रहते हैं, जो ऊपर में रामस्नेहां और भीतर में राडस्नेहां के मिश्रमचर (Mixture) बने हैं, वे क्या समझें कि साहेब कबीर किस पद पर आरूढ थे, किस देश के वासी थे, किस धाम में उनका मोक्षाम रहता था । किरीने सच कहा है “ विसो वसन्तस्य गुणं न वायसः । ” साहेब को समझने के लिये साधना की आवश्यकता है, कौरि क्लिवाओं से तथा दन्तकथाओं से काम नहीं चलेगा । सुनो, जो एक माननीय अंगरेज ग्रन्थकार (An Englishman writer) लिखते हैं:—

“ When Kabir was about thirty years of age, he was once wandering in the forest and reached the hut of a certain sadhu (Saint), where he rested. He found there a girl of about twenty years of age who asked him who he was. He replied, ‘ Kabir ’. She then asked his caste, to which question again he replied ‘ Kabir ’. She asked his order, and again

received the answer, 'Kabir'. She then asked his name, and was told it was, 'Kabir'. The girl was much surprised and said she had seen many sadhus but never one who answered in this fashion, Kabir replied that all others had name and caste and order, but he had none. Meanwhile six sadhus had arrived, and the girl brought seven cups of milk and set one before each. Kabir did not drink his milk, but said he was keeping it for another sadhu who was on the further bank of the Ganges. Before long, to the astonishment of all, this sadhu appeared. In further conversation, it came out that once a sadhu had lived in this hut, who one day saw something in the middle of the Ganges wrapped in a woollen cloth and carried along by the stream, on getting hold of it he found a girl-child, whom he brought to his hut and reared with milk. Because he had found her wrapped in woollen cloth (Loi) he named her Loi. On his death-bed he had told her that one day a saint would come and be her guide. The end of it was that Loi became a disciple of Kabir and followed him to Benares (Kashi)."

अर्थात् "जब साहेब कबीर की आयु लगभग तीस (३०) वर्ष की थी, वह जंगलों में घूमते हुए एक साधु की कुटि पर पहुँचे और वहाँ विश्राम किया। वहाँ पर प्रायः बीस (२०) वर्ष की एक लड़की रहती थी, जिसने पूछा, "आप कौन हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "कबीर" उसने

तब उनकी जाति पूछी, जिसके उत्तर में उन्होंने पुनः वही कहा "कवीर" उसने उनका सम्प्रदाय पूछा और उसको फिर वही जवाब मिला "कवीर" तब उसने उनका नाम पूछा, जिसका उत्तर भी वही मिला, "कवीर" । वह लड़की अत्यन्त चकित हुई और बोल उठी, "मैंने अनेक साधु देखे, परन्तु किसीने इस प्रकार से उत्तर नहीं दिये ।" इस पर साहेब कवीर ने कहा, 'अन्य साधुओं के नाम, जाति तथा सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु मुझको ये सब कुछ नहीं ।' इसी बीच में छे (६) साधु और पहुंचे और उस लड़की ने सात दूध के प्याले लाकर प्रत्येक के सामने एक एक रख दिया । साहेब कवीर ने अपने भाग का दूध नहीं पिया और कहा कि, इसे दूसरे साधु (जो गंगा की परली तट पर से इधर को आ रहा है) के लिये रख छोडा है । थोड़ी ही देर में वह साधु आ पहुंचा और सब के सब विस्मित हो गये । आगे बात चलने पर मालूम हुआ कि उक्त कुटि में पहले एक साधु रहा करते थे, जिन्होंने एक दिन गंगा की बीच धारा में बहती हुई तथा उनके कपड़े में लपेटी हुई किसी चीज़ को देखा । जब उन्होंने उमको बाहर निकाला, तो, देखा कि एक बच्ची है । उसको अपनी कुटि पर ले आये और दूध से पालन किया । क्यों कि वह ऊनी बख (लोई) में लपेटी हुई पाई गई थी, अतः उन्होंने उसका नाम लोई धरा । जब वह मृत्यु-शय्या पर हुए तब उन्होंने लड़की (लोई) को कहा, 'किसी दिन एक संत यहाँ आँगे और वही तुम्हारा मार्ग-दर्शक (गुरु) होंगे ' निदान वह लोई गादेव, बची की शिष्या बनी और उनके साथ बनारस (काशी) चली आई ।"

साहेब कवीर की नीची लिखी जीवन-घटना को लेकर जगत-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने बंगला भाषा में 'मालिक का

दान' नाम की एक कविता करी है। उसका भावानुवाद "कल्याण" मासिक-पत्र के भक्तांक में प्रकाशित हुआ है। कहीं कहीं मूल को उद्धृत करते हुए, उसीके आधार पर लिखा जाता है कि:—

जब साहेब कबीर का प्रभाव लोगों पर पूरे तौर से पड़ने लगा। उनको ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। लोगों में उनकी पूजा चलने लगी और नामस्मरण भी होने लगा, जैसा कि कबीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है:—

फैल गई यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कबीर।
 नर नारी लाखोंने आकर, घेरी उनकी वन्य-कुटीर ॥
 कोई कहता, 'मंत्र फूंक कर मेरा रोग दूर कर दो'।
 वांछ पुत्र के लिये बिलखती कहती 'संत गोद भर दो' ॥
 कोई कहता 'इन आंखों से देव-शक्ति कुछ दिखलाओ।
 जग में जग निर्माता की सत्ता प्रमाण कर समझाओ ॥

जब छोटे बड़े सभी में उनका मान-सत्कार बढ़ने लगा इनके दर्शन के लिये लोग तरसने लगे। उनकी चरण-धूलि लोग अपने मस्तक पर धरने लगे, तप द्वेषाग्नि से वंचक ब्राह्मण, गुन्डे पन्डे, पाखंडी पुजारी, धर्मध्वजा मठधारी, माधु टीकाधारी, ब्रह्मचारी बेपधारी, अभिमानी पोथाधारी आदि लोग, साहेब कबीर को फैलता ख्याति को सहन न कर, दिल ही दिल सूव जलने लगे और अंत में एक ऐमा घटयन्त्र रचा कि जिससे लोगों का ध्यान उनसे खिच जाय, उनका प्रभाव का तारतम्य टूट जाय और दुनिया में उनकी नेकनामी का जगह बदनामी फैल जाय, जैसा कि कबीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठागोरने उक्त कविता में लिखा है:—

“कड़ने लगे क्रोध भारी से भर नगरी के ब्राह्मण सह।

पूरे चारों चरण हुये कलियुग के पाप छा गया अर ॥

चरण-धूलि के लिये. जुलाहे को सारी दुनिया मगती ।
 अन प्रतिहार नही होगा तो डूब जायगो सब धरती ॥
 कर सबने पडयत्र एक कुलटा सू को तैयार किया ।
 रूपयो मे राजी कर उसको गुानुप सब सिंगुलाय दिया ॥”

मगर मनुष्य धारता हे कुठ और होता हे कुठ । क्योंकि,
 “ Man proposes and God disposes ”

“ हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ ” ।

अब कसट-प्रन्ध की बात सुनो । धूर्त तथा द्वेषाग्नि मे पीडित
 उक्त लोगों ने एक नाजारी बेदया (जो लोक परलोक के भय को
 निलाशलि देकर खुल्लमखुल्ला व्यभिचारवृत्ति में रत थी) को कुठ
 रूपये का लोभ देकर साहेब कवीर की प्रतिष्ठा भग करने पर उतार
 किया । उसको मिसा पडा कर ठीक किया कि जत्र साहेब कवीर कुठ
 कार्यपत्र वाजार मे आये तो उनका पट्टा पकडकर, अपना
 पुराना सम्बन्ध का ढोंग रचकर, खून रोना धोना, गाली गलौज
 करना और गाना-ज्वोराक (Maintenance) के लिये दावा
 करना । फिर तो, हमलोग थपडिया लगायेंगे, ढोंगी कहकर उनको
 पुकारेंगे, उनको पाखडी कहकर धुत्कारेंगे और भडतपखी की बात
 फैला फैला कर लोगों में मान-हानि करायेंगे । बेदया को तो पैसा
 चाहिये, फिर तो जो चाहो करो या कराओ । वस, उस बेदया ने
 एक दिन बीच बाजार में साहेब कवीर को पकड ही लिया । और
 उसी ही बेदजना करन लगी जैसा कि उसको द्वेषी कपटी ब्राह्मणों ने
 सिंगुलाया पड़ाया था । पर साहेब ये सत्र को दृढ समता के साथ
 सहर्ष सहते रहे और अन्त में,

“कवीर बोले, टोपी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घर पर ।

घर में अनाज रहते क्यों, भूखों मरती, फिरती दर दर ॥”

उनकी धर्मपरायणता, सहनशीलता, समभाव, क्षमाभाव, नेत्र
वर्तान, प्रेमपुञ्जता, करुणाकुञ्जता आदि को देख परेख कर केश्या

“ गोकर् बोल उठी बह, मनमें उपजा भय-लज्जा-प रताप ।

मैंने पाप क्रिया लालचप्रश, होगा मरण साधु के शाप ॥ ”

पर साहज ने उसको आन्वना दी और

“ कहने लगे कवीर, जननि ! मत डर, कुछ टोप नही नेग ।

तू निन्दा-अपमान रूप मन्त्र-भूषण लाई मेरा ॥ ”

फिर तो साहज ने उन अरणागत कुलटा को अपनी ज्ञानाग्नि में
उलटा पुन्टा (सेक) कर, पाप-पंक्त में मग्न गणिका को साफ सुथरा
शुद्ध “ धोई ” (Washed) रूप में परिवर्तन कर कामपरायण से
रामपरायण, हरिद्विही में हरिदासी बना दी, जैसा कि उक्त
जगत्-प्रियायन कविमन्त्रार्त् रान्द्रनाथ टागोर ने अपनी निम्न कविता
में स्पष्टतया दर्शाया है—

“दूर क्रिया विकार बनका सब, उसको दिया ज्ञान का दान ।
मधुर अंठ में भरा मनोहर उमके हरीनाम गुण-गान ॥ ”

मत् गुरु को नीयन सौपने का फट देखा न ? पापपंक्त को
मत्गुरु साहज करार ने धो धो कर स्वच्छ धर्मपुरन्वर बना दिया,
मनमगीन को प्रहलीन बना दिया, पिष्टाक्षी त्रिषय में लग्न काक
को हरिनाम के गुणगान में मग्न कटकोकिल बना दिया । द्वापर-
त्रेना की रात-पिण्ड्य, जीवन्ती की-दूर रही, शल्युग में मत्युग
ला दिया । क्योंकि,

. सोद्वेष से सब होत हैं, वृद्धे में कञ्चु नांदि ।

गई सों परवत करे, परवत राई माहि ॥

उक्त दोनों घटनाओं ने साफ विदित होता है कि साहेब कर्षा ने एक को जननी कह कर पुकारी और दूसरो को पुत्रीकृत ' शिष्या ' । फिर तीसरी तरह के सम्बन्ध जोड़ने का जगह कहा रती ' स्वामी त्रिवेदानन्दजी के गुरु परमहंस रामकृष्णजी ने अपना श्याही ली को मा (जननी) कह कर पुकारी और यही सम्बन्ध आर्जवन निग्राहते रहे । पर जो स्वयं पतित्र नहीं हैं, और न किसी पतित्र महान्मा के दर्शन ही किये है, जो विषयवासनाओं से कभी थोडा भी ऊपर नहीं उठे है, जो घर में रहते हुये वीतराग बनने की सृष्टा तक नहीं करते, जो मंसर्गज भोग ही को सब कुछ जानते तथा मानते है, जो कर्मक और कामिनी पर दिन-रात मूढ-दृष्टि किये रहते है, जो कनन्य आनन्द (Unconditional Delight) की झलक भी नहीं देखे है, जो गीता के इस वचन " आत्मनि एव आत्मना तुष्ट " अथवा साहेब की इस वाणी " योगी आप आप में बूझे " (Self-existent bliss) को विचार-पूर्वक न पढ़ते हां है और न अनुभव में उतारने का प्रयास अथवा साधन ही करते हैं, जो कभी भी आत्मप्रसाद नहीं चरे और मदेव दूसरो के जूठे खाते रहे हैं । जो सब से सुन्दर आत्मस्वरूप (The most beautiful unconditional soul) तथा आत्म-आनन्द (Self-existent delight) ने अनभिज्ञ रह कर दूसरी जगह सुन्दरताई तथा आनन्द के लिये मांगे मारे फिरते हैं, वे साहेब कर्षा को उक्त शिष्यों के साथ रहते हुए भी माता तथा पुत्री के सम्बन्ध रखने की बात " पद्मपत्रं इनाम्भसा " (कमलपत्र की तरह ' समझ नहीं सकते और न उनके तथा अन्य द्वेषी दो दुराग्रहियों के लिये उक्त प्रमाणिक घटनायें उपस्थित ही की गई हैं । क्योंकि,

"न वेत्ति, यो यम्य गुणप्रकर्षम् । न न तथा निन्दति नास्ति मंसयः।

" जो दूसरे के प्रकर्ष तथा उच्च गुण को नहीं जानता है, वह उसका निन्दा ही करता है, इसमें कुछ संदेह की बात नहीं है । "

॥ खंड-पांचवां ॥

“ यथोर्णनाभि स्रज्जते गृह्णन्नेव । ” (श्रुति) .

“ As the spider produces the thread and absorbs it again

“ जैस मकरा तन्तु को अपने भीतर से बाहर निकालता है और फिर अपने भीतर समेट लेता है

ना मनुष्य, प्रकृति तथा पुरुष को पूरी पूरी पहचान चुका है, जो दोनों के सम्बन्ध का केवल कितानी ज्ञान नहीं, पर अपने अनुभव में उतार चुका है, जो अपने अक्षर रूप को क्षर रूप में सचेतन (Consciously) लाता रहता है, जो अपने अचल सत् स्वरूप (Eternal self) में प्रतिष्ठित रहता हुआ भा असत् अथवा चल रूपों को (Mutable surface personalities) जान बूझ कर धारण करता रहता है; जो सत्-लोक से भूलोक पर स्वेच्छा से आता जाना रहता है; जो कुकर्म्म, अकर्म्म अथवा सुकर्म्म के बन्वनों से घसीटा जाकर भूलोक में जन्धार में पडा तृण के ऐसा मारा मारा फिरना (Like a helpless straw drifting in the current) नहीं है; जो ज्ञानाग्नि में कर्म-कासों को भस्माभूत कर चुका है, जो शरीर रूपा गाड़ों को निकलना समेटना, मनाना त्रिगाडना, चलाना ठहराना आदि सब कुल मर्गी भांति जानता है; जो अदृश्य गायत्रीय या वायु (In visible gaseous or ethereal stage) स्थिति से दृश्य तरल अथवा स्थूल (Visible Liquid or solid stage) में घन-त्रिया से (By process of condensation) और दृश्य तरल अथवा स्थूल को अदृश्य गायत्रीय स्थिति में (By Process of evaporation

etc) लाना रहता है, वह कारण और सूक्ष्म शरीर का स्थूल में तथा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर में ले जान को अत्रय समर्थ है। जो मक्करा (Spider करोडिया) अपने भीतर से तन्तुओं को बाहर निकाल कर नाना प्रकार की रचनाओं को रचना है, वह मक्करा उन तन्तुओं की भीतर समेट कर मत्र रचनाओं का समाप्त कर देने में भी समर्थ है। उम, इस प्रकार साहज्य कर्मा ने अपने स्थूल शरीर का फूल द्वारा प्रकट कर फिर फूल हो द्वारा सूक्ष्म में गुप्त भी कर दिया, इसमें कोई सन्देह की बात ही नहीं है।

इसके अतिरिक्त माहेत्र कर्मा के दोनों प्रकार के शिष्य-वर्ग और सेनक-जन हिन्दू तथा मुसलमान-य। एव उनको सत्गुरु मानत थे, तो दूसरा धरम को धरम। दोनों ही को पूजा के अन्तिम बिन्दु बुझ न बुझ मिलना चाहिये था। योही उन्होंने अपना स्थूल शरीर १५७५ सन्वत् के मार्गसर मास के शुक्र पक्ष की ११ गी तिथि को सखलन करने का विचार प्रकट किया और उम निमित्त गोरखपुर के पास उत्तरी जिला में मगहर गाम की आर 'काशा-नरण स्वर्गाारोहण' की अव-परम्परा झूठी रूढ़ी को भगकरणाथ

“ का कासी का मगहर ऊपर, हृदय राम वस मोरा ।

जो कासी तन तजइ कबोरा, रावहि कवन निहोरा ॥ ”

(सा० क० राजक शब्द १०३०)

प्रस्थान किया तो ही दोनों दलों के शिष्य-सेनक-वर्ग हजारों की सख्या में इकट्ठा होने लगे। उनमें राजा गोरसिंह राघेला और नगपति चलीवा पठान प्रमुख थे। राजा जो हिन्दू-रीति के अनुसार दाह-क्रिया करने का और नवार्जना मुसलमान रीति से दफन करन का आग्रह साहेब से प्रसोक्त रूप में करने लगे। दोनों में झगडने की

नेयारी सी भी माट्टम पडने लगी। फिर राहेंव ने झगडा मिटाने के लिये दोनों बर्गों के शिष्य-सेवकों को बाहर खडे रहने को कहा और आप स्वयं एक कमरे मे जाकर, चादर बितान कर सो गये, जैसा के एक साहित्याचार्य अंगरेज (An Englishman) लिखता है —

“ After this, Kabir lay down and spread the sheets over himself. He then told the people to close the door and leave him inside, which they did. When the door was closed, a sound came from the room; on hearing which all who were present were deeply moved, and shouted Jayjaykar (a cry of rejoicing, and victory) ! because their guru had gone to the Satya-Loka ”

“ When the room was opened, nothing was to be seen except two sheets and some flowers in them. One sheet and half the flowers, Raja Bir Sinha took, and the other sheet and the remainder of the flowers, were taken by Nawab Bijli Khan. The body of Kabir was not seen. In fact, his followers say he never had a body but was only a manifestation of glory. Raja Bir Sinha took his portion to Benares, where he cremated it and buried the ashes at what is now the Kabir Chaura. Nawab Bijli Khan buried his portion at Maghar. Both Hindus and Muhammadians afterwards built a shrine at Maghar ”

“ तत् पश्चात् साहज कर्त्तार लेट गये और अपन ऊपर चादरों को तान लिये । तब उन्होंने अपने शिष्य-सेवक गार्गी को द्वार उन्द करने तथा उनको भीतर एकत्र रहने देने को आज्ञा कही । उन लोगोंने वैसा ही किया । जब द्वार उन्द हो गया, कमरे में से एक आयाज आई, जिसको सुनकर उग्रस्थित जनता अत्यन्त विचलित हुई और जयजयकार का ध्वनि उठाई, क्योंकि उनके गुरु मन्मथलोक का पधार गये । ”

“ जब द्वार ग्वाला गया, सिपाय दो चादरों तथा उनमें कुछ फर्शों के और जुठ न मित्र । राजा श्रीरामसिंह ने एक चादर और फर्शों का आधा भाग ले लिये और नरायण त्रिजलीखाने ने दूसरी चादर तथा बचे फर्शों को ले लिया । साहज कुमार का शरीर अदृश्य हो गया । सबभुच में, उनको जरीर न था, केवल एक ज्योति-का प्राकृत्य था जैसा क उनके अनुयायी कहते हैं । राजा चारसिंह ने अपने भाग को बनारस ले जाकर दहन-क्रिया कही और उसकी राख एक जगह गाड़ी जो कमार चौरा के नाम से आजकाल प्रसिद्ध है । नरायण त्रिजलीखाने अपने भाग को मगहर में गाड़ दिया । तदुपरान्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के दोनों, मगहर में मंदिर बनाये । ”

जिनके आदि में पुष्प उसके अन्त में पुष्प, जिसके अररोहण में फल उसके आरोहण में फल, जिसके आभिर्भाव में सुगन्ध उसके तिरोभाव में सुगन्ध, जिसके आगमन में सुवास उसके अन्तर्धान में सुवास क्यों न हो ? भक्ता मीरा ने मैले तन का भगवत् प्रेम में मग्न करके शुद्ध किया और अंत में सदेह भगवान में लीन होगई, राजा परिक्रित तथा सुखदे

ज्ञानाग्नि से अरोर का विमल कर सदेह स्वर्गारोहण किये, पर साहेब कवीर तो ज्योतिमय उतरे औ ज्योति में लीन हो गये, उसमें शका तथा अकचक्राने का कौन सी बात है ? कैसा ठीक क्रदा है !

झीनी झीनी चदरिया बोनी ।

साहेब कवीर जतन से भोदो, जमके तस धरदानी चदरिया । झी०

कैसा निर्मल, पूर्ण तथा सचेतन देहाग्रसान (Pure, perfect and conscious withdrawal) है ! ज्योतिमय शरीर (Spiritu-
lised body) का गुण महान है !! अन्त अन्त तक सद् शिक्षण का विधान है !!!

“ All is well that ends well. ”

“ अन्त भले का भला । ”

॥ खंड-छद्वा ॥

“ नहि सत्यात् परो धर्मः । ”

“ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं । ”

साहेब करीर के जन्म-जाति-जीवन के थोड़ा कुछ वृत्तान्त के उपरान्त उनके सत्-उपदेशों का दिग्दर्शन कराना अब समुचित प्रतीत होता है, क्यों कि, जिस व्यक्ति के आचार पर उसका विचार निर्भर रहता है। करनी और कथनी (Theory and practice) में धनिष्ठ सम्मन्व है। महात्माओं में दोनों में एकता रहती है। और तुरामाओं में दोनों में विपरीतता रहता है। एक तो कहेगा मो करेगा। दूसरा कहेगा कुछ और करेगा कुछ दूसरा ही। सदाचारी के ज्वन हृदय से निम्नते हैं, अत सुननेवाले के हृदय तक पहुचते हैं, ओर दोगी वा मिथ्याचारी (Hypocrites) के ज्वन केरु मुख से निम्नते हैं अत सुननेवाले के कान ही तक पहुच कर रह जाते हैं। तो राणी रूप राण (Arrow), हृदयकी तात (Cord) पर खींच कर उठा जाना है, यही दूसरे के हृदय तक को खाच लेता है। मीरा के हृदय से निम्नता हुआ अनन्य प्रेम तथा समर्पण के भजन—“ नंग तो गिरधर गापाल दूसरा न कोई—का प्रभाव हृदय पट पर मिलभण हा पवता है। और उमी भजन को दूसरे के मुख से अधरा नाटक वा सिनेमा (Drama or Cinema) के नरुगी मीरा के मुख ने सुनने से कुछ प्रभाव ही नहीं होता। जो अपनी राणी में आप नहीं पसीजना, वह दूसरे को कैसे पसीना सक्ता है? निमकी राणी भात्रान्वित होकर नहीं निकलती, यह दूसरों में उचित भात्र कैसे उपन्न कर सकेगी? जो अपना

कहा आप ही नहीं मानता, जो अपना उपदेश आप ही नहीं सुनता तथा आचरता, वह दूसरे को क्या कहे और क्या सुनावे ' उसको अधिकार ही क्या है कि दूसरे को उपदेश करे ' नो सत्य को आचरता नहीं, उसको अधिकार ही नहीं है कि वह सत्य का उपदेश करे । सत्पुरुष ही सत्य के उपदेश करने की योग्यता तथा अधिकार रखते हैं, अन्धों के लिये केवल अनधिकार-चष्मा है तथा मिडम्बना-मात्र है । सत्-पुरुष ही को सत्य सदैव प्यारी रहती है । यही कारण है कि साहेब कबीर को जितना सत् शब्द सत् तत्व प्यारा है उतना कोई पद-पदार्थ नहीं ।

सत्-नाम, सत्-धाम, सत्-पुरुष, सत्य-लोक, सत्-गुरु, मत्-मन्द, सार-शब्द, सत्-सग, सत्-विचार आदि उनकी वाणी में बहुधा पाये जाते हैं । सत् पर ही उनका सब कुछ आधार रखता है । सत्-नाम ही उनका बीज-मंत्र है । यथा,

“ सत् मंत्र का बीज है, सत्-नाम ततमार ।
जो जो जन हिरदै धरै, सो जन उतरे पार ॥
कबीर मन निश्चल करो, सत्-नाम गुण गाय ।
निश्चल बिना न पाईये, कोटिन करो उपाय ॥ ”

(देवी साखों-ग्रन्थ पृष्ठ १३२-१३३ संख्या १६०-१६६)

आत्मा अथवा परम-आत्मा के जिनने सार्थक अथवा सगुण नाम हैं, उनमें सत् से श्रेष्ठ 'सच्चिदानन्द' समझा गया है । यह बात ठीक है कि,

‘अविगति की गति काहु, न जानी । एरु जीभ किन कर्गे बखानी ॥
जो मुख होय, जीभ दस-लाखा । तो कोई आय महन्तो भाखा ॥
(बीजक-रमैनों नम्र १)

क्योंकि, जो आत्म-तन्त्र अथवा ब्रह्म-तन्त्र अनन्त है, उसके गुण भी अनन्त हैं, उसके नाम भी अनन्त अथवा असंख्य हैं, उसके वर्णन भी अनन्त हैं — 'नास्ति अंशो विस्तरस्य मे ।' (गीता) अनन्त मान्त शब्दों के घेर में कदापि नहीं आ सकता । तथापि सत्, चित् और आनन्द मिलकर 'मच्चिदानन्द' नाम उत्तम ब्रह्म है, जैसा के 'मच्चिदानन्दस्वरूपोऽहं' तेजोविन्दु उपनिषद् में आता है । इसमें भी सत् पहले आया है । अतः सत्-नाम सब से श्रेष्ठ है । वेदोपनिषद् में भी "तत् सत्" "मत्वं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" आते हैं ।

सत्-नाम की श्रेष्ठता मानते हुये भी यह लिखना अनुचित वा अयुक्त नहीं होगा कि सत्, चित्, और आनन्द एकही सत्ता (Existence) के तीन पहलू वाजू (Aspects) हैं । एक ही त्रिकोण के तीन भुजायें (Three sides of the one in the same triangle) हैं । एक ही प्रिज्म (Prism काच का तिपहला टुकड़ा) के तीन सतह (Surfaces) हैं । एक ही होरा के तीन मुख (Three facets of the same diamond) हैं । एक ही सागर के तीन तरंगें (Three waves of the same ocean) हैं, जो ऊपर भिन्न भिन्न दिशाते पर भीतर मिले हैं । एक ही देव के तीन मस्तक हैं । इनमें किमको छोटा और किमको बड़ा, किमको श्रेष्ठ और किमको निकृष्ट कहा जाय । पर विचार कर देखने से माझम होगा कि जहां सत् है वहाँ पर शुद्ध चेतना (Pure consciousness) है, और वहाँ पर पवित्र आनन्द (Unmixed or unadulterated bliss) है । चेतना से सत् को हटा दो, मूढ़ा अस्त्य आ जायगी । वेद वृक्ष, पशु पक्षी, अनेक नर नारियो में चेतना तो विराजमान है, पर धर्मल्य चेतना से विहीन होने ही से मूढ़ा (Sub-conscious or deluded)

अवस्था में पड़े हैं। इसी प्रकार आनंद से सत्य को अलग कर दो, फिर मिथ्या-आनन्द, आनन्द-आभास, क्षणिक सुख, दुःखान्वित-सुख (Stress of transitory satisfaction besieged with physical pain and emotional suffering and sometimes mental derangement) आन उपस्थित होंगे। जो सत्-पुरुष है वही सम्पूर्ण चेतन है और वही सच्चा ही सहज सुखी है। इसलिये साहेब ने सत्-नाम को तत्त्व का भी सार बताया, सब मंत्रों का बीज फरमाया। इसीके गुण-गान तथा जाप से मन को निश्चल तथा शान्त करके मन-सागर से पार उतरने की शिक्षा प्रदान की। जाप से अभिप्राय केवल सत्-नाम सत्-नाम बहुत चिन्ता चिन्ता कर अथवा धीरे धीरे अथवा मन ही मन उच्चारण करने अथवा लेने का नहीं है। जैसा के पातञ्जल योग-पूत्र-तज्जपः तदर्थभावनम्—में बताया है कि नाम लेने के साथ साथ उत्तमी प्राप्ति की भावना लगी रहनी चाहिये। उक्त साखी में साहेब ने भी हृदय में धारण करने की शिक्षा दी है। सत्-नाम के जाप के साथ साथ सत्-प्राप्ति की भावना बनी रहनी चाहिये। सत्य को हृदय में धारण करने का ध्यान बंधा रहना चाहिये। सत्य को आत्म-सात् करने का लक्ष्य मदैव सामने रहना चाहिये। तब अंत में ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकता हो जाने से पुरुष सत्-पुरुष में परिवर्तन हो जाता है। हरदम सत्य चेतना में प्रतिष्ठित (Established in truth consciousness) सत्य-शोक का नास बन जाता है। सत्-धाम में पहुंच जाता है।

सत्-धाम अथवा सत्-शोक कोई स्थान विशेष का नाम नहीं है। यह आत्म-चेतना की अन्तिम अथवा उच्चतम अवस्था (The last or the highest stage of the soul's consciousness or

enlightenment) है। वस्तुतः चेतना की दो ही अवस्थाएँ—सत् और असत्, अथवा शुद्ध और मिश्रित (Pure and mixed)—हैं। इसी मिश्रित अवस्था को भिन्न भिन्न भागों में और नामों में विभक्त किया गया है। कहीं पर ७ (६) भाग है, तो कहीं पर नौ। यदि कोई चाहे तो सौ (१००) भागों में भी विभक्त हो सकता है। वेद-पुराण में—भूलोक, सुमरुलोक, स्वलोक, महलोक, जनकलोक तपलोक और मानवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम मन्वलयोग है। ७ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन अवस्था मिलकर सततलोक (The eternal plane of consciousness) के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहजिक रूप में—नमूत, मलकृत, जीरस्त, लूत, अचिन्त्यद्वैत, मोहद्वीप, ईच्छाद्वीप, ओंकारद्वीप, सहजद्वीप और दसवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्-लोक धरे गये हैं। नौ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन-अवस्था मिलकर जाय के दस अवस्थाएँ (Ten stages of the soul's Enlightenment) बनती हैं। यदि दूसरा चाहे तो इसी मिश्रित अथवा नौ भागों अथवा असत्य भागों में विभक्त कर सकता है। घी, शुद्ध अवस्था में, एक हातगृह का १। अशुद्ध अवस्था (Adulterated condition) में अनरु अथवा असत्य तरह से रह सकता है। सौ भाग में ९९ भाग घा और एक भाग तेल अथवा वज्रितेन्रिड घी (Vegetable ghee) का मिश्रण (99 per cent ghee and one per cent vegetable ghee) तैयार हो सकता है। इसी प्रकार ९८ भाग घा और २ भाग तेल, ९७ भाग घी और ३ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्यमिश्रण बन सकते हैं। फिर हजार भाग में ९९९ भाग घी और १ भाग तेल, ९९८ भाग घी और २ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्यमिश्रण अलग अलग मिश्रण बन सकते हैं। नौ

बीज-गणित (Algebra) में Permutation and combination (माथ-संयत) के अध्याय का पढ़ चुके हैं, वे समझ सकते हैं कि भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण असंख्य (Innumerable varieties of different adulterations) रूप में तैयार किये जा सकते हैं । तापमान-यन्त्र (Thermometer) में किसीने दहन और जमन अस्थि (Boiling and Freezing points) के अन्तराय को १०० भाग (Centigrade thermometer) में और किसीने १८० (Fahrenheit thermometer) भाग में इस अन्तराय को विभक्त किया है । यदि कोई चाहे तो इसे १००० अथवा ११८० भागों में भी बांट सकता है । अतः मिश्रित चेतना के इन कल्पित विभागों के फेर में न पड़ना चाहिये । शुद्ध मत्स्य-चेतना को मटेर लक्ष्य में रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिये ।

पर एक मन अथवा सम्प्रदाय (A sect) ऐसा निकाला गया है, जो सय-ग्रेड के भी ऊपर दो डिग्री (Degree) और-अनामी तथा राधा-सोआमी-गाम मानता है । भाइ, सय के ऊपर अथवा नीचे दोनों असत्य हैं । आठ दूना सोलह ($8 \times 2 = 16$) एक सत्य है । इससे कोई ऊपर जाठ दूना १७, १८, १९ इत्यादि अथवा इससे नीचे १५, १४, १३ इत्यादि बनाव, तो वे सत्र के सत्र असत्य हैं । किसी फल की पक (Ripe) अस्थि एक होती है । उस अस्थि के नीचे कच्ची और ऊपर सड़ी (Raw or over-ripe) अस्थियाँ होती हैं । मनुष्य शरीर का नियमित ताप (Normal temperature) पाने निम्नाने डिग्री के स्थान रहता है । उसके दो, तीन... डिग्री ऊपर अथवा दो, तीन..... डिग्री नीचे, सत्र के सत्र अशुद्ध तथा रोगी अस्थियाँ (Diseased states) समझी जाती हैं । जितने

इसमें ज्ञान की बातें हैं व सत्र इस मतवाले के प्रवर्तन न करार माहम की गणियों से ली हैं। गठे में राधा-माजामी धाम का उकोसग बोडकर लोगों में अपना प्रदयन दिखयन क लिये, कवीर माहम के मय-लारु की कुटिया अपन मनमाना धाम में नाच वतलाने का अनर्गत तया अनुचिन प्रयास कर रह इ। सुना, जो एक पक्षपात-रहित माननीय एफ० टी० क्रिये, साहियाचाप, कन्दन-निगामी ((Rev F E Key, D Litt, London) लिखते हैं —

“ The Radha Swami Satsang is a modern sect which was founded about 1861 by Tulsi Rama (1818-1879), in Agra bunker, known as Siva Dival Sahib, and has its head-quarters at Agra. It seems to owe a great deal of its inspiration to Kabir. In the daily meetings of the sect, portions of their own sacred books or of the writings of Kabir and other Hindu devotees are read. A Hindu couplet of Kabir (though evidently a forgery) is quoted by them to show that Kabir called God by the name of Radha Swami ’

“ राधास्वामी सत्-संग एक नवीन सम्प्रदाय है, निमको १८६१ ई० सन् के लगभग आग्रा नगर का एक मनिया तुलसीराम (१८१८ -७८) ने चलाया है। पीछे से शिन्द्याय साहिन कहाया और मुग्य स्थान आग्रा में बनाया। इसमें ज्ञान की बातें बहुधा कबीर से ली गई है। दैनिक बैठक में अपने धर्म-पुस्तक के कुछ भाग अथवा कबीर तथा अन्य हिन्दू भक्तों की गणियां पाठ करते हैं। कबीर की

एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात को समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।”

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा। यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है। जिनमें नांव झूठ फरेव पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हज़ार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकठ पड़े, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़े झगड़ें, मोकदमेबाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हा, जहा कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्पर यत् (गी० ११-३७)-पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर 'सत्' का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और 'असत्' का अर्थ अनर्तमान (Non-being i. e., past and

कबीर धारा अगम की, सतगुरु ढई बताय ।

नाहि उलटि सुभिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता । साहेब ने ठोक ही कहा है—

• माखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहैं कबीर कवनक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

future) अर्थात् भूत और भविष्य हे । अतः पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों कालात् परे कालातीत, अक्षर, अनन्त, Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है । सत्य से ऊचा या ऊपर उस परम तत्व परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता । और न चेतना को अप्रस्था ही बन सकती । अमेरिका के चिनागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October 1933) प्रमुख न कबीर साहब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

‘ There is no God higher than Truth ’

“ सत् से उच्च कोई दूसरा परमात्मा है नही । ”

इसा सनातन सत्य तत्वसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहब कबीर परमात्मा हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी त्रिविक्रानन्दजी ने भी लिखा है—

“ Each soul is potentially divine

The goal is to manifest this divine within by controlling nature, external and internal

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines or dogmas or rituals, or books, or temples or forms, are but secondary details’

• एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात का समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।”

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा। यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है। जिनमें नीच झूठ फरेव पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकल पड़े, माल मिलक्रियत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करे, लड़े झगड़े, मोकदमेवाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हां, जहां कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्परं यत् (गी० ११-३७) - पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर 'सत्' का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और 'असत्' का अवर्तमान (Non-being i. e., past and

• कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय ।

ताहि उलटि सुनिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के प्रयोगों में इसका कहीं नामोनिगान भी नहीं मिलता। साहेब ने ठीक ही कहा है—

• माखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहें कबीर फवतक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

future) अर्थात् भूत और भविष्य हैं। अतः पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों कालों में परे कालातीत, अक्षर, अनन्त, Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है। सत्य से ऊंचा या ऊपर उम परम तन्त्र परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता। और न चेतना की अवस्था हो बन सकती। अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October, 1933) प्रमुख ने कबीर साहेब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

“ There is no God higher than Truth.”

“ मनु में ब्रह्मर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं। ”

-इसी सनातन सत्य तन्त्रसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहेब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है:-

“ Each soul is potentially divine.

The goal is to manifest this divine within, by controlling nature, external and internal.

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one, or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines, or dogmas, or rituals, or books, or temples, or forms, are but secondary details.”

is one of the 'most interesting' personalities in the history of Indian mysticism'

अर्थात् " कवि कबीर, जिनके भजनों में से कुछ चुन कर यहाँ पर अंग्रेजी पाठकों के लिये रखे जाते हैं, भारतवर्ष के रहस्यवादियों की गणना (इतिहास) में एक अत्यंत चित्ताकर्षक व्यक्ति है। "

साहेब की वाणियों के मर्म जानने के लिये उनके स्थल-बिन्दु, लक्ष्य-बिन्दु तथा इगित-व्यक्ति (Stand-point, view point and the address) को सदैव ध्यान में रखना चाहिये। किस भूमि से वाणी निकल रही है, क्या उसका लक्ष्य है और किसकी प्रति प्रेरित हो रही है, इन सत्र बातों को जान कर ही पाठक वाणियों से पूरा लाभ तथा आनन्द उठा सकता है। अन्यथा, जहाँ पर विरोधाभास है वहाँ पर अत्यन्त विरोध माटूम घड़ने लगेगा, जहाँ पर समता है वहाँ पर नियमता दृष्टिगोचर होने लगेगी। उक्त बातों पर न ध्यान देने ही से साहेब कबीर को कोई राम के माननेवाला कहने लगा तो कोई रहीम का, कोई अद्वैत तो कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत तो कोई द्वैताद्वैतवादी समझने लगेगा। कोई कर्मयोग तो कोई भक्तयोग, कोई ज्ञानयोग तो कोई ध्यानयोग के माननेवाला उनको कहने लगा। विचार करने से माटूम होगा कि उक्त सत्र वाद और सब योग अस्त्या-विशेष तथा अधिकारी-विशेष के लिये अपने अपने स्थान पर उत्तम और अनिवार्य (Indispensible) है।

' Each thing in its place is best '

अतः इन सत्रों के बोधन करनेवाले पृथक् पृथक् वाणियों को परस्पर विरोधी दल न समझ कर, गिर चित्त से विचार कर, अपनी अस्त्या के अनुकूल शिक्षा तथा लाभ लेने चाहिये।

पर सत्र में अविकल लाम भावियों से उठाने की युक्ति साहेब ने स्वयं बना दी है। मरल या कठिन, विद्वान् या विस्तृत टीका-टिप्पणियाँ पढ़ो या न पढ़ो। पर जो साखी जयया उनके मार्ग तुम्हारे दिष्ट पर सचोद लगे, जो केवल तुम्हारे मन की तृप्त (Mental recognition) न कर उनके हृदय को छेद देने, उनमें आत्मसात् करने (Spiritual Realisation) में प्रसर दत्तचित रहो। फिर तो, उस साखी के प्र भाग के अनिरिक्त अनेक साखियों के भाग आपही आप, बिना अभिन्न प्रयास के, भीतर उतरने लगेंगे और मुक्तकाल से साहेब का गुणगान करने, लगेंगे। उदाहरण के लिये इस साखी —

ऊँची जाति पपीहरा, नैवे न नीची नीर ।

या घुरपति की जांचही, या दुख सहै सतीर ॥

साखीप्रथम गृ०-२२१ स० ४६

को ले लो। इसमें चार चरण हैं। किसी एक चरण की आत्मसात् करने में लग जाओ, और देखो कि केशा गूढ़ और अपूर्ण रिणाम पर पटु चर्च हो। पहिले चरण में, सत्य-अन्वेषी (Truth-seeker) की जाति, स्वल्प ही ऊँची (ऊर्मूल) बताई गई है। दूसरे चरण में, विषय-विकार रूप दूधिन-जल की तरफ झुकने तक को रना किया गया है। तीसरे चरण में, परापर पारमल्य, देवों के देव की उपासना करने की बताई गई है। और चौथे चरण में, कठोप नेपद् के नचिकेता के ऐसा दृष्ट सकल्य होकर, अपने याचित 'रणाय मर' से विचलित न होकर प्रतीक्षा की तपस्या रूप दुःख सहने को बताई गई है। पहिले चरण में आत्मज्ञान की बात, दूसरे में विषय अवहेलना की बात, तीसरे में भक्ति तथा समर्पण की बात और चौथे में सयाश्रह की बात साहेब ने बताई है। इनमें किसी एक को, पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे को हृदयगम कर आत्मसात् (Realisations) करो। जेव तीनों के साक्षात्कार के अलावे सत्र

साखी शब्दों का मर्म शनै शनै समझ में आने लगेगा। और अनेकानेक ग्रंथ पढ़ने की भी आवश्यकता, दिल से जाती रहेगी। साहेब ने स्वयं सुंदर वो सरल कुत्रो बना दी है,

आधी साखी सिग कट्टी, जो निरुवारो जाय।
क्या पड़ित की पोथियां, रात दिना मिलि गाय ॥३

लिखने पढ़ने से भी संभव है कभी चित्त स्थिर हो जाय, श्रयण-मनन से भी कभी शान्ति मिल जाय; पर वातराग सत्पुरुषों के गुण-गान से भी-चित्त स्थिर होकर एक प्रकार की शान्ति मिलनी है, जो अकथनीय है। इसलिये पंजलि भगवान ने चित्तनिरोध के अनेक उपायों में एक-रीतरागस्यचित्तस्य वा-ग्रह भी-बताया है। वस, आओ, अब हम संग्र मिलकर सत्पुरुष साहेब का गुणगात्र कीर्तन कर उनके रहस्यमय वाणी में अन्तर्गण कर सन् और शान्ति की तरफ झुकें !

सतनाम का झंडा आलम में, गडगा दिया सतगुरु कबीरने ॥१॥
भ्रम भूत का भडा एकदम हि फडगा दिना, सतगुरु कबीरने ॥१॥
जो जड़ के पीछे पड़े हुये, चेतन से चित्त हटा करके ।
हो परगट चेतन की महिमा, बनला दिया सतगुरु कबीरने ॥२॥
धर्मदास को पत्थर पूजनमें, रे बौत गये बरसों बरसों ।
पर हाथ न आया कुल उँनको, दिखटा दिया सतगुरु कबीरने ॥३॥
क्रिये कैद हजारों सधुन को, चक्री पिसगावे सुलताना ।
फिरवा कर चक्री चेतन बल, दिखला दिया सतगुरु कबीरने ॥४॥
जगनाथ का पडा अग्नि से, जलकर जत्र छटपट करता था ।
जल छाटा दूर से दे पीडा, हरना दिया सतगुरु कबीरने ॥५॥
अभिमानि पोथा-धारो को; करते थे पराजय पल भर में ।
धनमानी ज्ञान परम ज्योति, लाया है सतगुरु कबीरने ॥६॥

निवेदक,

सा० बनमाली गुरु श्री अरविन्द
शान्ति—कबीर नर्मदान्त

निवेदन ।

इस साखी ग्रन्थ को सांगोपाग संग्रोग सुन्दर रीति से संपादन और सशान्त कान का सारा श्रेष्ठ श्रीमान् पंडित मोतीदासजी साहेब, स्व-वचन-संपादक, सस्कृत विशारद को है । उन्होंने अपनी शारारिक स्थिति अच्छी न रहते हुये भी यह महान् कार्य अति परिश्रम से किया है । सतगुरु उनकी अभिग्रथाओं को पूर्ण करें ।

स्वसवद उनहीके परिश्रम का फल है और स्वसवद में वा सुनरानों भाषा में कबीरमन्दिर निकडना है सा उनका परिश्रम है । साखी ग्रन्थ में कितना सुन्दरता देखने में आती है सा सत्र उनका अति परिश्रम का फल है । कबीर धर्मधर्मक कार्यालय से जितना पुस्तकें निकड चुकी हैं और निकडेली सो सत्र के संपादक श्रीमान् पंडितजी हैं । हमारी अतर अभिग्रथा यह है कि सतगुरु उनका ऐसे शुभ कार्य करने को सदा सुखी रखें ।

साखी ग्रन्थ की टीका-टिप्पणा और अन्तरणिका जो की गई है सो उनका की प्रेरणा से उन उन महात्माओं ने किया है । बाडे में सारा ग्रन्थ आदि से जंत तक सफल करने में किन जिनने भाग लिया है उन सत्र के हम और सारा कबीरपथ वृत्त है ।

२८ ३ ३५

महत बाळवदासजी ।

श्री पूज्य स्वामाना का मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने अनुग्रह कर यह उत्तम अन्तरणिका का अन्तरण करन की परम कृपा का है । एव श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेबु शाखी का भी मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने किरल टीका-टिप्पणी कर साखी ग्रन्थ को उपादेय और सुगम बना दिया है ।

—५० मोतीदास ।

सुधारकर पढ़ें।

पृष्ठांक	पक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२	bound	bound
"	१७	Mouse	Mouse
१४	८	कोष	कोष
"	२०	repro luctive	Repro luctive
"	२४	tower	lower
"	२५	corres ponding	Corresponding
"	२७	profect	project
१५	९	Jackal	Jackal
"	११		and
१७	८	अप का	अपने को
"	९	को	कोई
"	१६		मूढ
२७	२२	मुख	मुख
"	२४	Public	Public
२८	८	अंगरेजी	अंगरेज़ी
२९	७	Exten	Extensil
३०	६	Seens	Scenes

१ व्यवस्थापक, कबीर चंद्रोदय कार्यालय,

मु०, हरफ, पो०, मतरिख जि०, धारांकी. (य. पी)

२ श्री. १०८ महंतश्री सातिदासजी साहेब

ठि० कबीर साहेब का मंदिर, फलिया हनुमान के पास.

मु०, वामनगर (काठियावाट) •

३ श्रांतुन महादेव रामचंद्र जागुटे

बुनासेलम एंड मन्नेशर्म, त्रणदराजा, अहमदाबाद.

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहब

का

साखी-ग्रंथ ।

(टीका-टिप्पणी-सहित)

सपनाम सत्सुकृत. आदि अदली
अजर अचिन्त पुरुष गुनीन्द्र
चरणामय --- कर्तार
सुरतियोग-सतायन
धनी धर्मदास
साहय की
दया

गुरुदेव को अंग ।

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
 कीट न जानै भृंग को, गुरु करिले आप समान ॥१॥
 दंडवत गोविंद गुरु, वन्दौं अब जन सोय ।
 पहिले भये प्रनाम तिन, नमो जु आगे होय ॥२॥
 गुरु गोविंद करि जानिये, रहिये सद्ग समाय ।
 मिलै तो दंडवत बंदगी, नहिं पलपल ध्यान लगाय ॥३॥-
 गुरु गोविंद दोऊ खड़े, किसके लागौं पाँय ।
 बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया वताय ॥४॥
 गुरु गोविंद दोउ एक हैं, दूजा सब आकार ।
 आपा मंटे हरि भजै, तब पावै दीदार ॥५॥

१ दंडवत्-दंडकी तरह भूमि में पड़कर साष्टांग प्रणाम करना ।
 कीट न जान भृंगीको-भृंगी एक प्रकार की बर्-मरखी होती है जो कि
 मिट्टी के घर में काड़े को लानर रखती है और अपना शत्रु सुनाकर उसे
 भृंगी बना लेती है । इसी प्रकार सद्गुरु अपने सत्पोपदेश से शिष्य को
 अपने समान बना लेते हैं ।

२ अबजन-वर्तमान समय के सत । इस साखी में तीनों काल के
 सतों को प्रणाम किया गया है ।

५ दूजा सब आकार-गुरु और गोविंद में केवल आकार का भेद है ।

गुरु हैं घटे गोविंद ते,	मन में देखु बिचार ।
हरि सिरजे ते चार हैं,	गुरु 'सिरजे ते पार ॥६॥
गुरु तो <u>गुरुआ</u> पिछा,	ज्यों आटे में लौन ।
जाति पाँति कुल मिटि गया,	नाम धरेगा कौन ॥७॥
गुरु सों ज्ञान जु लीजिये,	सीस दीजिये दान ।
बहुतक भौंदू 'बहि गये,	राखि जीव अभिमान ॥८॥
गुरु की आज्ञा आवई,	गुरु की आज्ञा जाय ।
कहे कबीर सो संत है,	आवागवन नसाय ॥९॥
गुरु <u>पारस</u> गुरु पुरुष है,	(गुरु)चंदनवास सुषास ।
सतगुरु पारस जीव को,	दीन्हा मुक्ति निवास ॥१०॥
गुरु पारस को अन्तरो,	जानत है सब संत ।
बह लोहा कंचन करै,	ये करि लेय महंत ॥११॥
कुमति कीच <u>चेला</u> भरा,	गुरु ज्ञान जल होय ।
जनम जनम का मोरचा,	पल में डारे धोय ॥१२॥
गुरु घोषी सिप कापटा,	साचू सिरजनहार ।
सुरति सिला पर घोड़े,	निकसै जोति अपार ॥१३॥

६. वार-इस तरफ, चौरास्ता में । पार-उस तरफ, भय से पार ।

८. भौंदू-अज्ञान । जीय-अपने हृदय में । ११. महत-बडा, श्रेष्ठ ।

११. ज्योति-तेज, प्रकाश ।

१. पा० सुमिरे । २. पा० मार ।

गुरु कुम्हार सिप कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काँदै खोट ।
 अन्तर हाथ सठार दे, बाहिर बाँदै चोट ॥१४॥
 गुरु समान दाता नहीं, याचक सीप समान ।
 तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्ही दान ॥१५॥
 पहिले दाता सिप भया, तन मन अरवा सीस ।
 पाछे दाता गुरु भये, नाम दिया बख्सीस ॥१६॥
 गुरु जो बसै बनारसी, सीप समुंदर तीर ।
 एक पलक विसरे नहीं, जो गुन होय सरीर ॥१७॥
 लच्छ कोस जो गुरु बसै, दीनै सुरति पठाप ।
 सद्र तुरी असवार छै, छिन आवै छिन जाय ॥१८॥
 गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माँहि ।
 कहै कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाँहि ॥१९॥
 गुरु को मानुष जो गिनै, चरनामृत को पान ।
 ते नर नरके जायगे, जनम जनम छै स्वान ॥२०॥
 गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध ।
 होय दुखी संसार में, आगे जप का फंद ॥२१॥
 गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिन मिलै न भव ।
 गुरु बिन संसय ना मिटै, जय जय जय गुरु देव ॥२२॥

१७. बनारसी-काशी में । १८. तुरी-घोड़ा । २०. स्वान-कुत्ता ।

१. पा० मारि ।

गुरु विन ज्ञान न ऊपजै,	गुरुविन मिलै न मोष ।
गुरु विन लखै न सख को,	गुरु विन मिटे न दोष ॥२३॥
गुरु नारायन रूप है,	गुरु ज्ञान को घाट ।
सतगुरु वचन प्रताप सों,	मन के मिटे उचाट ॥२४॥
गुरु महिमा गावत सदा,	मन अनि राखे मोद ।
मो भव फिरि आवै नहीं,	बैठे प्रभु की गोद ॥२५॥
गुरु सेवा जन बंदगी,	हार सुमिरन बेराग ।
ये चारों तब ही मिले,	पूरन होवै भाग ॥२६॥
गुरु मुक्ताई जीव को,	चौरासी बंद छोर ।
मुक्त परवाना देहि गुरु,	जप सो तिनका तोर ॥२७॥

२३ मोष—मोक्ष । २४. उचाट—चघलता ।

२७ तिनका तोर=तिनका तोटना, सबव बिच्छेद करना (महाजिरा) तिनका टुडाना कबीरपथ की एक विधि है । चौका आरती में शिष्य का तिनका अपेण कराया जाता है । उसका भाव यह है कि अत्र तुम्हारा यमराज से कोई सबंध न रहा ।

मुक्त परवाना=मुक्ति का वीडा । जिस प्रकार युद्ध में समिलित होने के लिये प्राचीन काल में वीर लोग वीडा उठाया करते थे, इसी प्रकार चौका आरती में अधिकारी मुमुक्षु को मुक्ति का परवाना दिया जाता है । उसका यह भाव है कि मुमुक्षु को मुक्ति के बाधक कामादिक शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार हो जाना चाहिये ।

परवाना का दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार सरकारी परवाना (खास रक्का, पाम) पाये हुए जो दरबार में आने के लिये कोई रोक नहीं सजता, इसी प्रकार मुक्ति परवाना पाये हुए पूर्वोक्त वीर को यमराज नहीं रोक सकता, अतएव वह सीधा सत्यलोक चला जाता है ।

गुरु सों प्रीति निवाहिये, जिहि तत निवहै संत ।
 प्रेम विना १डिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत ॥२८॥
 गुरु मारै गुरु झटकरै, गुरु बोरै गुरु तार ।
 गुरु सों प्रीति निवाहिये, गुरु है भव कँडिहार ॥२९॥
 गुरु भक्ता मम भक्त हैं, साथ भक्त मम दास ।
 हरि भक्ता सो उत्तमा, कहै कवीर हरि व्यास ॥३०॥
 गुरु की महिमा को कहै, सिव विरंचि नहि जाना ।
 गुरु सतगुरु को चीन्हि के, पावे पद निरवान ॥३१॥
 गुरु मुख बानी ऊचरे, सीप साँच करिमान ।
 या विधि फंदा छुटहीं, और युक्ति नहि आना ॥३२॥

२८. निवाहिये-बना राखिये । जेहि तत निवहै-जिस तरह बनी रहे । डिग-पास अर्थात् पासमें रहते हुए भी । कंत-स्वामी (म कन्त) ।

२९. झटकरै-फटकार बतवै । बोरै-डुबोवै । तार-संसार से पार करे ।

कँडिहार-(सं. कर्णधार) नाव चलानेवाला, संसार सागर से पार उतारनेवाला । कवीरपंथ में महंतों की 'कँडिहार' पदवी है । जिस प्रकार मछलह दरिया से पार उतारते हैं इस प्रकार ये लोग भी भवसागर से उतारने में मुमुक्षुओं की सहायता करते हैं ।

३०. हरिव्यास-हरि व्यासजी को कहते हैं । गुरु महिमा के प्रमाण रूप यह साखी कवीर साहेब न हरि और व्यास के सवाद रूप में कही है ।

३१. विरंचि-ब्रह्मा । निरवान-मुक्ति ।

१ पा० गुरु । २ पा० जान ।

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर ।
 आठ पहर निरखत रहै, गुरु मूरति की ओर ॥३३॥
 गुरु समाना सीप में, सीप लिया करि नेह ।
 बिलगाये बिलगे नहीं, एक प्रान दुइ देह ॥३४॥
 गुरु सरनागत छाँडि के, करै भरोसा और ।
 सुख संपति की कह चली, नहीं नरक में ठौर ॥३५॥
 गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिय भेद कछु नाँहि ।
 उनही कृं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाँहि ॥३६॥
 ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बिसरौ जाय ।
 जब गोविंद किरपा करी, तब गुरु मिलिया आया ॥३७॥
 ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास ।
 गुरु सेवा ते पादये, सतगुरु चरन निवास ॥३८॥
 कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
 हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर ॥३९॥
 कबीर हरि के रूठते, गुरु कं सरनै जाय ।
 कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहि होत सहाय ॥४०॥

३३. ओर-तरफ । ३४. नेह-प्रेम । बिलगाये-अलग करने से ।

३५. कह चली-कहा धरी है । ३७. सो जनि बिसरौ जाय-उसे कभी

न भूलना । ३९. रूठे-रूठना, अप्रसन्न होना ।

हरि रुठै गति एक है, गुरु सरनागत जाय ।
 गुरु रुठे एकाँ नही, हरि नहि करै सहाय ॥४१॥
 कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कंवल के अंतरे. निराधार पद पाय ॥४२॥
 बलिहारी गुरु आपत्ती, घरी घरी सौ बार ।
 मानुष ते देवता किया, करत न लागी चार ॥४३॥
 सिप खाँडा गुरु मसकला, चढै सद्द खरसान ।
 सद्द सद्दे सनमुख रहै, निपभै सीप मुजानपा ४४॥
 भली भई जो गुरु मिले, नातर होती दानि ।
 दीपक जोति पतंग ज्यौ, पड़ता आय निदान ॥४५॥
 भली भई जो गुरु मिले, जाते पाया ज्ञान ।
 घट ही मॉहि चबूतरा, घट ही मॉहि दिवान ॥४६॥

४२ गम-ज्ञान । अरथाय समझा दिया । सुरति कवल-यह सहस्रदल के आगे आठवाँ कमल है, जहा से सतमत का अभ्यास आरम होता है । ' सुरति कवल पर साहज जौलें ' । निराधार-निरालम्ब, स्वप्नरूप ।

४१ बार-देशी ।

४४ खाँडा-तरवार । मसकला-जग छुडाने का सिक्कीगर का एक ओजार । खरसान-सान । निपभै-बने ।

४५. नातर-नहीं तो । निदान-अंत में ।

४६ चबूतरा-चीरा, बैठक । दिवान-न्यायकर्ता ।

सत्तनाम के पटतरे, देव को कटु नाँहि ।
 कह ले गुरु सतोपिये, हवस रही मन माँहि ॥४७॥
 निज मन माना नाम सों, नजरि न आवै दास ।
 कहै कबीर सो क्यों करै, राम मिलन की आस ॥४८॥
 निज मन तो नीचा किया, चरन कमल की ठौर ।
 कहै कबीर गुरुदेव जिन, नजरि न आवै और ॥४९॥
 तन मन दीया(तो)मल किया, सिर क जासी भार ।
 जो कबहुँ कहै मैं दिया, बहुत सहै सिर मार ॥५०॥
 तन मन ताको दीजिये, जाको विपया नाँहि ।
 आपा सज ही डारि के, राखै साहिव माँहि ॥५१॥
 ऐसा कोई ना मिला, सत्तनाम का मीत ।
 तन मन सोंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥५२॥
 जल परमानै माछली, कुल परमानै सुद्धि ।
 जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी बुद्धि ॥५३॥
 जैसी शीति कुटुंब की, तैसी गुरु सों होय ।
 कहै कबीर ता दास का, पला न पकटै कोय ॥५४॥

४७ पटतरे—अोज, बदला में । हवस—इच्छा (फा० हृषिः) ।

४८ जिसका अन्तर्हृदय नाम का अनुरागी हो ऐसा दास देखने में नहीं आता । ऐसे प्रेमी को तो राम मिला ही मिलाया है । अतः वह उसके मिलने का आशा क्यों करे ।

५२ मीत—मित्र । बधिक—पारधी । ५३ सुद्धि—आचार विचार ।

सग घरती कागद बरू,	लिखनी सब जनराय ।
सात समुंद की मसि करूं,	गुरु गुन लिखान जाया ॥५५॥
✓धूटा था पर ऊजरा,	गुरु की लहरी चमक ।
वेड़ा देखा झाँझरा,	उतरी मया फरक दिदा ॥
अह अगनि निस टिन जरी,	गुरु सों चाहै मान ।
ताको जम न्यौता दिया,	हो (उ) हमार मिहमान ॥५७॥
जम गरजै बल बाघ के,	कहैं कवीर पुकार ।
गुरु किरपा ना होत जो,	तो जम खाता फार ॥५८॥
अजरन वरन अमूर्त जो,	कहो ताहि किन पेख ।
गुरु दया ते पावई,	सुरति निरति फरि देखा ॥५९॥
पढित पढि गुनि पचि मुये,	गुरु भिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है,	सत्त सब्द परमान ॥६०॥

५६ लहर-मोज, इच्छा । चमक-चमक गई, गुरुकी दया हो गई । वेड़ा-नाम । झाँझरा छेदवाला, पुराना । फरक-अलग ।

५८. बल बाघ के-सिंह के समान बली ।

५९. अमूर्त-आकार रहित । पेख-देखा ।

१ पा० लेखनि । २ पा० मेरा ।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।

मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत भार ॥६१॥

६१ गुरु स्वरूप के ध्यान करने पर किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती, और गुरु चरणों की पूजा के अनन्तर दूसरी पूजा की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार गुरुवचन को हृदय में धर लेने पर दूसरे नाम को उसमें धरने की जरूरत नहीं होती, और अपने भार को सत्य बनाने पर सत्य को ढूँढने की जरूरत नहीं होती । “ यत्प देवे परा भक्ति र्यया देवे तथा गुरो तस्यैते काथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ” श्वेताश्वतर के, इस वचन के अनुसार गुरुभक्ति से अन्य मुक्ति का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि मुक्ति के मंदिर की कुची मद्गुरु के पास है । बिना उनकी कृपा के उसका मिलना असम्भव है । इसीलिये यह कहा गया है कि “ तद् विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् ” अर्थात् परमार्थ तत्त्व के जानने के लिये अधिकारी को गुरु के शरण में ही जाना चाहिये । गीता में भी यह स्पष्ट ही कहा गया है कि—“तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्षति ते ज्ञान ज्ञानिन स्तस्यद-दर्शिन ” ॥ उस तत्त्व को जानने के लिये गुरु को प्रणाम करो, उसका सेवा करो और विनयपूर्वक उनसे पूछो, ऐसे आचरण से प्रसन्न होकर सद्गुरु तुमको मुक्ति तत्त्व का उपदेश देंगे । इत्यादि श्रुति और स्मृतियों के वचनों के आकलन से स्पष्ट है कि, गुरु की पूजा और ध्यान मुक्तिप्रद होने के कारण अथ देवताओं की पूजा और ध्यान से श्रेष्ठ है । इसी प्रकार गुरु का सत्योपदेश नामस्मरण से अधिक फलदायी होने के कारण आवश्यक प्राह्य है ।

कहें कबीर तजि भरम को, नन्हा हूँ करि पीव ।
 तजी अहं गुरु चरन गहूँ, जम सों वाचै जीव ॥६२॥
 तीन लोक नव खंड में, गुरु ते वढा न कोय ।
 करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय ॥६३॥
 कोटिन चंदा ऊगहीं, सूरज कोटि हजार ।
 तीमिर तो नासै नहीं, बिन गुरु घोर अंधार ॥६४॥
 पहिले घुरा कपाड़ के, बांधी विष की पोड ।
 कोटि करम पल में कटै, (जब)आया गुरुकी ओटा ॥६५॥
 जगत जनायो सकल जिहि, सो गुरु मगटे आय ।
 जिन गुरु आँखिन देखिया, सो गुरु दिया लखाय ॥६६॥
 हरि किरपा तब जानिये, दे मानव अवतार ।
 गुरु किरपा तब जानिये, छुड़ावे संसार ॥६७॥
 जाके सिर गुरु ज्ञान है, सोइ तरत भव पाँहि ।
 गुरु धिन जानो जन्तु को, कबहुँ मुक्ति मुख नौँहि ॥६८॥
 देवी बढा न देवता, सूरज बढा न चंद्र ।
 आदि अंत दोनों बड़े, कै गुरु कै गोविंद ॥६९॥

६६. जिस मालिक ने सारे संसार का निर्माण किया है और जो स्वयं अलक्ष्य है उस मालिक के रूप में प्रकट होकर गुरु ने उसको लखा दिया ।

६७. बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य देह नहीं मिल सकती, और गुरु की कृपा के बिना भवसागर से पार नहीं हो सकता । एवं गुरु की कृपा के बिना ईश्वर की कृपा भी नहीं हो सकती ।

सब कुठ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सौंपे रहे, निस दिन चरनों लगा ॥७०॥
 बहुत गुरु भै जगत में, कोई न लागे तीर ।
 सवै गुरु वहि जायंगे, जाग्रत गुरु कबीर ॥७१॥
 वेद पुराना साधु गुरु, सवन कहा निज वात ।
 गुरु तें अधिक न दूसरा, का हरि का पितुमात ॥७२॥
 ताते सद्र विवेक करि, कीजे ऐसो साज ।
 जिहि विधि गुरु सो प्रीति रह, कीजे सोई काज ॥७३॥
 सो (इ) सो (इ) नाच नचाइये, जिहि निवहै गुरु भेम ।
 कहै कबीर गुरु भेम बिन, कितहुँ कुसल नहि उेमा ॥७४॥
 तन मन सीस निछावरै, दीजे सरवस भान ।
 कहै कबीर दुख मुख सहै, सदा रहे गलतान ॥७५॥
 तब ही गुरु प्रिय बैन कहि, सोप षड़ी चिन प्रीत ।
 तो रहिये गुरु सनमुखॉं, कबहुँ न दीजे पीठ ॥७६॥
 स्नेह भेम गुरु चरन सों, जिहि प्रकार सें होय ।
 क्या नियरै क्या दूर वस, भेम भक्त मुख सोय ॥७७॥
 जिहि विधि सिपको मन बसै, गुरु पद परम सनेह ।
 कहै कबीर क्या फरक ठिग, क्या परबत बन गेह ॥७८॥

जो गुरु पूरा होय तो, सीप हिलेय निवाह ।
 सीप भाव सुत जानिये, सूत(ते)ध्रिष्ट सिप आह ॥७९॥
 अबुध सुबुध सुत मातुषितु, सब हिकरै प्रतिपाल ।
 अपनी ओर निवाहिये, सिख सुत गहि निजचाल ॥८०॥
 कहैं कबीर गुरुसों मिले, होय नाम परकास ।
 गुरु मिलि सिप भवनिधि तरै, कहैं कृष्ण मुनि व्यास ॥८१॥
 मुनिये संतो साधु मिलि, कहैं कबीर चुझाय ।
 जिहि विधि गुरुसों प्रीति ह, कीजै सोइ उपाय ॥८२॥
 आध सद्ध गुरु देव का, ताका अनेत विचार ।
 थाके मुनि जन पंडिता, वेद न पावे पार ॥८३॥
 करै दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सु देय ।
 बलिहारी वे गुरुन की, हंस उबारि जु लेय ॥८४॥
 हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक ।
 ताके पटतर ना तुलै, संतन कियो विवेक ॥८५॥
 ते मन निरमल सत खरा, (जो)गुरुसों लागै हेव ।
 अंकुर सोइ जगसी, (गुरु) सद्धै बोया खेता ॥८६॥
 भौसागर की त्रास ते, गुरु की पकड़ो पाँहि ।
 गुरु बिन कौन उबारसी, भौजल धारा पाँहि ॥८७॥

७९. आह-है ।

८१. यह साखी भी व्यास और कृष्ण के संवाद रूप में कही गई है।

१. प्रा० एक ।

लौ लागी बिप भागिया, कालक(ख) डारी धोय ।
 कहै कबीर गुरु साबु सों, कोइ इक ऊजल होय ॥८८॥
 साबु विचारा क्या करै, गोंठै राखै भोय ।
 जल सो अरसा परस नरि, क्यों करि ऊजल होय ॥८९॥
 नारद सरिखा सीप हँ, गुरु है पच्छीमार ।
 ता गुरु की निन्द करै, पढ़ै चौरासी धार ॥९०॥
 राजा वी चोरी करै, रहै रंक की ओट ।
 कहै कबीर क्यों ऊवरै, काल कठिन की चोट ॥९१॥

८८. लौ-लगन, प्रेम । विप-विषयवासना । कालख-पाप ।

८९. जिस प्रकार मैले कपडे में बाधा हुआ साबुन बिना पानी के कपडे को सफा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना सत्संग के ज्ञान पाप के मैल को दूर नहीं कर सकता ।

९०. शिष्य को ठीकत है कि वह गुरु की जाति का विचार न करे । त्रिष्णु के पूछने पर नारदजी ने अपने धीमर गुरु की निंदा की थी। इस कारण उन्हें चौरासी भोगने की आज्ञा हो गई थी परन्तु अपने गुरु की कृपा से उनको इससे छुटकारा हो गया ।

९१. जो ईश्वर से त्रिमुख होकर सत्संग का प्रेमी बनता है वह काल के फन्दे से नहीं बच सकता । उसको उचित है कि वह गुरु के शरण में जाय ।

सतगुरु को अंग ।



कवीर रामानंद को,	सतगुरु भये सहाय ।
जग में युक्ति अनूप है,	सो सब दर्ई बताय ॥१॥
सतगुरु के परताप तैं,	मिटी गयो सब दुंद ।
कहै कवीर दुविधा मिटी,	(गुरु)भिलिया रामानंद ॥२॥
सतगुरु सम को है सगा,	साधू सम को दात ।
हरि सपान को है हितु,	हरिजन सम को जात ॥३॥
सतगुरु सम कोई नहीं,	सात द्वीप नव खंड ।
तीन लोक ना पाइये,	अरु इकइस ब्रह्मंड ॥४॥
सतगुरु की महिमा अनंत,	अनंत किया उपकार ।
लोचन अनंत उधारिया,	अनंत दिखावनहार ॥५॥
दिल ही में दीदार है,	वादि जखै संसार ।
सतगुरु सद्र हि मसकला,	मुझे दिखावनहार ॥६॥
सनगुरु साँचा मूरमा,	नख सिख मारा पूर ।
बाहिर घाव न दीसई,	अन्तर चकना चूर ॥७॥

३ दात-दाता । जात-जाति भाई ।

५ (१) अनन्त-अपार । (२) अनन्त-बहुत । लोचन-नेत्र । (३) अनन्त-अधिनाशी । (४) अनन्त-अखंड पुरुष ।

६ दीदार-दर्शन । वादि-व्यर्थ । जखै-पछताता है । मुझे-मुझको (अपना ह्य) ।

७ दासई-दीखता है । चकनाचूर-बिल्कुल टूट गया ।

सतगुरु साँचा सूरमा, सद्ग जु बाह्या एक ।
 लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥८॥
 सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर ।
 सद्ग बान से भरि रहा, (क्यों)जीयेदास कबीर ॥९॥
 सतगुरु मेरा सूरमा, तकि तकि मारै तीर ।
 लागे पन भागे नहीं, ऐसा दास कबीर ॥१०॥
 सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
 १नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥११॥
 सतगुरु मारा बान भरि, धरि करि धीरी मूठ ।
 अंग उचाडे लागिया, गया दुवाँ सौ फूट ॥१२॥

८ बाह्या-चलाया, मारा । एक-एक मालिक का । शद्ग-उपदेश ।
 छेक-छेद ।

९. बेधा छेद दिया ।

१०. तकि २-निशाना ताक कर । लागे पन . शिष्य को
 चाहिये कि सद्गुरु के उपदेश से अपने चित्त को कमी न हटावे ।

११. मेरे हृदय की आसक्ति को पहचान २ कर सद्गुरु ने ऐसा
 पूरा उपदेश दिया कि शिक्षा से हटके दूसरी ओर चित्त नहीं जाता ।

१२ धीरी मूठ-बाण को धीरे से खेंचकर । दुवासों-आपारा सद्गुरु
 के शत उपदेश को जो शिष्य कपट छोड़कर मानता है उसके हृदय से
 लोक और परलोक के सुख की आशा निकल जाती है ।

१. पा० अलख नाम में रमि रहा, ।

सतगुरु मारा वान भरि, टूटि गई सब जेव ।
 कहूँ आपा कहूँ आपदा, तसबी कहूँ किनेव ॥१३॥
 सतगुरु मारा धान भरि, डोळा नाँहि मरीर ।
 कहु लुंबक क्या करि सकै, मुख लागै वहि तीर ॥१४॥
 सतगुरु मारा धान भरि, रहा कलेजे भाल ।
 राठी काड़ी तळ रहे, आज परे की काल ॥१५॥
 गोसा ज्ञान फमान का, खैचा किनहु न जाय ।
 सतगुरु मारा वान भरि, रोम हि रहा समाय ॥१६॥
 सतगुरु मारा तान करि, सद्गुरुंगी वान ।
 मेरा मारा फिर जिये, (तो)हाथ न गहों कमान ॥१७॥
 सतगुरु मारी प्रेम की, रही कटारी टूट ।
 वैसी अनी न सालई, जैसी सालै मूठ ॥१८॥

१३. जेजु सभार, बनाव । शरीर की ममता । आप कहूँ आशा..... गुरु के उपदेश रूपी वाण से शिष्य ऐसा घायल हो गया कि उसको तसबी (माला) और कुरान का कुछ खयाल न रहा और सारी आशाएँ छोड़कर आप अपने में पहुँच गया ।

१४. सद्गुरु के उपदेश के सुनते ही चित्त स्थिर हो गया । ससारी लोग उसे बहुत कुछ अपनी ओर खींचना चाहते हैं, परन्तु वह आनन्द के सागर को छोड़ना नहीं चाहता ।

१६. गोसा रोदा । रोमही-रोम २ में

१७. गुरुगी-सौधा, सन्यक्त उपदेश ।

१८. अनी-नोक । मूठ-पकड़ने की जगह । वैसी... मूठ-थोड़ा प्रेम मनुष्य को घायल नहीं कर सकता, किन्तु पूरे प्रेम से ही वह ससार से उदास हो सकता है ।

सतगुरु सद्ध कमान करि, वाहन लागे तीर ।
 एक हि बाहा प्रेप सों, भीतर विधा सरीर ॥१९॥
 सतगुरु सत का सद्ध है, (जिन)सत्तदिया वतळाय ।
 जो सत को पकड़े रहै, सत्त हि माँहि समाय ॥२०॥
 सतगुरु सद्ध सब घट वसै, कोई कोइ पावै भेद ।
 समुँद वुँद एकै भया, काहे करहु निपेद ॥२१॥
 सतगुरु दाता जीव के, जीव ब्रह्म करि लेह ।
 सरवन सद्ध सुनाय के, और रंग करि देह ॥२२॥
 सतगुरु सें सुधा मया, सद्ध जु लागा अंग ।
 ऊठी लहरि समुँद की, भीजि गया सब अंग ॥२३॥
 सद्धै पारा खँचि करि, तब हम पाया ज्ञान ।
 लगी चोट जो सद्ध की, रही कलेजे छान ॥२४॥
 सतगुरु बड़े सराफु हैं, परखे खरा रु खोट ।
 भौसागर ते काढि के, राखे अपनी ओट ॥२५॥
 सतगुरु बड़े जहाजु हैं, जो कोइ बँटे आय ।
 पार उतारै और को, अपनो पारस लाय ॥२६॥

२१. समुँद वुँद-ईश्वर और जीव । २३. सुधा-सन्मुख ।
 समुँद-प्रेम को समुद्र । २४. छान-बेध गई । २५. सराफ-जौहरी ।
 ओट-सहारे । २६. पारस-पारसमणि, दाम ।

१. पा० सतगुरु सद्ध जहाजु हैं, २. पा० किसका कसं निपेद ॥

सतगुरु बड़े सुनार हैं, परखे रस्तु भँडार ।
 सुरति हि निरति मिलाय के, मेटि डारे खुटकार ॥२७॥
 सतगुरु के सदके किया, टिल अपने को सॉच ।
 कलियुग ह्य सों लहि पडा, मुहकम मेरा वाच ॥२८॥
 सतगुरु मिलि निर्भय भया, रही न टूजी आस ।
 जाय समाना सब्द में, सत्तनाम विस्वास ॥२९॥
 सतगुरु मोहि निवाजिया, दीन्हा अंपर बोल ।
 सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै किलोल ॥३०॥
 सतगुरु पारस के सिला, देखो सोचि विचार ।
 आइ परोसिन ले चली, दीयो दिया सम्हार ॥३१॥
 सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज ।
 जीव खोय सब जायंगे, काल तिह पुर राज ॥३२॥
 सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
 धन्य सीप धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय ॥३३॥

२७ सुरति-जीव । निरति-साहब । खुटकार-खटक ।

२८. सदके न्योडावर । मोहकम-परमाना । कलियुग की अमलदारी के रहते हुए भी मैंने सतगुरु म चित्त लगाकर उसे सच्चाई स लिया ।

३० निवाजिया-दया की । अमर बोल-मुक्ति का उपदेश ।

३१. दीयो .. सम्हार-दीये से ढाये को जला लिया । अर्थात् सतगुरु का उपदेश शिष्य प्रशिष्य के द्वारा ससार में फैल गया ।

३३. भावों की सत्यता ही साहब का स्वरूप है, जो इस मत को मान लेता है वह बड़भागो है, क्यों कि उसकी मुक्ति में सदेह नहीं रहता ।

सतगुरु हम सों रीझि कै, कह्यो एक परसंग ।
 वरपे वादल प्रेम को, भीजि गया सब अंग ॥३४॥
 सतगुरु वादल प्रेम कै, — हम पर धरप्यौ आय ।
 अन्तर भीजी आतमा, हरी भई वनराय ॥३५॥
 हरी भई सब आतमा, सब्द उठै गहराय ।
 होरी लागी सब्द की, ले निज घर कूं जाय ॥३६॥
 हरी भई सब आतमा, सतगुरु सेव्या मूल ।
 चहुँदिस फृटी वासना, भया कली सों फूल ॥३७॥
 सतगुरु के भुज दाय है, गोविंद के भुज चार ।
 गोविंद से कलु ना सरै, गुरु उतारै पार ॥३८॥
 सतगुरु की दाया भई, उपजा सहज सुभाव ।
 ब्रह्म अगनि परजालिया, अब कलु कहा न जाव ॥३९॥
 सतगुरु हम सों भल कही, ऐसी करै न कोय ।
 तीन लोक जम फंद में, पला न पकडे कोय ॥४०॥

३४ रीझि कै-प्रसन्न होकर । एक परसंग-एक साहब से प्रेम का प्रसंग ।

३५. वनराय-सारा जगल । सब ओर आनंद छा गया ।

३७ जिस प्रकार मूल के संचिने से पेड़ की डालिया हरी भरी हो जाता हैं और कलिया खिलकर चारों ओर सुगंध फैला देती हैं, इसी प्रकार पूरे सतगुरु के शरण से पूर्णपद मिल जाता है, जिससे श्रेय और प्रेम दोनों की प्राप्ति हो जाती है ।

सतगुरु मिले जु सब मिले, ना तो मिला न कोय ।
 मातृ, पिता सुत बंधुवा, ये तो घर घर होय ॥४१॥
 सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय ।
 भ्रम का भाँडा तोड़ि करि, ग्हे अनिराला होय ॥४२॥
 सतगुरु आत्म दृष्टि दे, इन्द्रो टिकै न कोय ।
 सतगुरु विन सूझे नहीं, खरा दुहेला होय ॥४३॥
 सतगुरु किरपा फेरिया, मन का और हि रूप ।
 कबीर पाँचो पलटिया, भेले किया अनूप ॥४४॥
 सतगुरु को माने नहीं, अपनी कहै बनाय ।
 कहै कबीर वया कीजिये, और मता मन पाँय ॥४५॥
 सतगुरु अत्रित बोइया, सिप खारा है जाय ।
 नाम रसायन छाँडि कर, आक धरारा खाय ॥४६॥
 सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह ।
 साँदिव दरसन कारनै, सब्द शरोखा कीन्ह ॥४७॥
 सतगुरु वो एसा मिला, ताने लोह लुहार ।
 कसनी दे कंचन किया, ताप छिया ततसार ॥४८॥

४३. सद्गुरु (साहब) स्वानुभवंगम्य हैं । इन्द्रियों से वह जाना नहीं जाता । बिना सद्गुरु (गुरु) के मिले सत्य वस्तु भी झूठी भास्य पड़ती है ।

४४. भेले—मिला दिया । अनूप—मालिक ।

सतगुरु के उपदेश वा, सुनिया एक विचार ।
 जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥४९॥
 जम द्वारे में दूत सब, करते एंचातान ।
 उन ते कबहु न छटना, फिरता चारों खान ॥५०॥
 चारि खानि में भरमता, कबहु न लगता पार ।
 सो फेरा सब मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥५१॥
 पाछे लागा जाय था, लोक वेद के साथ ।
 पैडे में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥५२॥
 दीपक दीन्हा बेल भरि, घाती दई अघट ।
 पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आवै दृष्ट ॥५३॥
 पूरा सतगुरु सेवतों, अंतर प्रगटे आप ।
 मनसा वाचा कर्मना, मिटे जनम के ताप ॥५४॥
 पूरा सतगुरु 'सेव तूं', धोखा सब दे डार ।
 साहिब भक्ति कहँ पाइये, अब मानुष औतार ॥५५॥
 पूरा सतगुरु सेवतों, सरन पायो नाम ।
 मनसा वाचा कर्मना, सेवक सारा काम ॥५६॥
 मन हि दिया जिन सब दिया, मन के संग सरीर ।
 अब देवे को क्या रहा, यों कथि कहँ कवीर ॥५७॥

५२. पैडे में—रास्ते में ।

५३. अघट—पूरी । बिसाहना—सौदा । दृष्ट—हाट, बाजार ।

तन मन दिया जु क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
 कहे कबीर ता दास सों, कैमे मन पतियाय ॥६८॥
 तन मन दिया जु आपना, निज मन ताके संग।
 कहे कबीर सटकें किया, सुनि सतगुरु परसंग ॥६९॥
 पारस लोहा परसते, पलटि गया सब अंग।
 असंख्य सबही भिटि गया, सतगुरु के परसंग ॥७०॥
 मर जग मरमा यों फिरै, ज्यों रामा का रोज।
 सतगुरु सों सुधि जब भई, पाया हरि का खोज ॥७१॥
 थापन पाई धिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
 कबीर हीरा बनिजिया, मान सरोवर तीर ॥७२॥
 कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै भगटी खान।
 पारब्रह्म किरपा करी, सतगुरु पिले सुजान ॥७३॥
 निश्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साइस धीर।
 निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥७४॥
 धिति पाई मन धिर भया, सतगुरु करी सहाय।
 अनन्य कथा जिव संचरी, हिरदै रही समाय ॥७५॥
 कर कमान सर साधि के, खैचि जु मारा मॉहि।
 भीतर बीधे सो मरै, जिय पै जीवै नॉहि ॥७६॥

६१. रामा—भगल । ६२ बनिजिया—खरीदा । ६५ अतिन कथा—एक ध्यान ।

१. पा० लोहा पारस परसते । २. पा० भेष । ३. पा० सत्ता ।

चेतन चौकी बैठि के, सतगुरु दीन्ही धीर ।
 निर्भय होय निःसंक भजु, केवल कहैं कबीर ॥६७॥
 जब ही मारा खँचि के, तब मै मूआ जानि ।
 लागी चोट जु सद्द की, गई कलेजे छानि ॥६८॥
 हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेल्या मार ।
 कह कबीर अंतर विध्या, सतगुरु का ढथियार ॥६९॥
 गूगा हुआ धावरा, बहरा हुआ कान ।
 पाँवन ते पंगुला भया, सतगुरु मारा वान ॥७०॥
 ज्ञान कमान रु लौ गुना, तन तरकस मन तीर ।
 भलक वडै तत सार का, मारा हृदफ कबीर ॥७१॥
 जो दीसै सो बिनसि है, नाम धरा सो जाय ।
 कबीर सोई तत गहौ, सतगुरु दीन्ह बताय ॥७२॥
 कुदरत पाई खबर सों, सतगुरु दिया बताय ।
 मँवर विलंघा कपल रस, अब छडि अंत न जाय ॥७३॥
 सच नाम छाडौ नहीं, सतगुरु सीख दई ।
 अविनासी सों परसि के, आतम अमर भई ॥७४॥

६९. चंचल—चंचला । मेल्या मार—मार हटाई ।

७१. हृदफ—निशाना ।

७३. सतगुरुने ससार का सच्चा भेद बना दिया, इस कारण चित्त उससे हटकर परमानन्द में लग गया ।

१. पा० खरी सों । २. पा० चित्त सों चित्त मिलाय । ३. पा० अब कैसे लड़े जाय ।

चित चौखा मन निरपला, युधि उत्तम पति धीर ।
 सो घोखा नहि धिरहही, सतगुरु मिले कबीर ॥७५॥
 बिन सतगुरु चाचै नहीं, फिर बूढ़े भव माँहि ।
 भौसागर की प्रास सैं, सतगुरु पकड़े बाँहि ॥७६॥
 जीव अघम अति कुटिल हैं, काहु नहीं पतियाय ।
 ताका औगुन भेटि कर, सतगुरु होष सहाय ॥७७॥
 जेहि खोजत ब्रह्मा यकै, सुर नर मुनि अरु देव ।
 कहैं कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव ॥७८॥
 काल कैं माये पाँव दे, सतगुरु के उपदेस ।
 साष्टिव अंक पसारिया, ले चल अपने देस ॥७९॥
 जाय मिल्यौ परिवार में, सुख सागर के तीर ।
 बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥८०॥
 जग भूआ विपथर ^२धरै, कहैं कबीर ^३पुकार ।
 जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥८१॥
 अंधा ऊरठ जात है, दोनों लोचन नाँहि ।
 उपकारी सतगुरु मिले, (लै) डारै धस्ती माँहि ॥८२॥
 दौड़ आय सो दौड़सी, पहुँचेगा उन देस ।
 जाय मिले वा पुरुष कूं, सतगुरु के उपदेस ॥८३॥

७२. अक—अकनार । ८२. ऊरठ—बेरस्ते, कुमार्ग ।

१. पा० विचलही । २. पा० दसै । ३. पा० विचार ।

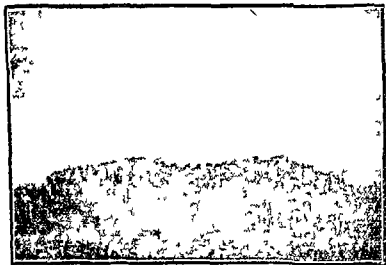
जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
 तामें निपट अनूप है, सतगुरु कागा कान ॥४॥
 सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के वान ।
 लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे पान ॥८५॥
 सब जग तो भरमत फिरै, ज्यौं जंगल का रोज़ ।
 सतगुरु सों सूधि भई, जब देखा कछु मौज ॥८६॥
 तीन लोक है देह में, रोम रोम में धाम ।
 सतगुरु विन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥८७॥
 सकल जगत जानै नही, सो गुरु प्रगटे आय ।
 जिन आंखों देखा नहीं, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
 चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावे धाम ।
 पैडे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाम ॥८९॥
 खेल मचा खेलाडि सों, आनंद जीतै जाय ।
 सतगुरु के संग खेलतों, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
 सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
 चलति सीप पैडे गई, (जब) भई स्वाँति सों भेटा ॥९१॥
 सीप समुंदर में बसै, रतत पियास पियास ।
 सकल समुंद तिनखा गिनै, (एक) स्वाँति बूंद की आस ॥९२॥
 कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
 ताकूं सतगुरु कह करै, (जो) भीघट दूँ जाय ॥९३॥

दूबा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पहाँ नर सोय ॥१४॥
 सचु पाया मुख ऊपजा, दिख दरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥१५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, घुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विष्णु महेस, और सकल जीव को गिनै ॥१६॥
 कैंते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१७॥
 करहु छोड कुल काज, जो सतगुरु उपदेस है ।
 होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति करु ॥१८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥१९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 भेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥२०॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूठ सब होय, कोहे को भरमत फिरै ॥२०१॥
 जो सत्तनाम समाय, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल पिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥२०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तव सार विचारई ।
 पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥२०३॥

जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
 तपे निपट अनूप है, सतगुरु लगा कान ॥१४॥
 सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के वान ।
 लगा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे प्रान ॥१५॥
 सब जग तो भरमत फिरै, ज्यों जंगल का रोज़ ।
 सतगुरु सों मूधि भई, जब देखा कछु भोज ॥१६॥
 तीन लोक है देह में, रोम रोम में धाम ।
 सतगुरु विन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥१७॥
 सकल जगत जानै नही, सो गुरु प्रगटे आय ।
 जिन आँखों देखा नही, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥१८॥
 चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावै धाम ।
 पैहे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाव ॥१९॥
 खेल मचा खेलाडि सो, आनंद जीते जाय ।
 सतगुरु के संग खेलताँ, जीव ब्रह्म है जाय ॥२०॥
 सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
 बलटि सीप पैहे गई, (जब)भई स्वाँति सों भेटा ॥२१॥
 सीप समुंदर में वसै, रटत पियास पियास ।
 सकल समुंद तिनखा गिने, (एक)स्वाँति बूंद की आस ॥२२॥
 कबीर समझा कहत है, पानी थाइ बताय ।
 ताकूं सतगुरु कह करै, (जो)औघट डूबै जाय ॥२३॥

बूझा औघट ना तरे, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पदौ नर सोय ॥१४॥
 सचु पाया सुख ऊपजा, दिख टरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥१५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, मुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विष्णु महेश, और सकल जीव को गिनै ॥१६॥
 केते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१७॥
 करहु छोट कुल काज, जो सतगुरु उपदेस ई ।
 होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति करु ॥१८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सब विन्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥१९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 पेटी भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूठ सब होय, कोहे को भरमत फिरै ॥१०१॥
 जो सत्तनाम समाध, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारई ।
 पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

जग ' भौसागर भौहि, कहु कैसे बूडत तौ ।
 गहु सतगुरु की बाँहि, जो जल थल रक्षा करै ॥१०४॥
 निजमत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिले ।
 जगते रहै उदास, ता कहँ क्यों नहि खोजिये ॥१०५॥
 यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत ।
 करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भवजल जीत ॥१०६॥



गुरु पारख को अंग ।

गुरु लोभी सिध लालची, दोनों खेले दाव ।
 दोनों बूढ़े वापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
 गुरु मिला नहि सिध मिला, छालव खेला दाव ।
 दोनों बूढ़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ २ ॥
 जाका गुरु है आंधरा, चेन्ना खरा निरंध ।
 अंधे को अंधा मिला, पढा काळ के फंद ॥ ३ ॥
 जानीता बूझा नहीं, बुझि किया नहि गौन ।
 अंधे को अंधा मिला, पंध घतावै कौन ॥ ४ ॥
 जानीता जब बुझिया, पैडा दिया वताय ।
 चलता चलता तहँ गया, जहाँ निरंजन राय ॥ ५ ॥
 अंधा गुरु अंधा जात, अंधे हैं सब दीन ।
 गगन पंडल में बज रही, अनइद बानी धीन ॥ ६ ॥
 सो गुरु निसदिन बन्दिये, जामों पाया नाम ।
 नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥ ७ ॥
 आगे अंधा कूप में, दूजा लिया बुलाय ।
 दोनों बूढ़े वापुरे, निकसे कौन उपाय ॥ ८ ॥

३. निरंध—बिल्कुल अपात्र । ४. जानीता—जानकार से ।
 बूझा—पूछा ।

रात अघेरी रैन में, अघे अंधा साथ ।
 वो बहिरा वो मूंगिया, क्यौ करि पृष्ठै वात ॥ ९ ॥
 अगम पंथ को चालताँ, (सब) अंधा मिलिया आय ।
 औघाट घाट मूझै नहीं, कौन पंथ हूँ जाय ॥१०॥
 जाका गुरु है लालची, दया नही सिप माँहि ।
 उन दोनों कू भेजिये, ऊजड़ कूआ माँहि ॥११॥
 जिसका गुरु है लालची, पीतल देखि भुलाय ।
 सिप पीछे लागा फिरै, (ज्यौ) बलुआ पीछै गाय ॥१२॥
 कलि के गुरुवा लालची, लालच लोभै जाय ।
 सिप पीछै धाया फिरै, (ज्यौ) बलुआ पीछै गाय ॥१३॥
 जाके हिय साहिव नहीं, सिप साखों की भूख ।
 ते जन ऊभा मुखसी, (ज्यौ) दाहै दाशा रुख ॥१४॥
 सिप साखा चीना भया, गुरु कूं आगम नाँहि ।
 जेता पेटै प्रीति मूं, तेता डूबै माँहि ॥१५॥
 माई मूंइ (उस) गुरु की, जाते मरम न जाय ।
 आपन बूड़ा धार में, चेला दिया बहाय ॥१६॥
 गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव ।
 सोइ गुरु नित बाँदिये, सद्र बतावै दाव ॥१७॥

९ मूंगिया—गंगा । ११. ऊजड़ कूआ—अधाकूआ ।

१२. पीतल—पीतलकी मूर्ति ।

१ जाके हिरदै गुरु नहीं, । २ ऐमा । ३ ज्यौ बन दाशा रुख ।

पूरे सतगुरु के बिना, पूरा सीप न होय ।
 गुरु लोभी सिप लाडची, १८नी दाइन सोय ॥१८॥
 पूरा सतगुरु ना मिलै, सुनी अधूरी सीख ।
 स्वाँग यती का पहिरि के, घर घर माँगी भीख ॥१९॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 निकसा था हरि मिलनको, बीच हि खाया बीख ॥२०॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 झूठ झुंढावे मुक्ति कूं, चालि न सकई बीक ॥२१॥
 कवीर गुरु हैं घाट के, हाँटूँ वैठा . चेल ।
 झूठ झुंढाया सांश कूं, गुरु सवरे खेल ॥२२॥
 पूरा सजे गुन करै, गुन नहि आवै छेह ।
 सायर पोषे सर भरे, दान न माँगे मेह ॥२३॥
 गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाँहि ।
 भौसागर की जाल में, फिर फिर गोताँ खाँहि ॥२४॥
 जा गुरु ते भ्रम ना मिटै, भ्रान्ति न जिव को जाय ।
 सो गुरु श्रुवा जानिये, त्यागत देर न लाय ॥२५॥

२० बीख-विष. २१. बीक—विस्वा ।

२२. गुरु विरागी और चेला संसार का अनुरागी हो तो दोनों का मेल नहीं खाता ।

२३. छेह—अंत । सायर—समुद्र ।

१ पा० बड़े भी नित्रि दोय ।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार ।
 द्वार न पावै सद्गुरु का, भटके बारं बार ॥२६॥
 साँचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय ।
 चंचल ने निश्चल भया, नहि आवै नहि जाय ॥२७॥
 कनफूका गुरु हृद का, वेहद का गुरु और ।
 वेहद का गुरु जब मिलै, लहै ठिकाना ठौर ॥२८॥
 जा गुरु को तो गम नहीं, पाइन दिया बताय ।
 सिप सोधै दिन सेइया, पार न पहुँचा जाय ॥२९॥
 सतगुरु ने तो गप कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कमल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥३०॥
 सतगुरु का सारा नहीं, सद्गुरु न लाग अंग ।
 कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेल के संग ॥३१॥
 सतगुरु मिले तो क्या भया, जो मन परिगा भोल ।
 कपास विनाया कापड़ा, (क्या)करै विचारी चोल ॥३२॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, ज्यों भृंगी मत होय ।
 पल पल दाव . . बतावही, हंस न जाय विगोय ॥३३॥

२८. ससारी गुरु अगम पद को नहीं पहुँचा सकते, उस पद को पाने के लिये तो सद्गुरु दूटना चाहिये ।

३१. सारा-वश-। सीदडा-तेल का कुप्पा (कुप्पी) ।

३२. सद्गुरु के मिलने पर भी मलिन हृदय उससे लाभ नहीं उठा सकता । कपास को कूटकर बनाया हुआ कपड़ा कभी साफ नहीं बन सकता । चोल खदर का लाल रंग धान ।

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाँडि ।
 दरिया सौं न्यारा रहै, दीसैं दरिया भाँडि ॥३४॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, जाका पूरन मन ।
 अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धन ॥३५॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, (सत्र) वस्तु लायक होय ।
 यहाँ दिखावै सद्र में, वहाँ पहुँचावै लोप ॥३६॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, तत्व दिखावै सार ।
 पार बतारे पढक में, दरपन दे दातार ॥३७॥
 गुरु की सूनी आत्मा, चेळ चहै निज नाम ।
 कहै कबीर कैसे बसे, धनी विहंन गाँव ॥३८॥
 काचे गुरु के मिलन से, अगली मो विगड़ी ।
 चाले थे हरि मिलन को, दूनी विपति पड़ी ॥३९॥
 कबीर बेडा सार का, ऊपर लादा सार ।
 पापी का पापी गुरु, यौं बूड़ा संसार ॥४०॥
 ऐसा गुरु ना कीजिये, जैसी लटलटी राव ।
 माखी जामें फँसि रहै, वा गुरु कैसें खाव ॥४१॥
 गुरु नाम है गम्य का, सीप सीख ले सीय ।
 विनु पद विन मरजाद नर, गुरु सीप. नहि कोय ॥४२॥

३४. लोभ और मोह से रहित होने के कारण सत्तार में रहते हुए भी जो उससे न्यारे हों ऐसे सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये ।

गु अंधियारी जानिये, रु कडिये परकास ।
 मिटे अज्ञान तम ज्ञान ते, गुरु नाम है तास ॥४३॥
 भैरे चडिया झाँझै, भौसागर के माँहि ।
 जो छाँहै तो वाचि है, नातर बूढ़े माँहि ॥४४॥
 जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय ।
 कीच कीच के घोबते, दाग न छूटे कोय ॥४५॥
 गुरुवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि के, करै सीप की आस ॥४६॥
 गुरुवा तो घर घर फिरे, दीक्षा हमरो लेहु ।
 कै बूढ़ों कै ऊचरौ, टका पर्दनी देहु ॥४७॥
 घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर मुजान ।
 पांच मद्ध धुनकार धुन, वाजै सद्ध निसान ॥४८॥
 छोपा रँगै मुरंग रँग, नीरस रस करि लेय ।
 पैसा गुरु पै जो मिलै, सीप मोक्ष पुनि देय ॥४९॥

४३. गु-शुद्धधान्वकारे हि, रु-शुद्ध स्तानिर्वर्तकः ।

अज्ञाननाशको यस्तु, स गुरु सप्रवर्तितः ॥

जिससे अज्ञान की निवृत्ति हो ऐसे ज्ञान ही का नाम गुरु है और उस ज्ञान को जो अपने हृदय में धरता है वही शिष्य है । त्रिना इस धारणा के गुरु और शिष्य दोनों ही केवल नाम मात्र के हैं ।

४७. परदनी-धोती ।

४८. जो अपने हृदय में परम तत्व का परिचय करा दे वही गुरु पूरा है । और ब्रह्मांड में पांच अनन्द शब्द का परिचय करा दे ।

मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया मुहाग ।
 दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ॥२०॥
 ऐसा कोई ना मिला, जानों रहिये लाग ।
 सब जग जलना देखिषा, अपनी अपनी आग ॥२१॥
 ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन सों रहिये लाग ।
 सब ही जग सीतल भया, (जब)मिटो अपनी आग ॥२२॥
 यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
 सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥२३॥
 गुरु बतावे साध को, साध कहै गुरु पूज ।
 भरस परस के खेल में, मई अगम की सूझ ॥२४॥
 नादी विंदी बहु मिले, करत कलेजे छेद ।
 (कोइ)तख्त तले का ना मिला, जासों पूछें भेद ॥२५॥
 तख्त तले की सो कहै, (जो)तख्त तले का होय ।
 मौझ महल की को कहै, पड़दा गाढ़ा सोय ॥२६॥
 मौझ महल की गुरु कहै, देखा जिन घरवार ।
 कुंजी दीन्ही हाथ कर, पड़दा दिया उचार ॥२७॥

२५. नादी-नाद की उपासना करनेवाले । विंदी-वेदों के पारगत वादविवाद करनेवाले । तख्ततले का-परम तन्त्र का ज्ञाता ।

२६. सत्य पुराण का परिचय वही करा सकता है जो उसका भेद हो । अविनाशी के महल में दूसरा नहीं जा सकता; क्यों कि वह वही पड़दे में है ।

१. पा० अरस परस के मेल से २. पा० वादी ।

वस्तु कहि हूँ कहीं, किहि विधि आये हाथ ।
 कहै कबीर तब पाइये, (जब) भेदी लीजै साथ ॥६८॥
 भेदी लीया साथ करि, दीन्हा वस्तु लखाय ।
 कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६९॥
 घट का पड़दा खोलि करि, सनमुख ले दीदार ।
 बाल सनेही सांझ्या, आदि अंत का यार ॥६०॥
 गुरु मिला तब जानिये, भिटे मोह तन ताप ।
 हरष सोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥६१॥
 सिप साखा बहुते क्रिया, सतगुरु किया न मीत ।
 चाले थे सत लोक को, बीच हि अटका चीत ॥६२॥
 बंधे को बंधा मिला, छूटे कौन सपाय ।
 कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥६३॥
 'गुरु बेचारा क्या करै,
 नौ नेजा पानी चढा,
 गुरु बेचारा क्या करै,
 कहै कबीर मैली गज़ी,
 गुरु है पूरा; सिप है मूरा,
 सत सृकृत को चीन्हि के,
 कहता हूँ कहि जात हूँ,
 गुरु की करनी गुरु जानै,

(जो) हिरदा भया कठोर ।
 पथर न भीजी कोर ॥६४॥
 सद्ग न लागा अंग ।
 कैसे लागै रंग ॥६५॥
 बाग मोरि रन पैठ ।
 एक तख्त चहि बैठ ॥६६॥
 देता हूँ हेला ।
 चेला की चेला ॥६७॥

६४. नेजा-६ (छे) हाथ का एक नाप । कोर-किनार ।

६६. बाग-लगाम । मनको रोक कर ध्यान में लगे । ६७. हेला-आनाज ।

गुरु शिष्य हेरा को अंग ।

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेश ।
भौसागर में डूबने, कर गहि काहे वेस ॥ १ ॥

*ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय । -
पाँचों लडके पटकिके, रहे नाम लौ लाय ॥ २ ॥

ऐसा कोई ना मिला, जासो कहुँ दुख रोय ।
जासों कहिये भेद को, सोरफिर वरी होय ॥ ३ ॥

ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देय बताय ।
सुन मंडल में पुरप है, ताहि रहं लौ लाय ॥ ४ ॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन मुजान ।
ढोल दमामा ना सुने, सुगति विहूँना कान ॥ ५ ॥

‡ इस सकेतवाली साखी 'गुरुहेरा' की है ।

* और इस सकेत की 'शिष्य'हेरा' का है ।

गुरु शिष्य-हेरा का यह अर्थ है कि, उत्तम अधिकांग को गुरु दृष्टते हैं और पूरे सद्गुरु को शिष्य दृष्टता है । प्रिना दोनों के पूरा मिले कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

२. पाँचों लडके-काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद ।

३. भेद की-सत्य उपदेश की । ५. दमामा-नकारा ।

१. पा- बहूते । २. पा० उठि ।

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान ।
 अपना करि किरपा करै, लो उतारि मैदान ॥ ६ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूं निसंक ।
 जासो हिरदेा की वहुं, सो फिरि माँडे कंक ॥ ७ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जलती जोति बुझाय ।
 कथा सुनावै नाम की, तन मन रहै समाय ॥ ८ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, टारै मन का रोस ।
 जा पेडे साधू चले, (तू)चलि न सकै इक कोस ॥९॥
 ऐसा कोई ना मिला, सद्ध देऊँ बतलाय ।
 अच्छर और निहअच्छरा, तायै रहै समाय ॥१०॥
 हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ ।
 वाहू का घर फूंक दूं, (जो) चलै हपारे साथ ॥११॥
 हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँहि ।
 ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावै बाँहि ॥१२॥
 सरप हि दूध पियाइये, सोई विप है जाय ।
 ऐसा कोई ना मिला, आपै हि विप खाय ॥१३॥

६. मैदान—सप्तार से बाहर । ७. कंक—शगडा ।

१०. अक्षर—जीन । निहअक्षर—परम पुरप ।

११ लूका—अवजली लकड़ी ।

१३. भलाई के बदले में बुराई करनेवाले सनार में बहुत हैं, परन्तु बुराई के बदले भलाई करनेवाले विरले हैं ।

१. पा० लिया मुराबा हाथ । पा० अत्र घर जारू तासका,

तीन सनेही बहु मिले,	चौथा मिला न कोय ।
सत्र हि पियारे राम के,	बैठे परवस होय ॥१४॥
जैसा दृढत मै फिरू,	तैसा मिला न कोय ।
ततवेता तिरगुन रहित,	निरगुन सो रत होय ॥१५॥
सारा सूरु बहु मिले,	घायल मिला न कोय ।
घायल को घायल मिले,	राम भक्ति दृढ होय ॥१६॥
माया डोलै मोहती,	बोलै कहुवा घैन ।
कोई घायल ना मिले,	साई हिरदा सैन ॥१७॥
प्रेमी दृढत मै फिरू,	प्रेमी मिले न कोय ।
प्रेमी सों प्रेमी मिले,	त्रिप से अमृत होय ॥१८॥
जिन दृढा तिन पाइया,	गहिरै पानी पैठ ।
मैं बपुरा मूडन टरा,	रहा किनारे बैठ ॥१९॥
सतगुरु हम सों रीझि के,	एक दिया उपदेश ।
भौ सागर में बृढता,	कर गहि काठे केस ॥२०॥
आदि अंत अब को नहीं,	निज वाने का दास ।
सब संतन मिलि यों रमै,	ज्यों पुढुपन में बास ॥२१॥
पुढुपन केरी बास ज्यों,	व्यापि रहा सब ठाँहि ।
बाहर कबहु न पाइये,	पावै संतों माँहि ॥२२॥

१४. तीन सनेही—सुत, पित और नारी के प्रेमी । चौथा—सद्गुरु का प्रेमी । १६. घायल—रामवियोगी ।

बिरछा पूछे बीज सो, कौन तुम्हारी जात ।
 बीज कहे ता वृच्छ सों, कैसे भै फल पात ॥२३॥
 बिरछा पूछे बीज को, बीज वृच्छ के पाँहि ।
 जीव जो दूँढै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाँहि ॥२४॥
 डाल जो दूँढै मूल को, मूल डाल के पाँहि ।
 आप आप को सब चले, (कोप)मिलेमूलमों नाँहि ॥२५॥
 डाल भई हे मूल तें, मूल डाल के पाँहि ।
 सब हि पडे जब भ्रम में, मूल डाल कलु नाँहि ॥२६॥
 मूल कबीरा गहि चढे, फल खाये भरि पेट ।
 चौरासी की मय नहीं, ज्यों चाहे त्यों लेट ॥२७॥
 आदि हती सब आपमें, सकल हती ता माहि ।
 ज्यों तख्तर के बीज में, डार पात फल छाँहि ॥२८॥
 हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय ।
 वुंद सपानी समुंद में, सो कित हेरी जाय ॥२९॥
 हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय ।
 समुंद सपाना वुंद में, सो कित हेरा जाय ॥३०॥

२९. वृद-जात्र । समुंद-मालिक । उपासक अपने आपको मालिक में मिलाना चाहते हैं । इस सखी में उपासकों की भावना का वर्णन है ।

३०. इस सखी में ज्ञानियों की धारणा का वर्णन है ।

कवीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेह ।
 जिहि जिहि औपध गुरु मिले, सो सो औपध देह ॥३१॥
 परगट कहू तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
 सहना छिशा पयाळ में, को कठि बैरी होय ॥३२॥
 जैसे सती पिय सँग जरे, आसा सब की त्याग ।
 सुघर कूर सोचै नहीं, सिख पतिवर्त सुहाग ॥३३॥
 सरवस सीस चढाइये, तन कृत सेवा सार ।
 भूख प्यास सहै ताड़ना, गुरु के सुरति निहार ॥३४॥
 गुरु को दोष रती नहीं, सीप न सोधे आप ।
 सीप न छौडै मनमता, गुरु डि दोष का पाप ॥३५॥
 जैसी सेवा सिप करै, तस फल प्राप्त होय ।
 जो चोवै सो लोवही, कहै कवीर बिलोय ॥३६॥
 हिरदे ज्ञान न ऊपजे, मन परतीत न होय ।
 ताको सतगुरु कहा करै, धनघसि कुल्हरा न होय ॥३७॥

३१. बैद-गुरु । औपध-उपदेश । गुरु-सत्पुरुष । ३२. सहना-
 अधिगतपुत्र । पया-पीरा, माया । ३३. सुघर-अच्छा । कूर-बुरा ।
 ३४. तनकृत सेवा सार-तन से अच्छी सेवा करता रहै । ३६. लोवही-
 काटता है । बिलोय-सोच समझकर । ३७. धनघसि....होप-लुहार के
 धन को विसकर कोई उसका कुल्हरा नहीं बना सकता ।

घनघसिया जोई मिले, घन घसि काटे धार ।
 मूरख तै पंडित किया, करत न लागी वार ॥३८॥
 सिप पूनै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साध ।
 कहै कबीर गुरु सीप को, मत है अगम अगाध ॥३९॥
 गुरु सोन ले सीप का, साधु संत को देत ।
 कहै कबीरा सौंन से, लागे हरि सौं हेत ॥४०॥
 सिप किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
 कीच कोच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
 देस दिसन्तर मैं फिरूं, पानुप बड़ा मुकाल ।
 जा देखै सुख ऊपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
 सत को दूढ़त मैं फिरूं, सतिया मिलै न कोय ।
 जब सत कूं सतिया मिले, त्रिप तजि अमृत होय ॥४३॥
 स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के मांय ॥४४॥
 धन धन सिप की सुरतिकूं, सतगुरु लिये समाय ।
 अन्तर चितवन करत है, (गुरु)तुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
 गुरु विचारा क्या करै, यांस न इंधन होय ।
 अमृत सींचै बहुत रे, बूढ़ रही नहि कोय ॥४६॥

४० सौंज—वस्तु, चीजें । ४२. गानुप...मुकाल-मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया,	हिरदे वपट न जाव ।
आलो पालो दुख सदै,	चढि पाथर की नाव ॥४७॥
चन्छु होय तो देखिये,	जुक्ती जानै सोय ।
दो अंधे को नाचनो,	कशो काहि पर मोय ॥४८॥
गुरु कीजै जानि के,	पानी पीजै छानि ।
बिना विचारै गुरु करै,	पढै चौरासी खानि ॥४९॥
गुरु तो ऐसा चाहिये,	सिपसों कट्ट न लेय ।
सिप तो ऐसा चाहिये,	गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

४८. दो अंधे...मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी का नाच का असर नहीं हो सकता, क्यों कि दोनों ही बिना आँख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुँच सकता ।

घनघसिया जोई मिले, घन घसि काठे धार ।
 मूरख तें पंडिन किया, करत न लागी बार ॥३८॥
 सिप पूनै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साध ।
 कहै कबीर गुरु सीप को, मत है अगम अगाध ॥३९॥
 गुरु सोन ले सीप का, साधु संत को देत ।
 कहै कबीरा सोन से, लोगे हरि सों हेत ॥४०॥
 सिप किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
 कीच कीच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
 देस दिसन्तर पै फिरूं, मानुष बड़ा सुकाल ।
 जा देखै मुख ऊपगै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
 सत को हृदत में फिरूं, सतिया मिलै न कोय ।
 जब सत कूं सतिया मिले, बिप तजि अमृत होय ॥४३॥
 स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के मांय ॥४४॥
 धन धन सिप की मुरतिहूं, सतगुरु लिये समाय ।
 अन्तर चितवन करत है, (गुरु)तुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
 गुरु विचारा क्या करै, वांस न इंधन होय ।
 अमृत सींचै बहुत रे, बूंद रही नहि कोय ॥४६॥

४०. मोज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष...सुकाल-मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया, हिरदे कपट न जाव ।
 आलो पालो दुख सहै, चट्टि पाथर की नाव ॥४७॥
 चन्हु होय तो देखिये, जुक्ती जानै सोय ।
 दो अंधे को नाचनो, कशे काहि पर मोय ॥४८॥
 गुरु फीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
 विना विचारै गुरु करै, पट्टै चौरासी खानि ॥४९॥
 गुरु तो ऐसा चाहिये, सिपसों कट्ट न लेय ।
 सिप तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

४८. दो अंधे....मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी क माघ का असर नहीं हो सकता; क्यों कि दोनों ही विना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

निगुरा को अंग ।

जो निगुरा सुमिरन करै,	दिन में सौ सौ बार ।
नगर नापका सत करै,	जरै कौन की लार ॥ १ ॥
गुरु विनु अहिनिप्त नाम ले,	नहीं संत का भाव ।
कहै कबीर ता दास का,	पढ़ै न पूरा दाव ॥ २ ॥
गुरु विन माला फेरते,	गुरु विन देते दान ।
भगुरु विन सब निष्फल गया,	पूछौ वेद पुरान ॥ ३ ॥
गरभ योगेसर गुरु विना,	लागे हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुण्ठ ते,	फेर दिया सुकदेव ॥ ४ ॥
जनक विदेही गुरु किया,	लागा हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुण्ठ में,	उलटि मिला सुकदेव ॥ ५ ॥
चौसठ दीवा जोय के,	चौदह चंदा माँहि ।
तिहि घर किसका चाँदना,	जिहि घर सतगुरु नाँहि ॥ ६ ॥
निसि अंधियारी कारनै,	चौरासी लख चंद ।
गुरु विन येते उदय है,	तहू मुद्रिष्टि हि मंद ॥ ७ ॥

१. नगर नापका—वेश्या ।

६. चौसठ दीया—चौसठ कला । चौदह चंदा—चौदह विद्या ।

१. पा० सो तो दान हाराम है ।

दारुक में पावक बसै, घुनका घर किय जाय ।
 (यौं)दरिसंग विमुख निगुरुको, काल घास ही खाय ॥ ८ ॥
 पूरे को पूरा मिले, पूरा पडसी दाव ।
 निगुरु तो कूबट चले, जब तब करै कुदाव ॥ ९ ॥
 जो कामिनी पडदे रहै, मुने न गुरुमुख बात ।
 सो तो होगी कूकरी, फिरै उचारै गात ॥ १० ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, नारि कूकरी होय ।
 गली गली भूंकत फिरै, टुक न डारै कोय ॥ ११ ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, राजा रासम होय ।
 माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥ १२ ॥
 गगन मंडल के बीच में, तहवाँ अलकै नूर ।
 निगुर महल न पावई, पहुंचेगा गुरु पूर ॥ १३ ॥
 कबीर हृदय कठोर के, सद्ग न लागै सार ।
 सुधि बुधि के डिरदै विधे, लपजे ज्ञान विचार ॥ १४ ॥

८. दारुक—लकड़ी । पावक—अग्नि । घुनका—घुन ।

यद्यपि लकड़ी में आग रहती है; परन्तु वह उसे-घुन को नहीं बचा सकती । इसी प्रकार गुरु से निमुख नर हृदय में राम के रहते हुए भी काल के द्वारा मारा जाता है । ९. कूबट कुमार्ग ।

१०. स्त्रियों को भी अन्तरात्मा की शांति के लिये गुरु दीक्षा ग्रहण करना चाहिये । १२. रासम—गदहा ।

झिरमिर झिरमिर बरसिया,	पाहन ऊपर मेह ।
माटी गलि पानी भई,	पाहन चाही नेह ॥१५॥
हरिया जानै रुखड़ा,	उस पानी का नेह ।
सूखा काठ न जानि है,	कितहूं बूढ़ा मेह ॥१६॥
कबीर हरिस बरसिया,	गिरि परवत सिखराय ।
नीर निवानू ठाहरै,	ना वह छापर डाय ॥१७॥
पमुवा सों पानों पर्यो,	रहु रहु हिया न खीज ।
ऊपर बीज न ऊगसी,	बोवै दूना बीज ॥१८॥
ऊंचै कुल के कारनै,	वांस वध्यो इंकार ।
राम भजन हिरदै नहीं,	जार्थो सब परिवार ॥१९॥
कबीर चंदन के भिरै,	नीम भी चंदन होय ।
बूढ्यो वांस बढ़ाइयो,	यो जनि बूढ़ी कोय ॥२०॥
कबीर लहरि समुद्र की,	मोती बिखरे आय ।
बगुला परख न जानई,	दंसा चुगि चुगि खाय ॥२१॥
सारा लशकर हंडिया,	सारदल नहि पाय ।
गीदड़ को सर घाटिके,	नामै काम गँवाय ॥२२॥
सुकदेव सरिखा फेरिया,	तो को पावै पार ।
शुरु बिन निगुरा जो रहै,	पढै चौरासी धार ॥२३॥

१७. निवानू-तालतलेया, नीची जगह । ठाहरै-ठहरता है । छापर-
डाय-ऊंची समतल भूमि ।

१८. पानों-मुकाबला, काम । २०. भिरे-पास ।

'सत्त नाम है मोतिपा,
 सुगुरे थे सो चुनि लिये,
 कंचन मेरु अरपहीं,
 कहे कबीर गुरु वेमुखी,
 दारु के पावक करै,
 कहे कबीर गुरु वेमुखी,
 साकट का मुख विष है,
 ताकी औपधि मौन है,
 साकट कहा न कहि चलै,
 जो कौवा मठ हगि भरै,
 साकट मूकर कूकरा,
 कोटि जतन परमोधिये,
 टेक न कीजे वावरे,
 टेक छाडि मानिक मिले,
 टेक करै सो वावरा,
 जो टेकै साहिब मिले,
 साकट संग न बैठिये,
 तत्व सरीरौ झडि पडै,
 साकट संग न बैठिये,
 ताके संग न चालिये,

'सचराचर रहो छाये ।
 चूक ५ही निगुराय ॥२४॥
 अरपै कनक भंडार ।
 कवहुं न पावै पार ॥२५॥
 घुनक जरी (क्यौ)न जाय ।
 काल पास रहि जाय ॥२६॥
 निकसत उचन भुवंग ।
 विष नहीं व्यापै अंग ॥२७॥
 सुनहा कहा न खाय ।
 (तो)मठ को कहा नशाय ॥२८॥
 तीनों की गति एक ।
 तऊ न छाडै टेक ॥२९॥
 टेक माहि है हानि ।
 सतगुरु वचन प्रमान ॥३०॥
 टेकै होवै हानि ।
 सोड टेक परमान ॥३१॥
 अपनो अंग लगाय ।
 पाप रहै लपटाय ॥३२॥
 करन कुबेर ममान ।
 पडि है नरक निदान ॥३३॥

साकट ब्राह्मन मति मिलो, वैस्नव मिलु चंडाल ।
 अंग भरै मरि भेटिये, मानो मिले दयाल ॥३४॥
 साकट सन का जेवरा, मीजै सो करराय ।
 दो अरुहर गुरु बाहिरा, बांधा जपपुर जाय ॥३५॥
 साकट से सूकर भला, सूचौ राखै गाँव ।
 वृद्धौ साकट वापुरा, वाइस भरमी नाँव ॥३६॥
 साकट हमरै कोऊ नहि, सब ही वैस्नव ज्ञारि ।
 संसय ते साकट भया, कहैं कवीर विचारि । ३७॥
 साकट ब्राह्मन सेवरा, चौथा जोगी जान ।
 इनको संग न कीजिये, होय भक्ति में हान ॥३८॥
 साकट संग न जाइये, दे मांगा मोहि दान ।
 प्रीत संगती ना मिलै, छाडै नहि अभिमान ॥३९॥
 साकट - नारी छांडिये, गनिका कीजै नारि ।
 दासी है हरि जनन की, कुल नहीं आवै गारि ॥४०॥

३५. जेवरा-रस्ता । ३६ सूचौ-साफ । वाइस-कौवा । जिस प्रकार समुद्र में नाव पर बैठा हुआ कौवा उड़ाये जाने पर इधर भटक कर नाव पर ही आकर बैठ जाता है । इसी प्रकार निगुरे मनुष्य को ससार में कहीं सुख नहीं मिलता ।

४०. गनिका को हृदय में यदि भक्ति और सुबुद्धि उत्पन्न हो जाय और वह एक की स्त्री बनकर रहना चाहे तो उसे अपना लेना चाहिये । और अपनी स्त्री भी यदि व्यभिचारिणी कुलटा बन जाय तो उसे त्याग देना चाहिये ।

साकट ते' सँत होत हे, जो गुरु मिले मुजान ।
 राम नाम निज मंत्र दे, छुडवै चारों खान ॥४१॥
 कवीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय ।
 एक गुवाडै कदि बडै, रोज गदहरा गाय ॥४२॥
 मै तोही सों कव कथा, (त)साकट के घर जाय ।
 बहती नदिया डूबि मरुं, साकट संग न खाव ॥४३॥
 संगति सोई बिगुर्चई, जो है साकट साथ ।
 कँचन कटोरा छाडि कै, सनदक छीन्ही दाय ॥४४॥
 सूता साधु जगाइये, करै ब्रह्म को जाप ।
 ये तीनों न जगाइये, साकट सिंह रु साप ॥४५॥
 आंखों देखा घी भला, ना मुख मेला तेल ।
 साधु सों क्षमडा भला, ना साकट सों मेल ॥४६॥
 घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास ।
 ओ तो हैयगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥४७॥
 खसप कहावै वैस्नव, घर में साकट जोय ।
 एक घरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय ॥४८॥
 एक अनूपम हम किया, साकट सों वेवहार ।
 निंदा साटि उजागरो, कीयो सौदा सार ॥४९॥

४२. गुवाडै-गोशाला में । मूर्खों की सभा में मत जाओ, क्यों कि उनको अच्छे और बुरे की पहचान नहीं होती ।

४४. बिगुर्चई-खराब होती है । सनदक-मिट्टी का कटोरा, सकोरा ।

ऊजह घर में बैठि के, किसका लीजै नाम ।
 साकुट के संग बैठ के, क्यूं कर पावै राम ॥५०॥
 साकुट साकुट कहा करो, फिट साकुट को नाम ।
 ताही सैं सूअर भला, चोखा राखै गाम ॥५१॥
 हरिजन की लातों भलीं, घुरि साकुट की वात ।
 लातो में सुख उपजे, बाते इज्जत जात ॥५२॥
 साकुट भले हि सरजिया, परनिंदा जु करंत ।
 पर को पार उतार के, आप हि नरक परंत ॥५३॥
 वैस्नव भया तो क्या भया, साकुट के घर खाय ।
 वैस्नव साकुट दोउ मिलि, नरक कुंड में जाय ॥५४॥
 सूने मंदिर पैठों, नही धनी की लाज ।
 कूकर कीने फिरत है, क्यों करि सरगो काज ॥५५॥
 पारब्रह्म बूडो मोतिया, झडी बांधि सिखर ।
 सुगरा सुगरा चुनि लियां, चूक पढ़ी निगुर ॥५६॥
 बेकामी को सिरजि निगवै, सांठि खोवै भालि गँवावै ।
 दास कवीर ताहि को भावै, रारि सभै सनमुख सरसावै ॥५७॥
 हरिजन आवत देखिके, मोहडो सूख गयो ।
 भाव भक्ति समुझ्यो नहीं, मूरख चूक गयो ॥५८॥
 दासी केरा पूत जो, पिता कौन से कहै ।
 गुरु विनः नर भरमत फिरै, मुक्ति कहा से लहै ॥५९॥
 निगुरा ब्राह्मन नहि भला, गुरुमुख भला चमार ।
 देरतन से कुत्ता भला, नित उठि भूँके द्वार ॥६०॥

साधु को अंग ।



कबीर दरसन साधु के, लेखे में सोई घड़ी,	साधिव आवै याद । बाकी के दिन बाद ॥ १ ॥
कबीर दरसन साधु का, एषों उद्यम से लक्ष्मी,	करत न कीजै कानि । आलस मन से हानि ॥ २ ॥
कबीर सोई दिन भला, अंक भरे भरी भेटिये,	जा दिन साधु मिलाया पाप असरीरों जाय ॥ ३ ॥
कबीर दरसन साधु के, जो होवै सूली सजा,	बदे माग दरसाय । कांटे ईं टरि जाय ॥ ४ ॥ —
दरसन कीजै साधु का, आसोजा का पेह ज्यों,	दिन में कइ कइ बार । बहुत करै उपकार ॥ ५ ॥
कई बार नहि करि सकै, कबीर साधू दरस ते,	दोय बखत करि लेय । काल दगा नहि देय ॥ ६ ॥

१. बाद=ब्रेकाम । २. कानि=मान मर्यादा-अहंकार ।

४. सन्तों के दर्शन की ऐसी महिमा है कि सूली की सजा के बदले कांटा लम्बाकर रह जाता है ।

५. आसोजा=आश्विन् ।

१. पा० कबीर सो दिन निरमला, । २. पा० संत । ३. पा० देहका ।

दोष बखत नहि करि सकै,
 कवीर साधु दरस ते,
 एक दिना नहि करि सकै,
 कवीर साधु दरस ते,
 दूजै दिन नहि करि सकै,
 कवीर साधु दरस ते,
 तीजै चौथै नहि करै,
 यामें विलंब न कीजिये,
 वार वार नहि करि सकै,
 कहै कवीर सो भक्त जन,
 पाख पाख नहि करि सकै,
 यामें देर न लाइये,
 मास मास नहि करि सकै,
 यामें ढील न कीजिये,
 छठे मास नहि करि सकै,
 कहै कवीर सो भक्तजन,
 वरस वरस नहि करि सकै,
 कहै कवीरा जीव सो,
 मात पिता सुत इस्तरी,
 साधु दरस को जय, चलै,

दिन में वरु इक वार ।
 उतरे भौजल पार ॥ ७ ॥
 दूजै दिन करि लेह ।
 पावै उचम देह ॥ ८ ॥
 तीजै दिन करु जाय ।
 मोक्ष मुक्ति फलपाय ॥ ९ ॥
 वार वार करु जाय ।
 कहै कवीर स_झाय ॥१०॥
 पाख पाख करि लेय ।
 जनम सुफल करि लेय ॥११॥
 मास मास करु जाय ।
 कहै कवीर समुझाय ॥१२॥
 छठे मास अलगत्त ।
 कहै कवीर अविगत्त ॥१३॥
 वरस दिना करि लेय ।
 जम हिचुनौती देय ॥१४॥
 ताको लागे दोष ।
 कवहुं न पावै मोष ॥ १५ ॥
 आलस बधू कानि ।
 ये अटकावै आनि ॥१६॥

इन अटकाया ना रहै,	साधु दरस को जाय ।
कवीर सोई संत जन,	मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥१७॥
साधु चलत रो दीजिये,	कीजै अति सनसॉन ।
कहै कवीर कछु भेंट धरु,	अपने बित अनुमान ॥१८॥
खाली साधु न विदा करु,	मुनि लीजो सब कोय
कहै कवीर कछु भेंट धरु,	जो तेरे घर होय ॥१९॥
मोहर रुपैया पैसा,	छाजन भोजन देय ।
कह कवीर सो जगत में,	जनम सफल करि लेय ॥२०॥
हाथी घोडा गाय बैस,	रथ अरु गाडी भवन ।
कवीर दीजै साधु को,	कीया चाहै गवन ॥२१॥
बेटा बेट्टी इस्तरी,	साधु चहै सो देय ।
सिर साधु के अरपहीं,	जनम सुफल करि लेय ॥२२॥
कवीर दरसन साधु के,	खाली हाथ न जाय ।
यही सीख बुनि लीजिये,	कहै कवीर समुझाय ॥२३॥

२२ ऊपर की चार साखियों में साधुओं के निमित्त तन मन धन और सर्वस्व अर्पण करने का बयान किया है। शरणागत का यही अर्थ है कि सन कुठ गुरु को सौंप दिया जाय, परन्तु गुरु की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है। गुरु की पहिचान इस साखी में बतलाई गई है—“तन मन ताको दाजिये जाके विप्रथा नाहिं। आधा सबही डारके राखे साहन नाहिं”। अर्थात् जो विप्रय विकार से सर्वत्र गहित हा उही की सेवा में सन कुठ अर्पण करे। अन्यथा गुरु आर शिष्य दोनों को हानि है।

सुनिये पार जु पाइया,	छाजन भोजन आनि ।
कहै कबीरा साधु को,	देत न कीजे कानि ॥२४॥
कबीर लोंग इलायची,	दातुन माटी पानि ।
कहै कबीरा साधु को,	देत न कीजे कानि ॥२५॥
टका मार्ही टूक दे,	चीर माहि सों चीर ।
साधू देत न सकुचिये,	यौं कहै सत्त कबीर ॥२६॥
कंचन दीया करन ने,	द्रौपदी दीया चीर ।
जो दीया सो पाइया,	ऐसै कहै कबीर ॥२७॥
निराकार निजरूप है,	प्रेम प्रीति सों सेव ।
जो चाहै आकार को,	साधू परतछ देव ॥२८॥
साधू आवत देखि के,	चरनों लागी धाय ।
क्या जानौ भ्रस भेष में,	रहरि आपै मिळ जाय ॥२९॥
साधू आवत देखि करि,	हंसी हमारी देह ।
माया का ग्रह उतरा,	नैनन वदा सनेह ॥३०॥
साधू आवत देखि के,	मनमें करै मरोर ।
सो तो होसी चूहरा,	बसै गांव की ओर ॥३१॥
साधु आया पाहुना,	मागै चार रतन ।
घुनी पानी साधरा,	सरधा सेती अंन ॥३२॥

२४. छाजन—कपडा । २६ चीर—कपडा । ३२. साधरा—बिछीना
 १ पा० किस । २ पा० साहेब ही ३ पा० छोर ।

साधू दया साहिव मिले, उपजा परमानंद ।
 कोटि विघन पलमें टलै, भिटे सकल दुख दंद ॥३३॥
 साधू सद्ग समुद्र है, जामे रतन भराय ।
 मंद भाग मुट्ठी भरे, कंकर हाथ लगाय ॥३४॥
 साधु मिलै यह सब टलै, काल जाल जम चोट ।
 सीस नवावत ढहि पडै, अघ पापन के पीट ॥३५॥
 साधु सेव जा घर नहि, सतगुरु पूजा नॉहि ।
 सो घर मरघट जानिये, भूत वसै तेहि ^१मॉहि ॥३६॥
 साधु सीप साहिव समुंद, निपजत मोती मॉहि ।
 वस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल में नॉहि ॥३७॥
 साधु बड़े संसार में, हरि ते अधिका सोय ।
 धिन इच्छा पूरन करै, ^२साहिव हरि नहि टोया ॥३८॥
 साधु विरछ सतनाम फल, सीतल सद्ग विचार ।
 जग में होते साधु नहि, जरि मरना संसार ॥३९॥
 साधु हमारी आतमा, हम साधुन की देह ।
 साधुन में हम यौ रहै, ज्यों वादल में मेह ॥४०॥ -
 साधु हमारी आतमा, हम साधुन की सांस ।
 साधुन में हम यौ ^३रहै, ज्यौ फूलन में वास ॥४१॥
 साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जोर ।
 साधुन में हम यौ रहै, ज्यौ पय मन्थे धीव ॥४२॥ -

ज्यों पय मद्धे घीव है, (त्यों) रमी रहा सब ठौर।
 वक्ता स्रोता बहु मिले, मथि कौढे ते और ॥४३॥
 साधु नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालो अंग ।
 कहै कविर निरमल भया, हरि भक्तन के संग ॥४४॥
 साधु मिले साहिब मिले, अन्तर रही न रेख ।
 मनसा वाचा करमना, साधू साहिब एक ॥४५॥
 साधू को उठि भेटिये, मुख ते कहिये राम ।
 नातो साधु सख्य को, करनी सो नहि काम ॥४६॥
 साधुन के मैं संग हूं, अन्त कहूं नहि जाँव ।
 जु मोहि अरवै प्रीतिसो, साधुन मुख है खाँव ॥४७॥
 साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाँहि ।
 धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाँहि ॥४८॥
 साधु बड़े परमारथी, धन ज्यों बरसै आय ।
 तपन बुझावै और की, अपनो पारस लाय ॥४९॥
 साधु बड़े परमारथी, सीतल जिनके अंग ।
 तपन बुझावै और की, दे दे अपनो रंग ॥५०॥
 आवत साधु न हरपिया, जात न दीया रोय ।
 कहै कविर वा दास की, मुक्ति कहाँ ते होय ॥५१॥
 छाजन भोजन प्रीति सों, दीजै साधु बुझाय ।
 जीवत जस है जगत में, अन्त परम पद पाय ॥५२॥

४६. नातो-सम्बन्ध । ४९. पारस-ज्ञान । ५०. रंग-स्वरूप, स्वभान ।

१. पा० सत ।

सरवर : तरुवर संतजन, चौथा घरसै मेह ।
 परमारथ के कारनै, चारों धारी देह ॥५३॥
 धिरेछा कबहु न फल भखै, नदी न अँचवै नीर ।
 परमारथ के कारनै, साधुन घरा सरीर ॥५४॥
 अलख पुरुष की आरसी, साधु ही की देह ।
 लखा जु चाहे अलख को, इनही में लखि लेह ॥५५॥
 सुख देवै दुख को हरै, दूर करै अपराध ।
 कहँ कविर बूढ़ कब मिलै, परम सनेही साव ॥५६॥
 जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
 मोल करो तलवार का, पहा रहन दो म्यान ॥५७॥
 हरि दरबारी साधु हैं, इन ते सब कुछ होय ।
 वेगि मिलावै राम को, इन्हें मिले जु कोय ॥५८॥
 कह अकास को फेर है, कह(हा) घरती का तोल ।
 कहा साधु की जाति है, कह(हा) पारस का मोला ॥५९॥

५४. अँचवै-पीती है ।

५९. सन्तों का हृदय दर्पण के समान निर्मल होता है । अतएव उसमें अलख पुरुष के दर्शन हो सकते हैं ।

५८. हरि दरबारी-हरि के दरवार में रहनेवाले ।

५९. जिस प्रकार आकाश की गोलाईका अन्धान, पृथ्वी का तोल और पारस का मोल नहीं होता, इसी प्रकार साधु की भी जाति नहीं होती ।

१. पा० निराकार की । २. पा० जो पूछो तो ज्ञान ।

हरि सों तू मति हेत करू,	कर हरिजन सों हेत ।
माल मुल्क हरि देत हैं,	हरिजन हरि ही देत ॥६०॥
साधू खोजा राम के,	धसै जु महलन माँहि ।
औरन को परदा लगे,	इनको परदा नाँहि ॥६१॥
जा घर साधु न सेवहीं,	पारब्रह्म पति नाँहि ।
ते घर भरघट सारिखा,	भूत वसे ता ठाँहि ॥६२॥
साधुन की झुपडी भली,	ना साकट को गाँव ।
चंदन की कुटकी भली,	ना बाबुल बनराव ॥६३॥
पुर पट्टन सूवस वसै,	आनन्द ठाँवै ठाँव ।
राम सनेही वाहिरा,	ऊजड़ मेरे माव ॥६४॥
इयवर गयवर सघन घन,	छत्रपति की नारि ।
तासु पटतर ना तुलै,	हरिजन की पनिहारि ॥६५॥
क्यों नृपनारी निन्दिये,	पनिहारी को मान ।
(वह) मांग सँवारै पीव कूं,	नित वह सुमिरै राम ॥६६॥
साधुन की कुतिया भली,	बुरी साकट की माय ।
वह बैठी हरिजस सुनै,	(वह)निन्दा करनै जाया ॥६७॥

६०. हरिजन-हरि के भक्त, साधु सन्त ।

६१. खोजा-हिजडे । राजपूताने में रानियों के महलों में हिज का पहरा रहता है । उनका पडदा नहीं होता ।

६२. बाबुल-बबूल । ६५. इयवर गयवर-अनेक साजों से मजी हुई

तीरथ न्हाये एक फल,	साधु मिले फल चार ।
सतगुरु मिलें अनेक फल,	कहैं कबीर विचार ॥६८॥
साधु सिद्ध बहु अन्तरा,	साधु मता परचंड ।
सिद्ध जु तारे आप को,	साधु तारि नौ खंड ॥६९॥
यही बढ़ाई सन्त की,	करनी देखो आय ।
रज हूं ते झीना रहै,	लौलिन हूँ गुन गाय ॥७०॥
परमेश्वर ते संत बड़,	ताका कह(हा) जनमान ।
हरि माया आगै धरै,	संत रहै निरवान ॥७१॥
नील कंठ कीटा भखै,	मुख वाके हैं राम ।
औगुन वाकै नहि लगै,	दरसन ही से काम ॥७२॥
अन वैस्नव कोई नहीं,	सब ही वैस्नव जानि ।
जेता हरि को ना भजै,	तेता ताको हानि ॥७३॥
आप साधु करि देखिये,	देख असाधु न कोय ।
नाके हिरदै हरि नहीं,	हानी उसकी होय ॥७४॥
जा मुख को मुनिवर रटैं,	सुरनर करै विलाप ।
सो मुख सहजै पाइया,	सन्तों संगति आप ॥७५॥
मेरा मन पंछी भया,	उड़ि के चढ़ा अकास ।
वैकुण्ठ हि खाली पडा,	साहिव सन्तों पास ॥७६॥

७१. हरि से सन्त सुखी है, इससे यही प्रमाण है कि हरि को माया लगी रहती है । और साधुजन उससे रहित हैं ।

परवत परवत मैं फिरा, कारन अपने राम ।
 राम सरीखे जन मिले, तिन सारै सब काम ॥७७॥
 कबीर सीतल जल नहि, हीम न सीतल होय ।
 कबीर सीतल संन जन, नाम सनेही सोय ॥७८॥
 भली भई हरिजन मिले, कहने आयो राम ।
 सुरति दसौं दिस जाय थी, अपने अपने काम ॥७९॥
 संत मिले जनि वीछुरौ, विछुरौ यह मम प्रान ।
 सद्ग सनेही ना मिलै, प्रान देह में आन ॥८०॥
 कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करु ग्राम ।
 जवलग साध न सेवई, तबलग काचा काम ॥८१॥
 आसा वासा सन्त का, ब्रह्मा लखै न वेद ।
 पट दरसन खटपट करै, विरला पावै भेद ॥८२॥
 वेद थके ब्रह्मा थके, थ्याके सेस महेस ।
 गीता हूं की गम नहीं, असत क्रिया परवेस ॥८३॥
 धन सो माता सुन्दरी, जाया साधू पूत ।
 नाम सुभिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत ॥८४॥

८३. पट दर्शन-जोगी जगम सेवडा, सन्यासी दरवेश ।

दृश कद्विषे ब्राह्मणा, छै घर छै उपदेश ।

८४. अदृत (अऊन)-निर्गम, बिना गम के ।

१. पा० थकिया शरर सेस । २. पा. गीता की नहं गम नहीं ।

३. पा० तहें सतगुरु का देस ।

साधु ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नॉहि ।
 पान फूल छुँदै नहीं, स्वसै बगीचा भॉहि ॥८५॥
 साधु जन सब में रये, दू खन काहू देहि ।
 अपने मत गाढा रहै, साधन का मत येहि ॥८६॥
 साधु हजारी कापडा, तामें मल न समाय ।
 साकट काळी कामळी, भावै तहाँ विछाय ॥८७॥
 साधु भौरा जग कली, निस दिन फिरै उदास ।
 टुकि टुकि तहाँ विलंबिया, (जहाँ)सीतल सद्रनिवासा ८८॥
 साधु सिद्ध बड़ अन्तरा, जैसे आम बबूल ।
 बाकी डारी अभी फल, बाकी डारी मूल ॥८९॥
 साधु कहावन कठिन है, आगे की सुधि नॉहि ।
 सूली ऊपर खेळना, गिरु तो ठौरहि काहि ॥९०॥
 साधु कहावन कठिन है, ज्यों खाँडे की धार ।
 ढगमगाय तो गिरि पड़े, निहचल उतरै पार ॥९१॥
 साधु कहावन कठिन है, लम्बी पेट खजूर ।
 चटु तो चाखै मेमरस, गिरु तो चकना चूर ॥९२॥
 साधु चाळ जु चालई, साधु कहावै सोय ।
 विन साधन तो सुधि नहीं, साधु कहा ते होय ॥९३॥

८७. हजारी कापडा सफेद कपडे । ८८ टुकि टुकि धोड़ी २ देर ।

१ पा० तोड़े । २. पा० रहे ।

साधु सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
 परमारथ राता रहै, बोले वचन रसाल ॥९४॥
 साधु सती औ सूरमा, दई न मोहैं मूंह ।
 ये तीनों भागा घुरा, साहिव जाकी मूंह ॥९५॥
 साधु सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 माथा बांधि पताक सों, नेजा घालैं चोट ॥९६॥
 साधु सती औ सिंघ को, ज्यौ लंघन त्यों सोभ ।
 सिंघ न मारै मेटका, साधु न बांधै लोभ ॥९७॥
 साधु सिंघ का इक पता, जीवत ही को खाय ।
 भाव हीन मिरतक दसा, ताके निकट न जाय ॥९८॥
 साधु साधु सब एक हैं, जस अफीम का खेत ।
 कोई विवेकी लाल हैं, और सेत का सेत ॥९९॥
 साधु तो हीरा भया, ना फूटै घन खाय ।
 ना वह बिनसै कुंभ ज्यों, ना वह आवै जाय ॥१००॥
 साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
 सद्द विवेकी पारखी, भते माथे के पौर ॥१०१॥

९४ रसाल-मीठे । ९५. दई-दिय । इनको देव अपने लक्ष्य से न
 गिराये । मूंह-सीमा । ९६. ओट-आड में । पताक-ध्वजा । नेजा-भाला
 ध्वजा से शिर बाधने का यह भाव है कि ध्वजा शिर के माथे रहे ।

९७. लघन—उपवास ।

साधू ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक ।
 बाहर मिलने सों मिलै, अन्तर सब सों एक ॥१०२॥
 सदकृपालु दुखपरिहरन, वैर-भाव नहि दोष ।
 छिमा ज्ञान सत माखही, हिंसा रहित जु होय ॥१०३॥
 दुखसुख एक समान है, हरष सोक नहि व्याप ।
 उपकारी निहकामता, उपजै छोड़ न ताप ॥१०४॥
 सदा रहै सन्तोष में, धरम आप दृढ धार ।
 आम एक गुरु देव की, और न चित्त विचार ॥१०५॥
 सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात ।
 निर्विकार गंभीर मत, धीरज दया वसात ॥१०६॥
 निर्वैरी निहकामता, स्वामी सेती नेह ।
 विषया सों न्यारा रहै, साधुन का मत येह ॥१०७॥
 मान अमान न चित्त धरै, औरन को सनमान ।
 जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥१०८॥
 सीलवंत दृढ ज्ञान मत, अति उदार चित्त होय ।
 लजावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥१०९॥
 दयावंत धरषक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
 सन्तोषी सुख दायका, साधू परम सुजान ॥११०॥
 निहचल भल अरु दृढ मता, ये सब लच्छन जान ।
 साधू सोई जगत में, जो यह लच्छनवान, ॥१११॥

मन रंजन पर दुख हरन,
 छिपा ज्ञान हिंसा रहित,
 इन्द्रिय मन निग्रह करन,
 सदा सुद्ध आचार में,
 और देव नहि चित बसै,
 स्वल्पाहार भोजन करू,
 और देव नहि चित बसै,
 मिछा (अ)हार भोजन करै,
 पड़ विकार यह देह के,
 सोक मोह प्यास हि लुधा,
 कपट कुटिलता छाँडि के,
 कृणवान सम ज्ञानवत,
 कपट कुटिलता दुग्धचन,
 कृपावन्त आसा रहित,
 रवि को तेज घटै नहीं,
 साधु वचन पलटै नहीं,
 जौन चाल संसार की,
 हिम चाल करनी करै,
 गांठी दाम न बांधई,
 कहँ कधिर ता साधु की,
 वैर भाव विसराय ।
 सो नर साधु कहाय ॥११२॥ —
 हिरदा कोमल होय ।
 रह विचार में सोय ॥११३॥
 मन गुरुचरन बसाय ।
 तृस्ना दूर पराय ॥११४॥
 बिन प्रतीति भगवान ।
 तृस्ना चलै न जान ॥११५॥
 तिन को चित न लाय ।
 जरा मृत्यु नसि जाय ॥११६॥
 सध सों मित्र हि भाव ।
 वैर भाव नहि काव ॥११७॥
 त्यागी सब सों हेत ।
 गुरु भक्ति सिख देत ॥११८॥
 जो घन जुरै घमंड ।
 पलटि जाय ब्रह्मंड ॥११९॥
 तौन साधु की नाहि ।
 साधु कहो मति ताहि ॥१२०॥
 नहि नारी सों नेह ।
 हम चरनन की खेह १२१॥

कोई आवै भाव ले,	को (य) अभाव ले आव ।
साधु दोउ को पोषते,	भाव न गिनै अभाव ॥१२२॥
रक्त छाँटि पय को गहे,	ज्यों रे गउ का वच्छ ।
औगुन छाँटै गुन गहे,	ऐसा साधू लच्छ ॥१२३॥
संत न छाँटै संतता,	कोटिक मिले असन्त ।
मलय भुवंगम वेधिया,	सीतलता न तनन्त ॥१२४॥
साकट ब्राह्मन मति मिलो,	साधु मिलो चंडाल ।
जाहि मिलै सुख ऊपजै,	मानो मिले दयाल ॥१२५॥
कमल पत्र है साधु जन,	वसै जगत के माँहि ।
बालक केरी धाप ज्यों,	अपना जानत नाँहि ॥१२६॥
हरि दरिया सूभर भरा,	साधू का घट सीप ।
ताम्र मोती नीपजै,	चटै देसावर दीप ॥१२७॥
बहता पानी निरमला,	बंदा भंदा होय ।
साधु जन श्रमता भला,	दाग न लागे कोय ॥१२८॥

१२४. चन्दन पर सर्पों के लिपटे रहने पर भी वह अपनी शीतलता नहीं छोड़ता ।

१२७ सूभर—पूरा । हरे मसुद के समान भरपूर और व्यापक है, उसमें सर्पों का हृदय सीपी के समान है जिससे ज्ञान के मोती निकलकर सारे ससार में फैलते हैं ।

१. पा० गदिला । २. पा० रमते भले, ।

बंधा (भी) पानी निरमला, जो टुक गहिरा होय ।
 साधु जन बैठा भला, जो बछु साधन सोय ॥१२९॥
 ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई औ तूर ।
 तीनों निकरि न बाहुरै, साधु सती औ सूर ॥१३०॥
 दूटै वरत अकास सों, कौन सकत है खेल ।
 साधु सती औ सूर का, अनी उपर का खेल ॥१३१॥
 हांसी खेलें हराम है, जो जन राते नाम ।
 माया मंदिर इस्तरी, नहि साधु का कोम ॥१३२॥
 उडगन और सुधाकरा, बसत नीर की संघ ।
 यौ साधु संसार में, कबीर पढ़त न फदे ॥१३३॥
 जौन भाव ऊपर रहै, भितर बसावै सोय ।
 भीतर औ न बसावई, ऊपर और न होय ॥१३४॥
 तन में सीतल सद्ध है, बोले बचन रसाल ।
 कहै कविग वा साधु को, गंजि सकै नहि काल ॥१३५॥
 तीन लोह उनमान में, चौथा अगम अगाध ।
 पंचम दसा है अलख की, जानैगा कोइ साध ॥१३६॥

१३१. वरत—नट के वास की रसी । १३३. पानी में चन्द्रमा और ताराओं का प्रतिबिम्ब पडता है, परन्तु जाल डालने पर वे उसमें नहीं आते ।

१३६ ब्रह्म, विष्णु और शिवलोक त्रिगुणरूप होने के कारण कल्पना के विषय हैं । चौथा निरजन का धाम अव्यक्त है । इन सब से परे अविगत पुख्य है उसको लखने वाले साधु निरले हैं ।

१सब बन तो चंदन नहीं, सुरा के दल नाँहि ।
 सब समुद्र मोती नहि, यों २साधू जग माँहि ॥१३७॥
 सिंघन के भलेहडा नहीं, हंसों की नहि पांत ।
 लालन की नहि बोरियों, साधु न चले जमात ॥१३८॥
 स्वांगी सब संसार हैं, साधू समज अपार ।
 अलल पंछि कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१३९॥
 ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनों लग ।
 मिट्टै जनम की कल्पना, जाके पूरन भाग ॥१४०॥
 भुँडा चित अरु सम दसा, साधू गुन गंभीर ।
 जो धोखा बिचलै नही, सोई संत सुधीर ॥१४१॥
 चित चैनमें गरकि रहा, जागि न देख्यो मित्त ।
 कहाँ कहाँ सल पारि हो, गल बल सहर भनित्त ॥१४२॥

१३८. लेहडा-झूड । पात-कतार । बोरिया गूल, धेला ।

१३९. अलल्यक्षी एक प्रकार का पक्षी होता है। मुना जाता है कि यह सदैम आकाशमें रहता है। यहां तक कि उसके अडे भी आकाश में ही फूटकर बचे हो जाते हैं ।

१४२. सल पारि हो-मेल प्रेम करोगे । गलबल-गटबड ।

१. पा० सुरा का तो दल नहीं, चंदन का बन नाँहि ।

२. पा० हरिजन । ३. पा० टोले । ४. पा० उचा चित्त समुद्र का ।

कबीर हमरा कोइ नहि,	हम काहू के नाँहि ।
पारै पहुँची नाव ज्यों,	मिलि के विलुरी जाँहि ॥१४१॥
आज काल के लोग हैं,	मिलि के विलुरी जाँहि ।
लाहा कारन आपने,	सोगँद रामकि खाँहि ॥१४४॥
कबीर सब जग हेरिया,	मेल्यौ कंध चढ़ाय ।
हरि त्रिन अपना कोइ नहि,	देखा ठोकि बजाय ॥१४५॥
निसरा पै विसरा नहीं,	तो निसरा ना काहि ।
पहिली खाद उखालिया,	सो फिर खाना नहि ॥१४६॥
जो विभूति साधुन तजी,	मूढ ताहि लपटाय ।
ज्यों हि वमन करि डारिया,	स्वानस्वाद करि जाय ॥१४७॥
दुनिया बंधन पहि गई,	साधू हैं निरबंध ।
राखै खड्ग जु ज्ञान का,	काटत फिरै जु फंद ॥१४८॥
कबीर कमलन जल वसे,	जल बसि रहे असंग ।
साधू जन तैसे रहें,	मुनि सतगुरु परसंग ॥१४९॥
मुर्गाबी को देख कर,	मन उपजा यह ज्ञान ।
जल में गोता मारिकर,	पंख रहे अलगान ॥१५०॥

१४४. लाहा-लाम ।

१४६. संसार छोड़ने पर भी यदि हृदय से उसकी ममता नहीं गई तो छोड़ना किसी काम का न हुआ । उसकी तो वैसी ही दशा है जैसे कुत्ता मुँह से अन्न को गिराकर उसे फिर खा लेता है ।

१५०. मुर्गाबी-जलकूकडी । अलगान-विना भीगे हुए ।

जूआ चोरी मुखबिरी, व्याज बिरानी नारि ।
 जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि ॥१५१॥
 सन्त समागम परम सुख, जान अल्प सुख और ।
 मान सरोवर ईस हैं, बगुला ठौरै ठौर ॥१५२॥
 संत मिले सुख ऊपजे, दुष्ट मिले दुख होय ।
 सेवा कीजे संत की, जनम कृतारथ होय ॥१५३॥
 हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया विश्वास ।
 हरिजन हरि का रूप है, ज्युं फूलन में वास ॥१५४॥
 संत मिले तव हरि मिले, कहिये आदि रु अन्त ।
 जो संतन को परि हरै, (सो)सदा तजै भगवन्त ॥१५५॥
 राम मिलन के कारनै, मो मन बड़ा उदास ।
 संत संग में सोधि ले, राम उनों के पास ॥१५६॥
 सरनै राखौ भौड़्यो, पुरो मन की आस ।
 और न मेरे चाहिये, संत मिलन की प्यास ॥१५७॥
 कलियुग एकै नाम है, दूजा रूप है संत ।
 साँचे मन से सेइये, भेटै करम अनन्त ॥१५८॥
 संत जहाँ सुमरन सदा, आठों पहर अमूक ।
 भरि भरि पीवै रामरस, प्रेम पियाला फूल ॥१५९॥

१५१. मुखबिरी-जासूस । बिरानी-पराई ।

१, पा० जिन जिन साधु परिहरा, निदि तजि दे भगवत ॥

फूटा मन बदलाय दे,
 वृटी होवै राम सों,
 राज दुवार न जाइये,
 सुपच भगत के जाइये,
 संगत कीजै साधु की,
 लोहा पारस परस ते,
 सो दिन गया अकाज में,
 प्रेम बिना पशु जीवना,
 संत मिले तब हरि मिले,
 दरसन ते दुरमत कटै,
 साहिव मिला तब जानिये,
 मनसा वाचा करमना,
 सोई साधु पति वरत जु,
 लाभ हानि विसराय के,
 दया गरीबी वंदगी,
 येते लच्छन साधु के,
 मान नहि अपमान नहीं,
 भवमागर ऊतर पड़े,
 आसा तजि माया तजै,
 हरख सोक निन्दा तजै,

साधू षडे सुनार ।
 फेर सँधावन द्वार ॥१६०॥
 कोटिक मिले जु हेम ।
 यह विस्नु का नेम ॥१६१॥
 कदी न निस्फल होय ।
 सो भी कंचन होय ॥१६२॥
 संगत भई न संत ।
 भाव बिना मटकंत ॥१६३॥
 यूँ सुख मिलै न कोय ।
 मन अति निरमल होया ॥१६४॥
 दरसन स्पाये साध ।
 मिटे सकल अपराध ॥१६५॥
 सदा जरै पिय आग ।
 रहु गुरु चरनन लाग ॥१६६॥
 सुमता सील सुभाव ।
 कहै कविर सद्भाव ॥१६७॥
 ऐसे सीतल संत ।
 तोरै जम के दत ॥१६८॥
 मोह तजै अरु मान ।
 कहै कविर सँत जान ॥१६९॥

साधु सोड सरादिये, कनक कामिनी त्याग ।
 और कड़ इच्छा नहीं, निस दिन रह अनुराग ॥१७०॥
 साधु ऐसा चाहिये, जैसा फोफल भग ।
 आप करावै दूकड़ा, पर मुख राखै रंग ॥१७१॥
 तन हि ताप जिन को नहीं, (नहि)माया मोह संताप ।
 हरख सोरु आसा नहीं, सो हरिजन हरि आप ॥१७२॥
 सतन के मन भय रहे, भय धरि करै विचार ।
 निस दिन नाम जपउ करै, विसरत नही लगार ॥१७३॥
 आसन तो इकान्त करै, कामिनी संगत दूर ।
 सीतल संत सिरोमनी, उनका ऐसा नूर ॥१७४॥
 साधु साधु मुखसे कहे, पाप भसम है जाय ।
 आप कबीर गुरु कहत हैं, साधू सदा सहाय ॥१७५॥
 शौ साधुन के संग रह, अंत न कितहूँ जाऊँ ।
 जु मोहि अरपै प्रीति सों, साधुन मुख है खाऊँ ॥१७६॥
 यह कलियुग आयो अरै, साधु न मानै कोय ।
 कामी क्रोधी मसखरा, तिनकी पूजा होय ॥१७७॥
 संत संत सब कोइ कहे, सब समुंदर पार ।
 अनल पंखि कोइ एक है, पखी कोटि हजार ॥१७८॥
 कबीर सेवा दोउ भली, एक संत इक राम ।
 राम है दाता मुक्ति का, संत जपावै नाम ॥१७९॥

साधू खारा यौ तजै, (ज्यौ) सोप समुंदर माँढि ।
 बासो तो बाँसे रहै, मन चित्त बासो नाँढि ॥१८०॥
 साधु मिले साहिब मिले, ये सुख कडो न जाय ।
 अतरगत अंगीठही, ततलिन टाढी थाय ॥१८१॥
 साहिब सँग राचै भँवर, कबहु न छूटे रंग ।
 जैसे जैसे कीजिये, उन संनन को सग ॥१८२॥
 साधू के घर जाय के, किरतन दीजै कान ।
 ज्यौ उद्यम त्यौ लाभ है, ज्यौ आलस त्यौ हानि ॥१८३॥
 साधू के घर, जाय के, सुधि ना लीजै कोय ।
 पीछे करी न देखिये, आगे है सो होय ॥१८४॥
 साधु विहंगम सुरसरी, चेल विहंगम चाल ।
 जो जो गलियों नीकसे, भसो सो करै निहाल ॥१८५॥
 साधू सोई सराहिये, पांचौ राखै चूर ।
 जिन के पांचौ बस नहीं, तिनते साहिब दूर ॥ १८६॥

१८४ साधु सग में बैठकर अपने किये हुए कर्मों पर पछताते न रहना चाहिये बल्कि आगे से सुकृती बनने का निश्चय कर लेना चाहिये। ऐसा करने से वह धीरे २ पुण्यात्मा बन जायगा ।

१८५. साधू देवनदी गंगा के समान हैं वे जहा २ जाते हैं उस भूमि को पवित्र करते हैं । और वहा के निवासियों का जीवन सफल कर देते हैं । १८६. पांचों=पच विषयों को । चूर=अपने अधीन ।

१. पा० तहँ तहँ ।

निहकामी निरमल दसा, पकड़े चारों खंड ।
 कहें कविर वा दास का, आस करै पैकुंठ ॥१८७॥
 रति एक धूँवा संतका, भूत ऊधरे चार ।
 जले जलाये फिर जले, कहें कविर विचार ॥१८८॥
 साधु सरवन सांभरी, छोड़ चले गृह काम ।
 डग डग पै असमेध जग, यौं कहि श्री भगवान ॥१८९॥
 साधु दरस को जाइये, जेता धरिये पाँय ।
 डग डग पै असमेध जग, कहें कविर समुझाय ॥१९०॥
 साधु दरसन महाफल, कोटि जज्ञ फल लेह ।
 इक मंदिर को का पढ़ी, (सब)सहरपवित्र करिलेह ॥१९१॥
 साधु मिले मुख ऊपजे, साधु गये दुख होय ।
 ताते देही दूबली, नैनन दीन्हा रोय ॥१९२॥
 जाकी धोति अघर तपै, ऐसे मिले असंख ।
 सब रिपियन के देखतां, सुपच बजाया रघट ॥१९३॥
 साहिव का बाना सही, संतन पाहरा जानि ।
 पांडव जग पूरन भयो, सुपच विराजे आनि ॥१९४॥

१८८. जोरित सन्तों की महिमा के विषय में तो क्या कहना है मृत सन्त के बारे में भी एक कथा में ऐसा सुना जाता है कि उनके जलाये हुए शरीर के धूँए से चार भूतों का उद्धार हो गया ।

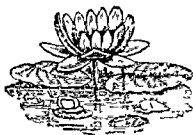
१. पा० जुरे । २. पा० सब ।

कुळवंता कोटिक मिले, पाडत कोटि पचीस ।
 सुपच भक्त की पनहि में, तुलै न काहू सीस ॥१९५॥
 हरि सेती हरिजन बड़े, जानै संत मुजान ।
 सेतु बांधि रघुवर चले, कूदि गये हनुमान ॥१९६॥
 ज्ञान ध्यान मन धनुष गदि, खँचन हार अलेख ।
 केते दुरिजन मारिया, (जब)आप कदी या भेखा ॥१९७॥
 साधु ऐसा चाहिये, जहाँ रहै तहाँ भैव ।
 बानी के विस्तार में, ताकू कोटिक ऐव ॥१९८॥
 सन्त मता गजराज का, चाले बंधन छोड़ ।
 जग कुत्ता पीलै फिरै, सुनै न बाका सोर ॥१९९॥
 आज काल दिन पांच में, बरस पंच जुग पंच ।
 जब तब साधू तारसी, और सकळ परपंच ॥२००॥
 सतगुरु केरा भावता, दूर हि ते दीसंत ।
 तन छीन मन उनमुनी, झूठा रूठ फिरंत ॥२०१॥
 ज्यों जल में मच्छी रहै, (यों) साहिव साधु माहि ।
 सब जग में साधू रहै, असमझ चीन्है नाहि ॥२०२॥
 सपझे घट कूं यूं बने, ये तो वात अगाथ ।
 सब ही सों निरवैरता, पूजन कीजै साध ॥२०३॥
 मिळता सेती मिलि रहै, विछरे सें बैराग ।
 साहिव सेती यों रहै, (ज्यों)विपन के गल ताग ॥२०४॥

१९८. गब=छिपेछिपाये । साधुको उचित है कि अधिक भाषण न करे; क्योंकि अधिक बातचीत से अनेक अनर्थ हो जाते हैं ।

हाजी कूं दुख बहुत हैं, नामी कृ दुख नाँहि ।
 कबीर हाजी है रहो, अपने ही दिल माँहि ॥२००॥
 सन्त कहि सो साधु कहि, वेद कही मति जान ।
 कहै कबीर एकै रही, ताने होत पिछान ॥२०६॥
 साधु ऐसा चाहिये, जाका पूरन मन ।
 विपति पड़े अहै नहीं, चढ़ै चौगुना रग ॥२०७॥
 कबीर साधु (को) दुरमति, ज्यौ पानी में छात ।
 पठ एकै विरजत रहे, पीछे इक है जात ॥२०८॥
 साधु ऐसा चाहिये, जामे लडन बतीस ।
 विरचाया विरचै नहीं, पाँव चढ़े दे सीम ॥२०९॥
 साधु मिले सचु पादया, साजुट मिलि हैं हानि ।
 बलिहारी वा दास की, पिये भेमरस छानि ॥२१०॥
 केता जिभ्या रस भखै, रती न लागै टक ।
 ज्ञानी माया मुक्ति ये, यो साधु निक्कक ॥२११॥
 काग साधु दरसन कियो, कागा ते भय हस ।
 कबीर साधु दरस ते, पाये उत्तम बंस ॥२१२॥
 हंस साधु दरसन कियो, हंसा ते भय कौर ।
 कबीर साधु दरस ते, पाये उत्तम ठौर ॥२१३॥
 कौर साधु दरसन कियो, पायो उत्तम मोष ।
 कबीर साधु दरस ते, मिटि गय तीनों दोष ॥२१४॥

कागा ते हंसा भयो, हंसा ते भयो कौर ।
 कवीर साधू दरस ते, भयो और को और ॥२१५॥
 हेत विना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कवीर जल औ संतजन, नवै तहाँ ठहराय ॥२१६॥
 संत होत है हेत के, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कहै कविर वे हेत चिन, गरज कहाँ पतिषाय ॥२१७॥
 दृष्टि मुष्टि आवै नही, रूप बरन पुनि नाँहि ।
 जो मनमें परतीत है, देखा संतन माँहि ॥२१८॥
 सदा मीन जल में रहै, कव अचवै है पानि ।
 ऐसी महिमा साधु की, पडे न काहू जानि ॥२१९॥
 मूर चढै संग्राम कूं, बाधे तरकस चार ।
 साधू जन माने नही, बांधे बहु हकार ॥२२०॥
 सेंट सेवा गुरु बंदगी, गुरु सुमिरन वैराग ।
 येता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग ॥२२१॥



भेष को अंग ।

कबीर भेष अतीत का, अधिक करै अपराध ।
 बाहिर दीसै साधु गति, अन्तर बड़ा असाध ॥ १ ॥
 कबीर बड़ तो एक है, परदा दीया भेष ।
 भ्रम करम सब दर कर, सब ही माँहि अलेख ॥ २ ॥
 तत्त्व तिलक तिहु लोके में, सत्तनाम निजसार ।
 जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अगम अपार ॥ ३ ॥
 तत्त्व तिलक की खानि है, महिमा है निजनाम ।
 अछै नाम वा तिलक को, रहै अछै विसराम ॥ ४ ॥
 तत्त्व तिलक माथे दिया, मुरति सरवनी कान ।
 करनी कंठी कंठ में, परसा पद निरवान ॥ ५ ॥
 तत्त्व हि फल मन तिलक है, अछै विरल फल चार ।
 अपर महातम जानि के, करी तिलक ततसार ॥ ६ ॥
 त्रिकुटी ही निजमूल है, भूकुटी मध्य निसान ।
 ब्रह्म दीप अस्थूल है, अगर तिलक निरवान ॥ ७ ॥
 अगर तिलक सिर सोहई, बैसाखी उनिहारि ।
 सोभा अविचल नाम की, देखो मुरति विचारि ॥ ८ ॥
 जैसि तिलक उनहार है, तस सोभा अस्थीर ।
 स्वप्न ललाटे सोहई, तत्व तिलक गंभीर ॥ ९ ॥

मध्य गुफा जई सुरति है, उपरि तिलक का धाम ।
 अमर समाधि लगावई, दीसै निरगुन नाम ॥१०॥
 द्वादस तिलक बनावहीं, अंग अंग अस्थान ।
 कई कबीर विराजहीं, ऊजल हस अमान ॥११॥
 ऊजल देखि न भरमिये, वक ज्यों लावै ध्यान ।
 कुटिल चाल करनी करै, सो मूरख अज्ञान ॥१२॥
 ऊजल देखि न धीजिये, वग ज्यों मांडै ध्यान ।
 घोरै बैठि चपेट सी, यों ले वूडै ज्ञान ॥१३॥
 चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस ।
 ते मुक्ता कैसे चुगै, पड़े काल के फंस ॥१४॥
 साधु भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार ।
 बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भंगार ॥१५॥
 जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान ।
 पहिले थाइ दिखाइ करि, औंढै देसी आन ॥१६॥
 मीठे बोल जु बोलिये, ताते साधु न जान ।
 पहिले स्वाँग दिखाय के, पीछे दीसै आन ॥१७॥
 बांशी कूटै वावरा, सरप न मारा जाय ।
 मूरख बांबी ना हसै, सरप सबन को खाय ॥१८॥
 माला तिलक लगाय के, भक्ति न आई हाथ- ।
 दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, चले दुनी के साथ ॥१९॥

दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, हूआ घोटम घोट ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जामें भरिया खोट ॥२०॥
 केसन कहा विगारिया, मुँडा सौ सौ बार ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जामें विषय विकार ॥२१॥
 मन मेवासी मूँडिये, केस हि मूँडे काहि ।
 जो कुछ किया सो मन किया, केस किया कछु नाहि ॥२२॥
 मूँड मुँडावत दिन गया, अजहु न मिलिया राम ।
 राम नाम कहो क्या करै, मन के औरै काम ॥२३॥
 मूँड मुँडाये हरि मिले, सब कोइ लेहि मुँडाय ।
 बार बार के मूँडने, भेड न वैकुंठ जाय ॥२४॥
 स्वाँग पहिरि सोहरा भया, दुनिया खाई खुंद ।
 जा सेरी साधु गया, सो तो राखी मूँद ॥२५॥
 भूला भसम रमाय के, मिटी न मन की चाइ ।
 जो सिक्का नहि साँच का, तबलग जोगी नाह ॥२६॥
 ऐसी ठाठों ठाठिये, वडूरि न यह तन होय ।
 ज्ञान गूदरी ओढिये, काहि न सकही कोय ॥२७॥

२२. मेवासी=लुटेरा, डाकू ।

२५. सेहरा=प्रसिद्ध । साधु का वेप बनानेवाले वेप के कारण संसार में प्रसिद्ध होकर आनन्द करने हैं; परन्तु महात्माओं के सच्चे रास्ते को ऐसे लोग लुप्त कर देते हैं ।

मन माला तन सुमरनी, हरिजी तिलक दियाय ।
 दुहाइ राजा राम की, दूजा दूरि कियाय ॥२८॥
 मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत ।
 राम भिला सब देखताँ, सो जोगी अवधूत ॥ २९ ॥
 माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत ।
 गांगी रोळै षहि गया, हरि सों किया न हेत ॥३०॥
 माला फेरै कलु नहीं, डारि मुआ गल भार ।
 ऊपर ढोळा हींगला, भीतर भरा भँगार ॥३१॥
 माला फेरै क्या भया, गाठि न हिय की खोय ।
 हरि चरना चित राखिये, तो अमरापुर जोय ॥३२॥
 माला फेरै कलु नहीं, काती मन के हाथ ।
 जबळग हरि परसै नहीं, तबलग थोथी बात ॥३३॥
 ज्ञान संपुरन ना विधा, हिरदा नहि भिदाय ।
 देखा देखी पकरिया, रंग नही ठहराय ॥३४॥
 बाना पहिरै सिंघ का, चले भेड की चाल ।
 बोली बोले सियार की, कुत्ता खावै फाल ॥ ३५ ॥
 भरम न भागै जीव का, बहुतक धरिया भेष ।
 सतगुरु मिलिया बाहिरै, अन्तर रहा अलेख ॥३६॥
 तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोय ।
 सहजै सत सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ३७ ॥

हम तो जागी मनहि के, तन के हे ते और ।
 मन को जोग लगावतों, दसा भई कटु और ॥ ३८ ॥
 पहिले वृद्धी पिरथवी, झूठे कुळ की लार ।
 अळख विसायों भेष में, वृद्धि काल की धार ॥ ३९ ॥
 चतुराई हरि ना मिलै, यह घातों की बात ।
 निर्मेही निरधार का, गाइक दीनानाथ ॥ ४० ॥
 जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
 मन काचे नाचे त्रिया, साचे राचे राम ॥ ४१ ॥
 हम जाना तुम मगन हो, रहै प्रेमरस पाग ।
 रंच (क) पौन के लागते, उठै ^२आग से जाग ॥ ४२ ॥
 सीतल जल पाताल का, साठि हाथ पर मख ।
 माला के परताप ते, ऊपर आया देख ॥ ४३ ॥
 करिये तो करि जानिये, सरिखा सेती संग ।
 झिर झिर जिमि लोई भई, तऊ न छादै रग ॥ ४४ ॥
 संसारी साकट भळा, कन्या कौरी भाष ।
 साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥ ४५ ॥
 वैरागी भिरकत भळा, गिरा पड़ा फळ खाय ।
 सरिता को पानी पिये, गिरही द्वार न जाय ॥ ४६ ॥

४३. जिस प्रकार कूने का साठ हाथ गहरा पानी रहट की माला के प्रताप में ऊपर चला आता है इसी प्रकार माला के प्रेमपूर्वक फेरने से गुप्त राम भी प्रकट हो जाता है ।

१ पा० राचे । २ पा० नाग से ।

गिरही द्वारै जाय के,	उदर सपाता लेय ।
पीछे लागे हरि फिरै,	जब चाहै तब देय ॥४७॥
सिप साखा संसार गति,	सेवक परतछ काल ।
वैरागी छावै मठी,	ताको मूल न डाल ॥४८॥
जो मानुष गृहि धर्म युत,	राखै सील विचार ।
गुरु मुख बानी साधु संग,	मन बच सेवा सार ॥४९॥
सेवक भाव सदा रहै,	बहम न आनै चित्त ।
निरनै लखी यथार्थ विधि,	साधुन को करै पित्त ॥५०॥
सच सील दाया सहित,	वरते जग व्यौहार ।
गुरु साधु का आश्रित,	दीन बचन उच्चार ॥५१॥
बहु संग्रह विषयान को,	चित्त न आवै ताहि ।
मधुकर इम सब जगत जिव,	घटि बढि लखि वरताहि ॥५२॥
गिरही सेवै साधु को,	साधु सुमरै नाम ।
यामें शोखा कछु नही,	सरै दोउ का काम ॥५३॥
गिरही सेवै साधु को,	भाव भक्ति आनन्द ।
कहै कविर वैरागि को,	निरवानी निरदुद ॥५४॥
सब्द विचारे पथ चले,	ज्ञान गली दे पौब ।
क्या रमता क्या बैठता,	क्या गृह कंदला छाँव ॥५५॥
जैसा मीठा घृत पकै,	तैसा फीका साग ।
रामनाम सौं राचहीं,	कहै कविर वैराग ॥५६॥

५६. जिनके लिये घी से बनी मिठाई और अलैना शाक दोनों बराबर है वे ही सच्चे वैरागी हैं । १ पा० समाना ।

पांच सात मुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय ।
 तब गुरु आज्ञा लेयके, रहे दिसंतर जाय ॥५७॥
 गुरु आज्ञा ते जो रमै, रमते तजे सरीर ।
 ताको मुक्ति हजूर है, सतगुरु कहै कवीर ॥५८॥
 गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दुख ।
 कहै कवीर ता दुख पर, बारों कोटिक सुख ॥५९॥
 सतगुरु अधम उधारना, दया सिंधु गुरु नाम ।
 गुरु बिन कोइ न तरि सकै, क्या जप अल्लह राम ॥६०॥
 माला पहिरै कौन गुन, मन दुविधा नहि जाय ।
 मन माला करि राखिये, गुरुचरनन चित लाय ॥६१॥
 मन का मस्तक मूंडि ले, काम क्रोध का केस ।
 जो पांचौ परमोधि ले, चेला सबही देस ॥६२॥
 माला तिलक बनाय के, धर्म विचारा नाँहि ।
 माल विचारी क्या करै, मैल रहा मन माँहि ॥६३॥
 माल बनाई काठ की, विच में डारा सूत ।
 माल विचारी क्या करै, फेरन हार कपूत ॥६४॥
 माल तिलक तो भेष है, राम भक्ति कलु और ।
 कहै कवीर जिन पहिरिया, पांचौ राखै ठौर ॥६५॥

५७. साधक को उचित है कि कुछ वर्षों तक अर्धावता और गरीबी से गुरु की सेवा करे। पश्चात् यदि देशभ्रमण की इच्छा हो अथवा प्रदेश में रहने की इच्छा हो तो गुरु की आज्ञा लेकर भागे या रहे।

माला तो मन की मली,	औ' ससारी भेष ।
धाला फेरे हरि मिले,	रहरइट के गल देख ॥६६॥
मन भैला तन ऊजला,	षगुला कपटी अंग ।
तासों तो कौआ भला,	तन मन एक हि रंग ॥६७॥
कवि तो कोटिन कोटि है,	सिर के मूंडे कोट ।
मन के मूंडे देख करि,	ता संग लीजे ओट ॥६८॥
भेष देखि मति भूलिये,	वृद्धि लीजिये ज्ञान ।
विना कसौठी होत नहीं,	कंचन की पहिचान ॥६९॥
फाली फूली गाटगी,	ओढि सिंघ की खाल ।
सांचा सिंघ जय आ मिले,	गाडर कौन हवाल ॥७०॥
पांचो में फूला फिरै,	साधु कहायै सोय ।
स्वान न मैले बाघरो,	बाघ वहां से होय ॥७१॥
वोली ठोली मसकरी,	हांसी खेल हराम ।
मद माया औ इस्तरी,	नहि असंनन के काम ॥७२॥
भांड भवाई खेचरी,	ये कुल जो बेवहार ।
दया गरीबी बंदगी,	संनन का उपकार ॥७३॥
दूध दूध सब एक है,	दूध आक थी होय ।
बाना देखि न बांदिये,	नैना पारखो सोय ॥७४॥

१ पा० माना पहिरे मन, मुखी, बाहिर के घट देख ।

२ पा० रहेंट । ३ पा० साधन ।

वाना देखी वंदिये, नहि करनी सों काम
 नीलकंठ कीहा चुभै, दरसन ही सों काम ॥७५॥
 कविर भेष भगवंत का, माला तिलक बनाय ।
 लनकूं आवत देखिके, उठिअर मिलिये राय ॥७६॥
 गिरही को चिंता धनी, वैरागी को भीख ।
 दोनों का रिच जीव है, देहु न सन्तो सीख ॥७७॥
 वैरागी बिरकल भला, गिरही चित्त उदार
 दोड चुकि खाली पदै, ताको वार न पार । ७८॥
 घर में रहे तो भक्ति करु, नातर करु वैराग ।
 वैरागी रंघन करै, ताका बड़ा अभाग ॥७९॥
 धारा तो दोनौ भली, गिरही कै वैराग ।
 गिरही दासातन करै, वैरागी अनुराम ॥८०॥
 अजर जु घान अतीतका, गिरही करै अहार ।
 निशै होई दरिद्री, कहै कुरीर विचार ॥८१॥

भीख को अंग ।

माँगन मरन समान है, मति कोइ मागो भीख ।
 माँगन त्रे मरना भला, यह मतगुरु की सीख ॥ १ ॥
 माँगन मरन रूपान है, सीख दई भै तोहि ।
 कहै कविर सतगुरु सुनो, मतिरे मँगाड मोहि ॥ २ ॥
 माँगन मरन समान है, तोहि दई में सीख ।
 कहै कविर ममुझाय के, मति कोइ मांगे भीख ॥ ३ ॥

माँगन गय सो पर रहे, परै जु माँगन जाँहि ।
 तिनते पहिले वे मरे, होत करत है नाँहि ॥ ४ ॥
 उदर समाता मांगि ले, ताको नाहीं दोष ।
 कहै कविर अधिका गहै, ताकी गति न मोष ॥ ५ ॥
 अजहं तेरा सब भिटे, जो मानै गुरु सीख ।
 जवलग तूं घर में रहै, मति कहूँ मांगै भीख ॥ ६ ॥
 उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर ।
 अधिक हि संग्रह ना करै, तिसका नाँव फकीर ॥ ७ ॥
 अन मांगा तो अति भला, माँगि लिया नहि दोष ।
 उदर समाता मांगि ले, निश्चै पावै मोष ॥ ८ ॥
 अन मांगा उत्तम कहा, मध्यम मांगि जु लेय ।
 कहै कविर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय ॥ ९ ॥
 सहज मिलै सो दूध है, मांगि मिलै सो पानि ।
 कहै कविर वह रक्त है, जामे ऐचातानि ॥ १० ॥
 आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह ।
 यह तीनों तवही गये, जवहि कहा कछु देह ॥ ११ ॥
 भीख तीन परकार की, सुनहु संत चित लाय ।
 दास कविर परगट कहै, भिन्न भिन्न अरथाय ॥ १२ ॥
 उत्तम भीख है अजगरी, सुनि लीजे निज बैन ।
 कहै कविर ताके गहै, महा परम सुख चैन ॥ १३ ॥
 भँवर भीख मध्यम कही, सुनो संत चित लाय ।
 कहै कविर ताके गहै, मध्यम माँहि समाय ॥ १४ ॥
 खर कृकर की भीख जो, निकृष्ट कहाये सोय ।
 कहै कविर इस भीख में, मुक्ति न कवहं होय ॥ १५ ॥

संगति को अंग ।



कबीर संगति साधु की,	नित प्रति कीजै जाय ।
दुरमति दूर बहावसी,	देसी सुमति श्वताय ॥ १ ॥
कबीर संगति साधु की,	कबहुं न निस्फल जाय ।
जो पै बौवै भृनि के,	फूले फलै अयाय ॥ २ ॥
कबीर संगति साधु की,	जौ की भूसी खाय ।
खीर खांट मोजन मिलै,	साकट संग न जाय ॥ ३ ॥
कबीर संगति साधु की,	ज्यों गधी का वास ।
जो कुछ गंधी दे नहीं,	तो मी वास सुवास ॥ ४ ॥
कबीर संगति साधु की,	निस्फल कमी न होय ।
होसी चंदन वासना,	नीम न कइसी कोय ॥ ५ ॥
कबीर संगति साधु की,	जो करि जानै कोय ।
सकल विरछ चंदन भये,	वांस म चंदन होय ॥ ६ ॥
कबीर चंदन संग से,	बेधे ^१ हाक पलास ।
आप सरीखा करि लिया,	^२ जो उदरा तिन पास ॥ ७ ॥
मलया गिरि के पेड़ सों,	सरप रहै लिपटाय ।
रोम रोम बिप भीनिया,	अमृत, कहा समाय ॥ ८ ॥

१. पा० इटाय । २. पा० आक । ३. जो होते उन पास ।

एक घड़ी आधी घड़ी,
 कबीर संगति साधु की,
 घड़ि ही की आधी घड़ी,
 सत संगति पल ही भली,
 जा पल दरसन साधु का,
 सत्तनाम रसना वसै,
 ते दिन गये अकारधी,
 प्रेम बिना पसु जीवना,
 जा घर गुरु की भक्ति नहि,
 ता घर जम डेरा दिया,
 रिद्धि सिद्धि मांगूं नहीं,
 नित प्रति दरसन साधु का,
 मेरा मन हंसा रमै,
 वगुला मन मानै नहीं,
 मेरा संगी दो जना,
 वे दाता है मुक्ति के,
 कबीर बन घन में फिरा,
 राम सरीखा जन मिलै,
 कबीर तासों संग कर,
 राजा राना छत्रपति,

आधी हूं सों आध ।
 कटै कोटि अपराध ॥ ९ ॥
 भाव भक्ति में जाय ।
 जमका धका न खाय ॥ १० ॥
 ता पल की बलिहार ।
 लीजै जनम सुधार ॥ ११ ॥
 संगति भई न संत ।
 भक्ति बिना भगवंत ॥ १२ ॥
 संत नही मिहमान ।
 जीवत भये मसान ॥ १३ ॥
 मांगूं तुम पै येह । १
 कहे कविर मुहि देह ॥ १४ ॥
 हंसा गगनि रहाय ।
 घर आंगुन फिर जाय ॥ १५ ॥
 इक वैस्नव इक राम ।
 वे सुमिरावै नाम ॥ १६ ॥
 हूँदि फिरा सब गाय ।
 तन पूरा है काम ॥ १७ ॥
 जो रे भजि है राम ।
 नाम बिना बेकाम ॥ १८ ॥

कवीर लहरि समुद्र की, कमी न निस्फल जाय ।
 धगुला परखि न जानई, हंसा चुगि चुगि स्वाय ॥१९॥
 कवीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय ।
 जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल पाय ॥ २० ॥
 कवीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय ।
 जाय मिले जब गंग में, सब गंगोदक होय ॥ २१ ॥
 कवीर बलह रु कल्पना, सतसंगति सें जाय ।
 दुख वासों भागा फिरै, मुख में रहै सपाय ॥२२॥
 संगति कीजै संत की, जिनका पूरा मन ।
 अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धन ॥२३॥
 साधु संग अन्तर पढे, यह मति कबहूँ होय ।
 कहै कविर तिहु लोक में, सुखी न देखा कोय ॥२४॥
 मथुरा कासी द्वारिका, हरिद्वार जगनाथ ।
 साधु संगति हरिभजन बिन, कष्ट न आवै हाथ ॥२५॥
 साखि सन्द बहुते गुना, मिटा न मनका दाग ।
 संगति सो सुधरा नहीं, ताका बडा अभाग ॥२६॥
 साधुन के सतसंग ते, धर धर कांपै देह ।
 कबहूँ भाव कुभाव ते, भत मिटि जाय सनेह ॥२७॥
 राम बुलावा मेजिया, दिया कवीरा रोय ।
 जो सुख साधु संग में, सो वैकुण्ठ न होय ॥२८॥

राम राम रटिबो करै, निसदिन माधुन संग ।
 कहो जु कौन विचारतै, (नहि) नैना लागत रंग ॥२९॥
 मन दीया कहूँ ओर ही, तन साधुन के संग ।
 कहै कबिर कोरी गजी, कैसे लागे रंग ॥३०॥
 भुवँगम वास न वेधई, चंदन दोप न लाय ।
 सब अंग तो विष सों भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३१॥
 चंदन परसा वावना, विष ना तजै भुजंग ।
 यह चाई गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३२॥
 कबीर चंदन के निकट, नीम भि चंदन होय ।
 बूढ़े वांस बढाइया, यौ जनि बूढो कोय ॥३३॥
 चंदन जैसे संत हैं, सरप जैस संसार ।
 वाके अंग लपटा रहै, भागै नहीं विकार ॥३४॥
 चंदन डर लहसुन करै, भति रे त्रिगारै वास ।
 सुगुरा निगुरा सों डरै, जग से डरपै दास ॥३५॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय ।
 कदली सीप भुजंग मुख, एक बुद तिर भाय ॥३६॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, जाका नाँव न आव ।
 ते क्यों होसी वापरा, साध नहीं जिहि गाँव ॥३७॥
 करीर गुरु के देस में, बसि जानै जो कोय ।
 कागा ते हसा वनै, जाबि बरन कुल खोय ॥३८॥

कवैर कहते क्यों बने, अन बनता के संग ।
 दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥३९॥
 ऊजल बुंद अकास की, पहि गइ भूमि बिकार ।
 पाटी मिलि भइ कीच सो, बिन संगति भौ छार ॥४०॥
 हरिजन सेती रूठना, संसारी सों हेत ।
 ने नर फवहु न नीपजे, ज्यों कालर का खेत ॥४१॥
 गिरिये परवत सिखर ते, परिये घरनि मँझार ।
 मूरख मित्र न कीजिये, बूढ़ो काली धार ॥४२॥
 मूरख को समझावते, ज्ञान गांठि फा जाय ।
 कोयला होय न ऊजल, सो मन साधुन छाये ॥४३॥
 कोयला भि होय ऊजल, जरि धरि है जो सेत ।
 मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत ॥४४॥
 संगति अधम असाधु की, भीच होय ततकाल ।
 कहैं कविर सुन साधया, वानी ब्रह्म रसाल ॥४५॥
 मेर निसानी भीच की, कूसंगति ही काल ।
 कहैं कविर सुन मानिया, वानी ब्रह्म संभाल ॥४६॥
 ऊंचे कुल कह जनमिया, (जो) करनी ऊंच न होय ।
 कनक कलस मद सों भरा, साधुन निंदा सोय ॥४७॥

४१. कालर=एक प्रकार का घास । यह घास जिस खेत में बढ़ता है उसमें दूसरी चीज नहीं हो सकती । ४६. मेर=सीमा ।

जानि बृद्धि सौँची तजै,	करै झूठ सों नेह ।
ताकी संगति रामजी,	सपने हूँ मति देह ॥४८॥
काचा सेती पति मिलै,	पाका सेती घान ।
काचा सेती मिलत ही,	है तन धन की हान ॥४९॥
तोहि पीर जो भेम की,	पाका सेती खेळ ।
काची सरसों पेलि के,	खरी भया नहि तेळ ॥५०॥
कुल दूटै कांची पड़ी,	सरा न एकौ काम ।
चौरासी वासा भया,	दूर पडा हरिनाम ॥५१॥
दाग जु लागा नीळ का,	सौँ मन साखुन धोय ।
कोटि जतन परमोधिये,	कागा हंस न होय ॥५२॥
जग सों आपा राखिये,	ज्यों विपहर सो अंग ।
करो दया जो खूब है,	बुरा खलक का संग ॥५३॥
जीवन जोवन राजमद,	अविचल रहै न कोय ।
जु दिन जाय सतसंग में,	जीवन का फल सोय ॥५४॥
ब्राम्हन केरी बेटिया,	मांस शराब न खाय ।
संगति भई कलाल की,	मद विन रहा न जाय ॥५५॥
साखि सब्द बहुत हि सुना,	मिठा न मनका मोह ।
पारस तक पहुँचा नहीं,	रहा लोह का लोह ॥५६॥

५३. कुसर्गी लोगों की संगति से अपने आपको ऐसे बचना चाहिये जिस तरह साप से अपने शरीर को बचाते हैं ।

माखी चंदन परिहरे, जहँ रस मिळितहँ जाय ।
 पापी छुनै न हरि कथा, ऊँचे कै उठि जाय ॥५७॥
 पुरब जनम के माग से, मिले संत का जोग ।
 कहँ कविर समुझै नहीं, फिर फिर चाहै भोग ॥५८॥
 जहाँ जैसी संगति करै, तहँ तैसा फल पाय ।
 हरि मारग तो कठिन है, क्यों करि पैठा जाय ॥५९॥
 ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट ।
 ज्ञानी अज्ञानी मिल, होवै माबा कूट ॥६०॥
 सज्जन सों सज्जन मिले, होवे दो दो बात ।
 गदहा सों गदहा मिले, खावे दो दो जात ॥६१॥
 मै मांगू यह मांगना, मोहि दीजिये सोय ।
 संत समागम हरिकथा, हमरे निसदिन होय ॥६२॥
 कंचन भौ पारस परसि, बहुरि न लोहा होय ।
 चंदन वास पलास विधि, टाक कहै नहि कोय ॥६३॥
 पहिले पद पास बिना, बीचे पड़े न भात ।
 पास बिन छागे नहीं, कुसुम विगारै साथ ॥६४॥

६४. कपडे को कुसुमिया और समुद्रलहर बनाने के लिये पहले उसे खूम किया जाता है । पश्चात् सल पाड कर उसे डेरों से बाधा जाता है । इसके बाद कुसुम का पास बनाकर उससे कपडे को रगते हैं ।

बीचे पडे न भात-समुद्रलहर की शोभा नहीं आती । पास बिना-पास चढाये निना ।

कबीर सतगुरु सेविये,	कहा साधु को संग ।
बिन वगुरे भिगोय बिना,	कोरै चढ़ै न रंग ॥ ६५ ॥
कबीर विपधर बहु मिले,	मनिधर मिला न कोय ।
विपधर को मनिधर मिले,	विपधर अमृत होय ॥ ६६ ॥
भीति करी सुख लेन को,	सो सुख गयो हिराय ।
जैसे पाइ छडुंदरी,	पकड़ि साप पछिताय ॥ ६७ ॥
जो छोडै तों आंधरा,	खाये तो मरि जाय ।
ऐसे खंध छडुंदरी,	दोउ भांति पछिताय ॥ ६८ ॥
साप छडुंदर दौयकूं,	नौला नीगल जाय ।
वाकूं विप वेडै नहीं,	जदी भरोसे खाय ॥ ६९ ॥
कूसंगति लागे नहीं,	सद्ध सजीवन हाथ ।
वाजीगर का बालका,	सोवै सरपकि साय ॥ ७० ॥
पानी निरपल अति घना,	पल संगे पल भंग ।
ते नर निस्फळ जायंगे,	करै नीचको संग ॥ ७१ ॥
निगुन गांव न वासिये,	सब गुन को गुन जाय ।
चंदन पडिया चौक में,	ईधन बढेले जाय ॥ ७२ ॥

६५. कहा-साधु का संग करना कहा है । विनु वगुरे भिगोय बिना-कपडे को खून भिगो कर धोये बिना ।

६६. मणिधारी सर्प की मणि में यह गुण होता है कि सर्प के काट लेने पर सर्पमणि को लगा देने से वह विप को खींच लेती है । पश्चात् उसे दूध में डाल देने से दूध अमृत के समान गुणकारी हो जाता है । कौडी को वह दूध यदि पिला दिया जाय तो उसका कौड दूर हो जाता है । ६८. खंध-खाकर ।

संगति को बैरी घनो, सुनो संत इक बैन ।
 येही काजल कोठरी, येही काजल नैन ॥७३॥
 साधू संगति परिहरै, करै विषय को संग ।
 कृप खनी जल वावरे, त्यागि दिया जल गंग ॥७४॥
 अन मिलता सों संग करि, कहा विगोयो आप ।
 सत्त कविर यों कहत है, ताहि पुरषको पाप ॥ ७५ ॥
 लकड़ी जल दूबै नहीं, कहो कहां की प्रीति ।
 अपना सींचो जानि के, यही वदन की रीति ॥७६॥
 मैं सींचो हित जानि के, कठिन भयो है काठ ।
 ओछी संगति नीचकी, सिर पर पाड़ी वाट ॥७७॥
 साधू सद्ग सुलच्छना, गांधी हाट वनेह ।
 जो जो मांगे प्रीति सों, सो सो कौड़ी देह ॥ ७८ ॥

७३. काजल यदि नेत्रों में लगता है तो उसकी शोभा और स्थिरता रहती है । और वह यदि कोठरी में समा जाता है तो उसे चूने से मिटा देते हैं। यह योग्य और अयोग्यकी संगतिका फल है । ७५. विगोयो-बिगाड़ा.

७६. यह जल की उदारता है कि वह काठ को (नाव को) यह समझकर नहीं डुबाता कि इसको मैंने सींचकर बड़ा किया है । यह बड़े पुरुषों की महत्ता है ।

७७. जल के इस प्रकार उदारता दिखलाने, पर भी काठ अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । वह सदैव उसके सिर पर चढा रहता है और जल के ऊपर से ही अपना आना जाना जारी रखता है । यही नीचों की नीचता है ।

तरुवर जड़ से काटिया,	जधे सम्हारो ज्हाज ।
तारै पन धोरै नहीं,	बाँह गहै की लाज ॥ ७९ ॥
साधु संगति गुरुभक्ति जु,	निष्कल कबहुँ न जाय ।
चंदन पास है रुखडा,	(सो)कबहुँक चंदन भाय ॥८०॥
संत सुरसरी गंगजल,	आनि पखारा अंग ।
मैले से निरमल भये,	साधू जन के संग ॥८१॥
चर्चा करु तब चौहटे,	ज्ञान करो तब द्योय ।
ध्यान धरो तब एकिला,	और न दूजा कोय ॥८२॥
संगति कीजै साधु की,	दिन दिन होवै हेत ।
साकुट काली कामली,	धोते होय न सेत ॥८३॥
साधु संगति गुरु भक्ति रु,	बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
ओछी संगति खर सव्द रु,	घटत घटत घटि जाय ॥८४॥
संगति ऐसी कीजिये,	सरसा नर सों संग ।
लर लर लोई होत है,	तऊ न छोडै रंग ॥८५॥
सब संगति सब सों बढ़ी,	बिन संगति सब ओस ।
सत संगति परमानता,	कटै करम की दोस ॥८६॥

८०. भाप—झे जाता है ।

८४. साधुसंगति गुरुभक्ति के समान दिन२ बढ़ती ही जाती है ।
और कुसंगति गदहे की रेंकन (आवाज) के समान धीरे२ घटती ही जाती है ।

साद्विद दरसन कारनै, निस दिन फिरुं उदास ।
 साधू संगति सोधि ले, नाम रहे उन पास ॥८७॥
 तेळ तिली सां ऊपरै, सदा नेळ को तेल ।
 संगति को बेरो भयो, ताते नाम फुलेल ॥८८॥
 हरिजन केवल होत हैं, जाको हरि का संग ।
 विपति पदै विसरै नहीं, चदै औगुना रंग ॥८९॥



सेवक को अंग ।

सेवक सेवा में रहे, अन्त कहूं नहि जाय ।
 दुख सुख सिर ऊपर सदै, कहैं कविर समुदाय ॥१॥
 सेवक सेवा में रहे, सेवक कहिये सोय ।
 कहैं कविर सेवा विना, सेवक कमी न होय । ॥२॥
 सेवक मुखै कहावई, सेवा में दृढ नाँहि ।
 कहैं कविर सो सेवका, लख चौरासी माँहि ॥३॥
 सेवक सेवा में रहे, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर कृसेवका, सनमुख ना ठहरात ॥४॥
 सेवक फल मांगै नहीं, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर ता दास पर, काल करै नहि घात ॥५॥

सेवक स्वामी । एक मत, मत में मत मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥६॥
 सेवक कुत्ता रामका, मुतिया वाका नाँव ।
 डोरी छागी प्रेम की, जित खँचै तित जाँव ॥ ७ ॥
 वृ वृ करु तो निकट है, दुर दुर करु तो जाय ।
 ज्यों गुरु राखै त्यों रहै, जो देखै सो खाय ॥ ८ ॥
 फल कारन सेवा करै, निसदिन जाँचै राम ।
 कहै कविर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥ ९ ॥
 सब कछु गुरु के पास दे, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सोंप्या रहै, रहै चरन में लाग ॥१०॥
 सतगुरु सद्र उलंघि कर, जो सेवक कहुँ जाय ।
 जहाँ जाय तहँ काल है, कहै कविर समुझाय ॥११॥
 सतगुरु बरजै सिप करै, क्यों करि वाचै काल ।
 दहुँ दिसि देखत वहि गया, पानी फूटी पाल ॥१२॥
 सतगुरु कहि जो सिप करै, सब कारज सिध होय ।
 अमर अभय पद पाइये, काल न झाँकै कोय ॥१३॥

१०. मन सोंप्या रहै—अपना मन अर्पण कर दे ।

१२. पाल—तालाब का बाध । जिस प्रकार पाल के फूटने से पानी कानू से बाहर हो जाता है । इसी प्रकार गुरु की आज्ञा का भंग करनेवाला शिष्य संसार में बह जाता है । शुक्राचार्य ने अल्लियाजा को घामन को दान देने से रोका था, परन्तु उसने गुरु की आज्ञा नहीं मानी, इसलिये उसे पाताल में जाना पड़ा ।

साहिब को भावे नहीं, सो ह्मसों जनि होय ।
 सतगुरु लाजै अपना, साधु न मानै कोय ॥१४॥
 साहिब जासों ना रुचै,
 सो ह्मसों जनि होय ।
 गुरु की आज्ञा में रहूँ,
 बल बुधि आपा खोय ॥१५॥
 साहिब के दरबार में,
 कमी काहु की नाँहि ।
 बंदा मौज न पावहीं,
 चूक चाकरी माँहि ॥ १६ ॥
 द्वार धनी के पड़ि रहै,
 धका धनी का खाय ।
 कबहुक धनी निवाजिहै,
 जो दर छाँडि न जाय ॥१७॥
 आस करै वैकुण्ठ की,
 दुरमति तीनों काल ।
 मुक कही वलि ना करी,
 ताते गयो पताल ॥ १८ ॥
 गुरु आज्ञा मानै नहीं,
 चलै अटपटी चाल ।
 लोक वेद दोनों गये,
 आगे सिर पर काल ॥१९॥
 भुक्ति मुक्ति माँगों नहीं,
 भक्ति दान दे मोहि ।
 और कोइ जाँचों नहीं,
 निसदिन जाँचों तोहि ॥२०॥
 भोग मोक्ष माँगों नहीं,
 भक्ति दान गुरुदेव ।
 और नहीं कह्य चाहिये,
 निसदिन तेरी सेव ॥२१॥
 यह मन ताको दीजिये,
 साँचा सेवक होय ।
 सिर ऊपर आरा सहै,
 तऊ न दूजा होय ॥२२॥
 अन राते मुख सोवना,
 राते निंद न आय ।
 ज्यों जल छूटी माछरी,
 तलफत रैन विशाय ॥२३॥

२२. आरा—करवन । २३. अनराते—जिनका किमीसे प्रेम नहीं है ।

राता राता सब कहै, अनगता नहि कोय ।
 राता सोई जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
 राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय ।
 जो राता गुरु नाम सों, ता तन रक्त न होय ॥२५॥
 सीलवंत सुर ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
 लजावान अति निछलता, कोपल हिरदा सोय ॥२६॥
 दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
 सन्तोषी मुख दायका, सेवक परम मुजान ॥२७॥
 चतुर विपेकी धीर मत, छिमावान बुधिवान ।
 आझावान् परमत लिया, मुदित प्रफुल्लित जान ॥२८॥
 ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहूँ सो हेत ।
 सत्यवान परमारधी, आदर भाव सहेत ॥२९॥
 पट्ट दरसन को प्रेम करि, असन बसन सों पोष ।
 सेव करै हरिजनन की, हरपित परम सँतोष ॥३०॥
 यह सब लच्छन चित धरै, अप लच्छन सब त्याग
 सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग ॥३१॥
 गुरु मुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग ।
 कहै कविर विसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥३२॥

२७. धरमकध्वजा धर्म को प्रकट करने के लिये ध्वजा के समान ।

३०. पट्टदर्शन—जोगी, जगम सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश; और
 भाक्षण । असन—भोजन । बसन—कपड़ा ।

गुरु मुख गुरु चितवत रहें, जैसे साह दिवान ।
 और कभी नहि देखता, है बाही को ध्यान ॥३३॥
 गुरुमुख गुरु आज्ञा चळै, छाडि देइ सब काम ।
 कहै कविर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३४॥
 उलटे मुलटे वचन के, सीप न मानै दूख ।
 कहै कविर संसार में, सो कहिये गुरुमुख ॥ ३५ ॥
 सुरति मुहागिन सोइ सहि, जो गुरु आज्ञा मॉदि ।
 गुरु आज्ञा जो भेटहीं, तामु कुसल है नाँहि ॥ ३६ ॥
 गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय ।
 कहै कविर सो सन्त प्रिय, बहु विधि अमृत पाय ॥३७॥
 कहै कविर गुरु प्रेम बस, क्या नियरै क्या दूर ।
 जाका चित जासों बसै, सो तिहि सदा इजूर ॥३८॥
 कबीर गुरु औ साधु कृं, सीस नवानै जाय ।
 कहै कविर सो सेवका, महा परम पद पाय ॥ ३९ ॥

दासातन को अंग ।

गुरु समरथ सिर पर खडे, कहा कवि तोहि दास ।
 रिद्धि सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छाडै पास ॥ १ ॥
 दुख मुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छाडै मंग ।
 रंग न लागै और का, व्यापै सतगुरु रंग ॥ २ ॥

धूम धाम सहता रहै, कवहु न छाडै संग ।
 पाहा विन लागे नहीं, कपड़ा के बहु रंग ॥ ३ ॥
 कवीर गुरु सब को चहै, गुरु को चहै न कोय ।
 जब लग आस सरीर की, तबलग दास न होय ॥ ४ ॥
 कवीर गुरु के भावते, दूर हि ते दीसत ।
 तन छीना मन अनमना, जग ते खठि फिरत ॥ ५ ॥
 कवीर खालिक जागिया, और न जागै कोय ।
 कै जागै विषया भरा, दास बंदगी जोय ॥ ६ ॥
 कवीर पांचौ बलधिया, ऊजड़ ऊजड़ जाँहि ।
 बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै बाँहि ॥ ७ ॥
 काजर केरी कोठरी, ऐसो यह संसार ।
 बलिहारी वा दास की, पेटि निकसन हार ॥ ८ ॥
 काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट ।
 बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥ ९ ॥
 निरबंधन बंधा रहै, बधा निरबंध होय ।
 करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ १० ॥
 दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास ।
 पानी के पीये विना, कैसे मिटै पियास ॥ ११ ॥

३. पाहा—कपड़ोंको मही चंदानां । ५. गुरु के भावते—गुरु प्रेमी । अनमना—उदास । ६. खालिक—मालिक साहब । ७. पा बलधिया—यंचज्ञानेन्द्रिया ।

दासातन हिरदे घसै,	साधुन सों आधीन ।
कहैं कबिर सो दास है,	मेम भक्ति लौ लीन ॥१२॥
नाम धराया दास का,	मन में नार्हीं दीन ।
कहैं कबिर सो स्वान गति,	और हि के लौलीन ॥१३॥
नाम धरावै दास को,	दासातन में लीन ।
कहैं कबिर लौलीन विन,	स्वान बुद्धि कहि दीन ॥१४॥
स्वामी होना सोहरा,	दुहरा होना दास ।
गाडर आनी ऊनको,	वांधी चरै कपास ॥१५॥
दास दुखी तो हरि दुखी,	आदि अंत तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगट है,	छिन में करूं निहाल ॥१६॥
दास दुखी तो मैं दुखी,	आदि अंत तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगटि के,	छिन में करै निहाल ॥१७॥
कबीर कुल सो ही भला,	जा कुल उपजै दास ।
जा कुल दास न ऊपजै,	सो कुल आक पलास ॥१८॥
भली भई जो भय मिटा,	टूटी कुल की लाज ।
वेपरवाही है रहा,	वैठा नाम जहान ॥१९॥

१९. सोहरा-सहल । दुहरा—मुदिकल । गाडर-भेड ।

स्वामी बनना सहज है परंतु दास होना कठिन है । स्वामी में अहंता और दास में उसका अभाव होता है । जो स्वामी (गुरु) तो बन जाते हैं; परन्तु अहंकार नहीं त्यागते उनको लाभ के बदले इस प्रकार हानि उठाना पड़ता है जिस तरह ऊन के लिये लाई हुई भेड कपास खा जाती है और उसके मालिक को पड़ताना पड़ता है ।

कविर भये हैं केतकी, भँवर भये सब दास ।
 जहँ जहँ भक्ति कवीर की, तहँ तहँ मुक्ति निवास ॥२०॥
 दास कहावन कठिन हैं, मैं दासनका दास ।
 अब तो ऐसा हूँ रहूँ, पाँव तले की वास ॥२१॥
 काहूँ को न सँतापिये, जो सिरहंता सोय ।
 फिर फिर वाकूँ बंदिये, दास लच्छ ई सोय ॥२२॥
 लगा रहै सतनाम सों, सब ही बंधन तोड़ ।
 कहै कविर वा दास सों, काल रहै हथ जोट ॥२३॥
 दास, कहावन कठिन है, जवलग दूजी आन ।
 हांसी साहिव जो मिलै, कौन सहै खुरसान ॥२४॥
 डग डग पै जो डर करै, नित घुमिरै गुरुदेव ।
 कहै कविर वा दास की, साहिव मानै सेव ॥२५॥
 निहकामी निरमल दसा, नित चरनों की आस ।
 तीरथ इच्छा ता करै, कब आवै वे दास ॥२६॥
 चंदन डरपै सरप सों, मति रे विगाड़ै वास ।
 सरगुन डरपै निगुन सों, (यौ) जगसँ डरपै दास ॥२७॥

भक्ति का अंग ।



भक्ति , द्राविड़ ऊपजी, लखे रामानंद . ।
 परगट करी कधीर ने, सात दीप नव खड ॥ १ ॥
 भक्ति भाव भादौ नदी, सब हि चली घहराय ।
 सरिवा सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय ॥ २ ॥
 भक्ति भान सों होठ है, मन दे कीजै भाव ।
 परमारथ परतीति में, यह तन जाये जाव ॥ ३ ॥
 भक्ति बीज बिनसै नही, आय पढ़े जो झोल ।
 कंचन जो विष्ठा पढ़ै, घटै न ताको मोल ॥ ४ ॥
 भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत ।
 ऊंच नीच घर औतरे, होय संत का संत ॥ ५ ॥
 भक्ति कठिन अती दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय ।
 भक्ति जु न्यारी भेष सें, यह जानै सय कोय ॥ ६ ॥
 भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
 भक्त लीन गुरु चरन पैं, भेष जगत की आस ॥ ७ ॥
 भक्ति रूप भगवंत का, भेष आहि कस्यु और ।
 भक्त रूप भगवंत है, भेष जु मन की दौर ॥ ८ ॥

३. मन-टेक । ४. झोल-शमेथ आपत्ति । १० दुहेली-कठिन ।

१. १० मन ।

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होय सहाय ।
 प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥ ९ ॥
 भक्ति दुहीली गुरुन की, नहि कायर का काम ।
 सीस उतारै हाथ सों, ताहि मिलै सतनाम ॥ १० ॥
 भक्ति दुहीली राम की, नहि कायर का काम ।
 निस्पेही निरधार को, आठ पहर संग्राम ॥ ११ ॥
 भक्ति दुहीली नाम की, जस खांडे की धार ।
 जो डोलै सो कटि पडै, निहचल उतरै पार ॥ १२ ॥
 भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की, चढ़े भक्त हरपाय ।
 और न कोई चढ़ि सकै, निज मन समझौ आय ॥ १३ ॥
 भक्ति निसैनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय ।
 जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥ १४ ॥
 भक्ति विना नहि निसतरै, लाख करै जो कोय ।
 सद्ग सनेही है रहै, घर को पहुंचै सोय ॥ १५ ॥
 भक्ति दुवारा सांकरा, राई दसवैं भाय ।
 मन तो पैगल है रहा, कैसे आवै जाय ॥ १६ ॥
 भक्ति दुवारा मोकला, सुभिरी सुभिरि समाय ।
 मन को तो मैदा किया, निरमय आवै जाय ॥ १७ ॥
 भक्ति सोइ जो भाव सों, इक मन चित को राख ।
 सोच सीळ सों खेलिये, भै तैं दोऊ नाख ॥ १८ ॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ ले जाय ।
 कहै कबिर कछु भेद नहीं, कदा रंक कह राय ॥१९॥
 भक्ति सरव ही ऊपरै, भागिन पावै सोय ।
 कहै पुकारै संत जन, सत सुमिरत सब कोय ॥२०॥
 भक्ति विनावै नाम विन, भेष विना ये होय ।
 भक्ति भेष षडु अन्तरा, जानै बिरला कोय ॥२१॥
 कबीर गुरु की भक्ति करु, तज विषया रस चौज ।
 वार वार नहि पाइये, मनुष जनम की मौज ॥२२॥
 कबीर गुरु की भक्ति विन, धिक् जीवन संसार ।
 धूवा का धौराहरा, विनसत लगे न वार ॥२३॥
 कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
 मन मनसा मानै नहीं, होन चहत है दास ॥२४॥
 कबीर गुरु की भक्ति से, संसै हारा धोय ।
 भक्ति विना जो दिन गया, सो दिन साले मोय ॥२५॥
 जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय ।
 नाता तोड़ै गुरु भजै, भक्त कहावे सोय ॥२६॥
 छिमा खेत भल जोतिये, सुमरिन बीज जमाय ।
 खंड नहंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहि जाय ॥२७॥

२२. चौज-चाढ़, इच्छा । मौज-आनन्द । २३. धौराहरा-मीनार, स्तूप ।

१. पा० भीसागर भागे नहीं, सोच विचारो माय । २. विधा ।

जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम ।
 माता प्यारा बालका, भक्ति प्यारी राम ॥२८॥
 प्रेम बिना जो भक्ति हैं, सो निज दंभ विचार ।
 उदर भरन के कारनै, जनम गंवायो सार ॥२९॥
 भाग बिना नहि पाइये, प्रेम प्रीति का भक्त ।
 बिना प्रेम नहि भक्ति कछु, भक्त भयो सब जक्त ॥३०॥
 जहाँ भक्ति तहँ भेष नहि, वरनाश्रम तहाँ नाँहि ।
 नाम भक्ति जो प्रेम सों, सो दुरलभ जग मौहि ॥३१॥
 भाव बिना नहि भक्ति जग, भक्ति बिना नहि भाव ।
 भक्ति भाव एक रूप है, दोऊ एक सुभाव ॥३२॥
 गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खांडे को धार ।
 बिना सांच पहुँचै नहीं, महा कठिन व्यवहार ॥३३॥
 कापी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय ।
 भक्ति करै कोइ सुरमा, जाति वरन कुल खोय ॥३४॥
 जाति वरन कुल खोय के, भक्ति करै चित लाय ।
 कहै कविर सतगुरु मिलै, आवागवन नसाय ॥३५॥
 जब लग भक्ति सकाम है, तबलग निष्फल सेव ।
 कहै कविर वह क्यों मिलै, निहकामी निज देव ॥३६॥

३१. भक्ति के लिये किसी वेप के बनाने की आवश्यकता नहीं है ।
 और न किसी वर्ण और आश्रम की है । भाव यह है कि सत्र वर्ण
 और आश्रम के तथा बिना वेप बनायें भी भक्ति हो सकती है ।

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज ।
 सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥३७॥
 मन की मनसा पिटि गई, दुरमति भइ सब दूर ।
 जन मन प्यारा राम का, नगर वसै भरपूर ॥३८॥
 मेवासा मोहै किया, दुरिजन काढे दूर ।
 राज पियारे राम का, नगर वसै भरपूर ॥३९॥
 आरत है गुरु भक्ति करु, सब कारज सिध होय ।
 करम जाळ भौजाल में, भक्त फसी नहि कोय ॥४०॥
 आरत सों गुरुभक्ति करु, सब सिध कारज होय ।
 कृपा मांग्या राछ है, सदा न फवसी कोय ॥४१॥
 सब सों कहूँ पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
 भक्ति ठानि सबै गई, बहुरि न काछै भेष ॥४२॥
 देखा देखी भक्ति का, कबहु न चढ़सी रंग ।
 बिपति पढ़ै यौ छांडसी, केचुळी तजत भुजंग ॥४३॥
 देखा देखी पकड़िया, गई छिनक में छुट ।
 कोइ विरला जन वाहुरै, जाकी गहरी मूढ ॥४४॥

३७. भक्ति में आई हुई अनेक बाधाओं के कारण भक्त सदा मृत्यु के मुख में ही रहता है ।

३९. मेवासा-ममता । मोहै किया-दवा लिया । ४०. आरत है-पीडित होकर, दुःखी होकर । ४१. राछि-बरेतन । फवसी शोभा देगा । ४२. बहुरि न काछै भेष-फिर नाना शरीरों में आना नहीं होगा । ४४. वाहुरै-लोट खाता है ।

तोटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत ।
 मायाधारी मसखरै, केते गये अऊत ॥४५॥
 ज्ञान संपूरन ना भिदा, हिरदा नाँहि जुड़ाय ।
 देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥४६॥
 खेत बिगायों खरतुआ, सभा बिगारी कूर ।
 भक्ति बिगारी लाकची, ष्यों केसर में धूर ॥४७॥
 तिमिर गया रवि देखते, कुमति गई गुरुज्ञान ।
 छुमति गई अति लोभसे, भक्ति गई अभिमान ॥४८॥
 निर्पक्षी की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान ।
 निरदुंदी की मुक्ति है, निर्लोभी निरवान ॥४९॥
 विषय त्याग वैराग है, समता कहिये ज्ञान ।
 सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान ॥५०॥
 विषय त्याग वैराग रत, समता हिये समाय ।
 मित्र सधु एकौ नहीं, मन में राम वस्तय ॥५१॥
 जब लगि आसा देह की, तब लगि भक्ति न होय ।
 आसा त्यागी हरि भजे, भक्त कहावै सोय ॥५२॥
 चार चिन्ह हरि भक्ति के, प्रगट दिखाई देत ।
 दया धर्म आधीनता, परदुख को हरि लेत ॥५३॥

४५. अऊत—निर्वश । ४७. खरतुआ—एक प्रकार का घास जो बढ़कर खेत को नष्ट कर देता है ।

और कर्म सब कर्म हैं, भक्ति कर्म निहकर्म ।
 कहैं कवीर पुकारि के, भक्ति करो तजि मर्म ॥५४॥
 भक्ति भक्ति सब कोइ कहैं, भक्ति न आई काज ।
 जिहि को कियो भरोसवा, तिहि ते भाई गाज ॥५५॥
 इन्द्र राज मुख भोगकर, फिर भौसागर माँहि ।
 यह सिरगुन की भक्ति है, निर्भय कबहुँ नाँहि ॥५६॥
 भक्त आप भगवान है, जानत नाहि अयान ।
 सीस नवावै साधु कूँ, बूझि करै अभिमान ॥५७॥
 सत्त भक्ति तरवार है, बांधे विरळा कोय ।
 कोइ एक बांधे सूरमा, तन मन डारै खोय ॥५८॥
 भक्ति महल बहु ऊंच है, दूर हि ते दरसाय ।
 जो कोइ जन भक्ति करै, सोमा वरनि न जाय ॥५९॥
 भक्तन की यह रीत है, बँधे करै जो भाव ।
 परमारथ के कारनै, या तन रहो कि जाव ॥६०॥
 भक्ति भक्ति बहु कठिन है, रती न चाले खोट ।
 निराधार का खेल है, अघर धार की चोट ॥६१॥

५५. गाज=गर्जना, फटकार ।

५७. उच्चर्यगालों के हृदय में अपनी उच्चता का ऐसा अहंकार रहता है कि वे बिना जाति पूछे किसी भक्त (साधु) को प्रणाम तक नहीं करते, यह उनकी धारणा नितान्त ही अनुपयुक्त है, क्योंकि भक्त में और भगवान में किसी प्रकार का भेद नहीं होना । इस कारण प्रणाम करते समय साधु की जाति पूछना अत्यन्त ही अनुचित है ।

भक्ति निसैनी मुक्ति फी,	संत चढे सब आय ।
नीचे वाघिन लुकि रही,	कुचल पढे कूं खाय ॥६२॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,	भक्ति न जानै भेव ।
पूरन भक्ती जब मिलै,	कृपा करै गुरुदेव ॥६३॥
सतगुरु की किरपा विना,	सत की भक्ति न होय ।
मनसा बाचा कर्मना,	मुनि लीजो सब कोय ॥६४॥
दुख खंडन भय भेटना,	भक्ति मुक्ति बिसराम ।
वा घर राचे साथरी,	यही भक्ति को नाम ॥६५॥
भक्ति बीज है प्रेम फा,	परगट पृथ्वी माँहि ।
कहै कबीर बोया घना,	निपजै कोइक ठाँहि ॥६६॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,	भक्ति भक्ति पै फेर ।
एक भक्ति तो अजब है,	इक है दमड़ी सेर ॥६७॥
भक्त उलटि पीछै फिरै,	संत धरै नहि पाँव ।
परतछ दीसै जीवताँ,	मुआ माँहिला भाव ॥६८॥
दया गरीबी दीनता,	सुमता सील करार ।
ये लच्छन हैं भक्ति के,	कहै कबीर विचार ॥६९॥
सलिल भक्त कहुं ना तरै,	जावै नरक अघोर ।
सतगुरु सँ सनमुख नहीं,	धर्मराय के चोर ॥७०॥

६२. भक्ति की निसैनी को दृढ़ता से पकड़कर घटनेवाले सब सत जन, परम पद क महल में पहुँच जाते हैं । और जो इस निसैनी से गिर पड़ते हैं उनको माया बाघिनी खा लेती है । ६९. करार दृढ़ता ।

संत सुहागी सुरमा, सदै ऊठे जाग ।
 सलिल सद्ग मानै नहीं, जरि वरि लागे आग ॥७१॥
 सतगुरु सद्ग उथापही, अपनी महिमा लाय ।
 कहै कविर वा जीव कूं, काळ घसीटै जाय ॥७२॥
 सांच सद्ग खाली करै, आपन होय सयान ।
 सो जीव मनमुखी भये, कलियुग के व्रतमान ॥७३॥

सुमिरन को अंग ।

नाम रतन धन पाय कर, गांठी बांध न खोळ ।
 नहि पाटन नहि पारखी, नहि गाढ़क नहि मोळ । १ ।
 नाम रतन धन संत पहुँ, खान खुली घट पाँहि ।
 संत भेंट ही देत हूँ, गाढ़क कोई नाँहि ॥ २ ॥
 नाम नाम सब को (इ) कहै, नाम न चीन्है कोय ।
 नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ३ ॥
 नाम विना बेकाम है, छप्पन भोग बिलास ।
 क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुंठ निवास ॥ ४ ॥
 नाम रतन सो पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहि होय ।
 ज्ञान विना नहि पावई, कोटि करै जो कोय ॥ ५ ॥

नाम जो रती एक है,	पाप जु रती हजार ।
आध रती घट संचरै,	जारि करै सब छार ॥ ६ ॥
नाम जपत कुष्ठी भला,	चुइ चुइ परै जु चाम ।
कंचन देह किस कामको,	जा मुख नाहीं नाम ॥ ७ ॥
नाम जपत कन्या भली,	साकुट भला न पूत ।
छेरी के गल गल थना,	जामें दूध न मूत ॥ ८ ॥
नाम जपत दरिद्री भला,	टूटी घर की छानि ।
कचन मंदिर जारि दे,	जहाँ न सतगुरु नाम ॥ ९ ॥
नाम लिया जिन सब लिया,	सब साखन को भेद ।
बिना नाम नरके आये,	अपदि गुनि चारों वेद ॥ १० ॥
नाम पियू का छोडि के,	करै आन का जाप ।
बेस्या करा पृत ज्यों,	कहै कौन को बाप ॥ ११ ॥
आदि नाम धीरा अहै,	जीव सकल ल्यौ बूझ ।
अमरावै सत लोक ले,	जम नहि पावै मूझ ॥ १२ ॥
आदि नाम पारस अहै,	मन है मैछा लोह ।
परसत ही कंचन भया,	छटा बंधन मोह ॥ १३ ॥
आदिनाम निज सार है,	बूझि लेहु सो वंस ।
जिन जान्यो निज नामको,	अमर भयो सो वंस ॥ १४ ॥
आदि नाम निज मूल है,	और भंत्र सब डार ।
कहै कविर निज नाम विनु,	बूझि मूवा संसार ॥ १५ ॥

१. पा० भक्ति न सारगपानि । २. पा० सफल वेद का भेद ।

३. पा० पडा । ४. पा० पढता ।

कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय ।
 आदि नाम जो गुप्त अप, धिरला जाने कोय ॥ १६ ॥
 सत्त नाम निज औपधि, कोटिक कटै विकार ।
 विष वारी धिरकत रहै, काया कंचन सार ॥१७॥
 यह औपधि अंग ही लगि, अनेक उधरी देह ।
 कोव फेर कूपथ करै, नहि तो औपधि येह ॥१८॥
 सत्त नाम निज औपधि, सतगुरु दई बताय ।
 औपधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय ॥१९॥
 सतनाम विस्वास, करम मरम सब परिहरै ।
 सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥२०॥
 रामनाम को सुमिरता, उधरे पतित अनेक ।
 कहै कविर नहि छांडिये, रामनाम की टेक ॥२१॥
 रामनाम को सुमिरता, हँसि कर भावै खीस ।
 उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥ २२ ॥
 रामनाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर ।
 काया हांडी काठकी, ना वह चढ़ै बहोर ॥२३ ॥

१७. कंचनसार-कुंदन, जो अपने शरीर में विषयनाडी की अदृशीली हवा नहीं लगने देता, उसका शरीर कुंदन के समान निर्मल रहता है ।

१८. कोट फेर-.....विषयभोग का कुपथ संसार के रोगों को बढ़ा देता है, परन्तु औपधी तो यही सत्यनाम है । १९. वेदन=इ ख ।

अँकार निश्चै भया, सो कर्ता मति जान ।
 साँचा सद्ध कवीर का, परदे माँहि पिछान ॥२४॥
 जो जन द्रोड़ है जौहरि, रतन लेहि बिलगाय ।
 सोहँग सोहँग जपि मुआ, मिथ्या जनम गँगाय ॥२५॥
 सब हि रसायन द्रम करि, नहीं नाम सम कोय ।
 रंघक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥२६॥
 जबहि नाम हिरदै धरा, भया पापका नास ।
 मानो चिनगी आगकी, परी पुराने घास ॥ २७ ॥
 कोई न जम सँ वांचिया, नाम बिना धरि खाय ।
 जे जन विरही नामके, ताको देखि डराय ॥ २८ ॥
 पूंजि मेरी नाम है, जाते सदा निहाल ।
 कवीर गरजे पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥ २९ ॥
 कवीर हपरे नाम बल, सात द्वीप नव खंड ।
 जम डरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मण्ड ॥ ३० ॥
 कवीर हरिके नाम में, सुरति रहै करतार ।
 ता मुखसँ मोती झरे, हीरा अनंत अपार ॥ ३१ ॥
 कवीर हरिके नाममें, बात चलावै और ।
 तिस अपराधी जीवको, तीन लोक कित ठौर ॥३२॥

२४ परदे माह शब्दी (शब्द करनेवाला) चेतन पुरुष सत्य है । और अँकार आदिक सब असत्य है यह वार्ता परदे की है ।

२६. रसायन—धातुमारण की विधि । रचक—थोडासी ।

१. पा० नहि ।

कबीर संव जग निरघना, घनवंता नहि कोप ।
 घनवंता सो(इ) जानिये, राम नाम घन होय ॥३३॥
 साहेब नाम सँभारतां, कोटि विघन टरि जाय ।
 राई मार वसंदरा, केता काठ जराय ॥३४॥
 कबीर परगट राम कहू, छानै राम न गाय ।
 फूसक जोडा दूरि करू, बहुरि न लागे लाय ॥३५॥
 कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाय ।
 जा मुख राम न नीसै, ता मुख राम कहाय ॥३६॥
 कबीर मुख सोई मछा, जा मुख निकसै राम ।
 जा मुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥३७॥
 कबीर हरि के मिलन की, बात सुनी हम दोय ।
 कै कहू, 'हार को नाम ले, कै कर ऊंचा होय ॥३८॥
 कबीर राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर प्रीत ।
 हरि सागर जनि वीसरे, छीलर देखि अनीत ॥३९॥
 कबीर राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय ।
 फूटा नम ज्यों जोरि मन, संधे संधि मिळाय ॥४०॥
 कबीर नैन झर लाइये, रहट बहै निस जाम ।
 पपिहा यों पी पी करै, कवरि मिलेगे राम ॥४१॥

३४. वसंदरा-आग । ३९. छीलर—छिछला तालाब, (अनित्य संसार)

१. पा० गुरु । २. पा० गुरु ।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरंत हरि को नाम ।
 सूली ऊपर नट विधा, गिरै तो नाहिँ ठाम ॥ ४२ ॥
 लंबा मारग दूर घर, विकट पंथ भवहु मार ।
 कहो संत क्यों पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥ ४३ ॥
 मून सिखर चढ़ि घर किया, सहज समाधि लगाय ।
 नाम रतन धन तहँ मिला, सतगुरु भये सहाय ॥ ४४ ॥
 घटहि नाम की आस करु, दूजी आस निरास ।
 वसै जु नीर गँभीर में, क्यों वह मरै पियास ॥ ४५ ॥
 जा घट प्रीत न प्रेम रस, पुनि रसना नहि नाम ।
 ते नर पशु संसार में, उपजि मरे बेकाम ॥ ४६ ॥
 जैसे माया मन रमै, तैसा राम रमाय ।
 तारा मंडल बेधि के, तव अमरापुर जाय ॥ ४७ ॥
 ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जरायं ।
 तहाँ सुमिर सतनामको, सहज समाधि लगाय ॥ ४८ ॥
 एक नाम को जानि के, मेहु करम का अंक ।
 तबही सो सुचि पाइ है, जब जिव होय निसंक ॥ ४९ ॥
 ' एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय ।
 तीरथ व्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥ ५० ॥

४९. सुचि - सुख ।

१. पा० बटमार ।

जैसे फनिपति मंत्र मुनि,	राखै फनहि सिकोर ।
तैसे वीरा नाम ते,	काल रहै मुख मोर ॥५१॥
सबको नाम सुनावहु,	जो आवैगो पास ।
सद्द हमारो सच है,	दृढ राखो विश्वास ॥५२॥
होय विनेकी सद्द का,	जाय मिले परिवार ।
नाम गहै सो पहुँचई,	मानो कदा हमार ॥५३॥
सुरति समावे नाम में,	जगसे रहे उदास ।
कहै कविर गुरु चरनमें,	दृढ राखो विश्वास ॥५४॥
अस औसर नहि पाइहो,	धरो नाम कडिहार ।
भौसागर तरि जाव भव,	पलक न लागे वार ॥५५॥
आसा तो इक नाम की,	दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी,	ज्यों चौपर की सार ॥५६॥
कोटि करम कटि पलकमें,	रंचक आवै नाम ।
जुग अनेक जो पुन्य करु,	नहीं नाम वितु ठाम ॥५७॥
भसपने में बरराई के,	धोखे निकरै नाम ।
चाके पगकी पानही,	मेरे तन को चाम ॥५८॥
जाकी गांठी नाम है,	ताके है सब सिद्धि ।
कर जोरै ठाही सवै,	अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥५९॥

५१. फनिपति—सर्प ।

१. पा० कदा बडाई तासुकी, जो मुख सुमिरे राम ।

हयवर गयवर सघन घन, छत्र धुजा फहराय ।
 ता मुख तें भिक्षुक भला, नाम भजत दिन जाय ॥६०॥
 पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव ।
 जब सो पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव ॥६१॥
 पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार ।
 पारस पाषा पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥६२॥
 सुख के माथे सिद्ध परै, नाम हृदे से जाय ।
 बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम रटाय ॥६३॥
 लेने को सतनाम है, देने को अन्न दान ।
 तरने को आधीनता, बूढ़न को अभिमान ॥६४॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, राम नाम की लूट ।
 फिर पाछे पछिताहुगे, मान जाहिंगे छूट ॥६५॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, रामनाम की लूट ।
 नाम जु निरगुन को गहौ, नातर जैहो खूट ॥६६॥
 कहैं कविर तूं लूटि ले, रामनाम भंडार ।
 काल कंठ को जब गहे, रोके दसहं द्वार ॥६७॥
 कविर निर्भय नाम जपु, जब लग दीवे वाति ।
 तेल घटे बाती बुझै, सोबोगे दिनराति ॥६८॥
 कवीर सूना क्या करै, जागी जपो मुरार ।
 एक दिना है सोवना, लंबे पाँव पसार ॥६९॥

कवीर सूता क्या करै, बठिन मनो भगवान ।
 जम धर जब ले जायंगे, पढा रहेगा म्यान ॥७०॥
 कवीर सूता क्या करै, गुन सतगुरु का गाय ।
 तैरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाय ॥७१॥
 कवीर सूता क्या करै, मूने होय अकाज ।
 ब्रह्मा को आसन दिग्यो, मुनी कालकी गाज ॥७२॥
 कवीर सूता क्या करै, ऊठि न रोवो दुख ।
 जाका वासा गोर में, सो क्यों सोये सुख ॥७३॥
 कवीर सूता क्या करै, जागन की कर चौप ।
 ये दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौंवा ॥७४॥
 कवीर सूता क्या करै, काहेन देखै जागि ।
 जाके संग तें बीछुरा, ताडि के संग लागि ॥७५॥
 अपने पहरे जागिये, ना परि रहिये सोय ।
 ना जानौ छिन एकमें, कितका पहरा होय ॥७६॥
 निंद निसानी मीच की, ऊहु कवीरा जाग ।
 और रसायन छांडि के, नाम रसायन लाग ॥७७॥
 सोया सो निस्फळ गया, जागा सो फळ लेहि ।
 साहिव इक न राखसी, जब मागे तब देहि ॥७८॥

१केसव कहि कहि कूकिये, ना सोडये असरार ।
 रात दिवस के कूकते, कवहुँक लगे पुकार ॥७९॥
 कबिर क्षुधा है कूकरी, करत भजन में मंग ।
 याकूँ टुकड़ा डारिके, सुमिरन कर सुरंग ॥८०॥
 गिरही का टुकड़ा चुरा, दो दो आंगुल दांत ।
 भजन करै तो ऊबरे, नातर काढे आंत ॥८१॥
 बाहिर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये नाम ।
 कहा महोला खलक सों, पर्यो धनी सों काम ॥८२॥
 गोविंद के गुन गावता, कबहु न कीजै लाज ।
 यह पद्धति आगे मुक्ति, एक पंथ दो काज ॥८३॥
 गुन गाये गुनना कटे, रटै न नाम वियोग ।
 अहिनिंसि गुरु ध्यायो नहीं, (क्यों) पावे दुरलभ योग ॥८४॥

७९. असरार—बेखबर ।

८१. गृहस्थों का अन्न खाकर जो भजन नहीं करते उनका पाप कर्म घेर लेते हैं और वे वे मौत मारे जाते हैं ।

८३. पद्धति—मार्ग । मंकोच त्यागकर साहब के गुन गाने से लोक में विश्वास का मार्ग प्रचलित होता है । और आगे के लिये मुक्ति का द्वार खुलता है । यही एक पंथ है और दो काज है ।

८४. गुनना—चौरासी का चक्र । हरिगुण के गाने से संसार-भ्रमण मिट जाता है । और बार२ रटने से विस्मरण नहीं होता ।

१. पा० पिड पिड ! २. पा० कूकने । ३. पा० होय रहो निःसंक

४. पा० संसारी का टुकड़ा ।

सतगुरु का उपदेस,	सतनाम निज सार है ।
यह निज मुक्ति संदेस,	सुनो संत सत भावसे ॥८५॥
क्यों छूटे जम जाल,	बहु बंधन जिव बांधिया ।
काटे दीन दयाल,	करम फंद एक नामसे ॥८६॥
काटहु जमके फंद,	जेहि फंदै जग फंदिया ।
कटै तो होय निसंक,	नाम खडग सतगुरु दिया ॥८७॥
तजै कागको देह,	हंस दसा की सुरति पर ।
मुक्ति संदेसा यह	सतनाम परमान अस ॥८८॥
सुमिरन मारग महजका,	सतगुरु दिया बताय ।
साँस साँस सुमिरन करू,	इक दिन मिलती आय ॥८९॥
सुमिरन से सुख होत है,	सुमिरन से दुख जाय ।
कहै कविर सुमिरन किये,	सौई माँहि समाय ॥९०॥
सुमिरन की सुधि यौं करो,	जैसे कामी काम ।
एक पलक विसरै नहीं,	निस दिन आठौं जाय ॥९१॥
सुमिरन की सुधि यौं करो,	ज्यौं गागर पनिहारि ।
हाले डोलै सुरति में,	कहै कबीर विचारि ॥९२॥
सुमिरन की सुधि यौं करो,	जैसे कामी काम ।
कहै कबीर पुकारि के,	तब मगटै निज नाम ॥९३॥
सुमिरन की सुधि यौं करो,	ज्यौं सुरभी सुल माँहि ।
कहै कविर चारा चरत,	विसरत कबहूँ नाँहि ॥९४॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल ।
 कहैं कविर विसरै नही, पल पल लेत सँभाल ॥१५॥
 सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे नाद कुरंग ।
 कहैं कविर विसरै नही, प्रान तजै तिहि संग ॥१६॥
 सुमिरन की सुधि या करो, ज्यों सूई में डोर ।
 कहैं कविर छूटे नहीं, चलै ओर की ओर ॥१७॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग ।
 कविर विसारे आपको, होय जाय तिहि रंग ॥१८॥
 सुमिरन सो मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
 प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोरै अंग ॥१९॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
 प्रान तजै पल वीछुरे, दास कविर कहि दीन ॥१००॥
 सुमिरन सों मन जब लागै, ज्ञानांकुस दे सीस ।
 कहैं कविर डोलै नहीं, निश्चै विस्वा धीस ॥१०१॥
 सुमिरन मन लागै नहीं, विपदि ढलाढल खाय ।
 कवीर इटका ना रहै, करिकरिथका उपाय ॥१०२॥
 सुमिरन माँहि लगाय दे, सुरति आपनी सोय ।
 कहैं कविर संसार गुन, तुझै न व्यापै कोय ॥१०३॥
 सुमिरन सुरति लगाय के, मुख ते कछु न बोळ ।
 बाहर के पट देय के, अंतर के पट खोळ ॥१०४॥

१६. कुरंग हरिण । १०४. बाहर के पट-दोनों नेत्र । अतर के पट-हृदय की दृष्टि ।

सुमिरन तू घट में करै, घट ही में करतार ।
 घट ही भीतर पाइये, सुरति सद्ध भंडार ॥१०५॥
 राजा राना राव रँक, वडो जु सुमिरै नाम ।
 कहै कविर सब सों बड़ा, जो सुमिरै निहकाम ॥१०६॥
 सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम ।
 निहकामी सुमिरन करै, पावै अविचल राम ॥१०७॥
 जप तप संजम साधना, सब कछु सुमिरन मांढि ।
 कवीर जाने भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाँहि ॥१०८॥
 थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय ।
 हरदी लगै न फिस्करी, चोखा ही रंग होय ॥१०९॥
 ज्ञान कये वकि वकि भरै, काहे करै उपाय ।
 सतगुरु ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय ॥११०॥
 कवीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल ।
 आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा काल ॥१११॥
 कवीर हरि हरि सुमिरि ले, मान जाहिगे छूट ।
 घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट ॥११२॥
 कवीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय ।
 गुरु सुमिरन हाथे घडा, लीजै वेगि बुझाय ॥११३॥
 कवीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम ।
 आदि जुगादि भक्ति है, सबका निज विसराम ॥११४॥

कबीर राम रिझाय ले,
 और स्वाद रस त्याग दे,
 कबीर मुख से राम कहु,
 रामक सुमिरन भ्यान निव,
 राम नाम गुन गावने,
 जो कोइ लाजै राम रामसे,
 जीना थोड़ा ही भला,
 लाख बरस का जीवना,
 निज सुख आतम राम है,
 मनसा याचा करमना,
 जो बोलो तो राम कहु,
 कहै कविर निसदिन कहै,
 नर नारी सब नरक है,
 कहै कविर सो पीव को,
 दुखमें सुमिरन सब करै,
 जो सुख में सुमिरन करै,
 सुख में सुमिरन ना किया,
 कहै कविर ता दासकी,
 साइ सुमिर मति ढील कर,
 इहाँ खलक खिदमत करै,

जिभ्या के रस स्वाद ।
 राम नाम के स्वाद ॥११५॥
 मन हि राम को ध्यान ।
 यही भक्ति यहि ज्ञान ॥११६॥
 तोहि न आवै लाज ।
 ताका तन बेकाज ॥११७॥
 हरि का सुमिरन होय ।
 लेखै धरै न कोय ॥११८॥
 दूजा दुःख अपार ।
 कबीर सुमिरन सार ॥११९॥
 अन्त कहूँ मति जाय ।
 सुमिरन सुरति लगाय ॥१२०॥
 जब लगि देह सकाम ।
 जो सुमिरै निहकाम ॥१२१॥
 सुख में करै न कोय ।
 दुख काहे को होय ॥१२२॥
 दुख में कीया याद ।
 कौन मुनै फरियाद ॥१२३॥
 जो सुमिर ते लाह ।
 उहाँ अमरपुर जाह ॥१२४॥

साँई याँ मति जानियो, प्रीति घटे मम चीठ ।
 मरुं तो सुमीरत मरुं, जीयत सुमिरुं नीत ॥१२५॥
 साँई को सुमिरन करै, ताको वंदे देव ।
 पहली आप उगावही. पाछे लारै सेव ॥१२६॥
 चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास ।
 जो कछु चितवै नाम विनु, सोई कालकी फांस ॥१२७॥
 पांच संगि पिव पिव करै, छठा जो सुमिरे मन ।
 आई सुरति कबीर की, पाया राम रतन ॥१२८॥
 मन जो सुमिरै रापको, राम वसै घट आहि ।
 अब मन रापहि हे रहा, सोस नवाऊँ काहि ॥१२९॥
 वृ वृ करता वृ भया, मुझ में रही न हूँयै ।
 बारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित नूँय ॥१३०॥
 वृ वृ करता वृ भया, तुझ में रहा समाय ।
 तुझ माँही मन मिलि रहा, अब कहूँ अनत न जाय ॥१३१॥
 रग रग बोला गमजी, रोम रोम (र)रंकार ।
 सहजे ही धुन होत है, सोई सुमिरन सार ॥१३२॥
 सहजे ही धुन होत है, पल पल घटही माँहि ।
 सुरति सद्ग मेला भया, मुख की हाजत नाँहि ॥१३३॥

१. पा० माँहि । २. पा० राम मोर में राम का, ।

३. पा० अब कहा आपे जाय ।

अजपा सुमिरन घट विधे,
 ताही-सौं मन लागि रहा,
 साँस साँस पर नाम ले,
 १न जानै इस साँस को,
 सास सुफल सो जानिये,
 और साँस यौं ही गये,
 कहाँ भरोसा देह का,
 साँस साँस सुमिरन करो,
 जाकी पूंजी साँस है,
 तांको ऐमा चाहिए,
 कहता हूँ कहि जात हूँ,
 स्वासा खाली जात है,
 ऐसे महुँगे मोलका,
 चौदह लोक न पटतरै,
 माला साँसउ साँस की,
 चौरासी भरमै नहीं,
 माला फेरत मन खुशी,
 मन माला के फेरते,

दीन्हा सिरजन हार ।
 कहैं कबीर विचार ॥१३४॥
 वृथा १साँस मति खोय ।
 आवन होय न होय ॥१३५॥
 जो सुमिरन में जाय ।
 करि करि बहुत उपाय ॥१३६॥
 विनसि जाय छिन माँहि ।
 और जतन कछु नाँहि ॥१३७॥
 छिन आवै छिन जाय ।
 रहे नाम लौं लाय ॥१३८॥
 कहूँ बजाये ढोल ।
 तीन लोक का मोल ॥१३९॥
 एक साँस जो जाय ।
 काहे धूर मिलाय ॥१४०॥
 २फेरै को (इ) निज दास ।
 कटै ४करम की फाँस ॥१४१॥
 ताते कछु न होय ।
 घट उजियारो होय ॥१४२॥

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर ।
 करका मनका डारिं दे, मन का मनका फेर ॥१४३॥
 जे राते सतनाम सौं, ते तन रक्त न होय ।
 रति इक रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय ॥१४४॥
 माला तो करमे फिरै, जीभ फिरै मुख मॉहि ।
 मनचा तो २दहु दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि ॥१४५॥
 माला फेरै न हरि भजूं, मुखसे कहूँ न राय ।
 मेरा हरि मोको भजै, तव पाऊँ विसराम ॥१४६॥
 माला मोसे लडि पड़ी, का फेरत है मोहि ।
 मन की माला फेरि ले, गुरु से मेळा होय ॥१४७॥
 माला फेरै कह भयो, छिरदा गाँठि न खोय ।
 गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय ॥१४८॥
 कवीर माला काठकी, बहुत जतनका फेर ।
 माला साँस उमाँस की, जामें गाँठ न मेर ॥१४९॥
 क्रिया करै अंगुरि गिनै, मन धावै चहुँ भौर ।
 निहि फेरै साँई मिलै, सो भय काठ कठोर ॥१५०॥
 तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरति निरति थिर होय ।
 कहै कविर उस पलकको, कल्प न पावै कोय ॥१५१॥
 जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
 सुरति समानी सद्रमै, ताहि काल नहि खाय ॥१५२॥

बिना साँच सुमिरन नहीं,
 पारस में परदा रहा,
 हिरदे सुमिरनि नामकी,
 छवि लागै निरखत रहूँ,
 देखा देखी सब कहै,
 अरघ रात को (इ) जन कहै,
 नाम रटत अस्थिर भया,
 सुरति सब्द एकै भया,
 कहता हूँ कहि जात हूँ,
 सुमिरन सों भल होयगा,
 कबीर माला काठकी,
 सुमिरन की सुधि है नहीं,
 नाम जपे अनुराग से,
 विश्वासे तो गुरु मिले,
 सब मंत्रन का बीज है,
 जो को(इ) जन हिरदै धरे,

(विन)भेदी भक्ति न सोय ।
 (कस)लोहा कंचन होया ॥१५३॥
 मेरा मन मसगूल ।
 मिटि गय संसै मूल ॥१५४॥
 भोर भये हरि नाम ।
 खाना जाद गुलाम ॥१५५॥
 ज्ञान कथत भया लीन ।
 जल ही हैगा मीन ॥१५६॥
 सुनता है सब कोय ।
 नातर भला न होय ॥१५७॥
 पड़िरी मुगद डुलाय ।
 (जयौं)डीगरवाँधी गाय ॥१५८॥
 सब दुख डारै धोय ।
 लोहा कंचन होय ॥१५९॥
 सत्तनाम ततसार ।
 सो जन उतरै पार ॥१६०॥

१५४. मसगूल—मसलान । १५५. खानाजादगुलाम—धरका दास ।

१५८. मुगद—मूख ।

१. पा. सुद्धि बिना सुमिरन नहीं, भाव बिनु भक्ति न होय ।

२ पा० विच । ३ पा. ते राम । ४ पा. डाले ।

जब जागै तब नाम जप, सोवत नाम सँभार ।
 ऊठत बैठत आतमा, चालत नाम चितार ॥१६१॥
 सुमिरन ऐसो कीजिये, खरे निशाने चोट ।
 सुमिरन ऐसो कीजिये, हाले जीभ न ओठ ॥१६२॥
 ओठ कंठ हाले नहीं, जीभ न नाम उचार ।
 गुप्त हि सुमिरन जो लखे, सोई हंस हमार ॥१६३॥
 अंतर हरि हरि होत है, मुख की हाजत नाहि ।
 सहजे धुन लागी रहे, संतन के घट मांहि ॥१६४॥
 अन्तर जपिये रामजी, रोम रोम रकार ।
 सहजे धुन लागी रहे, येही सुमिरन सार ॥१६५॥
 कवीर मन निश्चल करो, सच नाम गुन गाय ।
 निश्चल बिना न पाईये, कोटिक करो उपाय ॥१६६॥
 निसदिन एकै पलक ही, जो कहु नाम कधीर ।
 ताके जनमो जनम के, जैहै पाप शरीर ॥१६७॥
 सुरति फसी संसार में, ताते परिगो दूर ।
 सुरति बाधि अस्थिर करो, आठों पहर हैजूर ॥१६८॥
 नाम साँच गुरु साँच है, आप साँच जब होय ।
 तीन साँच जब परगटे, विपका अमृत होय ॥१६९॥
 मनुवा तो गाफिल भयाँ, सुमिरन लागै नांदि ।
 घनी सोहगा सासना, जमके देरगह मांदि ॥१७०॥

हाथो में माला फिरे, धिरदा डापाडूळ ।
 पग तो पाला में पडा, भागन लागे सूळ ॥१७१॥
 वाद विवादा मत करो, करु नित एक विचार ।
 नाम सुमिर चित्त लायके, सब करनीमें सार ॥१७२॥
 वाद करै सो जानिये, निगुरेका वह काम ।
 संतो को फुरसद नहीं, सुमिरन करते नाम ॥१७३॥
 भक्ति भजन हरि नाम है, दूजा दुःख अपार ।
 मनसा वाचा कर्मना, कवीर सुमिरन सार ॥१७४॥
 जागन में सोवन करै, सोवनमें लव लाय ।
 सुरति होरि लागी रहे, तार तूटि नहि जाय ॥१७५॥
 जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार ।
 कहै कविर घर्मदास सों, उतरे भवजळ पार ॥१७६॥
 कवीर सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 विद्याढिन विद्या. सहे, कहै कविर समुझाय ॥१७७॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 भक्ति ज्ञान मन ऊपजै, कहै कविर समुझाय ॥१७८॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, निसि वासर करै पाठ ।
 कहै कविर सो संत जन, संधै औघट घाट ॥१८९॥

परिचय को अंग

१. तब परिचय तब जानिये, पिवसों हिल मिल होय ।
 पिव की लाली मुख परै, परगट दीसै सोय ॥ १ ॥
 लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥ २ ॥
 जिन पाँवन मुई बहु फिरै, घुमें देस बिदेस ।
 पिया मिलन जब होइया, आंगन भया बिदेस ॥ ३ ॥
 उलटि समानी आप में, प्रगटी जोति अनंत ।
 साहिव सेवक एक संग, खेलें सदा वसंत ॥ ४ ॥
 जोगी हुआ झक लगी, मिटि गई ऐंचातान ।
 उलटि समाना आप में, हुआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥
 हम वासी वा देस के, जहां पुरुष की आन ।
 दुख सुख कोइ व्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६ ॥
 हम वासी वा देस के, (जहें) वारड मांस वसंत ।
 नीझर झरै महा अपी, भीजत हैं सब संत ॥ ७ ॥

१. पिव-साहब, मालिक । लाली-काति, प्रसन्नता । १. झक-लग्न ।

२. पा० झक लगी जोगी हुआ ।

हम वासी वा देसके, गगन धरन दुइ नाँहि ।
 भौरा बैठा पंख विन, देखौ पलकों माँहि ॥८॥
 हम वासी वा देस के, जहाँ ब्रह्म का कूप ।
 अविनामी विनसै नहीं, आवै जाय सरूप ॥९॥
 हम वासी वा देसके, आदि पुरुष का खेल ।
 दीपक देखा गैबका, विन वाती विन तेळ ॥१०॥
 हम वासी वा देस के, वारह मास विळास ।
 प्रेम झरै विगसै कमल, तेजपुंज परकास ॥११॥
 हम वासी वा देस के, जाति वरन कुल नाँहि ।
 सद्ग मिलवा है रहा, देह मिलवा नाँहि ॥१२॥

८. गगनधरन—ब्रह्मांड और पिंड । इस साखी में अचरी मुद्रा का वर्णन किया गया है । जिसमें दृष्टि को उलट कर झुकुटी में लगाई जाती है ।

१२. हम उस देश के वासी हैं जहाँ जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा नहीं मानी जाती । उस देश का संबन्ध केवल शब्द से होता है, देह से नहीं । इस साखी को लोग बहुधा झूवाछूत की रक्षा के प्रणाम में बोल कर रहे हैं । और ऐसा अर्थ करते हैं कि सर्व साधारण से केवल शब्द से मिलो, देह से नहीं । इसका ऐसा अर्थ नितान्त अनुचित है; क्यों कि यह पिय परचे के प्रकरण की है । इसके अतिरिक्त झूवाछूत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है, प्रत्युत “ पांडत देखहु मन मई जानी । कहुं छूत कहां से उपजी, तबहीं छूत तुम मानी ” इत्यादि छूत छूत के खंडन के अनेक प्रमाण हैं ।

हम वासी वा देस के, रूप वरन कछु नाँहि ।
 सैन मिलावा है रहा, शत्रु मिलावा नाँहि ॥१३॥
 हम वासी वा देस के, पिंड ब्रह्मंड कछु नाँहि ।
 आपा पर दोइ बीसरा, सैन मिलावा नाँहि ॥१४॥
 हम वासी वा देस के, गाज रहा ब्रह्मंड ।
 अनहद बाजा बाजिया, अविचल जोति अखंड ॥१५॥
 संसै करौ न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार ।
 सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥१६॥
 बिन पाँवन का पंथ है, बिन वस्ती का देस ।
 बिना देह का पुरुष है, कहैं कविर संदेस ॥१७॥
 नौन गला पानी मिठा, बहुरि न भरि है गौन ।
 सुरति सद्र मेला मया, काल रहा गढि मौन ॥१८॥
 टिळ मिल खेलै सद्र सों, अन्तर रही न रेख ।
 समझै का मत एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥१९॥
 अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै वैन ।
 निज मन धसा सरूपमें, सतगुरु दीन्ही सैन ॥२०॥
 कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय ।
 एक रहा दूजा गया, दरिया लहरि समाय ॥२१॥
 जो कोइ समझै सैनमें, तासों कहिये घाय ।
 सैन वैन समझै नहीं, तासों कहै बलाय ॥२२॥

पिंजर , प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत ।
 संसै छटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥२३॥
 उनमुनि लागी सुन्न में, निस दिन रहि गलतान ।
 तन मन की कछु सुधि नही, पाया पद निरवान ॥२४॥
 उनमुनि चढी अक्काम को, गई धरनि सें छूट ।
 हंम चला घर आपने, काल रहा सिर कूट ॥२५॥
 उनमुनि सों मन लागिया, गगन हि पहुंचा जाय ।
 चाद विहूना चांदना, अलख निरंजन राय ॥२६॥
 १ उनमुनि सों मन लागिया, २ उन मुनि नहीं बिलंगि ।
 ३ लौन बिलंग्या पानिया, पानी नौन बिलंगि ॥ २७ ॥
 पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया बिलाय ।
 जो कुछ था सोई भया, अर कुछ कहा न जाय ॥२८॥
 मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
 अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥२९॥

२६. विहूना-बिना । गगन-गगत गुफा । निरजन-माया से रहित ।

नोट-अय ग्रन्थों में अलख निरजन को काल पुरुष माना है ।

जैसा कि यह बीजक का वचन है-“ अलख निरजन लखे न यई,
 जेहि बन्धे ग्रन्थ सन लेई । ” इत्यादि ।

१. पा० मन लागा उनमुनि मू । २. पा० उनमुनि मनहि विन्ना ।

३. पा० लौन त्रिलोयो पानि में ।

सुरति समानी निरति में, अजपा माही जाप ।
 लेख समाना अलख में, आपा माही आप ॥३०॥
 सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
 सुरति निरति परिचय भया, खुल गया सिंधु दुवार ॥३१॥
 गुरु मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
 निसि वासर मुख निधि लहूं, अन्तर प्रगटे आप ॥३२॥
 मुचि पाया मुख ऊपजा, दिल दरिया मरपूर ॥
 सकल पाप सहजै गया, साहिव मिले हजर ॥३३॥
 तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान ।
 तपत मिटी सीतल भया, मुन्न किया अस्थान ॥३४॥
 कौतुक देखा देह बिना, रविससि बिना उजास ।
 साहेव सेवा माही है, वेपरवाही दास ॥३५॥
 नेव बिहूना देहरा, देह बिहूना देव ।
 कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३६॥
 देवल मोंहि देहुरी, तिल जैसा विस्तार ।
 माहीं पाती फूल जल, माहीं पूजन हार ॥३७॥

३०. जाप अजपा में, सुरति निरति में और लेख अलख में परिणत होने पर आप (मैं) अपने आप (स्वल्प) को पा सकता है ।

३४. मुन्न-गाया प्रपच से रहित देश । ३६. देहरा-देवमन्दिर ।

३७. देवल-शरीर । देवरी हृदय । पाती-प्रीति । जल स्नेह ।

सिंचनहार-प्राण ।

१. पा० साहिव से धरि ध्यान । २. पा० अस्थान । ३. पा० देवली ।

पवन नहीं पानी नहीं, नहि धरनी आकास ।
 तहाँ कबीरा संत जन, साहिव पास खवास ॥३८॥
 अगुवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक ।
 पीछै हरि भी आर्यंगे, सारे सौंज समेत ॥३९॥
 पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
 कहिवे की सोमा नहीं, देखै ही परमान ॥४०॥
 सुरज समाना चांद में, दोउ किया घर एक ।
 मन का चेता तब भया, पुरब जनम का लेख ॥४१॥
 पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया सजास ।
 सुख करि सूती मइल में, वानी फूटी वास ॥४२॥
 आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।
 कहै कबीरा संत हो, परि गया नजर अनूप ॥४३॥
 पाया या सो गहि रहा, रसना लगी स्वाद ।
 रतन निराळा पाइया, जगत ठठोळा बाद ॥४४॥
 हिम से पानी है गया, पानी हुआ माप ।
 जो पहिले था सो मया, प्रगटा आपहि आप ॥४५॥

४०. उनमान -- अज्ञान । ४१. इस साखी में “चांद सुरज एकै घर लखी, सुयमण मेती पान लगायो” इस वचन के अनुसार प्यानोपयोगी सुगुण्णा फल लाना आश्रयक बताया गया है ।

कुछ करनी कुछ करम गति, कुछ पूरव ले लेख ।
 देखो माग कबीर का, लख से भया अलेख ॥४६॥
 जब मैं था तब गुरु नहीं, अत्र गुरु हैं मैं नाँहि ।
 कबीर नगरी एक मैं, दो राजा न समौँहि ॥४७॥
 मैं जाना मैं और था, मैं तजि हू गय सोय ।
 मैं तै दोऊ मिटि गये, रहे कहन को दोय ॥४८॥
 अगम अगोचर गम नहीं, जहां झिलमिली जोत ।
 तहाँ कबीरा रमि रहा, पाप पुत्र नहि छोट ॥४९॥
 कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन ।
 पति संग जागी सुंदरी, कौतुक देखा नैन ॥५०॥
 कबीर देखा एक अंग, महिमा कही न जाय ।
 तेजपुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥५१॥
 कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निरमल सूर ।
 रैन अंधेरी मिटि गई, बाजै अनहद दूर ॥५२॥
 कबीर मन मधुकर भया, करै निरन्तर बास ।
 कमल खिल्ला है नीर बिन, निरखै कोइ निजदास ॥५३॥
 कबीर मोतिन की लंडी, हीरों का परकास ।
 चांद मूर की गम नहीं, दरसन पाया दास ॥५४॥
 कबीर दिळ दरिया मिला, पाया फल समरत्य ।
 सागर माँहि ढिंदोरतां, हीरा चढ़ि गया हृथ्य ॥५५॥

कवीर जब हय गावते, तब जाना गुरु नाँहि ।
 अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाँहि ॥५६॥
 कवीर दिल दरिया पिला, बैठा दरगह आय ।
 जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाया ॥५७॥
 कवीर कंचन भासिया, ब्रह्म वास जहां होय ।
 मन मौंरा तहां लुवधिया, जानेगा जन कोय ॥५८॥
 गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर ।
 चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजे दास कवीर ॥५९॥
 गगन मंडल के बीच में, झलकै सत का नूर ।
 निगुरा गम पावै नहीं, पहुँचे गुरुमुख सूर ॥ ६० ॥
 गगन मंडल के बीच में, मंडल पडा इक चीन्हि ।
 कहै कबिर सो पावई, जिहि गुरु परिचै दीन्हि ॥६१॥
 गगन मंडल के बीच में, विना कलम की छाप ।
 पुरुष एक तहां रमि रहा, नहीं मंत्र नहि जाप ॥६२॥
 गगन मंडल के बीच में, तुरी तत्त इक गाँव ।
 लच्छु निसाना रूप का, परखि दिखाया ठाँव ॥६३॥
 गगन मंडल के बीच में, जहां सोहंगम डोर ।
 सद्ध अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोर ॥६४॥
 गरजै गगन अमी चुबै, कदली कमल प्रकास ।
 तहां कवीरा संतजन, सत्तपुरुष के पास ॥६५॥

गरजै गगन अभी चुबे, कदली कमल प्रकास ।
 तहां कबीरा वंदगी, कर कोई निजदास ॥६६॥
 दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरम देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहां कबीरा सेव ॥६७॥
 मान सरोवर सुगम जल, इंसा कैलि कराय ।
 मुक्ताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥६८॥
 सुन्न महल में घर किया, बाजै सद्ग रसाल ।
 रोष रोष दीपक भया, मगटै, दीन दयाल ॥६९॥
 पूरे से परिचय मया, दुख सुख मेला दूर ।
 जम सों बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥७०॥
 सुरति उड़ानी गगन को, चरन विहंबी जाय ।
 सुख पाया साहेब मिला, आनंद^१ उर न समाय ॥७१॥
 जा वन सिंघ न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाय ।
 रैन दिवस की गम नहीं, रहा कबीर समाय ॥७२॥
 सीप नहीं, सायर नहीं, स्वाति बुंदमी नाँहि ।
 कबीर मोती नीपजै, सुँन सरवर घट भौँहि ॥७३॥

६८. मुक्ताहल मोती-अनवेधे मोती । ७२. वन-अगम पद ।
 सिद्ध-जीवात्मा । पंछी-मन ।

१. पा० अंग । २. पा० सागर ।

काया सिप संसारमें,
 बिना सीप के मोतियां,
 घट में औघट पाइया,
 कहैं कबीर परिचय मया,
 जा कारन में जाय था,
 सॉई ते^प सनमुख भया,
 जा कारन में जाय था,
 सो ही फिर आपन भया,
 जा दिन किरतम ना हता,
 हता कबीरा संत जन,
 नहीं हाट नहि वाट था,
 असंख जुग परलै गया,
 चांद नहीं सूरज नहीं,
 तहां कबीरा संतजन,
 धरति गगन पवनै नहीं,
 तब हरि के हरिजन हुते,
 धरति हती नहि पग धरूं,
 माता ते जनम्या नहीं,
 अगन नहीं जहँ तप करूं,
 धरती नहीं जहँ पग धरूं,

पानी झुंद सरीर ।
 मगटे दास कबीर ॥७४॥
 औघट माहीं घाट ।
 गुरु दिखाई वाट ॥७५॥
 सो तो मिळिया आय ।
 लगा कबीरा पाय ॥७६॥
 सो तो पाया ठौर ।
 को कहता और ॥७७॥
 नहीं हाट नहि वाट ।
 देखा औघट घाट ॥७८॥
 नहीं धरति नहि नीर ।
 तब की कहैं कबीर ॥७९॥
 हता नहीं ओंकार ।
 को जानै संसार ॥८०॥
 नहि होते तिथि धार ।
 कहैं कबीर विचार ॥८१॥
 नीर हता नहि न्हाऊं
 छीर कहाते खाऊं ॥८२॥
 नीर नहि तहँ न्हाऊं ।
 गगन नहीं तहँ जाऊं ॥८३॥

पांच तत्त्व गुण तीन के, आगे मुक्ति मुकाम ।
 तहां कवीरा घर किया, गोख दत्त न राम ॥ ८४ ॥
 सुर नर मुनिजन औलिया, ये सब उरळी तीर ।
 अलह राम की गम नहीं, तई घर किया कवीर ॥ ८५ ॥
 सुर नर मुनिजन देवता, ब्रह्मा विस्तु महेस ।
 ऊंचा महळ कवीर का, पार न पावै सेस ॥ ८६ ॥
 जब दिल मिला दयाल सों, तव कछु अंतर नाँहि ।
 पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माँहि ॥ ८७ ॥
 ममता मेरा क्या करै, प्रेम उधारी पोल ।
 दरसन भया दयाळ का, सुल भई सुख सोल ॥ ८८ ॥
 सुन्न सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव ।
 सदा समुह सुख बिलसिया, बिरला जानै भेव ॥ ८९ ॥
 सुन्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
 सुधा सिंधु मुख बिलसही, बिरला जानै भेव ॥ ९० ॥
 लौन गला पानी मिला, बहुरि न मरि है गून ।
 हरिजन हरि सो मिलि रहा, काळ रहा सिर धन ॥ ९१ ॥

८८. पोल—दरगाजा । सोल—सहल, सहज । ८९. समुह—सन्मुख ।

९०. सरोवर के किनारों पर बने हुए देवाल्लयों के देवता सरोवर के आनन्द-विहार और शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते । उस आनन्द को तो मच्छरी ही उठानी है । इसी प्रकार शून्य सरोवर के आनन्दामृत को केवल अम्बासी ही पा सकता है । देवता तम सुख को क्या जाने ।

गुन इन्द्रो सहजे गये, सतगुरु करी सहाय ।
 घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥९२॥
 जत्र लग पिय परिचय नहीं, कन्या कौरी जान ।
 हथलेवो हूँ सालियो, मुस्किळ पढ़ि पढ़िनान ॥९३॥
 सेजै सूती रग रम्हा, मागा मान गुमान ।
 हथ लेवो हरि सूं जुयो, अखँ अमर वरदान ॥९४॥
 पूरे सों परिचय भया, दुख मुख मेला दूर ।
 निरमळ कीन्ही आतमा, ताते सदा हजूर ॥९५॥
 मैं लागा उस एक सों, एक भया सब मौंहि ।
 सध मेरा मैं सवनका, तहां दूसरा नाँहि ॥९६॥
 भळी भई जो भय पडी, गई दिसा सब भूल ।
 पाला गलि पानी भया, हूळि मिळा उस कूळ ॥९७॥
 चितमनि पाई चौहटै, हाड़ी मारत हाथ ।
 मीरां मुझ पर मिहर करि, मिळा न काह् साथ ॥९८॥
 वरसि अमृत निपज हिरा, घटा पड़े टकसार ।
 तहां कवीरा पारखी, अनुभव उतरै पार ॥९९॥

९३ हथलेवो हूँ सालियो—पाणिप्रदृष्ट भी अस्तरने लगता है ।
 ९७ जो भय पडी—भो हो गई । पाला—अज्ञानी जीव । पानी—ज्ञानी ।
 टमकूळ—मास्कि में । ९८ चितमनि—साहन । हड्डी—हिरस । मीरा—
 तद्गुरु । ९९ अमृत—अमी । हीरा—शुद्ध मन ।

मकर तार सों नेहरा, झलकै अघर विदेह ।
 मुरति सोहंगम मिलि रहि, पल पल जरै सनेह ॥१००॥
 ऐसा अविगति अलख है, अलख लखा नहि जाय ।
 जोति सरूपी राम है, सब में रह्यौ समाय ॥१०१॥
 मिलि गय नीर कवीर सों, अंतर रही न रेख ।
 तीनों मिलि एकै भया, नीर कवीर अलेख ॥१०२॥
 नीर कवीर अलेख पिलि, सहज निरंतर जोय ।
 सच सद्ध औ मुरति मिलि, इंस हिरंवर होय ॥१०३॥
 कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहना नाहि ।
 एक रही दूजी गई, बैठा दरिया माँहि ॥१०४॥
 आया एक हि देस ते, उतरा एक ही घाट ।
 विच में दुविधा हो गई, हो गये वारह वाट ॥१०५॥
 तेजपुंज का देहरा, तेजपुंज का देव ।
 तेजपुंज झिलिमिल शरै, तहां कवीरा सेव ॥१०६॥
 खाला नाला हीम जल, सो फिर पानी होय ।
 जो पानी मोती भया, सो फिर नीर न होय ॥१०७॥
 देखो कर्म कवीर का, कछु पूरवञ्च लेख ।
 जाका महल न मुनि लहै, किय सो दोस्त अलेख ॥१०८॥
 मैं था तव हरि नहि जव, अब हरि है मैं नाहि ।
 सकल अंधेरा मिटि गया, दीपक देखा माँहि ॥ १०९ ॥

मूरत में मूरत बसै,
 ता तत तत्व विचारिया,
 फेर पड़ा नहीं अंग में,
 फेर पड़ा कछु बूझ में,
 साहेब पारस रूप है,
 पारस सो पारस भया,
 मोती निपजै सुन्न में,
 खोज करंता पाइये,
 या मोती कछु ओर है,
 या मोती है सद्ध का,
 दरिया माही सीप है,
 बस्तु ठिकानै पाइये,
 चौदा भुवन भाजि धरै,
 कहै कविर गुरु सद्ध सो,
 हमहुं स्वामी मति रुहो,
 स्वामी कहिये तासु कूं,
 हमहुं बाबा मति कहो,
 बाबा है करि बैठसी,
 यह पद है जो अगमका,
 समुझे, कूं दरसन दिया,

मूरत में इक तत्त ।
 तत्व तत्व सो तत्त ॥११०॥
 नहि इन्द्रियन के माँहि ।
 सो निरुवारै नाँहि ॥१११॥
 लोह रूप संसार ।
 परखि भया टकसार ॥११२॥
 बिन सायर बिन नीर ।
 सतगुरु कहै कबीर ॥ ११३॥
 वा मोती कछु और ।
 व्यापि रहा सब ठौर ॥११४॥
 मोती निपजै माँहि ।
 नाले खाले नाँहि ॥११५॥
 ताहि कियो बैराट ।
 मस्तक डारै काट ॥११६॥
 हम हे गरीब अधार ।
 तीन लोक विस्तार ॥११७॥
 बाबा है बलियार ।
 घनी सहेगा मार ॥११८॥
 रन मंग्रामे जूझ ।
 खोजत मुये अमूझ ॥११९॥

सीतल कोमल दीनता,	संतन के आधीन ।
वासों साहिब यों मिले,	ज्यों जल भीतर मीन ॥१२०॥
कवीर आदू एक हे,	कहन सुनन कूं दौय ।
जल से पारा होत है,	पारा से जल होय ॥१२१॥
दिल लागा जु दयाल सों,	तव कछु अंतर नाँहि ।
पारा गलि पानी भया,	साहिब साधू माँहि ॥१२२॥
ऐसा अविगति रूप है,	चीन्है विरला कोय ।
कहै सुनै देखै नही,	वाते अचरज मोय ॥१२३॥
सत्तनाम तिरलोक मे,	सकल रहा मरपूर ।
लाजै ज्ञान सरीर का,	दिखवै साहिब दूर ॥१२४॥
कवीर दुख सुख सब गया,	गय सो पिंड सरीर ।
आत्म परमात्म मिलै,	दूधै धोया नीर ॥१२५॥
गुरु इजिर चहुदिसि खड़े,	दुनी न जानै भेद ।
कवि पंडित कूं गम नही,	थाके वपुरे वेद ॥१२६॥
जा कारन हम जाय थे,	सनमुख मिलिया आय ।
धन पैली पिव ऊजला,	लाग सकी नहि पाय ॥१२७॥
भीतर मनुवा मानिया,	बाहिर कहूं न जाय ।
ज्वाला फेरी जल भया,	बूझी जळती लाय ॥१२८॥

१२७. धन-जीरामा ।

१. पा. तन भीतर मन मानिया, बाहिर कबहु न लाग ।

ज्वाला ते फिरि जल भया, बूझी जळती आग ॥

जिन जेता प्रभु पाइया, ताकू तेता लाभ ।
 ओसे प्यस न भागई, जब लग धसै न आम ॥१२९॥
 अकास बेली अमृत फल, पंखि मुवे सब झूर ।
 सारा जग हि झखि मूआ, फल मीठा पै दूर ॥१३०॥
 तीखी घुरति कवीर की, फोड़ गई ब्रह्मंड ।
 पीव निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ १३१ ॥
 ना मैं छई छापरी, ना मुझ घर नहि गाँव ।
 जो कोइ पूछै मुझसों, ना मुझ जाति न ठाँव ॥१३२॥

प्रेम को अंग

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाँहि ।
 सीस उतारै भुँय धरै, तब पैठे घर माँहि ॥ १ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, मारग अगम अगाध ।
 सीस काटि पग तर धरै, निकट प्रेमका स्वाद ॥ २ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, ऊँचा अधिक इकंत ।
 सीस काटि पग तर धरै, तब पैठे कोइ संत ॥ ३ ॥
 सीस काटि पासंग किया, जीब सेर भरि छीन ।
 जिहि भावे सो आय ले, प्रेम आगु हम कीन ॥ ४ ॥

१२९. आम जल । १३० आकाश—गगनमहल । बेली—सुरत । पंखी—मन ।

१. खाला—मौसी । ४. देह और प्राण की समता के त्यागो बिना कोइ भी प्रेम के आनन्द को नहीं ले सकता ।

सीस उतारै भुँय धरै, ऊपर राखै पाँव ।
 दास कबीरा यों कहै, ऐसा है तो आव ॥ ५ ॥
 प्रेम न बाढी ऊपजै, प्रेम न हाट विक्राय ।
 राजा परजा जो रुचै, सीस देय ले जाय ॥ ६ ॥
 प्रेम पियाळा सो पिये, सीस दच्छिना देय ।
 लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥ ७ ॥
 प्रेम पियाळा भरि पिया, राचि रखा गुरु ज्ञान ।
 दिया नगारा शब्द का, लाल खडै मैदान ॥ ८ ॥
 प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै, प्रेम न चीन्है कोय ।
 आठ पहर भीजा रहै, प्रेम कहावे सोय ॥ ९ ॥
 प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै, प्रेम न चीन्है कोय ।
 जा मारग साहिब मिलै, प्रेम कहावे सोय ॥ १० ॥
 प्रेम पियारे लालसों, मन दे कीजै भाव ।
 सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥ ११ ॥
 प्रेम विकाता मैं सुना, माया साटै हाट ।
 पूछत विलम न कीजिये, ततछिन दीमै काट ॥ १२ ॥
 प्रेम बनिज नहि करि सके, चढै न नाम कि गैल ।
 मानुष बेरी खोलरी, ओढि फिरै ज्यों बैल ॥ १३ ॥
 प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह दिना वैराग ।
 सतगुरु बिन जांवे नहीं, मन मनसा का दाग ॥ १४ ॥

पिया पिया रस जानिये, उतरै नहीं खुमार ।
 नाम अपल माता रहै, पिये अमीरस सार ॥३५॥
 कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय ।
 सिर सौपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय ॥३६॥
 कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक ।
 पाका कलस कुम्हारका, बहुरि न चढसी चाक ॥३७॥
 कबीर तासे प्रीति करु, जो निरवाहै ओर ।
 बने तो विविधि न राचियु, देखत लागै खोर ॥३८॥
 जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाँहि ।
 प्रेम गली अति सांकरि, तामें दो न समौहि ॥३९॥
 आया बबुला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास ।
 तिनका तिनका सँ मिला, तिनका तिनका पास ॥४०॥
 अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह ।
 जबही जलते बीछुरै, तवही त्यागै देह ॥४१॥
 सौ जोजन साजन वसै, मानो हृदय मँझार ।
 कपट सनेही आंगनै, जानो समुँदर पार ॥४२॥
 यह तत बढ तन एक है, एक मान दुइ गात ।
 अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥४३॥

३७. छाक-प्यास । ३८. विविधि-अनेको से । ४०. बबुला-बबडर । तिनका-जीमात्मा ।

१. पा० और न पीया जाय । २. पा० ऊठा । ३. पा०-दिल ।

हम तुम्हरो सुमिरन करै, तुम हम चितवौ नाँहि ।
 सुमिरन मनकी प्रीति है, सो मन तुमही माँहि ॥४४॥
 मेरा मन तो तूझ सों, तेरा मन कहुँ और ।
 कहै कविर कैसे, बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥४५॥
 ज्यों मेरा मन तूझ सों, यों तेरा जो होय ।
 अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥४६॥
 प्रीति जु लागी घुल गई, पैठि गई मन माँहि ।
 रोम रोम पियु पियु करै, मुख की सरधा नाँहि ॥४७॥
 जो जागत सो सपन में, ज्यों घट भीतर साँस ।
 जो जन जाको भावता, सो जन ताके पास ॥४८॥
 प्रीति ताहि सो कीजिये, (जो) आप समाना होय ।
 कवहुँक जो अवगुन पढ़ै, गुनही कहे समोय ॥४९॥
 नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
 कवीर पीवन दुलभ है, मोंगै सीस कलाळ ॥५०॥
 यह रस मँगा सो पिवै, छाँडि जीव की धान ।
 माथा साटे जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥५१॥
 सधै रसायन हम किया, प्रेम समान न कोय ।
 रंचक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥५२॥
 अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि ।
 आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिछावै घोरि ॥५३॥
 अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान ।
 वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहि आवै आन ॥५४॥

साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाती घुंद ।
 तृपा गड़ एक बुंदसे, क्या ले करो समुंद ॥५५॥
 मिलना जगमें कठिन है, मिलि विछुरौ जनि कोय ।
 विछुरा साजन तिहि मिलै, जिहि माथै मनि होय ॥५६॥
 जोड़ मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय ।
 मनसे मनसा ना मिलै, (तो) देह मिलै क्या होय ॥५७॥
 जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ नहि जाय ।
 जो दिल दिल सँ बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥५८॥
 नैनों की करि कोठरी, पुतली पलंग विछाय ।
 पलकों की चिक डारिकै, पियको लिया रिझाय ॥५९॥
 जब छगि मरने सँ डरै, तब लगि प्रेमी नाँहि ।
 वही दूर है प्रेम घर, समझि लेंहु मन माँहि ॥६०॥
 पिय का मारग कठिन है, जैसा खांडा सोय ।
 नाचन निकसी बापुरी, घूँघट कैसा होय ॥ ६१ ॥
 प्रिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अवैठ ।
 नाचि न जानै बापुरी, कहै आंगना टेढ ॥ ६२ ॥
 प्रीति बहुत संसार में, नाना विधि की सोय ।
 उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु सँ जो होय ॥ ६३ ॥
 गुनवेता औ द्रव्य को, प्रीति करै सब कोय ।
 कबीर प्रीती (सो) जानिये, इनते न्यारी होय ॥६४॥

कहा भयो तन बीछुरे, दूरि वसै जो वास ।
 नैना ही अंतर पढ़ा, प्रान तुम्हारे पास ॥६५॥
 जो है जाका भावता, जब तब मिलि हैं आय ।
 तन मन ताको सौपिये, (जो)कउहु न छाडी जाय ॥६६॥
 जल में वसै कमोदिनी, चंदा वसै अकास ।
 जो है जाका भावता, सो ताही के पास ॥६७॥
 तन दिखल्यै आपना, कछु न राखै गोय ।
 जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जु होय ॥६८॥
 सही हेत है तामुका, जाको सतगुरु टेक ।
 टेक निवाहै देह भरि, रहे सद्ध मिलि एक ॥६९॥
 पासा पकड़ा मेपका, सारी किया सरीर ।
 सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कवीर ॥७०॥
 खेल जु पँडा खिलाडिसों, आनंद बढा अघाय ।
 अब पासा काह पढौ, मेम बँधा जुग जाय ॥७१॥
 आगि आंचि सहना सुगम, सुगम खडग की धार ।
 नेह निवाइन एक रस, महा कठिन व्यौहार ॥७२॥
 नेह निवाहै ही बनै, सोचै बनै न आन ।
 तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥७३॥
 राई वातां वीसवा, फिर वीसन का वीस ।
 ऐसा मनुवा जो करै, ताहि मिलै जगदीस ॥७४॥

प्रेम पिछोरी तान के, सुख मंदिर में सोय ।
 घर कबीर को पाय के, कहा मुक्ति को रोय ॥७६॥
 प्रीति पुरानि न होत है, जो उत्तम से लाग ।
 सो वरसां जलमें रहे, पथर न छोड़े आग ॥७६॥
 तुम मति जानो बीछुरे, साजन प्रीति घटाय ।
 वैपारी का ब्याज ज्यूं, दिन दिन दून बढ़ाय ॥७७॥
 गहरी प्रीति सुजान की, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
 ओछी प्रीति अजानकी, घटत घटत घटि जाय ॥७८॥
 कबीर सूरत मित्र की, दिन दिन चढ़ रहे चित्त ।
 तन ना मिलै तो क्या भया, मन तो मिलता नित्त ॥७९॥
 प्रीति जु तासों कीजिये, जाकी जात मजीठ ।
 प्रीति कुसुंब न कीजिये, भीड़ पड़े दे पीठ ॥८०॥
 सजन सनेही बहुत हैं, सुखमें मिले अनेक ।
 विपति पड़े दुख बाँटिये, सो लाखन में एक ॥८१॥
 बलिहारी उस फूलकी, जामें दूनी वास ।
 अपना तन मन साँपके, भया पुराना घास ॥८२॥
 नेह निवाहन कठिन है, सबसे नीमत नाँहि ।
 चढ़वो मोम तुरंग पर, चढ़वो पावक माँहि ॥८३॥
 प्रेम प्रीतिसे जो मिले, ताको मिलिये धाय ।
 कपट राखि के जो मिले, तासँ मिले बलाय ॥८४॥

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर वसे, (जो)मील मांग नित खाया ॥८५॥
 एक दृष्टि दो नैन हैं, एक सख दो कान ।
 हम तुम एके पटतरा, दो घट में इक पान ॥८६॥
 पिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरुद न छांडही, क्यों छांड निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घडी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तव साँचा वैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोप ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरै, देत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥

विरह को अंग ।

राखूं रुनी विरहिनी, ज्युँ वचोंको कुंज
 कवीर अंतर परगठ्यो, विरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरुद-बाना । ९०. जन्म नसाय-आश्रमन का नाश होता है ।

१. रुनी-ठट्टास हुई । कुंज-क्रौंच । जैसे क्रौंच पक्षी अपने वचों के बिलुडने पर विलाप करता है ।

१. पा० रावेचा ।

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर बसे, (जो)भीख मांग नित खाया ८५॥
 एक दृष्टि दो नैन हैं, एक सद्ग दो कान ।
 हम तुम एके पटतरा, दो घट में इक मान ॥८६॥
 पपिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरह न छांडही, क्यों छांड निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घडी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा बैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान पिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरे, देत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥

विरह को अंग ।

राख्यूं रुनी विरहिनी, ज्युँ वचोंको कुंज
 कवीर अंतर परगठ्यो, बिरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरह-वाना १९०. जन्म नसाय-आयागमन का नाश होता है ।

१. रुनी-उदास हुई । कुंज-क्रौंच । जैसे क्रौंच पक्षी अपने वचों के विद्युडने पर विलाप करता है ।

१. पा० रमिचा ।

अमर कुंज कुरलाइया, गरजि भरा सब ताल ।
 जिनते ^१साहिव विछुरा, तिनका कौन हवाल ॥ २ ॥
^२चकवी विछुरी रैन की, ^३आय मिली परभात ।
 जो जन विछुरे नामसो, दिवस मिले नहि रात ॥ ३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माँहि ।
 जो नर विछुरे राम सो, तिनको धूप न छाँहि ॥ ४ ॥
 बहुत दिनन की जोहती, ^४वाट तुम्हारी राम ।
 जिय तरसै तुव मिलन को, मन नाँहीं बिसराम ॥ ५ ॥
 विरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछै धाय ।
 एक सद्ग कहो पीवका, ^५कव हि मिलेंगे आय ॥ ६ ॥
 विरहिनि देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव ।
 जल बिनमछली क्यों जिये, पानी में कत जीव ॥ ७ ॥
^६विरहिनि देय सँदेसरा, सुनहु राम सुजान ।
 बेगि मिलो तुप आय के, नहि तो तजिहौं प्रान ॥ ८ ॥
 विरहिनि विरह जलाइया, बैठी हूँ छार ।
 मति को (य) कुइला ऊवरै, जारै दूजी वार ॥ ९ ॥

२. अमर-आकाश में । आकाश में झौंच पक्षी वर्षा में चिट्हाते हैं । ४. छूप न छाहि न छूप ही अच्छी लगती है और न, छाया ।

१. पा० सतगुरु (साई) २. पा० रैन की विछुरी चाकरी । ३. पा० आनि ।

४. पा० रटत तुम्हारे नाम । ५. पा० कबरे ।

बिरहिनि जलती देखि के,	साईं आये धाय ।
प्रेम बुँद सों छिरकि के,	जलती लेय बुझाय ॥१०॥
बिरहिनि थो तो क्यों रही,	जरी न पिव के साथ ।
रहि रहि मूढ गहेलरी,	अब क्यों भीने हाय ॥११॥
बिरहिनि उठि उठि भुँड परै,	दरसन कारन राम ।
लोहा पाटी मिल गया,	तव पारस किहि काम ॥१२॥
पूये पीछे मति मिलो,	कहँ कवीरा राम ।
लोहा पाटी मिल गया,	तव पारस किहि काम ॥१३॥
बिरह जलती मैं फिरँ,	मोहि बिरह का दूय ।
छाँह न वैहँ डरपती,	मति जलि उठै रुख ॥१४॥
बिरह तेज तनमें तप	अंग सपै अकुलाय ।
बट सूना जिव पीव में,	पौत होंडि फिरि जाय ॥१५॥
बिरह कमंडल कर लिये,	वैरागी ठो निन ।
माँगै दरस मधुररी,	छक रहै दिन रैन ॥१६॥
बिरह विधा नैराग की,	कही न काहू जाय ।
भूंगा सपना देखिया,	समझि समझि पछिताया ॥१७॥
बिरह बढो वरी भयो,	हिरदा वरै न बीर ।
सुरति भनेही ना मिलै,	मिटै न मन की पीर ॥१८॥
बिरह मचल दल साजिके,	घेरि लियो मोहि आय ।
नहि माँ छोटै नही,	तलफि तलफि निय जाया ॥१९॥

विरह कुल्हाड़ी तन घड़े, घाव न बांधै रोह ।
 मरने का संसै नहौं, छूटि गया भ्रम मोह ॥२०॥
 विरह अग्नि तन मन जला, लागि गह्या तन जीव ।
 के वा जानै विरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥२१॥—
 विरह जलाई मै जलूँ, जलती जलहर जाऊँ ।
 मो देखा जलहर जलै, सन्तो कहँ बुझाऊँ ॥२२॥
 विरहा पूत लुहार का, धुवै हमारी देह ।
 कुइला किया न छूटि है, जब लग होय न खेह ॥२३॥
 विरहा पीव पठाइया, कही साधु परमोधि ।
 जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि ॥२४॥
 विरहा आया दरदसों, कडुवा लगा काम ।
 काया लागी काल है, मीठा लगा राम ॥२५॥
 विरहा सेती मति अटै, रे मन मोर सुजान ।
 हाड मांस रग खात है, जीवत करै मसान ॥२६॥
 विरही प्रानी विरह की, पिनर पीर न जाय ।
 एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥ २७ ॥
 विरहा विरहा मति कहो, विरहा है मुलतान ।
 जा घट विरह न संचरे, सो घट जान मसान ॥ २८ ॥—

२०. रोह—घावका भर आना । २२. जलहर—तालाब वगैरह ।

२४. तालाबेली—छटपटी, बेचैनी ।

विरहा मोसों यों कहै, गाढा पकड़ो मोहि ।
 चरन कमल की मौजमें, ले पहुँचावौ तोहि ॥ २९ ॥
 विरहा मयो विछावना, ओढन विपति वियोग ।
 दुख सिरहाने पाय तन, कौन बना संजोग ॥ ३० ॥
 विरहा कहै कवीरको, तू मति छटै मोहि ।
 पारब्रह्म के तेज में, जहाँ ले राखूँ तोहि ॥ ३१ ॥
 कवीर सुन्दरि यों कहै, मुनिये कंत मुजान ।
 बेगि मिलो तुम आयके, नहि तो तजि हौँ प्रान ॥ ३२ ॥
 कवीर हसना दूर करु, रोने से करु चीन ।
 बिन रोयै क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥ ३३ ॥
 कवीर चिनगी विरहकी, मो तन पडी चड़ाय ।
 तन जरि धरती हूँ जरी, अंबर जरिया जाय ॥ ३४ ॥
 कवीर सुपनै रैनके, पडा कलेजे छेक ।
 जब सोऊँ तब दुइ जना, जब जागूँ तब एक ॥ ३५ ॥
 कवीर वैद बुलाइया, जो भावै सो लेय ।
 जिहि जिहि औपध हरि मिलै, सो मो औपध देय ॥ ३६ ॥
 कवीर वैद बुलाइया, पकरि क देखी बाँधि ।
 वैद न वेदन जानसी, करक कलेजे बाँधि ॥ ३७ ॥

३५. सोना-अज्ञान । जागना-ज्ञान । ३६. वैद-संसारि उपदेशक ।
 ३७. करक-कसक ।

जाहु वेद घर आपने, तेरा किया न होय ।
 जिन या वेदन निरमई, मळा करेगा सोय ॥ ३८ ॥
 अंदेसो नहि भागसी, संदेसो कहिआय ।
 कै हरि आया भागसों, कै हरि पास गयाय ॥ ३९ ॥
 आय न सकि हौं तोहि पै, सकूं न तुझै बुलाय ।
 जियरा यौही लेहुगे, विरह तपाय तपाय ॥ ४० ॥
 या तन जाऊँ मसि करूँ, धूँवा जाय मुरंग ।
 मति वह राम दया करै, वरसि बुझावै अंग ॥ ४१ ॥
 या तन जाऊँ मसि करूँ, लिखूँ राम को नाँव ।
 लेखनि वरूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाँव ॥ ४२ ॥
 साँई तेवत जरि गई, मांस न रहिया देह ।
 साँई जब लग सेयहीं, या तन है हे खेह ॥ ४३ ॥
 कै विरहिनि को पीच दे, (कै)आप आय दिखलाय ।
 आँठ पहरका दाझना, मो पै सदा न जाय ॥ ४४ ॥
 तन मन जोवन जारिके, मसम किया सब देह ।
 उठी कवीरा विरहिनी, अजहूँ हूँदै खेह ॥ ४५ ॥
 हं जु विरह की लाकडी, समुझि समुझि धुँववाय ।
 छूटि पहुँ जो विरह सों, सघरी ही जलि जाय ॥ ४६ ॥
 लकडी जलि कुइला मये, मो तन अजहूँ आग ।
 विरह की ओदि लाकडी, सिलग सिलग उठि जाग ॥ ४७ ॥

निसदिन दाक्षे विरहिनी,	अंतर गति की लाय ।
दास कवीरा क्यों बुझै,	सतगुरु गये लगाय ॥ ४८ ॥
तन मन जोवन यों जला,	विरह अग्निनि सों लागि ।
मिरतक पीर न जानही,	जानेगी वा आगि ॥ ४९ ॥
चोट सतावै विरह की,	सब तनजरजर होय ।
भारन द्वारा जानि है,	कै जिस लागि सोय ॥ ५० ॥
अँखियन तो झाँई परी,	पथ निहार निहार ।
जिभ्या तो छाला पड्या,	नाम पुकार पुकार ॥ ५१ ॥
नैनन तो झडि लाइया,	रहट वई निमुवास ।
पपिठा ज्यों पिव पिय रटै,	पिया मिलनकी आस ॥ ५२ ॥
सब रग ताँती खाव तन,	विरह वजावै नीत ।
और न कोई मुनि सकै,	कै साँई कै चीत ॥ ५३ ॥
या तन का दिवला कल्ले,	घाती मेल्लुं जीव ।
लोहू सीचूँ तेल ज्यौ,	तव मुख देखूँ पीव ॥ ५४ ॥
अँखिया प्रेम कसाइयाँ,	जिन जानौ दुखदाय ।
नाम सनेही कारनै,	रो रो रात पिताय ॥ ५५ ॥

५३. खाम-एक प्रकार का वाणा ।

१. पा० अँखडिया प्रेम कनाइया, जनि जानो दुखडिया ।
 राम सनेही कारनै, राय रोय रातडिया ॥

'सोई आसू साजना, सोई लोग रूढ़ाय ।
 जो लोचन बलोही चुनै, शतो जानो हित आय ॥५६॥
 हसुँ तो दुःख न वीसरुँ, रोऊँ बल घटि जाय ।
 मनही माँहि विमूरना, ज्यों घुन काठ हि खाया ॥५७॥
 काठ हि घुन जो खाइया, खात न किनहु दीठ ।
 छाल उखाडी देखिये, भीतर जमिया चीठ ॥५८॥
 चीठर जमिया चुनका, वैरी विरहा खद ।
 बीछुरिया सो साजना, घेदन काहू लद ॥५९॥
 हसि हसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
 हाँसी खेलौं पिव मिले, (तो) कौन दुहागिन होय ॥६०॥
 हाँसी खेलौं पिव मिलै, (तो) कौन सहे खुरसान ।
 काम क्रोध तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥६१॥
 देखत देखत दिन गया, निसिभी देखत जाय ।
 विरहिनीं पिव पावै नही, जियरा तलफत जाय ॥६२॥
 'रोवत रोवत मै फिरुँ, नैन गँवायो रोय ।
 सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥६३॥
 नैना अन्तर आव. तू, निसदिन निरखुँ तोहि ।
 कव हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥६४॥

१७. विमूरना—सुसकना । १८. चीठ—मेल ।

१. पा० जोइ आसू साजन जन । २ पा० बडाहि । ३. पा० लोह ।

४. पा० जानो हेत हियाहि । ५. पा० रपरबत । ६. पा० गँवाऊ ।

नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोरें तुझ ।
 ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन, मुझ ॥६५॥
 रनयो राम छिपाइयो, रहु रहु संख मझर ।
 देवल देवल धाहरी, दिवस न ऊंग सूर ॥६६॥
 तू मति जानै बीसरो, प्रीति घटै मम चित्त ।
 मरुँ तो तुम सुमिरत मरुँ, जिऊँ तो सुमिरुँ नित्त ॥६७॥
 फारि पटोरा धज करुँ, कामळियो पहराऊँ ।
 जिन जिन भेपै हरि मिलै, सो सो भेप बनाऊँ ॥६८॥
 गळौ तुम्हारे नाम पर, ज्यौ पानी में लौन ।
 ऐसा विरहा मेळि के, नित दुख पावै कौन ॥६९॥
 सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।
 दुखिया दास कवीर है, जागै अरु रोवै ॥७०॥
 यो विरहिनि का पिव मुआ, दाग न दीया जाय ।
 मांस हि गलिगलिभुइ परा, करैक रही छपटाय ॥७१॥
 मळी भई जो पिव मुआ, नित उठि करता रार ।
 छूटी गळकी फांसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥७२॥
 काग करंक हँदौरिया, सुठि इक रहिया हाड ।
 जिस पिंजर विरहा वसै, मांस वहां रे हाड ॥७३॥

६८. पटोरा-रेशम के कपडे ।

१. पा० लोटें ।

मांस गया पिंजर रखा,
 साहिव अजहुँ न आइया,
 काग करंक न चूथि रे,
 मैं दुख दाशी विरह की,
 रगत मांस सब भपि गया,
 अब विरहा कूकर भया,
 पिय विन जिय तरसत रहे,
 रैन दिवस मोहि कळ नहि,
 जो जन विरही नाम के,
 देहीसैं . उद्यम करै,
 मैं तुमको हुंदत फिरँ,
 हिरदा माँहि उठि मिलै,
 अंक भरै भरि भेटिया,
 कहै कविर वह क्यों मिले,
 जीव विलंबा जीव सों,
 साहिव मिल न झल बुझै,
 जीव विलंबा जीव सों,
 लेख समाना (अ) लेख में,
 सब को(य) विरहिनि पीयरी,
 परचा पाया पीव का.

तमकन लागे काग ।
 पंद हमारे भाग ॥७४॥
 उठिरे परेरों जाय ।
 (द) श्वाघा पास न खाय ॥७५॥
 नेक न किन्ही कान ।
 लागो हाड चवान ॥७६॥
 पल पल विरह सताय ।
 सिसकि सिसकि दम जाया ७७॥
 तिनकी गति हैं येह ।
 सुमिरन करै विदेह ॥७८॥
 कहं न मिलिया राम ।
 कुसल तुम्हारे काम ॥ ७९ ॥
 मनमें बांधी धीर ।
 जब लग दोय सरीर ॥ ८० ॥
 अळख लखयो नहि जाय ।
 रही बुझाय बुझाय ॥८१॥
 पिय जो लिया मिलाय ।
 अज कटु कहा न जाय ॥८२॥
 तू विरहिनि क्यू लाल ।
 यों हम भई निहाल ॥ ८३ ॥

१. पा० ताकन । २. पा० दाशा । ३. पा० मन नहि बाधे धीर ।

४. पा० आरेनासी को सेज पर, भोजी भया निहाल ।

अविनासी की सेज का, कैसा है उनमान ।
 कहिये को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ ८४ ॥
 अविनासी की सेज पर, केलि कर आनंद ।
 कहैं कविर वा सेज पर, बिलसत परमानंद ॥ ८५ ॥
 तन मन जोवन जरि गया, विरह अग्नि घट लाग ।
 विरहिन जाँन पीर को, क्या जानेगी आग ॥ ८६ ॥
 आग लगी आकास में, शरि शरि परे अंगार ।
 कबीर जलि कंचन भया, कांच भया संसार ॥ ८७ ॥
 तन मन जोवन जारिके, भसम किया सब देह ।
 विरहिन जरि जरि मरि गई, क्या तू हूँदे खेह ॥ ८८ ॥
 लकड़ी जली कुइला भई, कुइला जलि भई राख ।
 मैं विरहिन ऐसी जली, कुइला भई न राख ॥ ८९ ॥
 दीपक पावक आनिया, तेल भि आना संग ।
 अतिनू मिलिके जोईया, जाटे जाडे परै पतंग ॥ ९० ॥
 हवस करे पिय मिलनकी, औ मुख चाहै अग ।
 पीड सहै बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग ॥ ९१ ॥
 चूड़ी पटकूँ पलंग सें, चौछी लार्ज आगि ।
 जा कारण या तन घरा, ना सूती गल लागि ॥ ९२ ॥
 पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
 चित चवक चहुँटे नहीं, धूँवा है है जाय ॥ ९३ ॥

सबही तरह तर जायके, सब फल लीनो चीख ।
 फिर फिर मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख ॥ ९४ ॥
 कबीर जिन कछु जानिया, मुख, निंदरी विहाय,
 मेरे अवसी बूझिया, पडी पडी विल्लाय ॥ ९५ ॥
 राम वियोगी विकल, तन, ताहि न चीन्हें कोय ।
 तबोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥ ९६ ॥
 पील कँदौरी सांझ्या, कँवल कहै इस रोग ।
 छौने लंघन नित करुं, राम पियारे जोग ॥ ९७ ॥
 जलो हमारा जीवना, यों मति जीवो कोय ।
 सब कोइ सूता निंद भरि, हमकुं निंद न होय ॥ ९८ ॥
 जिहि साईं का सोच है, सो तन फूले नाँहि ।
 जन कबीर सिमटा रहै, ज्यों अजा सिंघ पाँहि ॥ ९९ ॥
 मेरे मन होरी जरै, सब को खेले काग ।
 खेत सु मिरगा खा गया, राजा मांगे भाग ॥ १०० ॥
 फट रे दिया फाटै नहीं, सांई तनो वियोग ।
 कालां मुँह लीये फिरै, कह परमोधै लोग ॥ १०१ ॥

९५. मेरा=वास या लकड़ी का ढूंड जो कि पानी में बहाया जाता है । इहा मेरा से तात्पर्य शरीर का है ।

९७. साईं के वियोग में मैं कदुरी की तरह पीली हो गई । अज्ञानी लोग कहते हैं कि इसे पीलिया रोग हो गया है । मैंने प्यारे राम के मिलने के लिये पाच ज्ञान इन्द्रिया और मन के वियोगों को त्याग दिया है ।

१. पा. मैं अबूझी बूझिया, पूरी पडी बलाय ।

फाटे दीदे मैं फिरुं, नजर न आवै कोय ।
 जिस घट मेरा साइया, सो क्यों छाना होय ॥१०२॥
 विरहा बुरा जनि कहो, विरहा है सुलतान ।
 जा घट हरि विरहा नहीं, सो घट सदा मसान ॥१०३॥
 जा तनमें विरहा वसै, ता तन लोहु न मांस ।
 इतना बहुत जु ऊवरा, हाड चाम अरु स्वास ॥१०४॥
 पहिले अगनी विरह की, पीछे प्रेम पियास ।
 कहें कबिर तब जानिये, राम मिळन की आस ॥१०५॥
 जितना अवगुण मैं किया, तितना करै न कोय ।
 काला हवा मूखडा, धोय न सकहें रोस ॥१०६॥
 विरहीनी मर जायगी, आतुर हाळ शरीर ।
 बेगी दर्शन दीजिये, जीवै दास कबीर ॥१०७॥
 मैं दीवानी नाम की, कहै दिवानी कोय ।
 मोहि दिवाना आ मिळा, (तव)बंदी चंगी होय ॥१०८॥
 कबीर पीर पिरावनी, पिंजर पीर न जाय ।
 एक पीर जो प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥१०९॥
 सो सर मेरे मन बस्या, जिहि सर मारा कालिह ।
 सर बिनु सबु पाऊं नहीं, तिहि सर अजह मारि ॥११०॥
 मो चित तिल नहि वोसरौं, तुम हरि दूर ययांड ।
 यहि अंग औलू भाजसी, जद तद तुम मिलियांदा ॥१११॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
 कबीर खेत किसान का, पिरगन खाया झारि ।
 खेत विचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
 कबीर अनहूआ हुआ, बहु रीता संसार ।
 पडा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
 कबीर वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
 मृतु मडल में आय के, बिसरि गया जगदीस ॥२२॥
 कबीर वेडा जरजरा, कूडा खेवन हार ।
 हरये हरये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
 कबीर पांच पखेरुया, राखै पोष लगाय ।
 एक जु आयो पारधी, लड़ गय सबै उढाय ॥२४॥
 कबीर पैडा दूर है, बीचि पडी है रात ।
 ना जानौ क्या होयगा, ऊँते परभात ॥ २५ ॥
 कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुल्हार ।
 आप आपको काटि है, कहै कबीर विचार । २६ ॥
 कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाडै ओट ।
 घन अहरन बिच लोह ज्यों, धनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
 कबीर नाव तो झांझरि, भरी बिराने भार ।
 खेवन् भों परिचै नहीं, क्यों कर उतरै पार ॥ २८ ॥

कबीर रसरी पाव पें, कइ सोबै सुख चैन ।
 सांस नगारा कृच का, वाजत हे दिन रैन ॥ २९ ॥
 कबीर जंत्र न वाजई, टूटि गये सघ तार ।
 जंत्र विचारा क्या करै, चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
 कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक ।
 कान पकरिके ले चले, ज्यौ अजिया हि खटीक ॥ ३१ ॥
 कबीर पानी हीज का, देखत गया विलाय ।
 ऐसे ही जिव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
 कबीर चित्त हि चपकिया, किया पपाना दूर ।
 कायथ कागज काढिया, दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
 कबीर केवल नाम कइ, सुद्ध गरीबी चाल ।
 कूर बढ़ाई बूढसी, मारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
 कबीर पूंजी साहकी, तू जिन करै खुवार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
 मरेंगे मरि जायंगे, कोय न लेगा नाम ।
 ऊजह जाय बसाहिंगे, छोडि बमन्ता गाम ॥ ३६ ॥
 लेखा देना सोहगा, जो दिल साँचा होय ।
 साँई के दरवार में, पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
 कायथ कागज काढिया, लेखा वार न पारे ।
 जबलग सांस सरीरमें, मय छग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
 कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
 खेत विचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
 कबीर अनहूआ हुआ, बहु रीता संसार ।
 पडा भुलावा. गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
 कबीर 'वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
 मृतु मंडल में आय के, बिसरि गया जगदीस ॥२२॥
 कबीर बेडा जरजरा, कूडा खेवन हार ।
 हूरुये हूरुये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
 कबीर पांच पखेरुवा, राखै पोष लगाय ।
 एक जु आयो पारधी, लइ गय सबै उडाय ॥२४॥
 कबीर पैडा दूर है, बीचि पढी है रात ।
 ना जानौ क्या होयगा, ऊँगते परभात ॥ २५ ॥
 कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार ।
 आप आपको काटि है, कहै कबीर विचार । २६ ॥
 कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाडै ओट ।
 धन अहरन बिच लोह उर्यौं, धनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
 कबीर नाव तो झाझरि, भरी विराने भार ।
 खेवट भौं परिचै नहीं, क्यों कर उतर पार ॥ २८ ॥

कबीर रसरी पांव में, कह सोवै सुख चैन ।
 सांस नगारा कूच का, वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
 कबीर जंत्र न वाजई, टूटि गये सब तार ।
 जंत्र विचारा क्या करै, चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
 कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक ।
 कान पकरिके ले चले, ज्यौ अजिया हि खटीक ॥ ३१ ॥
 कबीर पानी हौज का, देखत गया विलाय ।
 ऐसे ही जिव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
 कबीर चित्त हि चमकिया, किया पयाना दूर ।
 कायथ कागज काठिया, दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
 कबीर केवल नाम कह, सुद्ध गरीबी चाल ।
 कूर वडाई बूडसी, भारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
 कबीर पूंजी साइकी, तू जिन करै खुवार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
 मरेंगे मरि जायेंगे, कोय न लेगा नाम ।
 ऊजड जाय यसाहिगे, छोडि वसन्ता गाम ॥ ३६ ॥
 लेखा देना सोहरा, जो टिल साँचा होय ।
 साँई के दरवार में, पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
 कायथ कागज काठिया, लेखा वार न पार ।
 जयलग सांस सरीरमें, नथ लग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

जिनके नौवत वाजती, मैगल बधति वारि ।
 एकहि गुरुके नाम विन, गये जनम सब हारि ॥ ३९ ॥
 ढोल दमामा दुरवरी, सहनाई संग भेरि ।
 औसर चले वजायके, है कोय राखि फेरि ॥ ४० ॥
 एक दिन ऐसा होयगा, सब सो परे विछोड ।
 राजा राना राव रैंक, मावध क्यों नहि होय ॥ ४१ ॥
 ऊनड खेडे टेकरी, घडि घडि गये कुम्हार ।
 गवन जैसा चलि गया, लंका को मरदार ॥ ४२ ॥
 आज काल के बीचमें, जंगल होगा वास ।
 ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरंगे घास ॥ ४३ ॥
 हाड जरै ज्यों लाकडी, केस जरै ज्यों घास ।
 सब जग जाता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ ४४ ॥
 पानी केरा बुद बुदा, इस मानुसकी जात ।
 देखत ही छिप जायंगे, ज्यों तारा परमात ॥ ४५ ॥
 रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय ।
 हीरा जनम अमोल था, कौडी बदले जाय ॥ ४६ ॥
 कै खाना कै खोवना, और न कोई चीत ।
 सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥ ४७ ॥
 निगडक बैठा नाम विनु, चेति न करै पुकार ।
 यह तन जलका बुदबुदा, बिनसत नाही चार ॥ ४८ ॥

यह औसर चेत्यो नहीं, पगु ज्यौ पाली देह ।
 सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पडे मुख खेह ॥४९॥
 आठे दिन पाछे गये, गुरु सों किया न हेत ।
 अब पछितावा क्या करै, चिडियां चुगि गइ खेत ॥५०॥
 आज कहै मैं काल भजुं, काल कहै फिर काल ।
 आज काल कं करत ही, औसर जासी चाल ॥५१॥
 काल करै सो आज कर, सबहि साज तुव साथ ।
 काल काल तू क्या करै, काल काल के हाथ ॥५२॥
 काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
 पल्ले परलय होयगी, बहुरि करेगा कव्व ॥५३॥
 पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल का साज ।
 काल अचानक मारसी, ज्यौ तीतर को वाज ॥५४॥
 पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय ।
 ना जानी क्या होयगा, पल के चौधे भाय ॥५५॥
 ऊंचा दीसै धौहरा, माँडी चीती पोल ।
 एक गुरु के नाम विना, जम मारेंगे रोल ॥५६॥
 ऊंचा मंदिर मेडियां, चूना कली दुलाय ।
 एकहि गुरु के नाम विन, जदि तदि परलै जाय ॥५७॥
 ऊंचा महल चुनाइया, सुवरन कली दुलाय ।

५६. धौलहरा-मीनार । माडीचीती-चित्रकारी की हुई । पोल-
 दरवाजा । रौल-खेल । १. पा० धौलहरा ।

ते मन्दिर खाली पडे, रहै मसानां जाय ॥५८॥
 कुंचा महल चूनावते, करते होडम होड ।
 ने मंदिर खाली पडे, गये पलकमें छोड ॥५९॥
 सातों शद्ध जु बाजते, घरि घरि होने राग ।
 ते मंदिर खाली पडे, बैठन लागे काग ॥६०॥
 कहा चुनावै मेडियां, चूना माटी लाय ।
 मीच सुनैगी पापिनी, दौरि कि लेगी आय ॥६१॥
 कहा चुनावै मेडियां, छंबी भीत उतारि ।
 घर तो साढे तीन हथ, घना तु पौने चारि ॥६२॥
 पांच तत्व का पूतला, मानुस धरिया नाम ।
 दिना चार के कारनै, फिर फिर रोकै ठाम ॥६३॥
 पाकी खेती देखिके, गरबै कहा किसान ।
 अजहू झोला बहुत है, घर आवै तव जान ॥६४॥
 घाट जले लकडी जले, जले जलावन द्वार ।
 कौतिक हारा भी जले, कासों करुं पुकार ॥६५॥
 घर रखनाला बाहिरा, चिडियां खाया खेत ।
 आधा परधा ऊवरै, चेति सकै तो चेत ॥६६॥
 मौत विसारी बाधरी, अचरन कीया कौन ।
 तन माटीयें मिलि गया, ज्यों आटायें लौन ॥६७॥

१. पा० सुवरन कली दुलायते, । २. पा० पाचौ शद्ध जु बाजते, ।

३. पा० मडा ।

जनमै मरन विचारि के, कूरे काम निवारि ।
 जिन पया तोहि चालना, सोई पय संवारि ॥६८॥
 जिन गुरुकी चोरी करी, गये नाम गुन भूल ।
 त विघना बागल रचे, रहै अरध मुख झूल ॥६९॥
 राम नाम जाना नहीं, पाला सकल कुटुंब ।
 धधा ही में पचि मरा, वार मई नहि बुंव ॥७०॥
 रामनाम जाना नहीं, हृआ बहुत अकाज ।
 बूडोगे रे बापुरे, बढे बडों की लाज ॥७१॥
 रामनाम जाना नहीं, ता मुख आन धरंम ।
 के मूसा के कातरा खाता गया जनंम ॥७२॥
 राम नाम जाना नहीं, मेला मना विसार ।
 ते नर हाली बालडी, सदा पराये वार ॥ ७३ ॥
 राम नाम जाना नहीं, वात विनूठी भूल ।
 देहरिसा हितू विसारिया, अंत पढी मुख धूल ॥ ७४ ॥
 राम नाम जाना नहीं, चूके अब की घात ।
 माटी मिलन कुम्हारकी, धनी सहेगा लान ॥ ७५ ॥
 माटी कहै कुम्हारको, क्या तू रौंटी मोहि ।
 एक दिन ऐसा होयगा, मै रौंटीगो तोहि ॥ ७६ ॥

७० बुव-डका, सुपश ।

१. पा० जिन जिन पंथों चालना, सो निज पय संवारि ।

२. पा० हेरत इहायी हारिया, पटत पढी मुख धूल ।

लकड़ी कहीं लुहारसों, तू मति जारै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहि ॥ ७७ ॥
कहा किया हम आयके, कहा करेंगे जाय ।
इत के भये न ऊतके, चाले मूल गँवाय ॥ ७८ ॥
जग जहदा में राचिया, झूठे कुलको लाज ।
तन छीजै कुछ विनसि है, रटै न नाम जहाज ॥ ७९ ॥
यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै ये साथ ।
दपका लाग़ा फुटि गया, वझू न आया हाथ ॥ ८० ॥
यह तन काचा कुंभ है, चोट चहुं दिस खाय ।
एक दि गुरुके नाम बिन, जदि तदि परलै जाय ॥ ८१ ॥
यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया रहिवास ।
कबीर नैन निहारिया, नहि जीवनकी आस ॥ ८२ ॥
दुनिया थांडा दुःख का, भरा मुँहा मुँह मूख ।
आदी अल्लह राम की, कुरलै कौनी कूख ॥ ८३ ॥
दुनिया के मैं कुछ नहीं, मेरे दुनिया कात ।
साहिब दर देखै खडा, दुनिया दोजख जात ॥ ८४ ॥
दुनिया सेती दोसती, होय भजनमें भंग ।
एकाएकी राम सों, कै साधन के संग ॥ ८५ ॥
दुनियाक धोखै मुआ, चला कुटुंब की कानि ।
तब कुलकी क्या लाज है, जब ले धरा मसानि ॥ ८६ ॥

कुल खोये कुल ऊबरे,
 राम निकुल कुल भेटिया,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि हे,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि हे,
 कहत सुनत जग जात है,
 कहै कबिर सुन मानिया,
 पानी का सा बुद बुदा,
 ऐसा जियरा जायगा,
 काया मंजन बया करै,
 ऊजल होय न छूटसी,
 ऊजल पहिनै कापडा,
 कवीर गुरूकी भक्ति विन,
 मलमल खासा पहिरते,
 नेढा होकर चालते,
 महलन मांहीं पोढते,
 ने सपने दीसे नहीं,
 महलन मांहीं पोढते,
 छत्रपती की छारमें,
 जंगल देरी राखकी,
 नेभी होते मानवी,

कुल राखै कुल जाय ।
 सब कुल गया विलाय ॥ ८७ ॥
 हंसा गया विगोय ।
 चारि पाँव का होय ॥ ८८ ॥
 दिग ही रहिगो राम ।
 (जब)जप की धूम्राधाम ॥ ८९ ॥
 विषय न सूझै काल ।
 सादिव नाम सम्हाल ॥ ९० ॥
 देखत गया विलाय ।
 दिन दस ठोली लाय ॥ ९१ ॥
 कपडा धोयम धोय ।
 सुख निंदरिनहिसोय ॥ ९२ ॥
 पान सुपारी खाय ।
 बाँधा जमपुर जाय ॥ ९३ ॥
 खाने नागर पान ।
 करते बहुत गुमान ॥ ९४ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 देखत गये विलाय ॥ ९५ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 गदहा लोटे जाय ॥ ९६ ॥
 उपरि उपरि हरियाय ।
 करते रंग रलियाय ॥ ९७ ॥

मेरा संगी कोय नहि,	सबै स्वाग्धी लोय ।
मन परतीति न ऊपजै,	जिय विश्वास नहोय ॥१८॥
थलि जो चरता मिरगला,	बेधा इक जुं सौंन ।
हम तो पथी पंथ मिर,	हरा चरेगा कान, ॥१९॥
जिसको रहना उत घरा,	सो क्यों तोड़े मीत ।
जैसे परघर पाहुना,	रहै उठाये चीत ॥१००॥
इत परघर उत है घरा,	बनिजन आये हाट ।
करम करीना बेचि के,	उठि करि चाळो बाटा ॥१०१॥
ज्यों कोरी रेजा बुनै,	नीरा आवै छोर ।
ऐसा लेखा मीच का,	दौरि सकै तो दौर ॥१०२॥
कोठे ऊपर दौरना,	सुख निंदरि नहि सोय ।
पुनै पाया देहरा,	ओळी दौर न खोय ॥१०३॥
मैं मेरी तू जनि करै,	मेरी मूल विनासि ।
मेरी पगका पैखडा,	मेरी गलकी फासि ॥ ०४॥
मैं मैं बडी बलाय है,	सको तो निकसु भागि ।
कवलग राखो रामजी,	रुई लपेटी आगि ॥१०५॥
मोर तोर की जेवरी,	बल बंधा संसार ।
कदा सुकुलवा सुतकलित,	दाक्षिन वारवार ॥१०६॥
मोर तोर की जेवरी,	गल बंधा संसार ।
दास कविग क्यों बंधै,	जाक नाम अधार ॥१०७॥

१०४. पैखडा-बेडी ।

१. पा० बुनता । २. पा० कायस कूटे वस्तु फल ।

नान्हा कातौ चित्त दे, मँहगे मोल विकाय ।
 ग्राहक राजा राम है, औरन नीरा जाय ॥१०८॥
 तन सराय मन पाहरु, मनसा उतरौ आय ।
 को काहू का है नदी, देखा ठोंकि बजाय ॥१०९॥
 राम कहेतै खिन्न परै, कुष्ट होय गलि जाय ।
 सूकर है करि औतरै, नाक बूडता खाय ॥११०॥
 पुर पट्टन काया पुरी, पाच चोर दस द्वार ।
 जमराजा गढ़ भेलसी, सुपरि लेहु करतार ॥१११॥
 पीपर सूना फूल बिन, फळ बिन सूनी राय ।
 एकाएकी मानुपा, टप्पा दीया आय ॥११२॥
 राज दुवारे बांधिया, मूढी धुनै गयंद ।
 मनुष्य जनम कब पायहू, कब भजिहू गोविंद ॥११३॥
 आये हैं ते जायंगे, राजा रक फकीर ।
 एक मिघासन चढि चले, (एक)रांधे जात जैजीर ॥११४॥
 या मन गहि जो धिर रहै, गहिरी धूनी गाहि ।
 चलती बिरिया उठि चला, हस्ती घोड़ा छाडि ॥११५॥
 तू मति जानै बावरे, मेरा है सब कोय ।
 पिंड मान सो बधि रहा, सो नहि अपना होय ॥११६॥
 दीन गँवायो दुनि सँग, दुनी न चाली साथ ।
 पाँव कुल्हाडी मारिया, मूस्व अपने हाथ ॥११७॥
 मैं भौरा तुहि बरजिया, वन वन घोस न लेय ।
 अटकेगा कूटुं बेलसों, तटप तटप जिय देय ॥११८॥

वाढी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता वास ।
 सो तो भौरा उडि गया, तजि वाढीकी आस ॥११९॥
 ऐसी गति संसार की, ज्याँ गाढर की ठाट ।
 एक पढी जिहि गाड़ में, सबै जाहि तिहि वाट ॥१२०॥
 एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस ।
 लंकापति रावन गया, बीस भुझा दम सीस ॥१२१॥
 कालचक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात ।
 सगुन अगुन दीय पाटला, तामें जीव पिसात ॥१२२॥
 राम भजो तो अब भजो, बहोरि भजोगे कव ।
 हरिया हरिया रूखडे, इधन हो गये सब ॥१२३॥
 भ बिनु भाव न ऊपजै, भै बिनु होय न प्रीति ।
 जब हिरदे से भै गया, पिटी सकलरस रीति ॥१२४॥
 भयसे भक्ति करै सबै, भयसे पूजा होय ।
 भय पारस है जीवको, निरभय होय न कोय ॥१२५॥
 डर करनी डर परमगुरु, डर पारस डर सार ।
 डरता रहै सो ऊवरै, गाफिल खावै मार ॥१२६॥
 खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद ।
 चांझ हिलावै पालना, तामें कौन सवाद ॥१२७॥
 यह त्रिरियाँ तो फिरि नहि, मन में देखु विचार ।
 आया लाभ हि कारनै, जनम जुआ मतिहार ॥१२८॥

बैल गढन्ता नर गढा, चूका सींग रु पूछ ।
 एक हि गुरुके नाम विनु, धिक दादी धिक मूल ॥१२९॥
 यह मन फूला विषय बन, तहाँ न लावो चीत ।
 सागर क्यों ना उडि चलो, सुनी वैन मन पीठ ॥१३०॥
 कहें कधीर पुकारि के, चेत नाहीं कोय ।
 अवकी बिरियो चेति है, सो साहिबका होय ॥१३१॥
 धोखे धोखे जुग गया, जनपदि गया सिराय ।
 थिति नहि पकडो आपनी, यह दुःख कडासमाय ॥१३२॥
 केतो कह चुझाय के, परहथ जीव बिकाय ।
 में खँचू सत लोकको, सीधा जमपुर जाय ॥१३३॥
 झूठा सब संसार है, कोउ न अपना भीत ।
 सत्तनाम को जानि ले, चले सो भौजल जीत ॥१३४॥
 एकदिन ऐसा होयगा, कोय काहुका नौहि ।
 घरकी नारी को कहै, तनकी नारी जाहि ॥१३५॥
 आठ प्रहर यौही गया, माया मोह जंजाल ।
 सत्तनाम हिरदे नहीं, जीत लिया जम काल ॥१३६॥
 मदिर माँही झलकती, दीवा की सी ज्योति ।
 हस वगऊ चलि गया, काढी घरकी छोति ॥१३७॥

१३५. तन की नारी-नाडी ।

१ पा० वाधा । १ पा० करकी ।

वारी वारी आपने, चले पियारे मीत ।
 तेरी वारी जीयरा, नियरे आवै नीत ॥१३८॥
 सेस नागके सहस फन, फन फन जिभ्या दोय ।
 नरके एकै जीभ है, रहै ताहि में सोय ॥१३९॥
 परदै रहती पदांमनी, वरती कुलकी कान ।
 छडी जु पहुँची कालकी, छोड भई भैदान ॥१४०॥
 मछरी यह छोडौ नहीं, धीमर तेरो काल ।
 जिहि जिहि डायर घर करो, तहँ तहँ मेले जाल ॥१४१॥
 पानीमे की माछरी, क्यों नै पकर्या तीर ।
 कटिया खटकी जालकी, आई पहुँचा कीर ॥१४२॥
 हे मतिहीनी माछरी, राखि न सकी शरीर ।
 सो सरवर सेवा नहीं, जाल काल नहि कीर ॥१४३॥
 हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय ।
 कदि समुद्रसे रुसना, छीलर चित्त दियाय ॥१४४॥
 हे मतिहीनी माछरी, छीलर माही आलि ।
 डायरिया छुटै नहीं, सकै तुसभुँद सँभाल ॥१४५॥

१३८. शास्त्र का कथन है कि शेष नाग भी अपना दो हजार जिह्वाओं से हरि का भजन करता है। यह भी अपनी। जिह्वाओं को प्रपञ्च से रोके रहता है। नर के एक जीभ है परन्तु यह उसे भी नहीं रोक सकता।

१४२. कीर-धीमर। १४३. आल-क्रीडाविहार।

मछली फिरि फिरि बाहुरी, ताकि समुंदर तीर ।
 दरिया भीतर घर किया, कहा करेगा कीर ॥१४६॥
 आंखदियाँ रतनालियां, चेजा करै पताल ।
 मैं तोहि बूझौ मालली, तू क्यों बंधी जाल ॥१४७॥
 सुखन लागै केवडा, टूटन लागै डार ।
 पानी की कल जानता, चला सो सींचन हार ॥१४८॥
 भाई चोर बटाउवा, मरि मरि नैनन रोय ।
 जाका था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१४९॥
 मरती धिरियाँ पुँन करै, जीवत बहुत कठोर ।
 कहै कविर क्यों पाइये, काँटै खाँडै चोर ॥१५०॥
 कबीर यह चिन्तामनी, भ्रत संसार गँवाय ।
 जो पहिले सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाय ॥१५१॥
 जब रंग था तब न रंगा, हरि रंग मान मजीठ ।
 अब पछताये क्या हुआ, जब रंग दिन्हा पीठ ॥१५२॥
 सुमरिन का संसै रहा, पछितावा मन माँहि ।
 कहै कबीरा रामरस, सधरा पीया नाँहि ॥१५३॥
 विषय वासना उरझिकर, जनम गँवाया बाद ।
 अब पछितावा क्या करै, निजकरनी कर याद ॥१५४॥
 कबीर दरदीवान जो, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुगी कमायके, पीछै करि फिरियाद ॥१५५॥

१४७. चेजा-घर । १५५. दाद-धन्यवाद ।

१. पा० जनि संसारी जाय ।

एक बुन्द ते सब किया, नर नारी का नाम ।
 सो तू अन्तर खोजि ले, सकल वियापक राम ॥१५६॥
 एक बुंद ते सब किया, यह देहका विस्तार ।
 सो तू क्यों बीसारिया, अंधा मूढ गँवार ॥१५७॥
 सब घट भीतर राम है, ऐसा आप सुजान ।
 आप आप से बांधिया, आपै मया अज्ञान ॥१५८॥
 पांच धातुका पिजरा, सो तो अपना नाँहि ।
 अपना पिजर तहँ वसे, अगम अंगोचर माँहि ॥१५९॥
 सगा हमारा रामजी, सहुदर है पुनि राम ।
 और सगा सब सगपगा, कोइ न आवे काम ॥१६०॥
 चले गये सो ना मिले, किसको पूछूँ वात ।
 मात पिता सुत बान्धवा, झूठा सब संघात ॥१६१॥
 राम बिसारो बावरा, अचरज किन्ही येह ।
 घन जीवन चल जायगा, अंत होयगी खेह ॥१६२॥
 मनुस जन्म तोकूँ दियो, भजिबेको हरिनाम ।
 कहै कवि चेत्यो नहीं, लगे औरहि काम ॥१६३॥
 मनुस जन्म तोकूँ दियो, भजिबेको गोविन्द ।
 अपनी करनी आपको, कदा बंधाये फंद ॥१६४॥
 कबीर केवल नामकी, जवळगि दीपक वाति ।
 तेल घटा वाती वृद्धी, तव सोवे दिनराति ॥१६५॥

मनुसा जन्महि पायके, भज्यो नरघुपतिराय ।
 तेली केरा बैल ज्यु, फिरिफिरि फेराखाया ॥१६६॥
 जो तं परा हे फंदमे, निकसेगा कव अंध ।
 माया मद तोकं चढा, मत भूले मति मंद ॥१६७॥
 कवीर काया पाहुनी, हंस बटाऊ मॉहि ।
 ना जानूं कव जायगी, मोहि भरोसा नाँहि ॥१६८॥
 भाटी केरा पूतला, मानुप धरिया नाम ।
 एक कला के बीछुगे, विकल भया सबठाम ॥१६९॥
 यह अवसर चेत्यो नहीं, चूक्यो मोठी घात ।
 भाटी मिलत कुंभार की, बहुत सहेगो लात ॥१७०॥
 दरद न लेवै जात को, मुआ न राखे कोय ।
 सगा लसीको कीजिये, (जो)नेह निवाहू होया ॥१७१॥
 मनुषा जनम हि प्राय के, जब लगि भज्यो न राम ।
 जैसे कृषा जल विना, ताको नाही काम ॥१७२॥
 जिन घर नौबत वाजती, होत छतीसों राग ।
 सो घर भी खाली पडे, बैठन लागे फाग ॥१७३॥
 क्या करिये क्या जोदिये, थोडे जीवन काज ।
 छांढि छांढि सब जात है, देह गेह धन राज ॥१७४॥
 जागो लोको मत सुत्रो, ना करु निंदसे प्यार ।
 जैसा सपना रैनका, ऐसा यह संसार ॥१७५॥

सब कोई मरि जात है,
 सत्तनाम प्रकारतां,
 एक बुद के कारनै,
 १(अ)नेक बुंद खाली गये,
 मरुं मरुं सब को(इ) कहै,
 मरना था सो मरि चुका,
 मन मूआ पाया मुई,
 अविनाशी जो ना मरे,
 मरते मरते जग मुआ,
 राम कविरा यौ मुआ,
 ना मूआ ना मरि गया,
 यह चरित्र करतारका,
 जाय मरे मो जीव है,
 जन्म मरनसँ न्यार है,
 हरि मरि है तो,
 हरि न मरे,
 नर नारायन रूप है,
 जो समझे तो समझ जे,
 अर्ध कपाले झूलता,
 जठरा मेती राखिया,

काल काल की फाँस ।
 कोइक उररा दास ॥१७६॥
 रोता सब संसार ।
 तिनका नहीं विचार ॥१७७॥
 मेरी परै वजाय ।
 अब को मरनै जाय ॥१७८॥
 संशय मुभा शरीर ।
 तो कर्षो मरे कवीर ॥१७९॥
 सुत धित दारा जोय ।
 एक घरावर होय ॥१८०॥
 नहि आवै नहि जाय ।
 उपजै और समाय ॥१८१॥
 रमता राम न होय ।
 मेरा साहिब सोय ॥१८२॥
 हम हूं मरि हैं ।
 हम काहे को मरि हैं ॥१८३॥
 तू मति जानै देह ।
 खलक पलकमें खेह ॥१८४॥
 सो दिन कर ले याद ।
 २नॉहि पुरुष कर बाद ॥१८५॥

अहिरन की चोरी करे, करे सूइ का दान ।
 ऊंचा चढि कर देखता, वैतिक दूर विमान ॥१८६॥
 कबीर पट्टण कारिवां, पांच चोर दस द्वार ।
 जम राना गढ़ भेलसी, बोल गले गोपाल ॥१८७॥
 आया अन आया भया, जब राता संसार ।
 पढा भुलावा गाफिला, गये कुबुद्धि द्वार ॥१८८॥
 पानी ज्यों रि तलावका, दस दिसि गया बिलाय ।
 यह सब यों ही जायगा, सकै तो ठाहर लाय ॥१८९॥
 माय विदानी वाप विड़, हम भी मांझ विडांहि ।
 दरिया केरी नाव ज्युं, संजोगै मिलि जांहि ॥१९०॥
 आंखि न देखे वावरा, सद्ध सुनै नहि कान ।
 सिरके केस लजल भये, अवहं निपट अजान ॥१९१॥
 क्यों खोवै नरतन त्रिधा, परि बिंपयन के साथ ।
 पांच कुल्हाडी मारही, मूरख अपने हाथ ॥१९२॥
 चेत सवरे वावरे, फिर पाछे पछताय ।
 सुझको जाना दूर है, कहें कबीर जगाय ॥१९३॥
 मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार ।
 सत्य सव्द नहि खोजई, जावै जमके द्वार ॥१९४॥
 राजपाट धन पाय कर, क्यों करता अभिमान ।
 पाडीसीकी जो दशा, लड़ सो अपनी जान ॥१९५॥

यह नर गर्व भुलाइया, देखी माया झौ
 कहै कविर अब चेत हू, सुमिरि पाछलो कौल ॥१९६॥
 समुझाये समझे नही, धरे बहुत अभिमान ।
 गुरुका शब्द उछेदके, कहत सकल हप जान ॥१९७॥
 ज्ञानी होय सो ही, वूझै सब्द .इमार ।
 कहै कविर सो वांचि है, और सकल जम धार ॥१९८॥
 साधु महातम ना कहै, गुरुवन दिया लखाय ।
 कहै कविर वा गुरुका, चेला चौरासि जाया ॥१९९॥
 स्वामी सेवकसें कहै, मुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखू, नहि हीरासे हेत ॥२००॥
 कवीर मनुवा मोर हँ, संसय रूपी साँप ।
 खाया पीया पचि गया, अन्तर प्रगटे आप ॥२०१॥

उपदेस को अंग ।

जीवदया कित राखिने, साखी कहै कवीर ।
 भौसागर के जीव को, आनि लगावै तीर ॥ १ ॥
 अंतर याहि विचारिया, साखी कहो कवीर ।
 भौसागर में जीव है, मुनि कै लागै तीर ॥ २ ॥
 काल काल तत्काल है, बुरा न करिये कोय ।
 अनबोवै लुनता नहीं, बोवै लुनता होय ॥ ३ ॥
 काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय ।
 भले भलाई पै लहे, बुरे बुराई होय ॥ ४ ॥
 जो तोको कांटा बुवै, ताको वो तू फूल ।
 तोहि फूलको फूल है, वाको है तिरमूल ॥ ५ ॥
 दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
 बिना जीवकी सौम से, लोह भसम है जाय ॥ ६ ॥
 कवीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय ।
 आप ठगे मुख उपजै, और ठगे दुःख होय ॥ ७ ॥
 या दुनियामें आयके, छांदि देय तू पैठ ।
 लेना है सो लेय ले, ऊठि जात है पैठ ॥ ८ ॥
 खाय पकाय लुटाय ले, यह मनुवा मिजमान ।
 लेना है सो लेय ले, यही गोय मैदान ॥ ९ ॥

३. अनबोवै-बिना बीज डाले । लुनता नहीं-काटता नहीं । ९. गोप-गैद ।

खाय पकाय लुटायके, करिले अपना काम ।
 चलनी विरिया रे नरा, संग न चलै छदाम ॥ १० ॥
 लेना होय सो रूढ ले, कही सुनीमति मान ।
 कही सुनी जुगजुग चली, आवा गवन बंधान ॥ ११ ॥
 सत ही में सत बांई, रोटी में ते टुक ।
 कहै कपिर ता दासको, कबहु न आवि चूक ॥ १२ ॥
 देह धरे का गुन यही, देह देह कुछ देह ।
 बहुरि न देही पाइये, अब की देह सुदेह ॥ १३ ॥
 कहै कबीर पुकारि कै, दो बातें लिखि लेय ।
 कै साहब की बदगी, भूखोंको कुछ टय ॥ १४ ॥
 कहै कबीरा देय तूं, जबलग तेरी देह ।
 देह खेह है जायगी, (फिर) कौन कहेगा देह ॥ १५ ॥
 देह खेह है जायगी, (फिर) कौन कहेगा देह ।
 निश्चय कर उपकारही, जीवन का फल येह ॥ १६ ॥
 हाट बड़ा हरि भजन करि, इव्य बड़ा कुछ देह ।
 अकल बडी उपकार करि, जीवन का फल येह ॥ १७ ॥
 गांठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह ।
 आगे हाट न बनिया, लेना है सो लेह ॥ १८ ॥
 यहां बिसाहन करि चलो, आगे बिसमी वाट ।
 स्वर्ग बिसाहन ना मिले, ना बनिया ना हाट ॥ १९ ॥

धर्म किये धन ना घटे, नदी न घटे नीर ।
 अपनी आँखों देख लो, यों कथि कहै कवीर ॥ २० ॥
 कवीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर ।
 खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर ॥ २१ ॥
 स्वामी है संग्रह करै, दूजै दिन का नीर ।
 तरे न तरि और को, यों कथि कहै कवीर ॥ २२ ॥
 या दुनिया टो रोजकी, मत कर यासै हेत ।
 गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन मुख देत ॥ २३ ॥
 हस्ती चढिये ज्ञान का, सहज दुलीचा द्वार ।
 स्वान रूप संसार है, भुंकरन दे शक मार ॥ २४ ॥
 कवीर काहेको डरे, सिरपर मिरजन द्वार ।
 हस्ती चढि दुस्त्रिये नहीं, कृकर भुसै हजार ॥ २५ ॥
 ऐसी नानी बोलिये, मन का आपा खोय ।
 औरन को सीतल करै, आपुहि सीतल होय ॥ २६ ॥
 जगमे बैरी कोय नहि, जो मन सीतल होय ।
 या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय ॥ २७ ॥
 कहने को कहि जान दे, गुरु की सिख तूं लेय ।
 साकट जन औ स्वान को, फेर जवाब न देय ॥ २८ ॥
 कवीर तहाँ न जाइये, जहँ जो कुल को हेत ।
 साधुपनो जानै नहीं, नाम याप को लेत ॥ २९ ॥
 कवीर तहाँ न जाइये, जहाँ सिद्ध को गाँव ।
 स्वामी कहै न बैठना, फिर फिर पूछे नाँव ॥ ३० ॥

कबीर संगी साधु का, दल थाया भरपूर ।
 इंद्रिन को तब बांधिया, या तन कीया घूर ॥३१॥
 इष्ट मिले अरु मन मिले, मिले सकल रस रीत ।
 कहै कविर तहाँ जाइये, यह संतन की प्रीत ॥३२॥
 आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
 कहै कविर नहि उलटिये, वही एकही एक ॥३३॥
 गारी मोटा ज्ञान, जो रंचक उरमें जरै ।
 कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै ॥३४॥
 कोटि सँवारै काप, वैरि उलटि पाँवन परै ।
 गारी सौं क्या हानि, हिरदै जु यह ज्ञान धरै ॥३५॥
 गारी ही सँ ऊपजे, कलह कष्ट औं मीच ।
 हारि चलै सो सन्न है, लागि मरै सो नीच ॥३६॥
 हारजन तो हारा भला, जीवन दे संसार ।
 हारा तो हरि सौं मिले, जीता जमके द्वार ॥३७॥
 जैसा घट तैसा मता, घट घट और छुभाव ।
 जा घट हार न जीत है, ता घट ब्रह्म समात्र ॥३८॥
 जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय ।
 जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥३९॥
 कथा कीरतन कलि विपे, भौं सागर की नाय ।
 कहै कविर जन तरनको, नाँही और उपाव ॥४०॥

कथा कीरतन करनकी, जाके निसदिन रीत ।
 कहै कविर वा दाससों, निश्चै कोजै , पीत ॥ ४१ ॥
 कथा कीरतन छाँडि कै, करै जु और उभाव ।
 कहै कविर ता साधके, पास कोइ मति जाव ॥ ४२ ॥
 कथा कीरतन रातदिन, जाके उद्यम येह ।
 कहै कविर ता साधुके, चरन कमलकी खेह ॥ ४३ ॥
 कथा करो करतारकी, निमदिन साग्र सकार ।
 काम कथा को परिहरो, कहै कवीर विचार ॥ ४४ ॥
 कामकथा मुनिये नहीं, मुनि कै उपजै काम ।
 कहै कवीर विचार के, भिसरि जात है नाम ॥ ४५ ॥
 कथा करो करतार की, मुनो कथा करतार ।
 आन कथा मुनिये नहीं, कहै कवीर विचार ॥ ४६ ॥
 आन कथा अंतर परै, ब्रह्म जीवमें सोय ।
 कहै कविर यह दोष बढ, मुनि लीजै सब कोय ॥ ४७ ॥
 कथा कीरतन कलि विपे, तरवे को उपकार ।
 सुने सुनावै प्रेम सों, यह उपदेश इमार ॥ ४८ ॥
 कथा कीरतन मुननको, जो कोय करै मनेह ।
 कहै कविर वा दासकी, मुक्तिमें नहि संदेह ॥ ४९ ॥
 बहते को यहि जान दे, मत पकडावै ठौर ।
 समझाया समझै नहीं, देव घका दो और ॥ ५० ॥

बहते को मत बहन दो, कर गहि ऐंचहु ठौर ।
 कह्यो सुन्यो मानै नहीं, सब्द रुहो दुइ और ॥ ५१ ॥
 बदे तूं कर बदगी, तो पावै दीदार ।
 औसर मानुस जनमका, बहुरि न चारंबार ॥ ५२ ॥
 बार बार तो सों कहा, सुनरे मनवा नीच ।
 बनजारेका बेल ज्यु, पैडा माही मीच ॥ ५३ ॥
 बनजारे को बेल ज्यु, टाडो उतर्यो आय ।
 एकन के दूना भया, (एक)चाला मूल गँवाय ॥ ५४ ॥
 मन राजा नायरु भया, टाडा लादा जाय ।
 हे हे हे हे हे रही, पूंजी गई बिलाय ॥ ५५ ॥
 बनजारे के बैठे ज्यु, भरमि फिर्यो चहुँ देस ।
 खाँड लादि भुस खात हे, दिनसतगुरु उपदेस ॥ ५६ ॥
 जीवत कोय समुझै नहि, मुग़ा न कह संदेस ।
 तनमनसँ परिचय नहीं, ताको क्या उपदेस ॥ ५७ ॥
 जो कोय समुझै सैनमें, तासँ कहिये बैन ।
 सैन बैन समुझै नही, तासो कह न कैन ॥ ५८ ॥
 जिहि जियरी ते जग वँधा, तूं जनि वँधै कवीर ।
 जासी आटा लौन ज्यौ, सोन समान शरीर ॥ ५९ ॥
 जिन गुरु जैसा जानिया, तिनको तैसा लाभ ।
 ओसे प्यास न भागसी, जत्र लगि घसै न आभ ॥ ६० ॥

जिन दृढा तिन पाइया,
 जो वौरा इवन डरा,
 चतुराई क्या कीजिये,
 कोटिक गुन सूत्रा पट्टै.
 (अल)मस्त फिरै क्या होत है,
 चतुराई नहीं छटसी,
 पढ़ना गुनना चातुरी,
 काम दहन मन बस करन,
 पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये,
 कधीर अन्तर प्रेमकी,
 नाम भजो मन बसि करो,
 काहे को पढ़ि पवि मरो,
 करता था तो क्यों रक्षा,
 धोवै पेड़ बरूलका,
 भै कधि कधि कहि कधि गये,
 सचनाम तत सार है,
 जिनमें जितनी बुद्धि है,
 वाको दुरा न मानिये,
 काल (का) जीव मानै नहीं,
 मैं खैचूं सतलोक को,

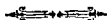
गहरे पानी पैठि ।
 रक्षा किनारै बैठि ॥ ६१ ॥
 जो नहीं सब्द समाय ।
 अन्त विछाई साय ॥ ६२ ॥
 सुरति सब्द में पोय ।
 सुरति सब्द में पोय ॥ ६३ ॥
 यह तो बात सहल ।
 गगन चढ़न मुसकल ॥ ६४ ॥
 लिखि लिखि भये जु ईट ।
 लागी नेक न छीट ॥ ६५ ॥
 यही बात है तंत ।
 कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥ ६६ ॥
 अब करि क्यों पछिताय ।
 आम कहा ते खाय ॥ ६७ ॥
 ब्रह्मा विष्णु महेश ।
 सब काहू उपदेस ॥ ६८ ॥
 तितनो देव बताय ।
 और कहाते लाय ॥ ६९ ॥
 कोटिन कहू बुझाय ।
 बांधा जमपुर जाय ॥ ७० ॥

आत्म पूजा निव दया, पर आत्म की सेव ।
 कहै कविर सतनाम भज, सहज परम पद लेव ॥ ७१ ॥
 सचनाम सुभिरन करै, सतगुरु पद निज ध्यान ।
 आत्म पूजा निव दया, लड़े सो मुक्ति अमान ॥ ७२ ॥
 चातुर को चिंता घनी, नहि मूरख को लाज ।
 सर अवसर जानै नहीं, पेट भरन सँ काज ॥ ७३ ॥
 कंचन को कलु ना लगे, आग न कीडा खाय ।
 बुरा भला होय वैश्रव, कटी न नरके जाय ॥ ७४ ॥
 भूख गई भोजन मिले, ठंड गई कंवाय ।
 जीवन गई तिरिया मिले, ताको आग लगाय ॥ ७५ ॥
 मांगन को भल बोलनो, चोरन को भल चूप ।
 मांली को भल घरसनो, धोबी को भल धूप ॥ ७६ ॥
 धोती पोती बोनती, गुरु सेवा सतसंग ।
 ये औरनसँ ना बनै, खाज खुनावन अंग ॥ ७७ ॥
 तीन तापमें ताप है, तिनका अनँत उपाय ।
 ताप आत्म महाबली, संत बिना नहि जाय ॥ ७८ ॥
 हिय हीरा की कोठरी, चारचार मत खोल ।
 मिले हिराका जौहरी, तब हीराका मोल ॥ ७९ ॥
 हां न जाको गुन लड़े, तहां न ताको ठांव ।
 धोबी बस के बया करे, दीगंवर के गांव ॥ ८० ॥

अति हठ मत कर बांभरे, हठसे बात न होय ।
 ज्युं ज्युं भीजे कामरी, त्युं त्युं भारी होय ॥८१॥
 सबसे हिलिये सबसे मिलिये, सबका लीजे नाम ।
 हांजी हांजी सबसे कहिये, बसिये अपने ठाम ॥८२॥
 वाद विवादां मनि करे, करु निन अपना काम ।
 गुरु चरनों चित लाय के, भज ले केवल राम ॥८३॥
 बालू जैसी करकरी, कुजल जैसी धूप ।
 ऐसी मीठी कलु नहीं, जैसी मीठी चूप ॥८४॥
 रितु वसंत याचक भया, हरखि दिया दुम पात ।
 ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहि जात ॥८५॥
 जो जल बाढे नावमें, घरमें बाढे दाम ।
 दोनों हाथ उलीचिये, यही सयाना काम ॥८६॥
 काम क्रोध तृष्णा तजै, तजै मान अपमान ।
 सद्गुरु टाया जाहि पर, जम सिर परदे मान ॥८७॥
 काया सों कारज करे, मकल काम की रीत ।
 कर्म भ्रम सब भेटके, सभ्य नाम सों प्रीत ॥८८॥
 गुरु मुग्व सह्य प्रतीति कर, हर्ष सोक विसराय ।
 दया क्षमा सत सील गहि, अमरलोक को जाय ॥८९॥
 खाख उपेठे जो रहें, उन्हें नीच मति लेख ।
 साईं के मन भावही, ज्यों कीकीमें रेख ॥९०॥

भाव मुआ तो मरन दे, सदा चलैगा नाम ।
 कबीर द्वारै बैठि के, करिले अपना काम ॥९१॥
 मान अभिमान न कीजिये, कहैं कबीर पुकार ।
 जो सिर साधू ना नमै, सो सिर काटि उतार ॥९२॥
 सांझ सवेरे बखत दो, सीस नैवावन जाय ।
 कबीर रात जु ना पड़े, साधु धरै जो पाय ॥९३॥
 गुरु को पूजै गुरुमुखी, वाना पूजै साध ।
 पट दरसन जो पृजहीं, ताका मता अगाध ॥९४॥

सब्द को अंग ।



कबीर सद्द सरीर में, विन गुन वाजै तांत ।
 बाहर भीतर रमि रहा, ताते छूटी भ्रांत ॥ १ ॥
 सद्द सद्द बहु अन्तरा, सार सद्द चित देह ।
 जा सद्द साहिव मिले, सोइ सद्द गहि लेह ॥ २ ॥
 सब्द सब्द बहु अन्तरा, सब्द सार का सीर ।
 सब्द सब्द का खोजना, सब्द सब्द का पीर ॥ ३ ॥
 सब्द बराबर धन नहीं, जो कोय जानै बोल ।
 हीरा तो दामों मिले, सब्द हि मोल न तोल ॥ ४ ॥

सन्द कहै सो कीजिये,
 अपने अपने . लोम को,
 सन्द न करै मुलाहिजा,
 आपा, पर जब चीन्हिया,
 सन्द हमारा हम सन्द के,
 जो चाहै दीटार को,
 सन्द दुराया ना दुरै,
 जो जन होवै जौठरी,
 सन्द पाय मुरति राखहि,
 कहै कविर तहा देखिये,
 सन्द उपदेस जु मैं कहूं,
 कहै कवीर विचारि के,
 सन्द भेद तत्र जानिये,
 सन्दै सन्द परगट भया,
 सन्द खोजि मन उस करै,
 सत्त सन्द निज सार है,
 सन्द गुरु का सन्द है,
 भक्ति करै नित सन्द की,
 सन्द सन्द मय कोय कहै,
 एक सन्द सीतल करै,

बहुतक गुरु लगार ।
 ठौर ठौर बटपार ॥ ५ ॥
 सन्द फिरै चहुँ वार ।
 तत्र गुरु सिष व्यग्रहार ॥ ६ ॥
 सन्द ब्रह्म का कूप ।
 परख सन्द का रूप ॥ ७ ॥
 कहू जु ढोल बजाय ।
 छैहैं सीस चढाय ॥ ८ ॥
 सो पहुचै दरवार ।
 बैठा पुरुष हमार ॥ ९ ॥
 जु कोय मानै संत ।
 ताहि मिलायो कंत ॥१०॥
 रहै सन्द के पाँहि ।
 दूजा दीखै नाहि ॥११॥
 सहज जोग है यह ।
 यह तो झूठी देह ॥१२॥
 काया का गुरु काय ।
 सतगुरु यौ समझाय ॥१३॥
 सन्द का करो विचार ।
 एक सन्द दे जार ॥१४॥

एक सब्द मुख खानि है, एक सब्द दुख रासि ।
 एक सब्द बंधन कटै, एक सब्द गळ फांसि ॥१५॥
 निझर झरै अनहद वजै, तव ऊपजै ब्रह्मज्ञान ।
 अधिगत अंतर प्रगट है, लगा प्रेम निज ध्यान ॥१६॥
 रैन समानी भानु में, भानु अकासे माँहि ।
 अकास समाना सब्दमे, सब्द परै कछु नाँहि ॥१७॥
 खोजी हुआ सब्द का, धन्य संत जन सोय ।
 कहै कविर गहि सब्द को, कवहु न जाय विगोय ॥१८॥
 दारू तो सब को(य) करै, वह सुभाय की नाँहि ।
 जो दारू सतगुरु दर्ई, वही सब्द के माँहि ॥१९॥
 मता हमारा मंत्र है, हम सा हूँ सो लेह ।
 सब्द हमारा करपतरू, जो चाहै सो देह ॥२०॥
 सोइ सब्द निज सार है, जो गुरु दिया बनाय ।
 बलिहारी वा गुरुन की, सीप विगोय न जाय ॥२१॥
 वह तो मोती जानियो, पुई पोत के साथ ।
 यह तो मोती सद्र का, बेधि रहा सब गात ॥२२॥
 सीखै सुनै विचारि ले, ताहि सद्र मुख देय ।
 बिना समझे सब्द गहै, कछु न लाहा लेय ॥२३॥
 यही बड़ाई सब्द की, जैसे चुंकर भाय ।
 बिना सब्द नहि ऊरै, केता करै उपाय ॥२४॥

सही टैक हैं तासुकी, जाको सतगुरु टैक ।
 टैक निवाहै देह भरि, रहै सब्द पिछि एक ॥ २५ ॥
 काल फिरै सिर ऊपरै, जीवहि नजरि न आय ।
 कहै कविर गुरु सब्द गहि, जमसैं जीव वचाय ॥ २६ ॥
 ऐसा मारा सब्द का, मुआ न दीसैं कोय ।
 कहै कविर सो ऊवरै, घड़पर सीसन होय ॥ २७ ॥
 संत संतोपी सर्वदा, सब्द हि भेद विचार ।
 सतगुरु के परताप ते, सहज सीळमत सार ॥ २८ ॥
 सरसा सर जन बेधिया, सर दिन गम कछु नाँहि ।
 लागी चोट जो सब्द की, करक कलेजे पाँहि ॥ २९ ॥
 सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और ।
 लागी चोट जो सब्द की, रहा कवीरा ठौर ॥ ३० ॥
 लागी लागी क्या करै, लागत रही लगार ।
 लागी तब ही जानिये, निकसी जाय दुमार ॥ ३१ ॥
 बिन सर् और कमान बिन, मारा है जु कसीस ।
 बाहर धायन दीसई, बेधा नख सिख सीस ॥ ३२ ॥
 मैं कलिका कोतवाल हूँ, लेहू सब्द हमार ।
 जो या सब्दहि मानि है, सो उतरै भौ पार ॥ ३३ ॥
 सब को सुख दे सद्गका, अपनी अपनी ठौर ।
 जा घटै साधिव वमै, ताहि न चीन्है और ॥ ३४ ॥

सीतल सद्ग उचारिये, अहं आनिये नाँहि ।
 तेरा प्रीतम 'तुझहि में, दुसमन भीतुझ माँहि ॥ ३५ ॥
 हरिजन मोई जानिये, जिन्हा कहे न मार ।
 आठ पहर चितवत रहे, गुरु का ज्ञान विचार ॥ ३६ ॥
 टीला टीली हाहि के, फोरि करै मैदान ।
 समझ सफा करता चलै, सोइ सद्ग निरवान ॥ ३७ ॥
 कुबुधि कपानी चढि रहे, कुटिल वचन के तीर ।
 भरि भरि मरि कान में, सालै सकल सरीर ॥ ३८ ॥
 कुटिल वचन सब तें बुरा, जारि करै सब छार ।
 साधु वचन जल रूप हे, वरसै अमृत धार ॥ ३९ ॥
 कर गढन दुरजन वचन, रहे सन्तजन टारि ।
 विजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥ ४० ॥
 कुटिल वचन नहि बोलिये, सितल बैन ले चीन्हि ।
 गंगा जल सीतल भया, परवत फोडा तीन्हि ॥ ४१ ॥
 सीतलता तब जानिये, समता रहै समाय ।
 विष छाडै निरविष रहैं, सब दिन दूखा जाय ॥ ४२ ॥
 खोद खाद धरती सहै, काट कूट वनराय ।
 कुटिल वचन साधु महै, ओ'से सदान जाय ॥ ४३ ॥
 जिन्हा में अमृत बसै, जो कोय जानै बोल ।
 विष वामृक्किका ऊतरै, जिन्हा तनै हिलोल ॥ ४४ ॥

४० करगटन—करमन ।

४४. सर्प का विष जीभ से चूस लिया जाता है ।

जिब्हा सकर दूध जिभ, जिब्हा प्यारीजागि ।
 जिब्हा माजन रलि मिले, जिब्हा लारि आगि ॥ ४५ ॥
 सहज तगजू आनि कै, सब रस देखा तोल ।
 सब रस मांहीं जीभ रस, जु कोय जानै बोल ॥ ४६ ॥
 मुख आवै सोई कहैं, बोल नहीं विचार ।
 हते पराडं आनया, जीभ बांधि तरवार ॥ ४७ ॥
 बोलै बोल विचारिके, बैठे ठौर सँभारि ।
 कहैं कधिर ता टासको, कबहु न आवै टारि ॥ ४८ ॥
 रैन तियिर नासत भयो, जपही भानु उगाय ।
 सार सद्र के जानने, करम भरम मिटि जाय ॥ ४९ ॥
 जत्र मंत्र सय झूठ है, मति भरमो जग कोय ।
 सार सद्र जानै विना, कागा हंस न होय ॥ ५० ॥
 सार सद्र निज जानिके, जिन कीन्ही परतीति ।
 काग हुपत नजि हंस हे, चले सु भोजल जीति ॥ ५१ ॥
 सार सद्र जानै विना, जिव परल में जाय ।
 काया माया थिर नहीं, सद्र लेहु अरथाय ॥ ५२ ॥
 सार सद्र को खोजिये, सोइ सद्र सुख रूप ।
 अन समझ तो कुछ नहीं, बह तो दुखका रूप ॥ ५३ ॥
 सार हि सद्र विचारिये, मोई सद्र सुख देय ।
 अन समझा सद्रै कहे, बह न लाहा लेय ॥ ५४ ॥

कर्मफंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान ।
 जाहि सद्द तै मुक्ति होय, सो न परा पहिचान ॥ ५५ ॥
 सतजुग त्रेता द्वापरा, यह कलजुग अनुमान ।
 सार सद्द एक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥ ५६ ॥
 पृथिवी अपहु तेज नहीं, नहीं वायु आकास ।
 अलल पच्छि तहां है रहे, सत्त सब्द परकास ॥ ५७ ॥
 सतगुरु सब्द परमान, अनहद वानी ऊचरै ।
 और झूठ सब ज्ञान, कहैं कवीर विचारिकें ॥ ५८ ॥
 ज्ञानी सुनहु संदेश, सद्द विवेकी पेखिया ।
 कद्यो मुक्तिपुर देस, तीन लोक के वाहिरे ॥ ५९ ॥
 मन तहँ गगन समाय, धुनि मुनि मुनिके मगन है ।
 नहि आवै नहि जाय, सुंन सद्द थिति पावहीं ॥ ६० ॥
 ज्ञानी करहु विचार, सतगुरु ही सें पाइये ।
 सत्त सब्द निज सार, और सबै विस्तार है ॥ ६१ ॥
 जगमें बहु परपंच, तामें जीव भुलान सब ।
 नहि पावै कोय संच, सार सब्द जानै बिना ॥ ६२ ॥
 गहै सद्द निज मूल, सिंधुहि बुंद समान है ।
 सुक्ष्म में अस्थूल, बीज त्रिछ विस्तार ज्युं ॥ ६३ ॥
 सब्द हमारा आदिका, हमसें बली न कोय ।
 आगा पीछा सो करै, जो बल हीना होय ॥ ६४ ॥

घर घर हम सबसे कडा, सन्द न मुनै हमार ।
 ते भवसागर बुडहीं, लख चौरासी धार ॥६५॥
 मैं करीर विचलौ नहीं, सन्द मोर समरत्य ।
 ताको लोक पठाइ हो, (जो) चढे सन्द के रत्था ॥६६॥
 सन्द सम्हारे बोलिये, सन्द के हाथ न पांघ ।
 एक सन्द औपध करै, एक सन्द करै घाघ ॥६७॥
 एक सन्द सो प्यार है, एक सन्द कूप्यार ।
 एक सन्द सर दुश्मना, एक सन्द सव यार ॥६८॥
 सन्द जु ऐसा बोलिये, तनका आपा खोय ।
 औरन को सीतल करै, आपन को सुख होय ॥६९॥
 जिहि सन्दे दुख ना लगे, सोई सन्द उचार ।
 तपत मिठी सीतल भया, सोइ शब्द ततसार ॥७०॥
 कागा काको धन हरै, कोयल काको देत ।
 पीठा सन्द सुनाय के, जग अपनो करि लेत ॥७१॥
 जिभ्या जिन वसमें करी, तिन वस कियो जहान ।
 नहि तो औगुन ऊपजे, कहि सव संत सुजान ॥७२॥
 कहने को चुके नहीं, जेतो जित की दौर ।
 सबे सन्द सहिदान हैं, परख सन्द सौ ठौर ॥७३॥
 सन्द गहै सो मरद है, मेहरी सव संसार ।
 पढ़ि पंडित रंढिया भये, बिन मेटे भरतार ॥७४॥

विश्वास को अंग ।

जाके मन विश्वास है,	सदा गुरु हैं संग ।
कोटि काल झक झोलहीं,	तऊ न हो मन भंग ॥ १ ॥
सत्तनाम की लौ लगी,	जगसँ दूर रहाय ।
मोहि भरोसा नामका,	बदा नरक न जाय ॥ २ ॥
सत्तनाम सँ मन मिला,	जप सँ परा दुराय ।
मोहि भरोसा इष्ट का,	बंदा नरक न जाय ॥ ३ ॥
रचनहार को चीन्हि ले,	खाने को क्या रोय ।
मन मन्दिर में पैठि के,	तान पिछोरी सोय ॥ ४ ॥
भूखा भूखा क्या करै,	कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़िया मुख दिया,	सोही पूरन जोग ॥ ५ ॥
सिरजन हारे सिरजिया,	आटा पानी लौन ।
देनेद्वारा देत है,	भेटनद्वारा कौन ॥ ६ ॥
सौई इतना दीजिये,	जायें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ,	साधु न भूखा जाय ॥ ७ ॥
हरिजन गौंठि न बांधहीं,	उदर समाना लैय ।
आगे पीछे हरि खड़े,	जो मागें सो देय ॥ ८ ॥
कबीर चिंता क्या करूं,	चिन्ता सों क्या होय ।
मेरी चिन्ता हरि करै,	चिन्ता मोहि न कोय ॥ ९ ॥

चिन्तामनि चित में वसै, सोई चित में आनि ।
 बिना प्रभु चिन्ता करै, यह मूरख की वानि ॥१०॥
 चिन्ता छोडि अचिन्त रह, देनहार समरत्य ।
 पसू पखेरू जन्तु जीव, तिन के गांठि न दृढथ ॥११॥
 अंडा पालै काछुई, विन धन राखै पोख ।
 यौ करता सब को करै, पाले तीनों लोक ॥१२॥
 पौ फाटी पगरा भया, जागै जीवा जून ।
 सब काहू को देत है, चोंच समाना चून ॥१३॥
 खोजि पकरि विश्वास गहु, धनी मिलेंगे आय ।
 अजिया गज मस्तक चढ़ी, निरभयकोपठ खाय ॥१४॥
 पांडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम वास ।
 एक नाम सींचा अमी, फल लागा विश्वास ॥१५॥
 पद नाथे लौलीन है, फटै न संतै फांस ।
 सबै पछोरै थोथरा, एक बिना विश्वास ॥ १६ ॥
 गाया जिन पाया नहीं, अन्गाये ते दूर ।
 जिन गाया विश्वास गहि, ताके सदा हजूर ॥ १७ ॥
 गावन ही में रोवना, रोवन ही में राग ।
 एक वन हि में घर करै, एक घर ही वैराग ॥ १८ ॥
 घट में जोति अनूप है, रिजक मौतजिवसाथ ।
 कदा सार हैं मनुसका, कल्प धनी के हाथ ॥ १९ ॥

साईं दीया सहज में, सोई रिजक हलाल ।
 हैवां सबै हराय है, तजि संसै जिव साल ॥ २० ॥
 सब ते मली मवूकरी, भांति भाति का नाज ।
 दावा कीसी फा नही, विना विलायत राज ॥ २१ ॥
 जाके दिळ में हरि वसै, सो जन कलपै काहि ।
 एकै लहरि समुद्रकी, दुख दारिद्र बहिजाहि ॥ २२ ॥
 आगे पीछे हरि खड़ा, आप सहारे भार ।
 जन को दुःखी क्यों करै, समरथ सिरजन हाट ॥ २३ ॥
 भक्त भरोसे राम के, निघडक ऊंची दीठ ।
 तिनकुं करम न लागई, राम ठकोरी पीठ ॥ २४ ॥
 सौटा कीजे राम सों, भरिये गून हलाय ।
 जो कवहूँ टाढा लुटै, पूजी विलै न जाय ॥ २५ ॥
 राखनद्वारा राम है, जाय जंगल में बैठ ।
 हरि कोपै नहि ऊवरै, सात पताले पैठ ॥ २६ ॥
 डोरी लागी भय मित्रा, मन पाया विसराम ।
 चित्त चहुटा राम सों, याही केवल धाम ॥ २७ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, अब कटु लिखा न होय ।
 मासा घटै न तिल वटै, जो सिर पटके कोय ॥ २८ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, नर सिर भाग अभाग ।
 जो कवहूँ चिन्ता करै, तौट न आगै आग ॥ २९ ॥

२०. हलाल-धर्मयुक्त । हैना-बलात्कार ।

२५. टाढा—बैलों की कतार । २९. आग—आगि, सामने ।

जो सांचा विसवाम है,
 फूँद कवीर विचारि के,
 विश्वासी है गुरु भजै,
 नाम भजै अनुराग ते,
 काहे को तलफत फिरै,
 पहिले रिजक बनायके,
 अब तूं काहेको डरै,
 हस्ती चढकर डोलिये,
 मेरो चित्यो हरि ना करे,
 हरि को चित्यौ हरि करे,
 राम किया सोई हुआ,
 राव करै सो होयगा,
 ऐसा कौन अभागिया,
 राम विना पग धरनकूं,
 किये विना मागै विना,
 काहे को मन कल्पिये,
 मुरदे को भी देव है,
 जीवत नर चिता करै,
 पीछे चाहे चाकरी,
 ता साक्षि सिर भीपते,

तौ दुख क्यों ना जाय ।
 तन मन देहि जराय ॥ ३० ॥
 लोहा कंचन होय ।
 हरप सोक नहि दोय ॥ ३१ ॥
 काहे पावै दुख ।
 पीछे दोनो भूख ॥ ३२ ॥
 सिरपर हरिका हाथ ।
 कृकर भुसे जु लाख ॥ ३३ ॥
 क्या करूँ मैं चित्त ।
 ता पर रहूँ निचित ॥ ३४ ॥
 राम करै सो होय ।
 काहा कल्पौ कोय ॥ ३५ ॥
 जो विश्वासे और ।
 कहो कहां है ठौर ॥ ३६ ॥
 जान विना सब आय ।
 सहजे रटा समाय ॥ ३७ ॥
 कपडा पानी आग ।
 ताका बडा अभाग ॥ ३८ ॥
 पहिले मदिना देय ।
 वयुं कसकाता देह ॥ ३९ ॥

भजन भरोसै आपके, मगहर तजा शरीर ।
तेज पुंज परकास में, पहुँचै दास कबीर ॥ ४० ॥

सती को अंग ।



अब तो ऐसी हूँ परी, मन भति निरमल कीन्ह ।
मरने का भय छाँडि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल ददामा बाजिया, सब्द सुना सब कोय ।
जो सर देखी साने भगै, दोउ कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चिन धरि एक विवेक ।
तन मन सौया पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिय का सुमिरि सुनेह ।
सब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई सुधि देह ॥ ४ ॥
सती सूर तन ताइया, तन मन कीया धान ।
नाम जपन धिता मिटी, निरसा तनसँ मान ॥ ५ ॥
सती विचारी सत किया, कँगों सैज विडाय ।
सती ले पिय संग में, चहुँ दिसि आग लगाय ॥ ६ ॥

१. सिंधोरा-मिदरदान । सती होने क समय अपने आप को शृंगार से मुसजिन कर लेती है । २. सर—चित्ता ।

५. धान—धाना, पेरना ।

सती पुकारै ^१सर चढी, सुनरे मीत मसान ।
^२लोग बटाऊ सब गये, हम तुम रहे निदान ॥ ७ ॥
 सती ढिगै तो नीच घर, सूर ढिगै तो कूर ।
 साधु ढिगै तो सिखरते, ^३गिरि भय चकना चूर ॥ ८ ॥
 सती न पीसै पीसना, जो पीसै रॉड ।
 साधु भीख न मांगई, जो मांगै सो भांड ॥ ९ ॥
 मैं तोड़ि पूछूं हे सखी, जीवत क्यों न जराय ।
 मूये पीछै सत करे, जीवत क्यों न कराय ॥ १० ॥
 ऐसी भाँति जो सति है, सो निज मुक्ति परमान ।
 मुक्ति देव संसार को, सोऽ सती तूं जान ॥ ११ ॥
 साध सती औ सूरमा, इनका मता अगाध ।
 आसा छांडै देहकी, तिनमें अधिका साध ॥ १२ ॥
 साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गजदंत ।
 ते निकसै नहि वाहुरै, जो जुग जाहि अनंत ॥ १३ ॥
 साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरै पीठ ।
 तीनों निकसी वाहुरै, तिनका मुख नहि दीठ ॥ १४ ॥
 साध सती औ सूरमा, इन पट्टर कीय नाँहि ।
 अगम पंथ को पग धरै, ^४गिरि तो कहां समाहि ॥ १५ ॥

१. पा० सत । २. संगी धे सो चलि गये । ३. पा० होय चरनकी धूर ।

४. छैटै तो कित नाँहि ।

कबीर सतियाँ कुसतियाँ, जरै मरे की कार ।
 सतियां सोई जानिये, जरै सँभारि सँभारि ॥१६॥
 सत तो तासों कीजिये, जहँवां मन पतियाय ।
 ठाम ठाम के सत्त सों, कुल कलंक चढि जाय ॥१७॥
 आँखडियां काजल भरी, मुख में भरी तंघोल ।
 चलिहारी गुरु आपनी, साहिव सेति किलोल ॥१८॥
 नतिया सोई अस तिया, जलवी है इक वार ।
 नित जलना है संत कूं, नाम पुकार पुकार ॥१९॥
 सहज जलना सतिया तना, सूखै काठ मिलाय ।
 लै धैठी पिय आपना, चहुं दिस आग लगाय ॥२०॥
 सतिया का सुख देखना, जले पीव के संग ।
 आपै आग लगात है, तऊ न मोढै अंग ॥२१॥
 सती भई है सत्त कूं, सरीर कीन्ही सान ।
 बाट बटाऊ चलि गये, हम तुम रहै निदान ॥२२॥
 सती विचारी सत किया, ले अपना वे भेष ।
 एक एक जब है मिली, अंतर रही न रेख ॥२३॥
 सती मूर तन साहिया, तनमन किया जु ध्यान ।
 दिया महोला पीव कूं, महडट करै घखान ॥ २४ ॥
 मूर सती स्वर्ग पाइ है, जाय मिले सब कोय ।
 कपीर सौदा नाम सूं, सिर विन कदी न होय ॥ २५ ॥

सती चमाकै अगनिसूं, मूरा सीस डुलाय ।
 साधु जु चूकै टेक सों, तीन लोक अथडाय ॥ २६ ॥
 ये तीनों डलटे बुरे, साधु सती औ सर ।
 जगमें हांसी होयगी, मुख पर रहै न नूर ॥ २७ ॥

पतिव्रता को अंग ।

पतिव्रता के एक है, व्यभिचारिन के दोष ।
 पतिव्रता व्यभिचारिनी, कहु क्यों मेला होय ॥ १ ॥
 पतिव्रता को सुख घना, जाके पति है एक ।
 मन मैली व्यभिचारिनी, ताके खसम अनेक ॥ २ ॥
 पतिव्रता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
 पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि सरूप ॥ ३ ॥
 पतिव्रता मैली भली, गले काँचकी पोत ।
 सब सखियनमें यों दियै, ज्यों सूरज की जोत ॥ ४ ॥
 पतिव्रता पतिको भजै, पति भजि धर विस्वास ।
 आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥ ५ ॥
 पतिव्रता पतिको भजै, और न आन सुहाय ।
 सिंध बच्चा जो लँघना, तो भी यासनखाय ॥ ६ ॥

पतिव्रता तब जानिये, रती न खंडै नैन ।
 अंतर तो सूची रहे, बोलै मीठा धैन ॥ ७ ॥
 पतिव्रता ऐसी रहे, जैसे चोली पान ।
 जब सुख देखै पीवका, चित्त न आवै आन ॥ ८ ॥
 पतिव्रता व्यभिचारनी, इक मंदिर में वास ।
 वह रंग राती पीवके, घर घर फिर उदास ॥ ९ ॥
 पतिव्रता के एक तू, और न दूजा कोय ।
 आठ पहर निरखत रहे, सोइ सुहागिन होय ॥ १० ॥
 पतिव्रता तो पिव भैजे, 'पिया पिया रट लाय ।
 जीवत जस है जगत में, अंन परम पद पाय ॥ ११ ॥
 नना अंतर आव तू, नैन झॉपि तुहि लेव ।
 ना भैं देखों और को, ना तुहि देखन देव ॥ १२ ॥
 कबीर सीप समुद्रकी, रटै पियास पियास ।
 'और बुँद को ना गहे, स्वाति बुँद की आस ॥ १३ ॥
 कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहि लैय ।
 पानी पीवै स्वाति का, सोभा सागर देय ॥ १४ ॥
 कबीर भेरै बैठिके, सघसों कहूँ पुकारि ।
 धरा धरै सो धरकुटी, अधर धरै सो नारि ॥ १५ ॥
 धरिया कूँ धीजूँ नही, गहूँ अधर की वाँहि ।
 धरिया अधर पिछानिया, कछु धरावहि नाँहि ॥ १६ ॥

- १५. धरा—कृत्रिम, बनावटी, । धरे—पूने । धरकुटी—व्यभिचारिणी ।

१. पा० पीव पीव । २. पा० समुंद्र हि तिनका बर गिनो ।

नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत ।
 पतिवरता पिवको भजै, मुख सें नाम न लेत ॥ १७ ॥
 सुरति सपानी नाम में, नाम किया परकास ।
 पतिवरता पिव को मिली, पलक न छोडै पास ॥ १८ ॥
 साँई मोर मुलच्छना, मैं पतिवरता नारि ।
 देहु दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥ १९ ॥
 प्रीत अहो हे तुझसें, बहु गुनियाला कंत ।
 जो हसि बोलूँ और मे, नील रंगाऊँ दंत ॥ २० ॥
 साँई मेरा एक तूँ, और न दू जा कोय ।
 दूजा साँई क्या करूं, तुझ सम और न कोय ॥ २१ ॥
 साँई मेरा एक तूँ, और न दूजा कोय ।
 दूजा साँई जो करूं, जो कुलदूजा होय ॥ २२ ॥
 मो चित पलहु न वीसरूं, तुम परदेस दि जाय ।
 यह अंग और न भेलसी, जयतव तुम मिलि आय ॥ २३ ॥
 कबीर रेख सींदूर अरु, काजर दिया न जाय ।
 नैनन प्रीतम रभि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥ २४ ॥
 आठ पहर चौसठ घडी, मेरे और न कोय ।
 नैना मांहीं तूँ वसै, नींद ठौर नहि होय ॥ २५ ॥
 वार वार क्या आखिये, मेरे मन की सोय ।
 कलि तो ऊखल होयगी, साँई और न होय ॥ २६ ॥

जो यह एक न जानिया, बहु जाने क्या होय ।
 एकै ते सब होत है, सब ते एक न होय ॥२७॥
 जो यह एकै जानिया, तो जानो सब जान ।
 जो यह एक न जानिया, सबही जान अजान ॥२८॥
 सब आये उस एकमें डार पात फल फूल ।
 अब कहो पाँलै क्या रहा, गहि एकडा जव मूल ॥२९॥
 एकै साथै सब साथै, सब साथै सब जाय ।
 माली सीवै मूलको, फूलै फूलै अघाय ॥३०॥
 जो मन लागै एक सों, तौ निरुवारा जाय ।
 तुरा दो मुख याजता, घना तमाचा खाय ॥३१॥
 एक नाम को जानि कर, दूजा दिया बहाय ।
 जप तप तीरथ व्रत नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥३२॥
 मैं अबला पिव पिव करूं, निरगुन मेरा पीव ।
 सुन्न सनेही राम विन, और न देखूं जीव ॥३३॥
 मैं सेवक समरत्य का, कबहु न होय अकाज ।
 पतिवरता नंगी रहै, वाही पति को लाज ॥३४॥
 मैं सेवक समरत्य का, कोई पुरवला भाग ।
 सूनी जागी छुंदरी, साँई दिया सुहाग ॥३५॥
 एक चित होय न पिव मिलै, पतिवरत ना आवै ।
 चंचल मन चहुँ दिसि फिरै, पिय कहो कैसे पावै ॥३६॥

सुंदरि तो साँई मजै, तजै खलक की आस ।
 ताहि न कवहुँ परिहरै, पलक न छाडै पास ॥३७॥
 चढी अखाडे सुन्दरी, मांडा पीवसैं खेल ।
 दीपक जोया ज्ञान का, काम जलै ज्यों तेल ॥३८॥
 सूरुा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाँहि ।
 पतिव्रता के तन नहीं, सुरति वसै पिव माँहि ॥३९॥
 दाता के तो धन घना, सूरुा के सिर वीस ।
 पतिव्रता के तन सढी, पत राखै जगदीस ॥४०॥
 भोरे भूली खसम को, कवहुँ न किया विचार ।
 सतगुरु आनि वताइया, पूरवला भरतार ॥४१॥
 जो गावै सो गावना, जो जोडे सो जोड ।
 पतिव्रता साधू जना, यहि कलिमें हँ थोड ॥४२॥
 घर परमेस्वर पाहुना, सुनो सनेही दास ।
 खट रस भोजन भक्ति करि, कवहुँ न छाडै पास ॥४३॥
 एक जानि एकै समझ, एकै कै गुन गाय ।
 एक निरख एकै परख, एकै सोँ चित लाय ॥४४॥
 जीवत मिरतक हो रही, तन पन सेती नेह ।
 फहै कविर ता नारि की, चरन कमल की खेह ॥४५॥
 ऊँची जाति पपीहरा, पीये न नीचा नीर ।
 कै सुरपति को जाँचई, कै दुख सई सगीर ॥४६॥

पडा पपीहा सुरसरी, लगा षधिक का वान ।
 मुख भूँदे सुरति गगन में, निकसि गये यूँ प्रान ॥४७॥
 पपिहा पन को ना तजै, दजै तो तन बेकाज ।
 तन छटै तो कुछ नही, पन छडिं है लाज ॥४८॥
 पपिहा का पन देख करि, धीरज रहै न रच ।
 मरते दम जलमें पडा, तऊ न बोरी चंच ॥ ४९ ॥
 चातक सुन हि पढावई, आन नीर मलि लेय ।
 मम कुल याही रीत है, स्वाति बुँद चित देय ॥५०॥
 चातक सुत हि पढावई, सुनो बात यह तात ।
 आन नीर नहि पीवना, यह सपूत की बात ॥ ५१ ॥
 चातक चित हि चुभि गई, सुत सपूत की बात ।
 आन नीर परसौं नहीं, सुनो तात यह बात ॥ ५२ ॥
 दोजख हमहि अंगिनिया, या दुख नार्ही मुझ्झ ।
 मेरे भिस्त न चाहिये, बौछि पियारे तुझ्झ ॥ ५३ ॥
 पिय सनमुख सेवा करे, सो पतिव्रता जान ।
 पिय तजि किन जित जोरमे, वर्त भंग तेहि मान ॥ ५४ ॥

विभिचारिनि को अंग ।

‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’

कवीर कलियुग आयके,	कीया बहुत जमीत ।
जिन दिल बाँधा एक से,	ते मुखसोय निचित ॥ १ ॥
गुरु मरजाद न भक्तिपन,	नहि पिवका अविहार ।
कहे कविर विभिचारिनी,	नित नया भरतार ॥ २ ॥
विभिचारिनि विभिचार में,	आठ पहर हुशियार ।
कहे कविर पतिव्रत विन,	क्यों रीझै भरतार ॥ ३ ॥
विभिचारिन के वस नहीं,	अपनो तन मन दोय ।
कहे कविर पतिव्रत विन,	नारी गई विगोय ॥ ४ ॥
नारि कहावे पीव की,	रहे और संग सोय ।
जार सदा मनमें वसे,	खसम खुसी क्यों होय ॥ ५ ॥
सेज बिठावे मुन्दरी.	अन्तर परदा होय ।
तन सौपे मन दे नहीं,	सदा दुहागिन सोय ॥ ६ ॥
कवीर मन दीया नहीं,	तन कर डाला जेर ।
अन्तरजामी लखि गया,	बात कहन का फेर ॥ ७ ॥
मुखसे नाम रटा करै,	निस दिन साधुन संग ।
कहु थौ कौन कुफेर ते,	नाहीं लागत रंग ॥ ८ ॥

कबीर पथ निहारतां, आनि पडी है साँझ ।
 जन जन को मन राखतां, बेव्या रडि गइ बॉझ ॥ ९ ॥
 रात जगावै राँडिया, गावै विषया गीत ।
 मारै लौंदा लापसी, गुरु न आवै चीत ॥ १० ॥
 कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै विभिचार ।
 ताहि न कवहँ आदरै, परम पुरुष भरतारं ॥ ११ ॥
 सत्तनाम को छाँडिकर, करै और की आस ।
 कहँ कविग ता नारि को, होय नरकमें वास ॥ १२ ॥
 नौ सत साजै सुन्दरी, तन मन रही सजोय ।
 पिय के मन मानै नहीं, ^१विडव किये क्या होय ॥ १३ ॥
 सौ बरसों भक्ति करै, एक दिन पूजै आन ।
 सो अपराधी आतमा, पडे चौरासी खान ॥ १४ ॥
 सत्तनाम को छाँडि कै, करै आन को जाप ।
 ताके मुँहडे दीजिये, नौसादर को वाप ॥ १५ ॥
 सत्तनाम को छाँडि कै, करै और को जाप ।
 बेव्या केरां पूत ज्यौं, कहै कौन को वाप ॥ १६ ॥
 सत्तनाम को छाँडि कै, राखै करवा चौथि ।
 सो तो हैगी सूकरी, तिन्हें रामसों कौथि ॥ १७ ॥

१३. नोसत=सोलेह शृंगार । १५. नोसादर को वाप=मैला ।

सचनाम को छॉडि कै, राति जगावन जाय ।
 साँपिनी है करि ओतर, अपना जाया खाय ॥ १८ ॥
 आन भजै सो आँधरा, राम भजै सो साव ।
 तत्त भजै सो रैस्नवा, विनकामता अगाथ ॥ १९ ॥
 करै मुहाली लापसी, जाय आनकी जाति ।
 ज्वारा हंसै मलकता, आई मेरी घात ॥ २० ॥
 कामी वरि क्रोधी वरै, लोभी वरै अनन्त ।
 आन उपासी कृतघनी, तरै न गुरु कडन्त ॥ २१ ॥
 काज कनागत कारटा, आनदेव को खाय ।
 कहै कविर समुझै नहों, बाँधा जमपुर जाय ॥ २२ ॥
 देवि देव मानै सरे, अलख न मानै कोय ।
 जा अलेख का सप किया, तासो बेमुख होय ॥ २३ ॥
 देवि देव ठाढ़े भये, हम को ठौर बताव ।
 जो कोइ मुझ सुँ विमुख है, तिन को लूटौ खाय ॥ २४ ॥
 पन छुट्टे छुटा फिरै, तै नर भूत खबीस ।
 भूतन पिंडा राखका, पडा पटकिके के सीस ॥ २५ ॥
 माइ मसानि सिद्धि सितला, नैद भूत हनुमन्त ।
 साहिव सों न्यारा रहे, जो इन को पूजन्त ॥ २६ ॥

२२ काज=मृतकभोज । कनागत=श्राद्ध । कारटा=महापाप का कर्म करानेवाले । २५. खबीस=मुरदा खानेवाले ।

सूरमा को अंग ।

कवीर सोईं सूरमा, मन सां भँडै जूझ ।
 पाँचौं इन्द्री पकडि के, दूरि करै सब दूझ ॥ १ ॥
 कवीर सोईं सूरमा, (जिन)पाँचौं राखी चूर ।
 जिन के पाँचौं मोकली, तिन सौं साहिव दूर ॥ २ ॥
 कवीर सोईं सूरमा, जाके पाँचौं हाथ ।
 जाके पाँचौं वस नहीं, तो हरि संग न साथ ॥ ३ ॥
 कवीर रनमें आय के, पीछे रहै न मूर ।
 सोईं के सनमुख रहै, जूझै सदा हजूर ॥ ४ ॥
 कवीर घोहा भेमका, चेतन चढ़ि अमवार ।
 ज्ञान खड़ग ले काल सिर, भली पचाई मार ॥ ५ ॥
 कवीर तुरी पलानिया, चाबुक लीन्हा हाथ ।
 दिवस थका सोईं मिले, पीछे पडि है रात ॥ ६ ॥
 कवीर हीरा वनजिया, मँहगे मोल अपार ।
 हाड गली माटी मिळा, सिर साँटिं बेवहार ॥ ७ ॥
 कवीर तोड़ा मान गढ़, पारि पाँच गनीम ।
 सोस नैवाया धनी को, साथी बड़ी मुहीम ॥ ८ ॥

१. दूझ=दाखन, जलन । २. चूर=वशमे । मोकली=खुली हुई ।

८. गनीम=शत्रु । मुहीम=आक्रमण ।

नाम कुल्हाड़ी कुबुधि बन,	काटि किया पैदान ।
कवीर जीते मान गढ़,	मारै पाँचौ खान ॥१॥
कवीर तोड़ा मान गढ़,	लूटी पाँचौ खानि ।
ज्ञान कुल्हाड़ी करम बन,	काटि किया पैदान ॥१०॥
कवीर पाँचौ मारिये,	जो मारै सुख होय ।
भला भलो सब कोय कहै,	बुरा न कहसी कोय ॥११॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै चोट ।
कायर भागै कछु नहीं,	सूरा भागै खोह ॥१२॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै घाव ।
खेत पुकारै मूरमा,	अब लडने का दाव ॥१३॥
गगन दमामा वाजिया,	हनहनिया के कान ।
सूरा घरै बधावनाँ,	कायर तजै पिरान ॥१४॥
सूरा सोइ सराहिये,	छडै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा हँ पडे,	तऊ न छाडै खेत ॥१५॥
सूरा सोइ सराहिये,	अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब बंद खोलि के,	छाडै वन का मोह ॥१६॥
सूरा जूझै गिरद सों,	इक दिस मूर न होय ।
यौँ जूझै दिन बाहरा,	भला न कहसी कोय ॥१७॥
सूरा सीस उतारिया,	छाँडी तनकी आस ।
आगे सें गुरु हरपिया,	आवत देखा दास ॥१८॥

सूर के मैदान में, कायर फंदा आय ।
 ना भाजै ना लडि सकै, मनही मन पछिताय ॥१९॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 सूर सों सूर मिलै, तब पूरा संग्राम ॥२०॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 कायर भाजै पीठ दै, सूर करै संग्राम ॥२१॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 तीर तुपक वरछी बदै, विगसि जायगा चाम ॥२२॥
 तीर तुपक सों जो लडै, सो तो सूर न होय ।
 माया तजि भक्ति करै, सूर कहावै सोय ॥२३॥
 तीर तुपक सों जो लडै, सो तो सूर नाँहि ।
 सूर सोइ सराहिये, बाँटि बाँटि धन खाँहि ॥२४॥
 सूर सनमुख वाहता, कोइ न बाँधै धीर ।
 पर दल मोरन गन अटल, ऐसा दास कबीर ॥२५॥
 सूर नाम धराय करि, अब क्यों हरपै धीर ।
 मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ॥२६॥
 सूर लडै कपंद हँ, धड सों सीस उतारि ।
 कहें कबीर मारा मुआ, कहै जु मारि हि मारि ॥२७॥
 सूर तो सँचै मतै, सहै जु सनमुख धार ।
 कायर अनी जुभाय के, पीछै शखे अगार ॥२८॥

सूर थोड़ा ही भला, सत का रोपै पग ।
 घना मिला किहि कामका, सावन का सा बग ॥२९॥
 सूर चडा संग्राम को, कबहु न देवें पीठ ।
 आगे चलि पाछे फिरे, ताको मुख नहि दीठ ॥३०॥
 सूर सनाह न पहिरई, जब रन बाजा वूर ।
 माथा काटै धड लडै, तब जानीजै सूर ॥३१॥
 सूर सनाह न पहरई, मरता नहीं डराय ।
 कायर भाजें पीठ दे, सूर मुँहामुँह खाय ॥३२॥
 सूर न सेरी ताकई, नेजा घालै घाव ।
 सब दल पाछा मोड़ि के, माँझी सेती चाव ॥३३॥
 सूर सार संवाहिया, पहरा सहज सँजोग ।
 ज्ञान गयंद हि चवि चला, खेत परन का जोग ॥३४॥
 खेत न छाँटै सूरमा, जूझै दो दल माँहि ।
 आसा जीवन मरन की, मन में राखै नाँहि ॥३५॥
 अब तो जूझै ही बनै, मुडि चालै घर दूर ।
 सिर साहिब को सोंपने, सोच न कीजै मूर ॥३६॥
 भागै भला न होयगा, मुँह मोडै घर दूर ।
 साँई आगे सीस दे, सोच न कीजै सूर ॥३७॥

३१. सनाह=कनच ।

३३. सेरी=गली । नेजा=भाला । माँझी=दोनों दलोंके बीचमें रहनेका ।

भागै भला न होयगा, 'कटु सूरतन सार ।
 भरम बकतर दूर करी, सुमिरन सेळ सँभार ॥३८॥
 भागै भला न होयगा, मुडि चाल्यै धसि दूर ।
 खडग उपाँटि ना डरै, सो साचा है सूर ॥३९॥
 जाय पूछो उस घायलां, दिवस पीर निसि जागि ।
 वाहनद्वारा जानि है, कै जानै जिस लागि ॥४०॥
 घायल तो घूमत फिरे, राखा रहै न ओट ।
 जतन करै जीवै नही, लगी मरम की चोट ॥४१॥
 साध सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 सीस कटावै धड लट्टै, मुन जो पावै चोट ॥ ४२ ॥
 सेळ जु जाही मारिये, नहि काहु की ओट ।
 ओलाजा लोपौ नहीं, खाली पडै न चोट ॥ ४३ ॥
 निसंफ ह्ये रन में रहै, ज्यौ दरिया में दोट ।
 साहिव तवही पाइये, सहिये सिर पर चोट ॥४४॥
 ओटा लिया न ऊगरै, मुनरे मनुवा बूझ ।
 निकसि रहो मैदान में, कर पाचौं से जृझ ॥ ४५ ॥
 घायल की गति और है, औरन की गति और ।
 मेष वान द्विरदै लगा, रहा कवीरा ठौर ॥ ४६ ॥
 चिन चेतन ताजी करै, लौ की करै लगाव ।
 सव्द शुरूका ताजना, पहुँचै संत मुठाम ॥४७॥

सिर राखै सिर जात है,
 जैसे वाती दीप की,
 धड़ से सीस उतारि के,
 कोड़ सूर को सोइसी,
 छडने को सब ही चले,
 सादिव आगे आपने,
 जूझगे तब कहेंगे,
 मीठ षड़े मन मसखरा,
 मेरे संसय कोय नहीं,
 काम क्रोध सों जूझता,
 जब लग धड़ पर सीस है,
 माथा टूटे धड़ लड़े,
 रन हि धसा जो ऊवरा,
 धरै वधावा वाजिया,
 सांइं सेति न पाइये,
 कवीर सौंदा नाम का,
 जेता तारा रैन का,
 धंड मूली सिर कंगुरै,
 ऐसी मार कवीर की,
 कहै कविर सो ऊवरै,

सिर काटै सिर सोय ।
 कटि उजियारा होय ॥४८॥
 डारि देय ज्यों ढेळ ।
 घर जानेका खेल ॥४९॥
 सस्तर बांधि अनेक ।
 जूझगा कोय एक ॥५०॥
 अब कुछ कहा न जाय ।
 लडै किधों मगि जाय ॥५१॥
 गुरु सो लागै हेत ।
 चौंढै मांडा खेत ॥५२॥
 सूर कहावै कोय ।
 कर्मद कहावै सोय ॥५३॥
 आगे गिरइ निवास ।
 और न दूजी आस ॥५४॥
 वातन मिलै न कोय ।
 सिर विन कवहु न होय ॥५५॥
 येता वैरी मुझ ।
 तउ न विसारूं तुझ ॥ ५६ ॥
 मुआन दोसै कोय ।
 धड़ पर सीस न होय ॥ ५७ ॥

सीतलता संजोय ले, सूर चढे संग्राम ।
 अबकी भाजन सरत है, सिर साहब के काम ॥ ५८ ॥
 जोग-सुँ तो जौहर भला, घड़ी एक का काम ।
 आठ पहर का जूझना, बिन खाँडे संग्राम ॥ ५९ ॥
 पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर ।
 दिल सौंपा सिर ऊवरा, मुजरा धनी हजूर ॥ ६० ॥
 कठिन कमान कवीर की, पढी रहै मैदान ।
 केने जोधा पचि गये, खींचै संत मुजान ॥ ६१ ॥
 कडी कमान कवीर की, धरी रहै मैदान ।
 सूर है सो खींचहीं, नहि कायर का काम ॥ ६२ ॥
 कडी कमान कवीर की, न्यारे न्यारे तीर ।
 चुनि चुनि मारै बगतरी, मूरख गिनै न तीर ॥ ६३ ॥
 कडी कमान कवीर की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौंपी सूर लडै, कालै निरभय होय ॥ ६४ ॥
 कडी है धारा रास की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौंपै सीधा लडै, सूर कहिये सोय ॥ ६५ ॥
 बाँकी तेग कवीर की, अनी पडै दो टुक ।
 मार भीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥ ६६ ॥

५८. संजोग ले=मारण करके । अब की भाजन=अब की बेर ।

५९. जौहर—सतीत्व धर्मकी रक्षा के लिये जीते जो जलना ।

६०. पंज असमाना—पाचों शस्त्र, दूसरे पक्षमें पंचज्ञानेन्द्रियां ।

वाँका गढ वाँका मता,	वाँकी गढकी पोल ।
काछ कवीरा नीकसा,	जमसिर घाली रोल ॥ ६७ ॥
रकर बहै लोहा झरे,	टूटे जिरह जँजीर ।
अविनासी की फौज में,	गूँज दास कवीर ॥ ६८ ॥
सार बहै लोहा झरे,	टूटे जिह्र जँजीर ।
जम ऊपर साटे करी,	चढिया दास कवीर ॥ ६९ ॥
ज्यों ज्यों गुरुगुन साँभलौ,	त्यों त्यों लागै तीर ।
सांठी सांठी झरि पटी,	मलका रदा सरीर ॥ ७० ॥
ज्यों ज्यों गुरु गुन साँभले,	त्यों त्यों लागै तीर ।
लागे पन भागै नहीं,	सोई साध सुधीर ॥ ७१ ॥
जौपड मांठी चौहटे,	अरथ उरथ बाजार ।
सतगुरु सेती खेलतां,	कबहु न आवै शर ॥ ७२ ॥
जो हारौ तो सेव गुरु,	जो जीतौ तो दाव ।
सत्तनाम सौ खेलतां,	मिर जावै तो जाव ॥ ७३ ॥
खोजी को डर बहुत दे,	पल पल पढै विजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै,	सो तन साद्विज जोग ॥ ७४ ॥
भाव भालका सुरति सर,	धरि धीरज कर तान ।
मन की मूठ जहाँ मुँडी,	चोट तहां ही जान ॥ ७५ ॥
धुजा फलकै सुन्न में,	बाजै अनदद तूर ।
सकिया है मैदान में,	पहुँचेगा कोय मूर ॥ ७६ ॥

कहै दरवारी चातरी, क्यौं पावै वह धाम ।
 सीस उतारै संचरै, नाहि और को काम ॥ ७७ ॥
 सीस खिसै साईं लखै, भल बाँका असवार ।
 कमद कबीरा किलकिया, केता किया सुमार ॥ ७८ ॥
 लालच लोभ न मोह मद, एकल ^१भला अनीह ।
 हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा वन का सिंह ॥ ७९ ॥
 रन रोही अति ही हुआ, साजन मिला हजूर ।
 सूर सूर ठाहरा, भाजि गई भकमूर ॥ ४० ॥
 सब ही साथी कलतरो, धीर न वंधै कोय ।
 भागा पीछे बाहरै, ठाठ गुसाईं सोय ॥ ८१ ॥
^२खाँडा तिस को चाहिये, ^३फिर खाँडे को देय ।
^४कायर को क्या चाहिये, दाँतों तिनका लेय ॥ ८२ ॥
 कोनै परा न छुटि है, सुनरे जीव अबूझ ।
 कबीर धँड मैदान मे, करि इन्द्रियन सों जूझ ॥ ८३ ॥
 इक मारियो इक मारियो, येही विपमा सिद्धि ।
 ना धे कायर मरेंगे, चालै तरकस विद्धि ॥ ८४ ॥
 कायर हुआ न छुटि है, कूचि सुरातन माँहि ।
 मरम भलाका दूरि करि, सुभिरन सेल सनाँहि ॥ ८५ ॥

७८. कमद=चढ । ७९. एकल=एकाकी । मल-मिलता है ।

१. पा० मल । २. पा० सेल जो नाहि मारिये । ३. पा० उलटि सेल को देय । ४. पा० ताही सेल न मारिये ।

कायर भया न छूटि हो, सुरता, कछु सपाय ।
 भरम भालका दूरि करि, मुमिरन सेल मँजाय ॥८६॥
 कायर को कौतुक भला, काहे कसै सनाह ।
 भीर परे भगि जायगा, जीवन का हे छाह ॥८७॥
 कायर का घर फूसका, भभकी चहुं पछीव ।
 सूरु के कछु डर नहीं, गज गीरी की भीत ॥८८॥
 कायर बहुत पमावई, अधिक न बोले सूर ।
 सार खलक कै जानिये, किहि के मुँहडे नूर ॥८९॥
 कायर सेरी ताकवै, सूरु मॉटे पाँव ।
 सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥९०॥
 कायर भागा पीठ दे, सूर रहै रन मॉहि ।
 पटा लिखाया गुरु पै, खरा खजीना खॉहि ॥९१॥
 भागि कहां को जाइये, मय भारी घर दूर ।
 वदुरि कवीरा खेत रहु, दल आया भरपूर ॥९२॥
 भागै भलो न होयगी, कहां घरोगे पाँव ।
 सिर सौंपी सीधे लहौ, काहे करौ कुदाव ॥९३॥
 सति जो डरपै अगिन ते, सूरु सर हि डराय ।
 हरिजन भागै भक्ति सों, देस दुनी ते जाय ॥९४॥

८८. गजगिरी की भीत—ऐसी चौड़ी दीवार जिस पर हाथी चल सकता हो ।

१. पा० कायर भागै कालसुं । २. पा० रहै । ६. पा० प्रेमका ।

पानुस खोजत मैं फिरा,	पानुस बड़ा मुकाल ।
जाको देखत दिल थिरे,	ताका पड़ा दुकाल ॥१५॥
सूर चढे संग्राम को,	वाना पहिन अनेक ।
साई के मुख सापने,	मुवा जु कोई एक ॥१६॥
सूर चढे संग्राम कूं,	अरिदल भाँहि धसाय ।
सिर साहिव को दे रहै,	सहज सुरति प्रत खाय ॥१७॥
सूर चढे संग्राम कूं,	पीछे पांव न देह ।
साहिव लाजि भाजतां,	दृष्टि पड़ा तोहि देह ॥१८॥
सूर चढे संग्राम कूं,	पाँव न पीछा देह ।
सिर के साटे झूझहीं,	अगम ठौरकूं लेह ॥१९॥
जो सिर साँपा साई को,	वह सिर भया सनाथ ।
कबीर दे उवरन भये,	जाका ताके हाथ ॥२०॥
जाका ताकूं दीजिये,	कभी उवरना होय ।
पहिले देवै सो सरा,	पीछै तो सब कोय ॥२०१॥
सूरा सोई जानिये,	पांवन पीछे पेख ।
आगे चलि पीछा फिरै,	ताका मुख नहि देख ॥२०२॥
देखा देखी सूर चढे,	मर्म न जानै कोय ।
साई कारन सीस दे,	सूरा जानौ सोय ॥२०३॥
सिर साटे का खेल है,	सो सरन का काम ।
पहिले मरना आग में,	पीछै कहना राम ॥२०४॥

हरि का गुन अति कठिन है,	ऊंचा बहुत अरुथ्य ।
सिर काटी पगतर धरै,	तब जा पहुँचे हृथ्य ॥१०५॥
ऊंचा तरवर गगन फल,	पखी मूआ झूर ।
बहुत सयाने पाँच गये,	२फल ३लागा पै दूर ॥१०६॥
दूर भया तो क्या भया,	सिर दे नियरा होय ।
जबलग सिर सोंपै नहीं,	चाख सकै नहि कोय ॥१०७॥
दूर भया तो क्या भया,	सतगुरु मेला होय ।
सिर सोंपै उन चरन में,	कारज सिद्धि होय ॥१०८॥
यह रन मांही पैठ कर,	पीछै रहै न सूर ।
साहिव के सनमुख रहे,	धर दे सीस हजूर ॥१०९॥
जबलग घड पर सीस है,	मूरा कहिये नाहि ।
माथा तूटे घड लडै,	मूरा कहिये ताहि ॥११०॥
कबीर सांचा सूरमा,	कबू न पहिरे लोह ।
जीवन के भंघ खोल के,	छाँटे तन का मोह ॥१११॥
कठिनाई कछु है नहीं,	जो सिर बदले लेह ।
राम नाम नहि छाँडिये,	जो सिर करवत देह ॥११२॥
मारग कठिन कबीर का,	धरि न सकै पग कोय ।
आय चले कोइ सूरमा,	जा घड़ सीसन होय ॥११३॥
रन जैंग बाजा बाजिया,	सूरा आये धाय ।
पूरा सो तो लडत है,	कायर भागै जाय ॥११४॥

सब कोइ सूर कटावई,
 आगे पीछे वावरा,
 रग वग टोपी सग कसी,
 फिर फिर भवन चितावई,
 कायर का काचा मता,
 आगा पीछा है रहे,
 कायर कचरी बैठि के,
 सूर तव ही जानिये,
 सूर कायर दुइ भला,
 सूर मचाय मापला,
 कान हसिया मुख बकिया,
 टप लागी नहि चुप रहे,
 हाक बनी जब खेत में,
 सारा लस्कर खलवलै,
 सूर निसाना गाडिया,
 सिर बहै नीरत सडै,
 धरनि अकासा धर हरै,
 कहै कपिर जब सिर दिया,
 पारथ सूर मै सुना,
 बाहर बेरी बहु हने,

धीर न बंधे कोय ।
 फिदरे कहै सब कोय ॥११५॥
 रन कूं चलै वजाय ।
 बाना विरद लजाय ॥११६॥
 घडी पलक मन और ।
 जागि मिलै नहि ठौर ॥११७॥
 मूर्छाँ मरडै मरड ।
 निकसे सरडै सरड ॥११८॥
 एक जीव इक मान ।
 कायर देवै जान ॥११९॥
 इक दिन घायल होय ।
 सुरा कहिये सोय ॥१२०॥
 तब रन दीसै प्रीत ।
 कायर दीन्ही पीठ ॥१२१॥
 लडै धनीकी रीज ।
 चहु दिस चमकै बीज ॥१२२॥
 गरजै सुनके बीच ।
 लेहौ लस्कर जीत ॥१२३॥
 जाके सारंगपान ।
 एक न मारै बान ॥१२४॥

सूर सवहि निकसिया, वाना पहिरि अनेक ।
 साहिव के सुख कारनै, मूआ कोई एक ॥१२५॥
 साधू सब ही सूरमा, अपनी अपनी ठौर ।
 जिन ये पांचौ चूरिया, सो माथे का मौर ॥१२६॥
 सूर सो सनमुख लहै, देखि घनी की प्रीति !
 जीता जानै जगत कुं, जक्त न जानै रीति ॥१२७॥
 कबीर चढै सिकार को, हाथै लाल कमान ।
 मूरख नर सो रहि गये, मारे संत सुजान ॥१२८॥
 कबीर चढै सिकार को, हाथै लाल कमान ।
 मेरा मारा फिर उठै, बहुरि न गहं कमान ॥१२९॥
 मारा हे मरि जायगा, भ्रम सुरंगी वान ।
 मेरा मारा फिरि उठै, बहुरि न गहुं कमान ॥१३०॥
 सब्द सुरति का तीर है, तरकस भरे जँजीर ।
 गीदडियाँ पर बाइताँ, केते खोचे तीर ॥१३१॥
 जूझन चाले मूरमा, धरनी किया मुकाम ।
 मर्दों के मैदान में, नहि कायर को काम ॥१३२॥
 भलका है गजबेलका, खरा सरान चढाय ।
 सारा लस्कर हूँडिया, को सिरदार न पाय ॥१३३॥
 कायर काम न आवई, ये सूरका खेत ।
 हाथ पाँव विन जूझना, काया सीस समेत ॥१३४॥

जे मूआ गुरु हेत सुं, ताकूं चुप न वार ।
 साधू साहिव हूँ रहा, पाय रही सिर मार ॥१३५॥
 जो मूआ हरि हेत में, कोइ न बूझै सार ।
 हरिजन हरि सा हूँ रहा, माया रहि सिर मार ॥१३६॥
 सिर साटै का खेळ है, छांडि देय सब वान ।
 सिर साटै साहिव मिलै, तोहु हानि मति जान ॥१३७॥
 नाम करन नाना भये, रहे महा रन पाँय ।
 भलका मारे प्रेमका, खरा खजीना खाय ॥१३८॥
 धीरा हूँ धमका सहै, ज्यों अहरनका घाव ।
 सिर के साटै जब लडै, कबहुं काज न खाव ॥१३९॥
 धनुक वान की चोट है, पानी का परसंग ।
 जिन कूं लागी होय सी, तिन कूं और हि रंग ॥१४०॥
 रम रहै सूरा भये, सूर भये जो सूर ।
 सूर पुरा रहि गये, भागि गये सब कूर ॥१४१॥
 सूर खंडा जो गहे, जब रन बाजै दूर ।
 सीस पडै तो धड लडै, तव तूं सांचा सूर ॥१४२॥
 सब कहवै लस्करि, सब लस्कर कूं जाय ।
 सेल धमका जो सहै, खरा मुसारा खाय ॥१४३॥
 जूझै ते नर भागिया, लिया पीठ पर घाव ।
 जागीरी सब ऊतरी, धनी न कहसी आव ॥१४४॥

जूझै ते नर जूझिया, लिया सीस पर घाव ।
 जागीरी दूनी मई, दिया सीस पर पाव ॥१४५॥
 चोट सहे जो सेल की, ऊठी देह अवास ।
 चोट सब्द की जो सहे, सोइ सुहागी दास ॥१४६॥
 रन चढि सब्द पुकार ही, हो हो हो हुंकार ।
 सिर चिन घड चिन भिड पड़े, ता मॉहीं मयकार ॥१४७॥
 कोइ मारै तिर तोप सूं, होत दुवादस घाव ।
 कबीर मारै सब्द सूं, तल मूडी पर पाव ॥१४८॥
 मन तरकस तन तोपसी, सुरति पलीता छाय ।
 करो भडाका नाम का, काल कुबुध उडि जाय ॥१४९॥
 ज्ञान कामठा गुन चिळा, तन तरकस मन तीर ।
 सब्द भालका सार का, मारै दास कबीर ॥१५०॥
 आस वास मन मेलिया, जब रन घसिया सूर ।
 दल मोटै सर ऊगरे, मुजरा साम हजूर ॥१५१॥
 सूर लडै गुरु दाव सें, इक दिस जूसन होय ।
 जूझै बीना सूरमा, मला न कहसी कोय ॥१५२॥
 सूर तो बहुतक मिले, घायल मिला न कोय ।
 घायल कुं घायल मिले, नाम भक्ति दृढ होय ॥१५३॥
 बाहिर घाव दिसै नहीं, पडा कलेजे घाव ।
 वाकुं औषध का करै, घायल जीवै नाहि ॥१५४॥

१५०. कामठा-पकडनेकी मूठ । चला-चिळा, डोरी । तरकस-भाया ।
 भालका-भाला । १. पा० चला ।

धान तीरछा भेदिया, लगा भलका सार ।
 भरम बकतर भेदि कर, निकसि गया भौ पार ॥१५५॥
 लगा भलका नाम का, रही गया उर माँहि ।
 लगा ताकुं साल सी, औरों कुं गम नाँहि ॥१५६॥

स्वारथ को अंग ।

स्वारथ का सब को सगा, सारा ही जग जान ।
 बिन स्वारथ आदर करै, सो नर चतुर सुजान ॥ १ ॥
 निज स्वारथ के कारनै, सेव करै संसार ।
 बिन स्वारथ भक्ति करै, सो भावै करतार ॥ २ ॥
 स्वारथ कुं स्वारथ मिले, पडि पडि लंबालंब ।
 निस्पेही निरधार को, कोय न राखै श्रुं ॥ ३ ॥
 माया कुं पाया मिले, कर कर लंबे हाथ ।
 निस्पेही निरधार को, गाहक दीनानाथ ॥ ४ ॥
 पाया कुं पाया मिले, लंबी करके पांख ।
 निरगुन को चीन्है नही, फूटी चारों आंख ॥ ५ ॥
 संसारी सैं भीतडी, सरै न एकौ फाम ।
 दुविधा में दोनों गये, माया मिली नू राम ॥ ६ ॥

परमार्थ को अंग।



परमाथ	पाको	रतन,	कवडूँ न दीजै पीठ ।
स्वारथ	सँभळ	फ़ल है,	कली अपृठी पीठ ॥ १ ॥
महँ	पर	माँगूँ	नहीं, अपने तन के कान ।
परमार्थ	के	कारनै,	मोहि न आवैं लाज ॥ २ ॥
पीठ	रीठ	सत्र	अर्थ की, परमार्थ की नॉहि ।
कहै	कविर	परमाथी,	विरला को(य) कळि माँडि ॥ ३ ॥
सुख	के	संगी	स्वारथी, दुख में रहते दर ।
कहै	कविर	परमाथी,	दुख सुख सदा हजूर ॥ ४ ॥
जो	कोय	करे	सो स्वारथी, अरस परस गुन देत ।
बिन	किये	करै	सुरमा, परमार्थ के हेत ॥ ५ ॥
आप	स्वारथी	मेदिनी,	भक्ति स्वारथी दास ।
कवीर	जन	परमाथी,	डारी तन की आस ॥ ६ ॥
स्वारथ	सूका	लाकडा,	छाँह विट्टना मूल ।
पीपल	परमार्थ	भजो,	सुख सागर को मूल ॥ ७ ॥
धन	रहै	न	जोवन रहै, न गाँव न टाप ।
कवीर	जग	में	जस रहै, करदे किसिका काम ॥ ८ ॥

१. सँभरके फूलकी कली उलटी होती है जो कि अपनी ओर म्विलनी है । भाव यह है कि स्वार्थ से केवल अपने का और परमार्थ से सारे ससार को लाभ पहुच सकता है ।

१. पा० कवीर नाम स्वारथी, छाँडी तन की आस ।

विपर्यय को अंग ।

सांझ पढ़ी दिन ढल गया, वाघन घेरी गाय ।
 गाय विचारी ना मरै, वाघ न भूखा जाय ॥ १ ॥
 पापी को दोजख नहीं, धरमी दोजख जाय ।
 यह परमारथ बूझि के, मति कोय धरम कराया ॥ २ ॥
 पांच पचीसों मारिया, पापी कहिये सोय ।
 या परमारथ बूझि के, पाप करै सब कोय ॥ ३ ॥

१ सांझ-अत अवस्था । दिन-जीवन । वाघ-काल । गाय-आत्मा ।
 अत अवस्था आने से जीवन का अत हो गया, अत काल ने
 आत्मा को आ दबाया । ऐसी दशा में भी न तो आत्मा ही मरती है और
 न काल ही भूखा रहता है ।

जिस प्रकार निर्जन वन में रक्षक के अभाव से रात को सिंह गाय
 को दबाता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को काल बार-बार चभेटा करता है ।
 यद्यपि आत्मा का नाश नहीं होता, तथापि देह से प्राणपुरुष का वियोग
 काल कर देता है, इसी का नाम मृत्यु है । यह एक आश्चर्य है कि न तो
 आत्मा ही मरती है और न काल ही भूखा रहता है ।

२ पापी-पांच ज्ञानेन्द्रिय और पचास प्रकृतियों को मारनेवाला ।
 (वश में करनेवाला) दोजख-नर्क । धरमी-पांच और पचीसों को अपने
 विषयों में लगानेवाला ।

३ पांच और पचीसों को मारनेवाला पापी कहलाता है । यद्यपि पापी
 शब्द सुनने में बुरा लगता है, परन्तु इसका अर्थ अच्छा है, इस लिये
 सबों को ऐसा पापकर्म सदैव करना चाहिये ।

आपा मेटे हरि मिले, हरि मेटे सब जाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कोई ना पतियाय ॥ ४ ॥
 घर जाँरे घर उबरेँ, घर राखै घर जाय ।
 एक अचंमा देखिया, मुआ काल को खाय ॥ ५ ॥
 तिलक समान तो गाय है, घट्टुड़ा नाँ नाँ हाय ।
 मटकी भरि भरि दुहि लिया, पूँछ अठारह हाय ॥ ६ ॥

४ आपा—अहकार । हरि—पापों के हरणकर्ता, साहब ।

अहकार को दूर करनेवाला साहब के दरवार में पहुँच जाता है । और मालिक से प्रेम तोड़नेवाले का सब कुछ चला जाता है । प्रेम की इस अकथ कहानी पर कोई निश्चास नहीं करता ।

५ घर—प्रपच, विकार । घर—आत्मा । मूआ—जीवितमृतक । ।

प्रपच के विकारों को जल देने से जीवात्मा का उबार (उद्धार) होता है । और प्रपच के विकारों को बढ़ाने से जीव चौरासी में चला जाता है, यह एक भारी आश्चर्य है कि जीवन्मृतक काल को भी खा लेता है ।

भावार्थ—अहकारादिक विकारों का त्यागना जीतेजी मरना है । जो ऐसा करता है उसे काल चौरासी में नहीं ले जा सकता ।

६ वाणीरूप गायत्री तो तिल के समान स्वल्प है, परन्तु उसके बड़े रूप व्याकरण छन्दे २ नव हैं । और उसका अर्थरूप दूध भी बहुत अधिक होने के कारण अपार है । और तो और उसकी पूँछ भी अठारह पुराणों के रूप में अठारह हाय की है ।

झाल षठी शोली जली, खपरा फूटम फूत ।
 जोगी था सो रमि गया, आसन रही भभूत ॥ ७ ॥
 आग जु लागी नीरमें, कादौं जरिया झार ।
 उत्तर दिसि का पडिवा, रहा विचार विचार ॥ ८ ॥
 धौं लागी सायर जले, पंखी बैठे आय ।
 दाधी देह न पालि है, सतगुरु गये लगाय ॥ ९ ॥
 जल दाझा चीखल जला, विरहा लागी, आग ।
 तिनका वपुरा ऊबरा, गल पूला के लाग ॥ १० ॥

७ झाल ज्ञान विरह । शोली—अतस्करण के विकार । खपरा—काया । जोगी—जीवात्मा । आसन—ससार । भभूत—अनुभव ।

ज्ञान विरह के उदय से ज्ञानी पुरुषों के हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं । अनंतर उनके विदेहमुक्त हो जाने पर भी—जोगी के चले जाने पर भभूति की तरह उनका अनुभव ससार के लिये प्रसाद रूप रह जाता है ।

८ नीर रूप हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के जल उठने से सम्पूर्ण कर्मों का कीचड़ जल गया, इसके फल स्वरूप ज्ञानी जन निर्मल हृदय विदेहमुक्त हो गये, परन्तु उपासनाकुशल उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करनेशाले उत्तरीय पडित तो विचार विचार ही करते रह गये ।

९ ज्ञानी के हृदय रूप सागर में ज्ञान विरह की अग्नि के लगने से इन्द्रियों के गुण रूप पंखी जल गये । सद्गुरु ने जिसको यह अग्नि लगा दी वह अपने शरीर की परवा कदापि नहीं करता ।

१० जल—काया । चीखल—कीचड़, चिन्ता । तिनका=जीव । पूला मालिक ।

हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रकट होने से तन और मनके विकार—चिन्ता आदिक जल गये । केवल जीवात्मा सद्गुरु साहब के शरण पहुचने से बच गया ।

आहरी घों । लाइया, विरग-पुकारै रोय ।
 जा धनमें की लाकड़ी, दासत-है बन सोय ॥११॥
 पानी माहीं परजळीं, रुई अपरवल आग ।
 बहती सरिता रह गई, मच्छ-रहै जल त्यागि ॥१२॥
 नदिया जलि-कोइला मई, समुंदर लागी आग ।
 मच्छी विरछा चढि गई, ऊठ कवीरा जागि ॥१३॥
 पच्छी उडानी गगन को, पिंड रहा परदेस ।
 पानी पीया चोंच बिन, भूलि गया बह देस ॥१४॥

११ आहरी-सद्गुरु । घों—बन की अग्नि, ज्ञान विरह । मृग—पंच इन्द्रिय । वन—कामादिक विकार ।

सद्गुरु ने ज्ञान विरह की ऐसी आग लगाई कि उसमें कामादिक विकार रूपी जंगल की लकड़ियाँ रूप इन्द्रियों जल गईं । अपनी रक्षा का तो उपाय उन्होंने बहुत कुछ किया फिर भी न बच सकीं ।

१२ पानी—हृदय । आगि—ज्ञान विरह । सरिता—सुरति । मच्छ—मन । जल—माया ।

ज्ञान विरह की अग्नि हृदय में ऐसी प्रज्वलित हुई कि सुरति एकाएक ठहर गई । और मन भी माया को छोड़ भागा ।

१३ हृदय समुद्र में ज्ञान विरह की ऐसी आग लगी कि आशा की नदी जलकर कोयला हो गई । और मच्छी रूप सुरती दौड़ कर अछे पुरुष रूप बड़े पेड़ पर चढ़ गई ।

१४ सुरति पिंड को छोड़कर गगन मंडल चढ़ गई, अनंतर वहाँ अंतर-गति से निजानन्दामृत का ऐसा पान किया कि उसे इस देश की सुधि तनिक भी न रहा ।

आकासे । औंधा कुवा, पाताळे पनिहार ।
 जल हंसा कोय पीवई, विरळा आदि बिचार ॥१५॥
 सिव सक्ति मुख को जुवै, पच्छिम दिसि उठे धूर ।
 जलमें सिंघ जो घर करै, मछरी चढै खजूर ॥१६॥
 जिहि सर घटा न बूढ़ता, मँगल मलि मलि न्हाय ।
 देवल बूढ़ा कलस सों, पँछि पियासा जाय ॥१७॥
 चोर भरोसै साहुके, लाया वस्तु चोराय ।
 पहिले बांधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥१८॥

१५ गगन मडल में नीचे मुख का एक अमृतकूप है । गुरुगम युक्ति के बिना उस अमृत को कुडली शक्ति पी लेती है । कोई विरले हस आदि-विचार से उस अमृत का पान करते हैं ।

१६ मेरुदंड में प्राणों के सचार से मन और मनसा का लय होता है । और गगन मडल में सुरति के चंदने से हृदय में ज्ञान का सचार होता है ।

१७ 'सद्गुरु के बिना जिस निम्बानन्द सागर में मन जरा भी नहीं पैठता था अब तो वह हाथों के समान विहारपरायण होकर उससे बरा भी निकलना नहीं चाहता । और शरीर भी नख से शिखा तक उस आनन्द से आनन्दित हो गया, परन्तु ससारी उडाकू मन को इससे कुछ आनन्द नहीं मिलता ।

१८ चोर=मन । साहु=शरीर ।

शरीर की सहायता से मन नाना प्रकार के अनर्थ कर बैठता है, अब शरीर को सपत बनाना भी अन्यायश्यक है, शरीर के निरोध से मन असहाय बनकर स्वयं हतोसाह हो जाता है ।

चोर मरोसै साहु के, वस्तु पराई लेय ।
 जब लग साह न बांधई, चोर वस्तु नहि देय ॥१९॥
 भँवरा चारी परिहरी, मेवा बिलँवा जाय ।
 बावन चंदन घर किया, भूलि गया बनराय ॥२०॥
 एक दोस्त हमहू किया, जिहि गळ बाल कवाय ।
 सब जग घोवो घोय मरे, तोभी रंग न जाय ॥२१॥
 घगुली नीर विटारिया, सायर चढा कलंक ।
 और पँखेरु पीबिइया, हंस न बोरे चंच ॥२२॥

१९ मन शरीर के उपभोग के लिये माया का सचय करता है; अतः जब तक शरीर सद्यत न बनाया जाय तब तक मन नहीं रुक सकता ।

२० सदगुरु की कृपा से अब मन ने त्रिपर्यायी को त्याग दिया और नित्यानन्द रूप मेव को खाने लगा । और पारब्रह्म रूप चन्दन का ऐसा निरासी बन गया कि अब ससार की तनिक भी मुक्ति नहीं करता ।

२१ मैंने ऐसे प्रेमी मन का संग लिया जिसके गले तक प्रेम का लाल जामा है । अनेक ससारी लोगो ने उस रंग को फाँका करने का उद्योग किया; परन्तु वह ज्यों का त्वा बना रहा ।

२२ कुबुद्धि ने जीव को अपने कर्तव्य से च्युत कर दिया, अतः शरीर को भी कलक लग गया । ससारी लोग चाहें कुबुद्धि के पीछे पडे रहें; परन्तु सतजन तो उसका संग कदापि नहीं करते । आत्मा का माया और मया के गुणों से कभी अत होता नहीं ।

जल में अँन जो ना चुरै, घृत में पाक न होय ।
 कहैं कबिर या साखि को, अर्थ करै सब कोय ॥२३॥
 तीन गुनन की बादरी, ज्यों तरुवर की छांदि ।
 बाहर रहै सो ऊवरै, भीजै मन्दिर माँहि ॥२४॥
 ऐसी ब्याई सो तुडै, बेस्वा सो रहि पेट ।
 सगो समुर पाँयन पयो, भइ सतगुरु सों भेट ॥२५॥
 सूम सदा ही उद्धरै, दाता जाय नरक ।
 कहै कबिर यह साखि सुनि, मति कोय जाव सरक ॥२६॥

२३ कबीर साहब कहते हैं कि इस साखीका अर्थ सब कोई कर सकते हैं, अर्थात् इस बात को सब कोई जान सकते हैं ।

२४ तरुवर की छाया की तरह तीन गुन की बदली रूप माया की छाया भी स्थिर नहीं रहती । जो इस माया मन्दिर से बाहर रहते हैं वे भीजने नहीं पाते और जो इसके अन्दर रहते हैं वे गुणरूप जल से पूरी तरह भीज जाते हैं ।

२५ त्रिगहिता स्त्रीरूप सुमति का गर्भपातरूप ज्ञान का नाश हो गया । और त्रेश्वररूप माया के गर्भ से अज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न हो गया । और सद्गुरु से भेंट होने पर अहंकार रूप श्वशुर भी पैरों में आ पडा ।

२६ सूम-वीर्य का दान नहीं करनेवाला साधुमन । दाता-वीर्य दान करनेवाला कामी पुम्प ।

दाता नरक मूम वैकूँठे, यच्छर अंजर जरै ।
 कबीर साखी कठिन है, हिरटै रसै तव अर्थ करै ॥२७॥
 वैसन्दर जाड़े मरै, पानी, मरै पियास ।
 भोजन तो भूखा मरै, पाथर मरै इगास ॥२८॥
 नलिनी सायर घर किया, दौं लागी बहु तन्न ।
 जल ही मांहीं जलि मुई, पूरव जन्म लखन्न ॥२९॥
 रौनि पुरै वासर घटै, वन अंधियारा होय ।
 लागि रहा फूटा फला, पथ नहि काटा कोय ॥३०॥

२७ नहीं जलनेवाली मत्सरता (दूसरों में तुच्छता बुद्धि) को जन्मनेवाले पूर्वोक्त मूम को सद्गति होती है और पहले कहे हुए दाता जो तो नरक ही जाना पड़ता है । कबीर साहब कहते हैं कि कठिनता के कारण जिसके हृदय में यह अर्थ बैठना है वही इस साखी का अर्थ कर सकता है ।

२८ कामाग्नि का शील से नाश होता है और तृष्णा के शमन से तृष्णा का नाश होता है । तथा इन्द्रियों के शमन से त्रिपर्यप की निवृत्ति होती है । इसी प्रकार भय से मूर्ख का दमन होता है ।

२९ आत्मा को शरीराध्यास ही के कारण लोभ मोहादिक से अनेक सताप उठाने पड़ते हैं । यह कुछ भाग्य की बात है कि माया ही से इसका सर्व नाश होता है ।

३० जगनी बीत गई और बुढ़ापा भी धोरे २ बीत रहा है । और निर्मलता के कारण इन्द्रिया भी अमर्ष्य हो गई । अज्ञानी लोग २ मना से सत्तार में आसक्त रहते हैं । पुत्र और पौत्रादिकों के सुख को उठाने हुए भी चीरासी से नहीं छूटने पान ।

उलटा ज्ञान विचार के, देखो अपना देस ।
 हरदी चून मिळाय के, रहै न दूजी लेम ॥३१॥
 कबीर उलटा ज्ञान का, कैसे करूं विचार ।
 अस्थिर बैठ पंथ कटै, चला चली नहि पार ॥३२॥
 सायर माहीं सर गया, मच्छी खाया सोय ।
 सो मच्छी तखर चढी, बूझै विरला कोय ॥३३॥
 हरि घोडा ब्रह्मा बडी, वासक पीठि पलान ।
 चांद सुरज दुइ पायडा, चढसी संघ सुजान ॥३४॥

३१ ससार से उपरत होकर निजपद की ओर बढ़ो । आत्मा और आत्मचिंतन के प्रताप से द्वेष का लेश तक नहीं रहता ।

३२ इस उल्टे ज्ञान का उर्णन नहीं किया जा सकता । जो ससार से उपरत होकर बैठ जाते हैं वे तो चौरासी के मार्ग को पार कर लेते हैं, और जो अनेक विद्वानों में पडकर इधर उधर दौड़ धूँव करते रहते हैं वे इस मार्ग का अन्त नहीं पाते ।

३३ हृदय में समाये हुए गुरु के सन्द को सुरति ने ग्रहण कर लिया इस कारण वह सर्वोच्चपद को पहुँच गई, इस बात को त्रिलो पुरुष जानते हैं ।

३४ आत्मयोगी लोग तमोगुण के घोड़े को रजोगुण की कडी लगाकर कुडलनी सपिणा को बश में करते हैं । अनंतर इगला और पिगला के पापडे बनाकर सुगुमना में सुरति को चढ़ाते हैं ।

घटी बढी जानै नहीं, मन में राखै जीत ।
 गाडर लडै गयन्द सों, देखो उलट्टी रीत ॥३५॥
 कूरर बहुबहु जरि मुआ, सलसै चढी सियार ।
 रोवत आवै गदहरा, बोधत आय विचार ॥३६॥
 मा मारी धी घर करै, गौ सो बच्छा खाय ।
 ब्राह्मन मारै मद पिये, तो अमरापुर जाय ॥३७॥
 माता मूये एक फल, पिता मुये फल चार ।
 भाई मूये हानि है, कहै कबीर विचार ॥३८॥

३५ गाडर-काया । गयन्द मन ।

अपने ऊपर आई हुई अनेक आपत्तियों को सहनेवाला मनुष्य शारीरिक-संयम के कारण मन पर विजय पा सकता है । शरीर से मन को रोकना हाथी से भेड का लडना है ।

३६ ज्ञानी वीरों की ज्ञानाग्नि से कामादिक कुत्तों के झुड जल जाने हैं । ओर सशय रूपी शियार जीते जी चित्त पर चढ जाता है । गर्भ रूपी गदहा रोता है और वादरूप बिलार उसको सान्त्वना देता है ।

३७ जो अधिकारी पुरुष ममतारूप माता को मारता है तथा बुद्धिरूप लडकी को अपने हृदयरूप गृह की गृहिणी बनाता है । इसी प्रकार सुमतिरूप गौ के निकट बड्डै को खाता है, तथा जो वादरूप ब्राह्मण को मारकर गुरुमत रूपी मद्य को खूब पीता है वह स्वर्ग को अवश्य पहुंचना है ।

३८ माता रूप ममता के मरने से चिरशक्तिरूप एक उत्तम फल मिश्रता है । और पिता=चित्त, क्रोध के मरने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चार फलों की प्राप्ति होती है; परन्तु मातरूप भाई के मरने से तो मुक्ति में हानि हो जाती है । यह उपदेश सद्गुरु कबीर ने खूब विचार कर दिया है ।

अचर चरै चर परिहरै, मरै न चरै जाय ।
 वारह मास विलोचना, घूमे एकै भाय ॥३९॥
 ऊनै आई वादरी, बरसन लगा अंगार ।
 ऊठि कबीरा धाड़ दै, दासत है संसार ॥४०॥
 बेटि को भाटी ले गइ, बेटा को (ले गइ) भंगार ।
 माता को लोइ ले गइ, कबीर सिरजनहार ॥४१॥
 अब तो ऐसी है पढ़ी, ना तुम्हरी ना बेलि ।
 जारन आनी लाकड़ो, ऊठी कोंपल मेलि । ४२॥
 विन पाँवन का पंप है, भंझ सहर अस्थान ।
 विकट घाट औघट घना, पहुँचै संत सुजान ॥४३॥

३९ जो पुरुष सदा के लिये निश्चल तत्त्व में स्थिर होकर ससार से नाता तोड़ देना है वह न मरता है और न विचलित ही होता है ।

४० माया की बदरी झुक आई और उससे विकार के अंगारे बरसने लगे । ऐ जीव ! इससे निकल भाग, देखो, मारा ससार इससे जल रहा है ।

४१ बेटा-भलाई को भाटी-भलाई ले गई । और बेटा-वाद को भंगार-भजन ले गया । इसी प्रकार माता-ममता को लौ-लगन ले गई । और कबीर-जीव को सिरजनहार ले गया ।

४२ सद्गुरु की दया से मायाह्वय बोल और तृष्णाह्वय तुमड़ी दोनों का उच्छेद हो गया । और कायाह्वय काठी में याग का अग्नि के लगते ही उससे भक्ति को कांपल निकल आई ।

४३ सद्गुरु का स्थान-निवास मध्यशहर अर्थात् हृदयकमल में है; परन्तु उसका मार्ग विना पाप का है अर्थात् निष्काम कर्म के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है । और उसका घाट द्वार भी औघट अटपट है । ऐसी स्थिति में कोई सुजान सन्त ही वहाँ पहुँच सकते हैं । “ क्षुरस्य धरा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कनयो वदन्ति ” इति श्रुतेः ।

ऊंचा चढि असमान को, मेरु ऊलंधे ऊडि ।
 पशु पंछी जिव जन्तु सब, रहा मेरुपे गूडि ॥४४॥
 धरति समानी अघर में, अघर घरा के पांदि ।
 अघर घरा जब देखिया, दीसे दूसर नांदि ॥४५॥
 या देखा वा देखिया, वा देखा या थीर ।
 यह वह दो एक भया, सतगुरु मिलै फवीर ॥४६॥

४४ अम्यासी को उचित है कि गगन मडल में चढ़कर और सुरति के पाखों से उड़कर मेरु अर्थात् मेरु द्रड से पार हो जाय; क्यों कि पशु पक्षी और सब जीव, जन्तु मेरुदण्ड में ही गडे पडे हैं ।

भावार्थ—पशु पक्षियों से यहा पाशत्रिक भावनाए ली गई हैं जो कि मनुष्यों को ससार की ओर खेंचती हैं । मूलाधार से सहस्रार तक मेरु की सीमा है । सहस्रदल कमल निरंजन का है इसमें मन का निवास है । इसके परे सुरति कमल है, जहापर “ सुरति कमल में (पर) साप्तेत्र बोले ” इसके अनुसार सद्गुरु का धाम है । वहा पहुचने से पाशत्रिक भावनाए दूर हो सकती हैं ।

४५ अम्यासी की धरती—सुरति अघर—निरति (शब्द) में सना गयी, मिल गयी । ऐसा होने से वह अघर (शब्द) घरा—सुरति में ही आ गया । इस प्रकार अम्यासी को सुरति और निरति की एकता के कारण समाधि लाभ होने से—“ तदा द्रष्टुं स्वरूपेऽऽस्थानम् ” (योग दर्शन) इसके अनुसार स्वरूपस्थिति होने से “ दीसे दूसर नादि ” दूसरा प्रपच कुछ भी नहीं दीखता ।

४६ जीव के स्वरूप का बोध होने पर साहेब का भी साक्षात्कार हो जाता है । और साहेब के साक्षात्कार के अनंतर ही इस जीव को सच्ची स्थिरता प्राप्त होती है । कर्गार साहेब कहते हैं कि यह दुर्लभ लाभ तब ही प्राप्त हो सकता है जब सद्गुरु मिलें, सद्गुरु के मिलने पर ही यह और वह अर्थात् जीव मादिक दोनों एक रूप हो जाते हैं ।

पानी हुने पातला, धूँवा हू ते झीन ।
 पवन हू वेग उतावला, दोस्त कवीरा कीन ॥४७॥
 पुहुप वास ते पातला, सूक्ष्म जाको रंग ।
 कगीर तासैं मिलि रहा, कन्हू न छाडे संग ॥४८॥
 पहिल मा का खसम भया, पिछे भया है पूत ।
 अंतर गत की समुझि कै, छोडि चले अवधूत ॥४९॥

४७ इस जीव ने ऐसे मन के साथ मित्रता की है,— जो पानी से भी पतल और धूँवा से झीना है । ओर जिसका वेग पवन से भी अधिक है, ऐसे चंचल मन के साथ रहनेवाले जीवत्मा को कदापि शान्ति नहीं मिल सकती ।

“ चंचल हिं मन कृष्ण प्रमाथि बल्यद् दृढ, तस्याह निग्रह मये
 गयोःखि सुदुष्करम् ” (गी०)

४८ यह जात्र ऐसे मन के साथ मिल जुल रहता है, ओर उसका साथ कभी नहीं छोड़ता जो कि फूलों की महक से भी पतला है, ओर जिसका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है । ओर यही कारण है कि उसको ठीक तरह से यह जात्र नहीं जान पाता है ।

४९ ससार क ऐसे सूक्ष्म रहस्य को समझकर त्यागी पुरुष इसे छोड़ देते हैं । देखिये यह कैसा आश्चर्य है । “ तदेव जायाया जायात्वं यदस्या जायते पुमान् ” तथा “ आत्मा वै जायते पुत्र ” इन श्रुतियों के अनुसार पुरुष ही पुत्र रूप से अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता है । पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् इस कथन से स्त्री माता हो जाती है । “ भी बालक भग द्वारे आया, भग भोगी के पुरुष कहाया ” ससार की यही विचित्र लीला इस साखी में कहा गई है, ‘पहले माका खसम भया, पिछे भया है पूत’ अर्थात् स्त्री प्रसंग के समय पुरुष अपनी माता का पाते बनता है । ओर वहीं पुत्रोत्पत्ति के समय पाछे उसका लडका बन जाता है । इसी उलट फेर से डरकर त्यागी पुरुष अलग ही रहते हैं ।

स्वसम उच्छटि बेटा भया, माता मिहरी होय ।
 मरख मन समुझै नही, बड़ा अचंभा मोय ॥५०॥
 पानी में की माछली, चढि सो परवत गई ।
 अग्री पीया पुष्ट भई, जल पीया मर गई ॥५१॥
 कफ काया चित्त चकमका, शाली वारंवार ।
 तीन बार धुंवा उठे, चौथे पडे अंगार ॥५२॥

५० ऊपर का साखी के कथन अनुसार पुत्र की उत्पत्ति के समय पति ही अपनी स्त्री का पुत्र बनता है । इस नाते से स्त्री उस पुरुष का माता बन जाती है । कबीर साहेब कहते हैं कि उस गृह रहस्य को गर्व लोग अपने मन में नहीं समझते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है ।

५१ सप्तारी जीवों की सुरति एक विचित्र मउली है, जो कि सप्तर के विषयो की अग्नि को पी कर मस्त बना रहती है । सद्गुरु की दया हेनि पर उनकी सुरति में ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह परजन के समान सत्र से ऊंचे सद्गुरु के वाम में चढ़ जाती है, और वहा पहुचने पर उसको जल के समान अत्यंत प्रिय निजानंद रूपी अमृत पाने को मिलता है । आश्चर्य है कि वह जल के पीते ही सदा के लिये मर जाती है । अर्थात् सप्तर की सुधि भूल जाती है ।

५२ सद्गुरु कहते हैं कि काया के कपडे पर चित्त के चकमक को वार २ शाडो, अर्थात् अभ्यास ओर वंशग्य के द्वारा तन में मन का निरोध करो । इस प्रकार वार २ अभ्यास करने मे मन की त्रिगुणात्म्या दूर हो जायगी । त्रिगुणात्म्या का रहना अग्नि की वह धूमात्म्या है कि जिसमे प्रकाश का अभाव रहता है । इसी बात को इस साखी में तीन बार

गुरु दाइया चेली जलया, विरहा लागी आग ।
 तिनका वपुरा ऊबरा, गल पूरी के लाग ॥५१॥
 बहनी सें रेटी भई, बेटी सें भइ नार ।
 नारी सें माता भई, मनसा लहर पसार ॥५४॥

५३ ज्ञानी के हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रगट होने पर उसके दृष्टि में गुरुभाव और शिष्यभाव नहीं रहता, यही गुरु और चेली का जलना है । इस प्रकार पूर साहेब की शरण में जाने से वह तुच्छ दास मित्राल कालाग्नि से बाल २ बच जाता है ।

भावार्थ—“पूरा साहेब सेइये, सब निधि पूरा होव ”

५४ मन की लहर का दोड़व इस प्रकार से होता है कि पहले बहनी=प्रज्ञा से रेटी=इच्छा होती है, और बेटी से नारी=प्रवृत्ति बन जाती है । पश्चात् उसी नारी से माता रूप उत्पत्ति होती है । इस प्रकार की मन की तरंगों का वर्णन महामाश्रों ने किया है ।

५ (धूँरा) लठे इस पद से प्रताया गया है । त्रिगुणान्तस्था क दूर होने पर गुणातीत का पद प्राप्त होता है, इसीको तुरीय पद और चौथा पद भी कहते हैं । चौथे पद को प्राप्त होने पर आत्मा का स्वरूप प्रकाश सामने आ जाता है । यही यहाँ पर “चौथे पडे अगर ” इस पद से अंगार पडना प्रताया गया है ।

भावार्थ—त्रिगुणान्तस्था मन का है और चौथा पद आत्मा का है “तीन लोक में है पम राणा, चौथे लोक में नाम निशान, एले कोई मिरला पद निर्मान । ”

चार चरन नौ पख है, दो मस्तक है ताहि ।
 इक मुख सीप सँवारही, इक मुख भोजन खाहि ॥५५॥
 माता का सिर मूँडिये, पिता कुँ दीजै मार ।
 बन्धु मारि डारै कुआ, पडित करो विचार ॥५६॥
 करीर कोठी काठ की, चहुँ दिस छागी छार ।
 ग्राही पडे सो ऊवरे, दास्ये देखन हार ॥५७॥

५५ इस मन पक्षा के मन बुद्धि चित्त ओर अहंकार रूप चार चरण है, आर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप दो पाखे हैं । साकार और निराकार रूप दो मस्तक हैं । उनमें से निराकार रूपी मुख से यह शून्य रूपी सीप का मुख भोगता है और दूसरे साकार मुख से यह नाना प्रकार के भोग रूपी भोजन करता है ।

अर्थ—मन पक्षी तत्रलग उडे, विषय वासना माहि ।

ज्ञान बाज का झपट में, जब लग आयो नाहि ॥

५६ कव्वार साहेब कहते हैं कि हे पडितो ! आप लोग इस माखी के अथ का विचार करिये, सुनिये आर समझिये । माता रूप ममता का सिर मूँड डालिये ओर पिता अज्ञान को मार डालिये, इसी प्रकार अहंकार रूपा बंधुओं को भी मारकर कुर्य में डाल दीजिये । ऐसा करने से हा आप लोगों का कल्याण होगा ।

५७ करीर साहय कहते हैं कि ज्ञान विरही पुरुषों का ऐसा स्थिति होती है कि उनकी कामना रूपी काठ का कोठी के चारों ओर ज्ञान विरह का आग्नि जलती रहती है । ऐसी स्थिति में उस आग्नि के घेरे में आ जाने वाले ज्ञान विरही ससार की आच से दूच जाते हैं । और दूर से देखने वाले सत्यसगी लोग जल मरते हैं, अर्थात् सत्यसगियों को भी ज्ञान विरह की लपट लग जाती है ।

दब लागी दरियाव में, नदिया कुइला होय ।
 मच्छी परवत चढि गई, बूझै बिरला कोय ॥५८॥
 दब लागी दरियाव में, डठी अपरवल आग ।
 सक्ति बहती रहि गई, मोन दिया जल त्याग ॥५९॥
 कीडी चली जु सासरे, नौ मन काजल लाय ।
 हस्ती लोन्हा गोद में, ऊँट लपेटे जाय ॥६०॥

५८ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की अग्नि के लगते ही उनकी सांसारिक कामना रूप नदी जलकर कोयला बन गई । और उनकी सुरति रूप मछला पर्वत रूपा ऊँचे सद्गुरु के देश में पहुँच गई । इस रहस्य को कोई विरले ही पुरुष समझ पाते हैं ।

५९ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की ऐसी प्रचंड अग्नि जल उठी । क उसको ज्वाला चारों ओर फैल गई, इस कारण उनकी कामना रूप नदी का वहाँ रुक गया और उनको सुरति रूप मछली भी समार समुद्र को छोड़ भागी ।

भावार्थ—ज्ञान निरही जनों के हृदय में सदैव ज्ञान निरह की ज्वाला उठनी रहती है । केवल सद्गुरु के दर्शन के अतिरिक्त उनके हृदय में किसी प्रकार की कामना नहीं रहता और उनकी सुरति भी ससार अन्ना हो जाती है ।

६० सद्गुरु की कृपा से ज्ञान विरही जनों की सुरति रूप चिड़ी ने सत्य लोक रूप समुद्राल का रास्ता पकड़ लिया । उसके विचित्र गृहार को सुनिये—उसने अपनी विरह की आँखों में नरधा भक्ति का काजल लगा लिया और मन रूपा हाथी को पकड़कर गोद में बैठा लिया अथवा मन को अपने वश में कर लिया । और अहंकार रूपा ऊँट की गर्दन पकड़कर उसको हाथ में अधर लटका लिया ।

भावार्थ—नरधा भक्ति के धारण करने से तथा मन और अहंकार के दमन करने से ही प्रेमियों की सुरति सत्य लोक को पहुँच सकती है ।

रपट भैस पीपल चढी, पढि भांगे दो ऊंट ।
 गढडे दीनी आंचकी, भये भैस दो टूट ॥६१॥
 भैरै लागि सायर तरी, तरी नेह चिन नीर ।
 प्रीतम कुं प्यारी मिली, यौ कढि टास कधीर ॥६२॥
 तत्त समाना तत्त में, अनहद समाना जाप ।
 ब्रह्म समाना ब्रह्म में, आप समाना आप ॥६३॥

६१ इस साखी में त्रिकदशा और और अत्रिकदशा का उगण किया गया है । त्रिकस्थिति में प्रकृति रूप भैस तत्काल ही पीपल रूप पुरुष पर आकृष्ट हो जाती है, अर्थात् प्रकृति का पुरुष में लय हो जाता है । और राम तथा तामस अन्कार रूपी दोनों उट भी भंग जाते हैं । अर्थात् दोनों का अभाव हो जाता है । इसके विराम अत्रिक दशा में अत्रिक रूपी गढडा प्रवृत्ति रूप भैस को ऐसा झटका मारता है कि उसके दो टुकड़े हो जाते हैं । इन दोनों टुकड़ा का नाम सारपशास्त्र में प्रकृति और विकृति है ।

‘ मूत्रप्रकृतिविकृति गंहदाया प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

पोडशकम्तु विकारो न प्रकृति न विकृति पुरुष ” (साख्यनारिका)

६२ प्रेमियों की सुगति प्रेम की नोका पर चढ़ कर ससार समुद्र को तर जाती है । यह ससार समुद्र अपना स्नेह के पानी का है । कपूर सोह्य कहते हैं कि इस प्रकार समर से पार पहुँच कर प्यारी सुरभि अपने प्रियतम सोह्य से मिल जाती है ।

६३ जानियों का मुक्तिदशा में उनके पाञ्च भौतिक तत्त्व (कार्य) पाञ्च तत्त्व में मिल जाते हैं । और उनका जाप अनहद में समा जाता है । इसी प्रकार कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म का भी ब्रह्म में लय हो जाता है । ऐसी स्थिति के प्राप्त होने पर उनका स्वरूप अपने आराम स्थित हो जाता है । अर्थात् सगों में अमग होकर अलिप्त हो जाता है । इसी को केवल्य मुक्ति कहते हैं ।

आग लगी आकास में, जरि जरि पड़े अंगार ।
 कहीं कवीर उठ जाग रे, जलन लगा संसार ॥६४॥
 भेरे चढ़िया सरप के, भौसागर के मांढि ।
 जो छहै तो बूढि है, गहि तो दसि है वांढि ॥६५॥
 हम जाये ते भी मुआ, हम भी चालनहार ।
 हमरे पीछे पूंगरा, तिन भी वांधा भार ॥६६॥
 साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार ।
 कागद में बाकी रही, ताते लागी वार ॥६७॥

रस को अंग ।

कवीर हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौ लाय ।
 रोम रोम म रमि रहा, और अमल बया खाय ॥ १ ॥
 कवीर हरि रस भरि पिया, कोय न पीवै नीर ।
 भाग बढ़ा सो पीवसी, भरि भरि पित्र कवीर ॥ २ ॥
 कवीर हरि रस बटत है, सरवन दोना ओढि ।
 राम चरन काँठा गहो, मति करह धौं छोढि ॥ ३ ॥
 कवीर हरि रस जिन पिया, माँगे सीस कलाल ।
 दिक् ओछा जिन दूबला, बहुत विगूँचै माल ॥ ४ ॥

हरिरस महंगा जन पिये, देवै सीस कलाल ।
 घट ओछा दिन दूबला, बंटेगा बहु काल ॥ ५ ॥
 हरिरस पीया जानिये, उत्तरै नॉहि सुमारि ।
 मतवाला घूमत फिरै, नहि जो तन की सारि ॥ ६ ॥
 हरिरस महंगा पीजिये, छॉडि जीवकी वानि ।
 सिर के साटै हरि मिले, तबलग मुहंगा जानि ॥ ७ ॥
 सिर दीये जो पाइये, देव न कीजे कानि ।
 सिर के साटै हरि मिले, तबलग मुहंगा जानि ॥ ८ ॥
 पिया पियाला भेमका, अन्तर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, दूजा रस क्या प्याय ॥ ९ ॥
 प्रेम पियाला भरि पिया, जरा न किया जतन ।
 आवै छकि तब जानिये, रंका घटा रतन ॥ १० ॥
 थोरे ही से छाकिया, भौंटा पीया धोय ।
 फूल पियाला जिन पिया, रहे कलालों सोय ॥ ११ ॥
 राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
 मतवाला दीदार का, मॉगै मुक्ति बलाय ॥ १२ ॥
 राता माता नाम का, मद का माता नॉहि ।
 मद का माता जो फिरै, सो मतवाला काहि ॥ १३ ॥

१०. हृदय में प्रेम की मल्लो का आना रक के घडे में रनों का भर जाना है ।

मतवाला " घूमत फिरै, रोम रोम रस पूर ।
 छोटै आस सरीर की, देखै राम हजू ॥१४॥
 महयंता अविगत रता, आसा अकल अजीव ।
 नाम अमल माते रहे, जीवन मुक्त अतीत ॥१५॥
 महयंता नहि बिन चरे, सालै चित्त सनेह ।
 चारिज बंधा कलाल के, डारि रदा सिर खेह ॥१६॥
 आठ गाँठि कोपीन के, साधु न मानै संक ।
 नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र को रंक ॥१७॥
 दावै दासन होत हे, निरदावै निहसंक ।
 जो जन निरदावै रहै, कहै इन्द्र को रंक ॥१८॥
 पिया पिया सब कोय कहै, हरिजन माता एक ।
 फूल कटावा जे पिये, पटा कलेजे छक ॥१९॥

मन को अंग ।

कबीर मन तो एक है, भावै तहां लगाय ।
 भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ १ ॥
 कबीर यह मन मसखरा, कहँ तो माने रोस ।
 जा मारग साहिव मिले, तहाँ न चालै कोस ॥ २ ॥
 कबीर मन परचन भया, अरयै पाया जान ।
 टाँकी लागी प्रमकी, निकसी कंचन खान ॥ ३ ॥

कवीर मन गाफिल भया, सुमिरन लाग नाँहि ।
 यनी सहेगा सासना, जम की दरगह माँहि ॥ ४ ॥
 कवीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार ।
 भजन करन को आलसी, खाने को तैयार ॥ ५ ॥
 कवीर मन हि गयंद है, आंङ्गुम दे दे राखु ।
 रिप की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥ ६ ॥
 कवीर मन परकट भया, नेक न कहूँ ठहराय ।
 सत्तनाम धाँधै विना, १जित भावै तित जाय ॥ ७ ॥
 कवीर सेरी सांकरी, चंचल मनुवा चोर ।
 गुन गावै लौलीन है, कलु इक मनमें और ॥ ८ ॥
 कवीर बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच ।
 अपने अपने स्वाट को, बहुत नचावै नाच ॥ ९ ॥
 कवीर वह मन कित गया, जो मन होता काल ।
 डुंगर २बडा मेह ज्यों, मया निवाँना चाल ॥ १० ॥
 कवीर मनका माँहिला, अवला बहै असोस ।
 देखत ही दह में परै, देय किसी को टोम ॥ ११ ॥

१०. निमान—तालाब या नदिया । वर्षा के समय ऐसा मालूम होता है कि मानों पहाड मेघजल से डूब गये हैं, परन्तु थोड़े काल में पानी उठकर तालाब या नदियों में चला जाता है । इसी प्रकार क्याप्रसंग में मन ज्ञान-निमान हो जाता है; परन्तु थोड़े ही काल में फिर रिपयों में चला जाता है ।

११. अवला—उलटा । असोस—निर्भय । दह—गदहा ।

१. पा० सौ सौ नाच नचाप । २. पा० वृद्धों ।

कवीर छहरि समुद्र की,	केती आवै जाँहि ।
बलिहारी वा दास की,	उलटि समाधि माँहि ॥१२॥
कवीर यह गत अटपटी,	चटपट लखी न जाय ।
जो मन की खटपट मिटै,	अधर भये ठहराय ॥१३॥
अघट भया खटपट मिटै,	एक निरन्तर होय ।
कहै कविर तब जानिये,	अन्तर पट नहि दोय ॥१४॥
मन के मते न चालिये,	मनके मते अनेक ।
जो मन पर भसवार है,	सो साधु कोय एक ॥१५॥
मन के मने न चालिये,	छाँडि जीव की वानि ।
कतवारी के सूत ज्यों,	उलटि अपूठा आनि ॥१६॥
मन पाँचों के बस पड़ा,	मन के बस नहि पाँच ।
जित देखूँ तित हों लागी,	जित भागूँ तित आँच ॥१७॥
मन के मारे बन गये,	बन तजि बरतो माँहि ।
कहै कविर क्या कीजिये,	यह मन ठहरै नाँहि ॥१८॥
मन मुरीद संसार है,	गुरु मुरीद कोय साध ।
जो मानै गुरु वचन को,	ताका मता अगाध ॥१९॥
मन को मारुँ पटक के,	टुक टुक है जाय ।
विष की ब्यारी बोय के,	लुनता क्यों पछिताय ॥२०॥

१६. कतवारी—कातनेवाली । अपूठा-उल्टा । १९. मुरीद-शिष्य ।

१. पा० ताकत केरा तार ज्यू ।

मन को मारूँ पटक के,
 टूटै पीछै फिरि जुरे,
 मन ही को परमोधिये,
 जो यह मन को वसि करे,
 मन गोरख मन गोविंदा,
 जो मन राखै जतन कारि,
 मन मोटा मन पातरा,
 मन के अैसी ऊपजै,
 मन दाता मन लालची,
 जो यह मन गुरु सों मिलै,
 मन के बहुतक रंग हैं,
 एक रंगमें जो रहे,
 मनुवा तो पंछी भया,
 ऊपर ही ते गिरि पड़ा,
 मन पंछी तवलगि उँढ़ै
 प्रेम बाज की क्षपट में,
 मन कुंजर महमन्त था,
 दुहरी तिहरी चौहरी,
 मन के हारै हार है,
 कौँ कविर गुरु पाइये,
 टुक टुक हैं जाय ।
 बीच गाँठि परि जाय ॥२१॥
 मन ही को उपदेस ।
 सीप होय सष देस ॥२२॥
 मन ही औघड़ सोय ।
 आपै करता होय ॥२३॥
 मन पानी मन लाय ।
 तैसी ही हैं जाय ॥२४॥
 मन राजा मन रंक ।
 तो गुरु मिले निसंक ॥२५॥
 छिन छिन चदलेसोय ।
 ऐसा विरला कोय ॥२६॥
 उड़ि के चला अकास ।
 मन माया के पास ॥२७॥
 विषय वासना माँहि ।
 जब लगि आवै नाँहि ॥२८॥
 फिरता गहिर गँभीर ।
 परि गई प्रेम जँजीर ॥२९॥
 मन के जीतै जीत ।
 मन के प्रेम प्रतीत ॥३०॥

मन नहि छाड़े विषय रस, विषय न मन को छाड़ि ।
 इनका यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि ॥३१॥
 मन से मन मिलता नही, तन को करता भंग ।
 मन अब भया जु कामरी, चढ़े न दूजा रंग ॥३२॥
 मन दीजे मन पाइये, मन विन मान न होय ।
 मन उनमुन ता अँड ज्यौ, अलल अकासा जोय ॥३३॥
 मन जो गया तो जान दे, दृढ करि राख सरीर ।
 विना चढ़ाय कमान के, कैसे लागे तीर ॥३४॥
 मनवा तो फूला फिरै, कहै जो करूँ धरम ।
 कोटि करम सिर पर चढ़े, चेति न देखै मरम ॥३५॥
 मन नहि मारा मन करि, सका न पाँच प्रहारि ।
 सीछ साँच सरधा नही, अजहूँ इन्द्रि उधारि ॥३६॥
 मन की घाली हूँ गई, मन की घाली जाँव ।
 संग जो परी कुसंग के, हाँटे हाट धिक्काऊँ ॥३७॥
 मन चलताँ तन भी चलै, ताते मन को घेर ।
 तन मन दोऊ वसि करै, होय राइ हूँ भेर ॥३८॥
 मना मनोरथ छाँडि दे, तेरा किया न होय ।
 पानी में घी नीकसै, रुखा खाय न कोय ॥३९॥
 मनुरा तो अंतर वसा, बहुतक शीना होय ।
 अमर लोक सुचि पाइया, कवहुँ न न्यारा होय ॥४०॥

मन निरमल गुरु नाम सों, कै साधन के भाय ।
 कोइला दूनी कालिमा, सौ मन साधुन छाय ॥४१॥
 मन जानै सब वाठ, जानि बुझि औगुन करै ॥
 काहे की कुसलात, ले दीपक कृपे परै ॥४२॥
 महर्षता मन मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४३॥
 मन मनसा को मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४४॥
 मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि ले पीस ।
 तव मुख पावै सुन्दरी, पदुमा झलकै सीस ॥४५॥
 मन मनसा जब जायगी, तव आवैगी और ।
 जब ही निहचल होयगा, तव पावैगा ठौर ॥४६॥
 यह मन फटक पछोरि ले, सव आषा मिटि जाय ।
 पिंगुला हँ पिव पिव करै, ताको काल न खाय ॥४७॥
 यह मन को विसमिल करूँ, दीठा करु अदीठ ।
 जो सिर राखूँ आपना, पर सिर जळौ अँगीठ ॥४८॥
 यह मन तो मिरगा भया, खेत विराना खाय ।
 सूला करि करि सेकसी, धनो पहुँचै आय ॥४९॥
 यह मन तो मैला भया, यामें बहुत विकार ।
 या मन कैसे धोइये, सन्तो करो विचार ॥५०॥

यह मन मेवासी भया, बसि करि सकै न कोय ।
 सनकादिक रिसि सारिखे, दिन के गया विगोय ॥ ५१ ॥
 यह मन वीकारै पडा, गया स्वाद के साथ ।
 गटका खाया बरजतां, अब क्यों आवै हाथ ॥ ५२ ॥
 यह मन साधू ले मिलो, नहि तो लेगा जान ।
 मन मुनसिफ को पूछि ले, नीकी है तो मान ॥ ५३ ॥
 यह मन नीचा मूल है, नीचा करम सुहाय ।
 अमृत छाटै मान करि, विपहि प्रीठ करि खाय ॥ ५४ ॥
 जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौड़ ।
 सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥ ५५ ॥
 दौडत दौडत दौंडिया, जेती मन की दौर ।
 दौडि थके मन धिर भया, वस्तु ठौर की ठौर ॥ ५६ ॥
 खैचू तो आवै नहीं, जो छाहू तो जाय ।
 कबीर मन को पूछरे, मान टटीवा खाय ॥ ५७ ॥
 पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात ।
 अब तो मन हंसा भया, मोती चुनि चुनि खात ॥ ५८ ॥
 अपने उरझै उरझिया, दीखै सब संसार ।
 अपने सुरझै सुरझिया, यह गुरु ज्ञान विचार ॥ ५९ ॥

५१. मेवासी-डाकू । ५२. गटका-मिठाई । (नियम सुल)

५३. मुनसिफ-इन्साफ करनेवाला । ५७. पृथ्वी-पृथ्वी ।

टटीवा-चकर ।

चंचल भनुवा चेतरे, सोधै कइ अनजान ।
 जम धर जव ले जायगा, पढा रहेगा भ्यान ॥ ६० ॥
 चिन्ता चित्त विसारिये, फिरि बुझिये नहि आन ।
 इन्ट्री पसारा भेटिरे, सहज मिले भगवान ॥ ६१ ॥
 तन भाँहीं जो मन धरै, मन धरि ऊजल होय ।
 साहिव सों सनमुख रहै, तो अमरापुर जोय ॥ ६२ ॥
 पय पानी की मीतडी, पढा जु कपटी लौन ।
 खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥ ६३ ॥
 कबहुँक मन गगनहि चढै, कबहुँ गिरै पताल ।
 कबहुँक मन उनमुनि लगै, कबहुँ जावै चाल ॥ ६४ ॥
 कोटि करम करै पलक में, या मन त्रिपया स्वाद ।
 सतगुरु सब्द न मानहीं, जनम गँवाया वाद ॥ ६५ ॥
 कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग ।
 कहै कविर कैसे तिरै, पाँच कुसंगी संग ॥ ६६ ॥
 इन पाँचोंसे बंधिया, फिर फिर धरै सरीर ।
 जो यह पाँचों वसि करै, सोई लागै तीर ॥ ६७ ॥
 निहचिन्त है करि गुरु भजै, मन में राखै साँच ।
 इन पाँचों को वसि करै, ताहि न आवै आँच ॥ ६८ ॥
 पाँचों वैरी जीव के, दलै इने इक चित्त ।
 एक देखै एक घ्यावही, औगुन बहुत अमित्त ॥ ६९ ॥

पाँच सहाई जीव के, जो गुरु पूरा होय ।
 कोय ध्यान कोय नाम रत, काज न बिगडै सोय ॥ ७०॥
 इन्द्री पोषत्र चाह सुँ, मन में संका नाहि ।
 भाव भक्ति को यों कहै, निह करमा क भांदि ॥ ७१ ॥
 काठी कूटी माछरी, छोकै धरी चहोरि ।
 कोय इक औगुन मन वसा, दह में परी बहोरि ॥ ७२ ॥
 काया कजरी वन अहे, मन कुंजर महमन्त ।
 अंकुम ज्ञान रतन है, फेरै साधू सन्त ॥७३॥
 काया देवल मन धजा, विषय लहर फहराय ।
 मन चलते देवल चले, ताका सरवस जाय ॥७४॥
 काया कसो कमान ज्यौ, पाच तत्त्व कर वान ।
 मारो तो मन मिरगळा, नहि तो मिथ्या जान ॥७५॥
 पिना सीख का मिरग है, चहुँ दिस चरने जाय ।
 बांधि लाओ गुरु ज्ञान सुँ, राखो तत्व लगाय ॥७६॥
 तीन लोक चोरी भई, सब का धन हरि लीन्ह ।
 विना सीस का चोरवा, पडा न काहू चीन्ह ॥७७॥
 चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हम न चीन्ह ।
 कहै कबीर विचारि के, हम ही दीच्छा दीन्ह ॥७८॥
 अपने अपने चोर को, सब कोय डारे मार ।
 मेरा चोर मुझ को मिलै, सरवस डारू वार ॥७९॥

तन तुरंग असवार मन, करम बियादा साथ ।
 तृष्णा चली सिकार को, विषय वान लिये दाय ॥८०॥
 जहा बाज वासा करे, पंठी रहै न और ।
 जा घट प्रेम परगट भया, नहीं करम को ठौर ॥८१॥
 कहत मुनत सब दिन गये, उरझि न सुरक्षा मन्त्र ।
 कहे कविर चेता नहीं, अजहूँ पहला दिन ॥८२॥
 पंडित मूल विनासिया, कइ बर्यो विग्रह कीज ।
 ज्यों जल में प्रतिबिंब है, सकल राम जानीज ॥८३॥
 सो मन सोनो सो विषय, त्रिभुवन पति कहु कम ।
 कहे कविर वैदा नरा, जल परा सकल रस ॥८४॥
 सो सो सेरी हूँ तर्कों, जो जो मूँडी आव ।
 नख सिख पाखरि मनहि के, करूँ कहाँ जो घाव ॥८५॥
 अकथ कथा या मनहि की, कहे कविर समुद्राय ।
 जो याको समझा परै, ताको काल न खाय ॥८६॥
 समुद्र लहरि जो थोरिया, मन लहरै घनियाय ।
 केती आय समाय है, केति जाय बिसराय ॥८७॥

८४. त्रैदानरा-हे अज्ञानी पुरुष ।

कबीर साहब कहते हैं कि हे अज्ञानी नर, इस मन का म किप प्रकार वर्णन करूँ । यह मन तीन लोक का स्वामी और सोने के समान आकर्षक है । और जिस प्रकार जल में सपूर्ण रस प्रियमान रहते हैं, इसी प्रकार मन में भी सर्व प्रिय भरे रहते हैं ।

८५. सेरी—गली, उपाय । घावरी—गिलाफ, झूल ।

यह तो गति है अटपटी, सदपट लखै न कोय ।
 जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥८८॥
 चंचळ मन निहचळ करै, फिर फिर नाम लगाय ।
 तन मन दोऊ बसि करै, ताका कछु नहि जाय ॥८९॥
 मेरा मन मकरंद था, करता बहुत विगार ।
 सूया है मारग चला, हरि आगे हम लार ॥९०॥
 सुन नर मुनि सब को उगै, मन हि लिया औतार ।
 जो कोई याते बचे, तीन लोक ते न्यार ॥९१॥
 कुंभे बांधा जल रहै, जल विनु कुंभ न होय ।
 ज्ञाने बांधा मन रहै, मन विनु ज्ञान न होय ॥९२॥
 मन फाटै चित ऊचटै, नैन नाहि समाय ।
 पलकों की टाटी दर्ई, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥९३॥
 मन मानिक जव ऊचटै, नेक नहीं ठहराय ।
 जो कंचन की भूमि है, हरियल धरे न पाय ॥९४॥
 धरती फाटै मेष मिलै, कपड़ा फाटै और ।
 नन फाटै को औपधि, मन फाटै नहि ठौर ॥९५॥
 मेरे मनमें परि गई, ऐसी एक दरार ।
 फाटा फटिक पपान ज्यै, मिलै न जी वार ॥९६॥
 मन फाटै वायक बुरै, मिटै सगाई साक ।
 जैसे दूध तिवास को, उलटि दूभा जो आक ॥९७॥

९०. मकरंद—हाथी ।

९७. वायक—वाक्य, वचन । तिवास—डंडा, थूहर । थूहर का फटने से आक के समान कड़वा हो जाता है ।

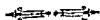
चंदन भांगा गुन करै, जैसे चोली पान ।
 दुइ जो भांगा ना मिलै, इक मोती इक मान ॥९६॥
 मोती भांग्यो वेधतां, मन भांग्यो कूबोल ।
 बहुत सयाना पचि गया, परि गइ गांठी गोल ॥९९॥
 बात बनाई जग ठग्यो, मन परपोथा नाहि ।
 कहै कथिर मन लै गया, लख चौरासी मांढि ॥१००॥
 मनुष्य तू क्यौ वावरा, तेरी सुध क्यौ खोय ।
 मौत आय सिर पै खड़ी, ढलने बेर न होय ॥१०१॥
 मन अपना समुझाय ले, आया गाफिल होय ।
 बिन समुझे उठि जायगा, फोगट फेरा तोय ॥१०२॥
 बाघ चिड़टा मिरगला, तिहि जनि मारो कोय ।
 आपे ही मरि जायगा, डामा डूला होय ॥१०३॥
 मनुष्य तो पंखी भया, जहां तहां उठि जाय ।
 नहँ जैमी संगति करै, तहँ तैसा फल खाय ॥१०४॥
 मन पंखी बिन पंखका, लख जोजन उठि जाय ।
 मन भावे ताको मिलै, घट में आन समाय ॥१०५॥
 सात समुद्र की एक लहर, मन की लहर अनेक ।
 कौइ एक हरिजन ऊवरा, डूबी नाव अनेक ॥१०६॥

१०६. एक लहर—सब समुद्रों में एक ही प्रकार की लहर उठती है, परन्तु मन में तो अनेक प्रकार की तरंगें उठा करती हैं ।

पहिले राखि न जानिया, अब क्युं आवे हाथ ।
 पही गया राता घुरा, वैपागी के साथ ॥१०७॥
 मन सब पर असवार है, पैदा करे अनंत ।
 मन ही पर असवार रहे, कोइक विरला संत ॥१०८॥
 कवीर मन मिरतक भया, दुर्लभ भया सरीर ।
 पीछे लागा हरि फिरे, यूं कहि दास कवीर ॥१०९॥
 मन चाले तो चलन दे, फिर फिर नाम लगाय ।
 मन चलने तन थंभ है, ताका कछु न जाय ॥११०॥
 यह मन अटक्यो वावरो, राख्यो घटमें घेर ।
 मन ममता में गलि चले, अंकुस दै दै फेर ॥१११॥
 मन भारी पैदा करूं, तन की काटूं खाल ।
 मिथ्या का टुकड़ा करूं, हरि तिन काठे खाल ॥११२॥
 तनकूं मन पिलता नहीं, होता तन का भंग ।
 रहता काला वोर ज्युं, चढै न दूजा रंग ॥११३॥
 तन का वैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय ।
 तूं आपा को डारि दे, दया करे सब कोय ॥११४॥
 मन राजा मन रंक है, मन कापर मन सूर ।
 मृन्ध सिखर पर मन रहे, मस्तक पावे नूर ॥११५॥
 तेरि जोतिमें मन धरा, मन धरि होहु पतंग ।
 आपा खोवे हरि मिले, तुझ लागा रहे रंग ॥११६॥

यह मन धाकी थिर मया, पग विन चले न पथ ।
 एक अक्षर अलख का, धाके कोटि गिरंथ ॥११७॥
 यह मन हरि चरने चला, माया मोह सें छुट ।
 वेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ ११८॥
 मिरतक को धीजौं नहीं, मेरा मन धीवै ।
 बानै वाच बिकार की, मूवा भी जीवै ॥११९॥
 कवीर मन कुं मारि ले, सब आपा मिटि जाय ।
 पगला है पिउ पिउ करै, पीछै काल न खाय ॥१२०॥
 मन मेवासी मारि करि, दुरजन ठावै दूर ।
 आन फिरे सत नाम की, नगर वसै भर पूर ॥१२१॥
 कवीर मन ताजी भया, लौ की करी लगाम ।
 सब्द गुरु का ताजना, पहुँचे संत मुजान ॥१२२॥

माया को अंग ।



कवीर माया मोहिनी, माँगी मिलै न हाथ ।
 मना उतारी जूठ करु, लागी डोलै साथ ॥ १
 कवीर . माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट ।
 सब जग तो फँदै पडा, गया कबीर काट ॥ २

कवीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग ।
 पूरी किनहु न भोगिया, इस का यही बिनोग ॥ ३ ॥
 कवीर माया पापिनी, हरि सों करै हराम ।
 मुख कडियाली कुबुधि की, कहन न देई राम ॥ ४ ॥
 कवीर माया बेसवा, दोनूं की इक जात ।
 आवत को आदर करै, जात न घूँझै वात ॥ ५ ॥
 कवीर माया मोहिनी, मोहै जान सुजान ।
 भाँगै हूँ छूँटै नहीं, भरि भरि मारै वान ॥ ६ ॥
 कवीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड ।
 सतगुरु की किरपा भई, नातर करतो भांड ॥ ७ ॥
 कवीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
 कोइ एक साधू ऊररा, तोडो कुल की कानि ॥ ८ ॥
 कवीर माया मोहिनी, भइ अंधियारी लोय ।
 जो सोये सो मुसि गये, रहे वस्तु को रोय ॥ ९ ॥
 कवीर माया डाकिनी, सब कांहू को खाय ।
 दाँत उपाहं पापिनी, सन्तो नियरै जाय ॥ १० ॥
 कवीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार ।
 खावत खरचत मुक्ति भय, संचत नरक दुवार ॥ ११ ॥
 कवीर माया मूष की, देखन ही का लाड ।
 जो चामे कौडो घटे, तौ हरि तोडे हाड ॥ १२ ॥

कवीर माया जात है, सुनो सब्द निज मोर ।
 सखियों के घर साधजन, मूर्खों के घर चोर ॥ १३ ॥
 कवीर या संसार की, झूठी माया मोह ।
 जिहि घर जिता घधावना, तिहि घर नेता दोह ॥ १४ ॥
 कवीर माया यों कहै, तू मति देई पीठि ।
 और हमारे वसि पडा, रखा कवीरा रुठि ॥ १५ ॥
 माया आगे जीव सब, ठढि रहे कर जोरि ।
 जिन सिरजे जल धुँद सों, तासों बैठा तोरि ॥ १६ ॥
 माया करक कदिम है, या भीसागर मँहि ।
 जंघुक रूपी जीव है, खँचत ही मरि जँहि ॥ १७ ॥
 माया झोला मारिया, नाभि न बैठे साँस ।
 निवरा तो संमै गला, राम कहन की आसना ॥ १८ ॥
 माया सेती मति मिनी, जो सोवरिया देहि ।
 नारद से मुनिवर गले, क्या हि भरोसा तहि ॥ १९ ॥
 माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमिमँहि परन्व ।
 कोड एक गुरु ज्ञान तें, उररे साधू सन्त ॥ २० ॥
 माया दोष प्रकार की, जो कोय जानै खाय ।
 एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय ॥ २१ ॥

१३. सखी द्रष्टा ॥ १४. वशाना-उत्सव । दो-दुःख, शोक ।

१७. करक अस्त्रि पजर । कृदिम सदासे । १८. ज्ञान्य क्षपाटा ।

१९. सोवरिया देह चाह सोने के समान शरार क्यों न हा ।

माया मेरे राम की, मोदी सब संसार ।
 जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन द्वार ॥ २२ ॥
 माया संचे संग्रहै, वह दिन जानै नाँहि ।
 सहस वरस की सब करै, मरै मूहरत माँहि ॥ २३ ॥
 माया छाया एक सी, विरला जानै कोय ।
 भगता क पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥ २४ ॥
 माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
 इन माया सब खाइया, माया बोय न खाय ॥ २५ ॥
 माया दासी साधु की, ऊभी देइ असीस ।
 बिच्छसि और लाते छरी, सुभिरि सुभिरि जगदीस ॥ २६ ॥
 माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस ।
 जा ठगने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥ २७ ॥
 माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया सरीर ।
 आसा तृप्ता ना मुई, यों कधि कहै कबीर ॥ २८ ॥
 माया मरि मन मारिया, राख्या अमर सरीर ।
 आसा तृप्ता मारि के, थिर है रहै कबीर ॥ २९ ॥
 माया काल को खानि है, धरै त्रिगुन बिपरीत ।
 जहाँ जाय तहाँ सुख नहीं, या माया की रीत ॥ ३० ॥
 माया तरुवर त्रिचिधि का, सोक दुःख संताप ।
 सोतलना सुपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥ ३१ ॥

जग इटवारा स्वाद टग,
 राम नाम गाढा गढो,
 मैं जानूँ हरिभूँ मिलूँ,
 हरि बिच डारै अन्तरा,
 मोटी माया सब तजै,
 पीर पैगवर औलिया,
 झोनी माया जिन तजी,
 ऐसे जन के निकट सें,
 खान खाच बहु अन्तरा,
 एक खवावै साधु को,
 आंधी आइ प्रेम की,
 माया टाटी उडि गई,
 पीठा सब कोय खात है,
 नीम न कोई पीवसी,
 राम हि थोर। जानि के,
 जीवन को राजा कहे,
 सांकर हू ते सबल है,
 अपने बल छूटै नहीं,
 या माया के कारनै,
 माया करक कदीम है।

माया वेस्या लाय ।
 जनि जहु जनम भँवाय ॥३२॥
 मो मन मोटी आस ।
 माया बढी पिसाच ॥३३॥
 झोनी तजी न जाय ।
 झोनी सब को खाय ॥३४॥
 मोटी गई थिलाय ।
 सब दुख गये हिराय ॥३५॥
 मन में देखु विचार ।
 एक मिलावै छार ॥३६॥
 ढही भरम की भीत ।
 लगी नाम सों प्रीत ॥३७॥
 विप है लागै घाय ।
 सब रोग मिटि जाय ॥३८॥
 दुनिया आगे दीन ।
 माया के आधीन ॥३९॥
 माया या संसार ।
 छुड़वै सिरजनहार ॥४०॥
 हरि सों बैठा तोरि ।
 केठा गया चंचोरि ॥४१॥

पूत पियारा बाप को, गोहन लगा धाय ।
 लोभ मिटाई हाथ दे, आपन गया भुलाय ॥४२॥
 दोन्ही खाँड पट्टकि कर, मन में रोस उपाय ।
 रोवत रोवत बिलि गया, पिता विपारे जाय ॥४३॥
 मोती उपजे सीप में, सीप समुन्दर होय ।
 रंचक सँचर रहि गया, ना कछु हुआ न होय ॥४४॥
 भूले थे संसार में, माया के संग आय ।
 सनगुरु राह बताइया, फेरि मिलै तिहि जाय ॥४५॥
 हसा तू तौ सबल है, हल की अपनी चाल ।
 रंग कुरंगै रंगिया, क्रिया और लगार ॥४६॥
 रंग तो कुरँग हुआ, अंग न खाये वान ।
 केने मारे जाहिगे, इस जाजरी कमान ॥४७॥
 जिन को साँई रंग दिया, कवहु न होय कुरँग ।
 दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥४८॥
 सब रंग पानी ते भया, सब रंग पानी सोय ।
 जा रंग ने पानी भया, सो रंग कैसो होय ॥४९॥
 सब रंग पानी ने भया, सब रंग पानी होय ।
 जा रंग ते पानी भया, सत्त सब्द है सोय ॥५०॥
 सो पापन को मूल है, एक रुपैया रोक ।
 साधुजन संग्रह करै, द्वारै हरि सौ थोक ॥५१॥

साधु ऐसा चाहिये, आई देई चलाय ।
 दोष न लागै तासु को, सिर की टौ बलाय ॥५२॥
 सन्तो खाई रहत है, चोरा लीन्धी जाय ।
 कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलि है आय ॥५३॥
 मुकून लागै साधु की, वादि त्रिमुख की जाय ।
 कै तो तल गाड़ी रहे, कै कोय औरै खाय ॥५४॥
 या मारा जग भरमिया, सय को लगी उपाध ।
 येहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥५५॥
 कबीर माया सांपिनी, जनता ही को खाय ।
 ऐसा मित्र न गारुडो, पकडि पिहारे धाय ॥५६॥
 माया का सुख चार दिन, कहँ तू गहे गमार ।
 सपने पायो राज धन, जात न लागे वार ॥५७॥
 करँक पदा मैदानमें, कुकर मिले लख कोट ।
 दावा कर कर लडि मुए, अंत चले सब छोड ॥५८॥
 माया माथे सींगडॉ, लंवे नौ नौ हात ।
 आगे मारे सींगडॉ, पाछे मारे लात ॥५९॥
 माया ऐसी संखनी, सामी मारे सोध ।
 आपन तो , रीते रहे, दे औंन को बोध ॥६०॥
 गुरु को चेला त्रीप दे, जो गांठी होय दाम ।
 पृत पिना को मारसी ये माया के काम ॥६१॥

ऊंची डाली पेय की, हरिजन बैठा खाय ।
 नीचे बैठी वाघिनी, गीर पडे तिहि खाय ॥६२॥
 माया दासी संत की, साकट की सिर ताज ।
 साकुट की सिर मानिनी, संतो सहेलि लाज ॥६३॥
 एक हरी इक मानिनी, एक भगत इक दाम ।
 देखो माया क्या किया, भिनभिन क्रिया प्रकास ॥६४॥
 माया माया सब कहै, माया लखे न कोय ।
 जो मनसे ना ऊतरे, माया कढिये सोय ॥ ६५ ॥
 माया छोरन सब कहै, माया छोरि न जाय ।
 छोदन की जो बात करु, बहुत तमाचा खाय ॥ ६६ ॥
 मन मते माया तजी, थूं करि निकस बहार ।
 लागी रहि जानी नहीं, भटकी भयो खुवार ॥ ६७ ॥
 माया सम नहि मोहिनी, मन समान नहि चोर ।
 हरिजन सम नहि पारखी, कोइ न दीसे ओर ॥ ६८ ॥
 छोडे विन छूटे नहीं, छोदनदारा राम ।
 जीव जनन बहुतहि करे, सरे न एको काम ॥ ६९ ॥
 कबीर माया दाकिनी, खाया सब संसार ।
 खाइ न सके कबीर को, जाके नाम अवार ॥ ७० ॥
 माया षडी दि दाकिनी, करे काल की चोट ।
 कोइ एक हरिजन ऊतरा, पारब्राह्म की ओट ॥ ७१ ॥

माया चार प्रकार की, इक धिछसे इक खाय ।
 एक मिछावे नाम को, एक नरक लै जाय ॥ ७२ ॥
 असुरी माया आर ही गई परे न लूट ।
 तब की सो परमाथी, संत न घाले मूठ ॥ ७३ ॥
 माया जुगवे कौन गुन, अंत न आवे काज ।
 सो सतनाम जोगावहु, भय परमारथ साज ॥ ७४ ॥
 माया संखा पदुम लौं, भक्ति विद्वान जो होय ।
 जम लै ग्रासै सो तेहि, नरक पडे पुनि सोय ॥ ७५ ॥
 मन ते माया ऊपजै, माया तिरगुन रूप ।
 पांच तन्त्र के मेल में, बांधे सकल सरूप ॥ ७६ ॥
 रंक जीव जोइ सोई, होय सोइ धनवंत ।
 धनवंता जो हरि मजे, हरि मिले भगवंत ॥ ७७ ॥
 रंक जु धन को ना चहे, चाहे भेष मतीत ।
 गुरु भक्ता मोहि भावहीं, कहै कबीर अतीत ॥ ७८ ॥

कनक कामिनी को अंग ।

चलो चलो सब को कहै, पहुँचै विरला कोय ।
 एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, ये लम्बी तरवार ।
 चाले ये हरि मिलनको, बीच हि लीन्हा मार ॥ २ ॥

एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिन की झाल ।
 देखत ही ते परजरे, परसि करे पैमाल ॥ ३ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, बिप फल लिया उषाय ।
 देखत ही ते बिप चढै, चाखत ही मरि जाय ॥ ४ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।
 गुरु बिच पाडै अन्तरा, जम देसी मुख धूर ॥ ५ ॥
 जो या घाटी लंगहीं, सो जन उतरै पार ।
 या घाटी तें आखडै, ताको वार न पार ॥ ६ ॥
 अविनासी बिच धार तिन, कुल कंचन भरु नारि ।
 जो कोइ इन ते बचि चळै, सोई उतरै पार ॥ ७ ॥
 नारी की झाँई पड़त, अंग होत भुजंग ।
 कबीर तिन की कौन गति, नित नारीके संग ॥ ८ ॥
 नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय ।
 आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥ ९ ॥
 जहर पराया आपना, खायेसँ मरि जाय ।
 अपनी रच्छा ना करै, कहै कबिर समुझाय ॥ १० ॥
 कृप पराया आपना, गिरे डूबि सो जाय ।
 ऐमा भेद विचार के, तूं मति गोहा खाय ॥ ११ ॥
 झुरी पराई आपनी, मारै दर्द जु होय ।
 बहुबिध कहूँ पुकारि के, कर छुवो मति कोय ॥ १२ ॥

नारी निरखि न देखिये,	निरखि नकीजै दौर ।	} ॥१३॥
देखत ही ने विष चढ़ै,	मन भावै कछु और ।	
नारि नसावे तीन गुन	जो नर पासे होय ।	} ॥१४॥
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें,	पठि न सकही सोय ॥१४॥	
नारी नदी अथाह जल,	बूढि मुवा भंसार ।	} ॥१५॥
ऐसा साधू ना मिला,	जा संग उतरै पार ॥१५॥	
नारी कहूँ कि नाहरी,	नख सिख सँ यह खाय ।	} ॥१६॥
जल बूड़ा तो ऊवरै,	भग बूडा बढि जाय ॥१६॥	
नारी नाहीं नाहरी,	करै नैन की चोट ।	} ॥१७॥
कोइ काइ साध ऊवरै,	ले सतगुरु की ओट ॥१७॥	
नारी नाहीं जम अहै,	तू मति राच जाय ।	} ॥१८॥
मजारी ज्यों बोलि के,	काढि करेजा खाय ॥१८॥	
नारी नदिया सारखी,	वहै अपरबल पूर ।	} ॥१९॥
साहिव सों न्यारा रहै,	अन्त परै मुख धूर ॥१९॥	
नारी नदिया सारखी,	और जु प्रगटे काल ।	} ॥२०॥
सब कालनते वाचि है,	नारी जम का जाल ॥२०॥	
नारि पुरुष की इस्तरी,	पुरुष नारि का पूत ।	} ॥२१॥
याही ज्ञान विचारि के,	छाडि चला अवधूत ॥२१॥	
नारी नजरि न जोरिये,	अंस हि खिस हू जाय ।	} ॥२२॥
जाके चित नारी बसै,	चागि अस ले जाय ॥२२॥	

नारी कुंडी नरक की, विरला थापै बाग ।
 कोड साधु जन ऊधरा, सब जग मूआ लाग ॥ २३ ॥
 नारी केरे राचने, औगुन है गुन नॉहि ।
 खार समुन्दर पाछली, केती बहि बहि जाँहि ॥ २४ ॥
 नारि पुरुष सब ही सुनो, यह सतगुरु की साख ।
 विष फल फलें अनेक है, मति कोइ देखो चाखि ॥ २५ ॥
 जिन खाया सोई मुआ. गन गंध्रव बड भूप ।
 सतगुरु फई कवार सो, जगमें जुगति अनूप ॥ २६ ॥
 नारी सेती नेह, बुधि विवेक सब ही हरै ।
 कहा गँवारै देह, कारज कोई ना सरै ॥ २७ ॥
 कामिनी काली नागिनी, तीनों लोक मँझार ।
 नाम सनेही ऊवरे, विषयी खाये झार ॥ २८ ॥
 कामिनी मुँडर सर्पिनी, जो छेटे तिहि खाय ।
 जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥ २९ ॥
 इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय ।
 कबहुँ सरपट नीकसे, उपज नाग बलाय ॥ ३० ॥
 नौनों वाजर देय के, गाँठे बांधे केस ।
 हाथों बँहदी लाय के, वाधिनि खाया देस ॥ ३१ ॥
 परनारी पैनी छुरी. मति कोइ करो प्रसंग ।
 रावन के दस सिर गये, परनारी के संग ॥ ३२ ॥

परनारी पैनी छुरी, विरला बँचै कोय ।
 कबहूँ छेडि न देखिये, हसि हसि खावै रोय ॥ ३३ ॥
 परनारी पैनी छुरी, विरला बाचै कोय ।
 ना वह पेट भँचारिये, जो सोना की होय ॥ ३४ ॥
 परनारी के राचनै, सीधा नरकै जाय ।
 तिन को जम छाँडै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥ ३५ ॥
 परनारी का राचेना, ज्यूँ लहसुन की खान ।
 कोनै बैठे खाइये, परगट होय निदान ॥ ३६ ॥
 परनारी राता रहै, चोरी बैठत खाय ।
 दिवस च्यारि सरसा रहै, अन्त ममूला जाय ॥ ३७ ॥
 परनारी पर सुन्दरी, जैसे सुली साल ।
 निठ कलेम भुगतै सही, तह न छोडै खाल ॥ ३८ ॥
 छोटी मोठी कामिनी, सब ही बिप की बेल ।
 बैरी मारै दाव सँ, यह मारै हँसै रेल ॥ ३९ ॥
 देखत ही दह में परै, कनक कामिनी भाय ।
 कहै कविर कौतुक भया, धन को रहा समाय ॥ ४० ॥
 जो कबहूँ के देखिये, वीर बहिन के भाय ।
 आठ पहर अलगा रहै, ताको काल न खाय ॥ ४१ ॥

३६ खान-खाना । निदान-अन्त में ।

४१ स्त्री को पापदृष्टि से न देखे, अधिक आयुवाली को माता और समयपस्क को बहिन के भाव से दखना चाहिये । जो इस प्रकार पतिर व्यग्रहार से रहता है वह काल के चक्र से बच सकता है ।

सरब सोने की सुन्दरी, आवै वास सुवास । ॥
 जो जननी है आपनी, तऊ न बैठे पास ॥४२॥
 गाय रोय हंसि खेलि कै, हरत मगन के प्रान ।
 कहै कविर या घात को, समझै संत सुजान ॥४३॥
 गाय भैंस घोड़ो गरी, नारि नाम है तास ।
 जा मंदिर में ये बसै, तहाँ न कोजै वास ॥४४॥
 जग में भक्त कहावई, चुन्की चून न देय ।
 सिप जोरु का है रहा, नाम गुरु का लेय ॥४५॥
 सेवक अपना करि लिया, आझा भेटै नाँहि ।
 भग मंतर दे गुरु भई, सिप है सबै कर्माँहि ॥४६॥
 फाटे कानों वाधिनी, तीन लोक को खाय ।
 जीवत खाय कलेजरा, मुये नरक ले जाय ॥४७॥
 कविर नारि की प्रीति से, केते गये गडन्त ।
 केते औरी जाहिंगे, नरक हसन्त हसन्त ॥४८॥
 जोरु जूठनि जगत की, भले बुरे के बीच ।
 बत्तम सो अलगा रहै, बिलि खेलै सो नीच ॥४९॥
 सुन्दरी ते सूली भलो, विरला वाँचै कोय ।
 लोहलुहालै अगिनिमें, जरि बरि कुड़ला होय ॥५०॥
 रज वीरज की कोठरी, तापर साज्यो रूप ।
 एक नाम विन बूढ़ी, कनक कामिनी कृप ॥५१॥

जहाँ जराई मुन्दरी, तूँ जनि जाय कवीर ।
 उडि के भ्रमम जो लागसी, मृता होय सरीर ॥५२॥
 नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस ।
 जाका डसा न फिर जियै, मरि है बिसरा बीस ॥५३॥
 जगमें डोही कामिनी, पीवै सब संसार ।
 सोफी है करि जो पिये, ताहि उतारुँ पार ॥५४॥
 दीपक झोला पवन का, नरका झोला नारि ।
 साधू झोला सबका, बोलै नाहि विचार ॥५५॥
 केता बहाया बढि गया, केता बढि बढि जाय ।
 ऐसा भेद विचारि के, तुं मति गोता खाय ॥५६॥
 कपास विनूठा कापडा, रुदे सुरंग न होय ।
 कवीर त्यागो ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥५७॥
 नारी काली ऊनली, नेक विपासी जोय ।
 सब ही डारे फंदयै, नीच लिये सब कोय ॥ ५८ ॥
 नारी मदन तलावडी, भव सागर की पाल ।
 नर मच्छा के कारने, जीवत पांडो जाल ॥ ५९ ॥

५२. इस साखी में मुन्दरी की गीत अशुद्धियों को सर का फन बताया गया है, क्यों कि कामाजिन उनको देखकर मोहित हो जाते हैं ।

५४ डोही—पोस्ते का छतरा । सोफी—हल्का नशा करनेवाला । भाव यह है कि जो गृहस्थी अपनी स्त्री के साथ अनासक्ति व्यवहार करता है, वह क्रमशः मुक्ति मार्ग पर जाता है ।

५७. कपास विनूठा—खराम कपास से बना हुआ ।

नारी नरक न जानिये, सब संतन की खान ।
 जामें हरिजन ऊपजे, सोइ रतन की खान ॥ ६० ॥
 कबीर मन भिरतक भया, इंद्रो अपने हाथ ।
 तोभी कबहु न कीजिये, कनक कामिनी साथ ॥ ६१ ॥
 मांस मांस सब एक है, क्या हरनी क्या गाय ।
 नारि नारि सब एक है, क्या मेहरी क्या माय ॥ ६२ ॥
 त्रिया कृतघ्नी पापिनी, तासों प्रीति न जोड ।
 पही चढिया आखड़े, लागे मोटी खोड ॥ ६३ ॥
 सात दीप नव खंड में, सबमें फगुवा लीन ।
 ठाढी कहे कबीर सों, तुपने कछु न दीन ॥ ६४ ॥

काल को अंग ।

काल जीव को ग्रासई, वहुन कयो समुझाय ।
 कहे कविर मैं क्या कहूँ, कोई नहि पतियाय ॥ १ ॥
 काल हमारे संग है, कस जीवन की आस ।
 दस दिन नाम सँभार ले, जब लग पिंजर साँस ॥ २ ॥
 काल चिचाना है खड़ा, जाग पियारे मीत ।
 नाम मनेही बाहिरा, क्यों सोवै निहचीत ॥ ३ ॥

श्रुत सुख को सुख कहै,	मानत है मन मोद ।
जगत चवेना काल का,	कञ्जु मूठी कञ्जु गोद ॥ ४ ॥
आज काल पछ छिनक में,	मारग मेला हित ।
काल चिचाना नर चिड़ा,	औजड औ अवाचित ॥ ५ ॥
सब जग सूना निंद भरि,	मोहि न आवै निंद ।
काल खडा है वारनै,	(ज्यों) तोरन आया विंद ॥ ६ ॥
हालै डूलै दिन गयो,	व्याज बहता जाय ।
ना हरि भजा न खत कटा,	काल पहुँचा आय ॥ ७ ॥
करीर दुग दुग चोपतां,	पल पल गई विदाय ।
जिव जंजाले पड़ि रहा,	दिया दमाया आय ॥ ८ ॥
मै अकेल बह दो जना,	सेरी नाहीं कोय ।
जो जम आगे ऊवरो,	तो जरा रैरि होय ॥ ९ ॥
जरा आय जोरा किया,	पिय अपना पहिचान ।
अन्त कछु पछे पड़े,	ऊठत रे खलिगान ॥ १० ॥
जरा आय जोरा किया,	नेनन दीनी पंठ ।
आँखौ ऊपरि आगुली,	वीष भरै पछ नीठ ॥ ११ ॥
जोवन सिकदारी तजी,	चला निमान बजाय ।
सिर पर सेव सिरायचा,	दिया बुढाये आय ॥ १२ ॥

५. चिड़ा-चिड़िया । ६. वारनै-द्वार पर । विंद-दुल्हा, घर ।

८. दुगर चौबना-दुकर २ देखते ।

११. वीष-विस्त्रा । आँखों पर अगुलियों की छाया करने से एक सिरा तक मुस्किल से देखने में आता है ।

१२. सिकदारी-सरदार । सेव सिरायचा-सफेद पगडों ।

कान लगी सुनहा कहे, काले पानी दार ।
 राज बिराजी होत है, सके तो नाम सम्भार ॥१३॥
 राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहुँची आय ।
 मंदर लागो द्वार सों, अब कछु कही न जाय ॥१४॥
 बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये और ।
 विगरा काज सँभारि लै, करि छूटन की ठौर ॥१५॥
 बिरिया बीती बल घटा, औरौ बुरा कपाय ।
 हरिजन छाँटा हाथ तें, दिन नीरा ही आय ॥१६॥
 जरा कुत्ता जोवन ससा, काल अहेरी निच ।
 दो बैरी धिंच झोंपडा, कुसल कहाँसो मित्त ॥१७॥
 कुसल कुसल जो पूछा, जग में रदां न कोय ।
 जरा मुई' ना भय मुभा, कुसल कहाँ ते होय ॥१८॥
 घड़ि जो याँजे राज दर, सुनता है सब कोय ।
 आयु घटे जोवन खिसै, कुसल कहाँ ते होय ॥१९॥
 कै कुसल अनजान के, अथवा नाम जपन्त ।
 जनम मरन होवा नहीं, तो बूझो कुसलन्त ॥२०॥
 कुसल जो पूछो असल की, आसा लागी होय ।
 नाम बिहूना जग मुभा, कुसल कहाँ ते होय ॥२१॥
 मालो आवत देखि के, कलियाँ करे पुकार ।
 फूली फूली चुनि लई, काल हमारी वार ॥२२॥

बढ़ही आवत देखि के, तखर रुदन कराय ।
 मै अपग संसै नहीं, पचठी वसते आय ॥२३॥
 फागन आवत देखि के, वन रोना मन माँहि ।
 ऊंची डारी पात था, विषरा हँ ह जाँहि ॥२४॥
 पात जो तखर सो कहै, विलंब न मानै मोर ।
 आय रिनु जो वसंत की, जँ जाओ तँ तोर ॥२५॥
 तखर पात सों यों कहै, सुनो पात इक बात ।
 या घर याही रीति है, इक आवत इक जान ॥२६॥
 पात झरन्ता यों कहै, सुन तखर वनराय ।
 अब के बिनुड़े ना मिले, दूर पँहगे जाय ॥२७॥
 कहै पात वा झाड सो, कडा पड़ी अब तोहि ।
 ज्यों वा तखर ही तजो, चलो जान दे मोहि ॥२८॥
 पीपल पान झरनिया, हँसी आय को घेरि ।
 योंही वसिया होयगा, अपनी अनी वैरि ॥२९॥
 मेरा वार लुहारिया, तू मति जारै मोहि ।
 इक दिन ऐसा होयगा, मै जारौगी तोहि ॥३०॥
 जारनहारा भी मुआ, मुआ जलानहार ।
 है है करते भी मुये, कासों करूँ पुकार ॥३१॥
 जो ऊँगे सो आधमे, फूँ सो कुम्हिलाय ।
 जो चूँ सो ढाँहि पदे, जामै सो मरि जाय ॥३२॥

निश्चय काल गरामही, बहुत कहा समुझाय ।
 कहे कबीर मैं का कहूं, देखत ना पतियाय ॥३३॥
 कबीर जीवन कुछ नहीं, गिन खारा खिन मीठ ।
 कालिह अलहजा मारिया, आज पसाना दीठ ॥३४॥
 कबीर मंदिर आपने, नित उठि करता आल ।
 मरदट देखी डरपता, चौंढे दीया जाल ॥३५॥
 कबीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है रात ।
 ना जानौं क्या होयगा, ऊगन्ता परभात ॥३६॥
 कबीर गाफिल क्यों फिरे, क्यों सोता घन घोर ।
 तेरे सिराने जम खड़ा, ज्युं अंधियारे चोर ॥३७॥
 कबीर हरि सों हेत कर, कोरे चित न लाय ।
 बांध्यो वारि खटीक के, ता पसु केतिक आय ॥३८॥
 कबीर सय सुख राम है, और दि दुख की रासि
 सुर नर मुनि अरु असुर सुग, पड़े काल की फांसि ॥३९॥
 धंमन धपती रहि मई, बूझि गया अंगार ।
 अहरन का ठमका रहा, जब उठि चला लुहार ॥४०॥
 पंथी ऊमा पंथ सिर, बगुचा बांरा पूंड ।
 मरना मुंढ आगे खडा, जीवन का सब झूठ ॥४१॥

३४. अलहजा=आलीजा, वार । ३८. वारि=दरवाजे । खटीक-कसई ।

४०. धमन-धूमनी । ४१. बगुचा-गट्टी ।

यह जीव आया दूर ले, जाना है बहु दूर ।
 बिच के घासै बसि गया, काल रटा सिर पूर ॥४२॥
 काचो काया मन अधिर, थिर थिर करम करन्त ।
 ज्यौं ज्यौं नर निधडकफिरै, त्यौ त्यौ काल हसन्त ॥४३॥
 हम जाने थे खादिगे, बहुत निर्मो बहु माल ।
 ज्यौ का त्यौ ही रहि गया, पकडि ले गया काल ॥४४॥
 चहुँ दिस पाका कोट था, मन्दिर नगर मैझार ।
 खिरकि खिरकि पाहरू, गज बंधा दरवार ॥४५॥
 चहुँदिस ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये धयियार ।
 सब ही यह तन देखताँ, काल ले गया मार ॥४६॥
 आस पास जोधा खड़े, सबै वजावै गाल ।
 मंझ महल ते ले चला, ऐसा परवल काल ॥४७॥
 धरती करते एक पग, काने समुद्र फाल ।
 हाथों परवत तोलने, तेभी खाये काल ॥४८॥
 हाथों परवत फाडने, समुद्र घुँट भराय ।
 ते मुनियर धरती गले, का कोय गरव कराय ॥४९॥
 ताजी छटा सदरते, कसबै पड़ी पुकार ।
 दरवाना जडा हि रहा, निकस गया असवार ॥५०॥
 वेडा जाये क्या हुआ, कटा वजावै थाल ।
 आवन जावन है रहा, ज्यौं कीडी का नाल ॥५१॥

जाया जाया सध कहे, आया कहैं न कोय ।
 जाया नाम जनम का, रहन कइने होय ॥५२॥
 बालपना भोले गया, और जुवा महंत ।
 वृद्धपने आलस भयो, चला जरन्ने अन्त ॥५३॥
 संसै काल सरीर में, विषम काल है दूर ।
 जाको कोइ जानै नहीं, जारि करै सब धूर ॥५४॥
 जारि वारि मिस्सी करै, मिस्सी करि है छार ।
 कहैं कविर कोइला करै, फिर दे दै औठार ॥५५॥
 ऐसे सौंच न मानई, तिल ही देखो जोय ।
 जारि वारि कोइला करै, जमता देखा सोय ॥५६॥
 संसै खाया सकल जग, संसा किनहु न बद्ध ।
 जो बंधा गुरु अच्छरा, संसा चुनि चुनि खद्ध ॥५७॥
 संसै काल सरीर में, जारि करै सब धूर ।
 काल से बाधे दास जन, जिनपै बाल इजूर ॥५८॥
 घाट जगाती धर्मराय, सय का झारा लैय ।
 सत्त नाम जानै विना, उलटि नरक में देय ॥५९॥
 जिनके नाम निसान है, तिन अटकावै फौन ।
 पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवा गौन ॥६०॥
 घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पडिचान ।
 छाप विना मननाम कै, माकट रहा निर्दान ॥६१॥

५३. जुमा-जवानो । महंत-मन्ना । ५९. घाट जगाती—मशमूर
 लेनेवाला, चूंगी उगादनेवाला ।

गुरु जहाज हम पावना, गुरुभृग्व पारि पडै ।
 गुरु जहाज जानै बिना, रोवे घाट खडै ॥६२॥
 खुलि खेलो संसार में, बांधि न सकै कोय ।
 घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट न होय ॥६३॥
 जम्पन जाय पुकारिया, डंडा दीया डार ।
 संत मवासी है रहा, फासि न पडे हमार ॥६४॥
 जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय ।
 केवटिया की नाव ज्यौ, घना चढेगा आय ॥६५॥
 चाकी चली गुपाल की, सब जग पीसा झार ।
 रुडा मब्द कबीर का, डारा पाट उचार ॥६६॥
 चळती चाकी देखिके, दिया कबीरा रोय ।
 दो पाटन बिच आयके, साबुत गयान कोय ॥६७॥
 आसै पासै जो फिरै, निपट पिमावै सोय ।
 कीला सों लागा रहै, ताको विप्रन न होय ॥६८॥
 सब जग डरपै काल सो, ब्रह्मा विश्नु महेस ।
 सुर नर मुनि औ लोक सब, सात रसातल सेस ॥६९॥
 चंद्र मूर घर पवन लौं, खंड ब्रह्मंड प्रोस ।
 जम डरै काल वजोर सों, जै जै तू आदेस ॥७०॥

६२. मवासो-प्रगो । ६५. डसी-डसी, फन्दा । ६६. रुडा—
 बडा करर ।

१. पा० उचार । २. पा० बचा ।

मूसा हरपे काल सूँ, कठिन काल का जोर ।
 स्वर्ग भूमि पातालमें, जहा जाव तई घोर ॥७१॥
 फागुन आवत देखि के, मन शूरे वनराय ।
 जिन डाली हथ केलि किय, सोही व्यारे जाय ॥७२॥
 पान झरता देखि के, हसती कूपलियां ।
 हथ चाले तुम चालियो, धीरी चापलियां ॥७३॥
 काल पाय जग ऊपजो, काल पाय सब जाय ।
 काल पाय सब बिनसि है, काल काल कँड खाय ॥७४॥
 काल काल सब कोइ कहे, काल न चीन्हे कोय ।
 जैती मन की कल्पना, काल कहावे सोय ॥७५॥
 काल फिर फिर ऊपरे, हाथों धरी कपान ।
 कहें कविर गहु नाम को, छोड़ सकल अभिमान ॥७६॥
 जाय झरोखे सोवता, फूलन सेज विडाय ।
 सो अब कहूं दीखै नहीं, छिनमें गयो बिलाय ॥७७॥
 अधम कला सब काल की, देखहु उलटी रीत ।
 करै प्रतीति हठ चोर सों, साहब से नहि प्रीत ॥७८॥
 कवीर पगरा दूर है, आय पहुची सांझ ।
 जन जन की मन राखतां, वेस्या रहि गई वांझ ॥७९॥

समरथ कौ अंग ।



साहिव सों सब होत है, बंदे सें कुछ नाँहि ।
राई सें परबत करै, परबत राई माँहि ॥ १ ॥
साहिव सम सपरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर ।
औगुन छाडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥ २ ॥
बहन बहन्ता थल करै, थल कर बहन बहोय ।
साहिव हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय ॥ ३ ॥
बहन बहन्ता थिर करै, थिरता करै बहैन ।
साहिव हाथ बड़ाइया, जिस भावै तिस दैन ॥ ४ ॥
ना कुछु किया न करि सका, (नहि)करने जोग शरीर ।
जो कुछु किया साहिव किया, ताते भया कधीर ॥ ५ ॥
जो कुछु किया सो तुम किया, मैं कुछु कीया नाँहि ।
कहँ कहीं जो मैं किया, तुम ही थ युश माँहि ॥ ६ ॥
कीया कछु न होत है, अन कीया ही होय ।
कीया जो कछु होत तो, करता औरै कोय ॥ ७ ॥
ना कछु किया न करि सका, ना कछु करने जोग ।
मैं मेरी जो ठानि के, दूजी थापै लोय ॥ ८ ॥

इत कूवा उत बावडी, इत उत थाइ अथाह ।
 दह दिसा फनि फन कटै, समर्थ पार लगाह ॥ ९ ॥
 घट समुद्र लखि ना परै, ऊँठे लहरि अपार ।
 दिळ दरिया समर्थ बिना, कौन लगावै पार ॥ १० ॥
 घन घन सौँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत ।
 सकल भवन पति सौँइया, है करि रहे अतीत ॥ ११ ॥
 सौँई मै तुझ बाहरा, कौँडी हू नहि पाउं ।
 जो सिर उपर तुम धनी, महंगे मोल बिकाऊँ ॥ १२ ॥
 सौँई मेरा चानिया, सहज करै व्योपार ।
 बिन हाँडी बिन पालडे, तोलै सब संसार ॥ १३ ॥
 सौँई केरा बहुत गुन, औगुन कोई नँहि ।
 जो दिळ खोजूँ आपना, सब औगुन मुझ माँहि ॥ १४ ॥
 तेरे बिन जोर जुल्म है, मेरा होय अकाज ।
 निरद तुम्हारे नाम की, सरन पडै की लाज ॥ १५ ॥
 वाटरिया दूमर भई, मति कोय कायर होय ।
 जिन यह भार उठाइया, निरवाहेगा सोय ॥ १६ ॥
 हाथी अटक्को कीचमें, काँटै को मपरथ्य ।
 की बल निकलै आपनै, की साई पसारै हथ्य ॥ १७ ॥
 जिस नहीं कोय तिस हि तू, जिस तू तिस सब होय ।
 दरगह तेरी साईया, पेदि न सकै कोय ॥ १८ ॥

९. फन-सर्प ।

१६. वाटरिया-रास्ता । दूमर=कठिन ।

१०. पा० लदाइया ।

जिसके ; कोई संग नहीं, तिसका तू सब होय ।
 सब पर तेरा हुक्म है, सकै नहि कोय ॥१९॥
 मेरा किया न कुछ भया, तेरा कीया होय ।
 तू करता सब कुछ करै, करता और न कोय ॥२०॥
 आंगुन हारा गुन नहीं, मनका बडा कठोर ।
 ऐसे समरथ साइया, ताहि लगावे और ॥२१॥
 तुम तो समरथ साइया, गहि करि पत्रडो वाँह ।
 धूरहि ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग पाँहि ॥२२॥
 बालक रूपी साइया, खेलै सब घट मँरि ।
 जो चाहै सो करत है, मय काहूका नाँहि ॥२३॥
 एक खडा ही ना लहै, एक ऊमा बिललाय ।
 समरथ मेरा साइया, सूता देय जगाय ॥२४॥
 समरथ धोरी कंध दे, रथ को दे पहुँचाय ।
 मारग माहि न छाँडिये, पिय तिन विरद लजाय ॥२५॥

२४. ना लहै-नहीं पाता है । ऊमा-खडा । बिललाय-बिनाप करता है ।

जिस पर मालिक की दया नहीं होती वह सदैव तत्पर रहने पर भी स्वामिष्ट को नहीं पाता और कोई तो उसकी प्रतीक्षा में वरुण-ऋतन भी करने लगता है । और जिस पर समरथ की कृपा होती है उसको वस्तु अचानक मिल जाती है ।

२५ धोरी-धुरीण, आगे चलनेवाला, जैल ।

धारी हरिके नाम पर, कीया राई लौन
 जिसै चलावे पंथ तूं, तिसै भुलावे कौन ॥२६॥
 मुझमें औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुझ ।
 जो मैं बिसरूं तुझ को, तूं मात बिसरै मुझ ॥२७॥
 साहिव तुम जनि बीसरो, लाख लोग मिलि जाहि ।
 हम से तुमको बहुत हैं, तुम सम हम को नाहि ॥२८॥
 तुम्है बिसारै क्या वनै, किसके सरनै जाय ।
 सिव विरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहि समाय ॥२९॥
 मेरा मन जो तुझसें, तेरा मन कही और ।
 फहै कविर कैसे वने, एक चित्त दुइ ठौर ॥३०॥
 जो मैं भूल विगाडिया, ना करु मैला चित्त ।
 साहिव गरुवा चाहिये, नफर विगाडै निच ॥३१॥
 कवीर भूल विगाडिया, करि करि मैला चित्त ।
 नफर तो दीन अधीन है, साहिव राखै हित्त ॥३२॥
 मुझमें गुन एकौ नहीं, सुनो सन्त सिर मौर ।
 तेरे नाम प्रतापसें, पाऊँ आदर ठौर ॥३३॥
 अन्तरजामी एक तूं, आत्म के आधार ।
 जो तुम छाँडो हाथ तें, कौन बतारे पार ॥३४॥

भौसागर भारी भया, गहिरा अगम अयाह ।
 तुम दयाल दया करो, तब पाऊं कुछ थाह ॥३५॥
 सतगुरु बड़े दयाल है, सन्तन के आधार ।
 भौसागर अयाह सों, खेइ उतारै पार ॥३६॥
 साहिव तुम हि दयाल हो, तुम लग मेरी दौर ।
 जैसे वाग जटाज को, सूझै और न दौर ॥३७॥
 मेरा मन जो तोड़ि धूँ, यों जो तेरा होय ।
 अहरन ताता छोड़ ज्यों, संघि लखै नहि कोय ॥३८॥
 कबीर करत है विनती, भौसागर के तारि ।
 वन्दे जोरा होत है, जप को वरजु गुसार्इ ॥३९॥
 धर्मराय दरवार में, दई कबीर तलाक ।
 भूले चूके हंस को, मति कोइ रोको चाक ॥४०॥
 बोलै पुरुष कबीर सें, धर्मराय कर जोर ।
 तुझरे हंस न चंपि हो, दुहाइ लाख करोर ॥४१॥
 जो जाकी शरनै गहे, ताको ताकी लाज ।
 उलटि पीन जळ चढत है, घयो जात गजराज ॥४२॥
 और पुरुष सब कूप है, तूं है सिंधु समान ।
 मोहि टेक तुव नाम की, मुनिये कृपा निधान ॥४३॥
 चिडिया प्यासी समुँद गई, नीर न घटिया जाय ।
 ऐसा वासन ना बना, जामें समुँद समाय ॥४४॥

अजगर करे न चाकरी, पंखी करे न काम ।
 दास कबीरा यूँ रहै, सब के दाता, राम ॥४५॥
 यदपि हम कायर कुटिल, खेर चाकरी चोर ।
 तदपी कृपा न छाडिये, चितै आपनी ओर ॥४६॥
 जाको रखे साइया, मारि न सके कोय ।
 बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरो होय ॥४७॥
 साईं केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै मांदि ।
 पिऊं न पानी डरपता, मत वे धोये जांदि ॥४८॥
 अनेक बंधनसे बांधिया, एक विचारा जीव ।
 अपने बळ छूटे नहीं, जो न छुडावै शीव ॥४९॥
 तन की जानै मन की जानै, जानै चितही चोरी ।
 यह माहिव से क्या छिपावै, जिनके हाथमें डोरी ॥५०॥
 जो जाकी बाँही लगे, ताही के सिर भार ।
 हलकी कदवी, तूचरी, लेई, उतारे पार ॥५१॥

चानक को अंग ।

कबीर तस्ना टोकना, लीये डोलै स्वाद । ॥ ५१ ॥
 रामनाम जाना नहीं, जनस भँत्राया बाद ॥ ५२ ॥
 कबीर कलियुग कठिन है, साधु ने सातै कोय । ॥ ५३ ॥
 कामी, क्रोधी, मसखरा, तिनका आदर होय ॥ ५४ ॥

नाच गावै पद रुहे, नाहीं गुरु सों हेव ।
 कहै कथिर क्यों नीपजै, बीज विहना खेत ॥ ३ ॥
 कै खाना कै सीवना, और न कोई चित्त ।
 हरि सा प्रीतम बीसरा, बालापन का मित्त ॥ ४ ॥
 उस उदर के कारनै, जगजाच्यो निसि जाय ।
 स्वामिपनो सिर पर चढ्यो, सख्यो न एका काम ॥ ५ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहे बंधाय ।
 देव पैसा व्याज को, लेख करत दिन जाय ॥ ६ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरे खदय ।
 राजदुवारै यों फिरै, ज्यों हरियाई गाय ॥ ७ ॥
 राज दुवारै रामजन, तीन वस्तु को जाय ।
 कै भीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥ ८ ॥
 हरि सुभिरन साँची कथा, कोय न सुनि है कान ।
 कलिजुग पूजा दंभ की, बाजारी का मान ॥ ९ ॥
 तारा मंडल बैठ के, चाँद बढाई खाय ।
 उदै भया जब सूर का, तब तारा छिपि जाय ॥ १० ॥
 देखन का सब क्रिय भला, जैसे सिध का कोट ।
 रवि के उदय न दीसही, बंधे न जलकी पोट ॥ ११ ॥
 पद गावै मन हरिपि के, साखी कहै अनंद ।
 सचनाम नहि जानिया, गलम परिगा फंद ॥ १२ ॥

७. पीतल-पीतल की मूर्तियां । हरियाई=दूसरों के खेत खानिवाली गाय ।

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि दंभ ।
 जानै बूझै कलु नहीं, यौहो अंग रंभ ॥१३॥
 स्वामी होना सेव का, पैसै केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि कं, करै सीप की आस ॥१४॥
 राम नाम जाना नहीं, जपान अजपा जाप ।
 स्वाभिपना माये पड़ा, कोइ पुरवळे पाप ॥१५॥
 स्वामी के सहमी पढी, माया की मुँह मार ।
 मान दि में राता रहे, बूडै पन् गँवार ॥१६॥
 महंत तो माया गळा, समझै नहीं गँवार ।
 भेष बनाया भोंड का, घर घर जाचा द्वार ॥१७॥
 सकल्य स्वामी सँ कहो, सुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखू, हरि सँ नांही हेत ॥१८॥
 कबीर स्वामी कोय नहीं, स्वामी सिरजन हार ।
 स्वामी है करि बैठही, बहुत सहेगा मार ॥१९॥
 जो मन छागा एक सों, तौ निरुवारा जाय ।
 दूरा दो मुख वाजता, न्याय तमाचा स्वाय ॥२०॥
 कबीर बंय टोकनी, लीया फिरै सुभाय ।
 राम नाम चीन्हे नहीं, पीतल ही की चाय ॥२१॥
 कबीर व्यास कया कहै, भीतर मेदे नांदि ।
 औरों कं परमोधतां, गये मुहरका मांदि ॥२२॥

कवीर कहिं पीर को,	सपझावै सय कोय ।
संसय पड़ेगा आपकूं,	और कहै का होय ॥२३॥
कविर सुनावत दिन गये,	उलझि न सुलझ्या मन ।
कहै कविर चेता नहीं,	अजहूं पहला दिन ॥२४॥
अमरापुर को जात हों,	सबसे कहीं पुकार ।
आवन होय तो आइयो,	सूरी ऊपर यार ॥२५॥
कहै काविर धर्मदास सों,	परदा दई उधार ।
जब सेवक स्वामी मये,	संतो करो विचार ॥२६॥
चित चटकी लागी नहीं,	क्यों पावै करतार ।
कीट भिरंगी होत है,	नरको केतिक धार ॥२७॥
नर नारायण होत है,	जो करि ब्रह्म कोय ।
कीट भिरंगी होत है,	गुरु बलिहारी तोय ॥२८॥
इन्द्रो एकौ बस नहीं,	छोड चले परिवार ।
दुनिया पीछे यों फिरै,	जैसे चाक कुम्हार ॥२९॥

आत्म अनुभव को अंग ।

आत्म अनुभव सूख की,	जो कोई ब्रह्म चात ।
कै जो कोई जानई,	कै अपनी ही गात ॥ १ ॥
आत्म अनुभव जब भयो,	तब नहि हर्ष विपाद ।
चित्र दीप सम है रहे,	तमि करि वाद विवाद ॥ २ ॥

आत्म अनुभव ज्ञान की,
 सो गूंगा गुड खाय के,
 ज्यों गूंगा के सेन को,
 त्यों ज्ञानी के मुख को,
 नर नारी के मुख को,
 त्यों ज्ञानी के मुख को,
 ताको लच्छन को कहे,
 साथ असाथ न देखि,
 कागद लिखे सो कागदी,
 आत्म दृष्टि कहाँ लिखे,
 लिखा लिखी की है नहीं,
 दुलहा दुलहिन मिलि गये,
 स्याम सब्ज विधि पंच जे,
 चक्षुमान अवधु को,
 ज्ञान भक्ति वैराग मुख,
 आत्म अनुभव सज मुख,
 ज्ञानी जुक्ति सुनाइया,
 मूरदास की इस्नरी,
 ज्ञानी भूले ज्ञान कथि,
 बाहिर खोजे वापुरे,

जो कोय पूछे बात ।
 कहे कौन मुख स्वाद ॥ ३ ॥
 गूंगा ही पहिचान ।
 ज्ञानी हे सो जान ॥ ४ ॥
 खसी नहीं पहिचान ।
 अज्ञानी नहि जान ॥ ५ ॥
 नाहो अनुभव ज्ञान ।
 क्यों करि करुं बखान ॥ ६ ॥
 की व्योहारी जीव ।
 जित देखे तित पीव ॥ ७ ॥
 देखा देखी बात ।
 फीकी पढी बरात ॥ ८ ॥
 पीव अरुन अरु मत ।
 ज्यों नहि उपमा दैत ॥ ९ ॥
 पीव ब्रह्म लौं धाय ।
 तहाँ न दूजा जाय ॥ १० ॥
 को सुनि करे विचार ।
 कां पर करे सिंगार ॥ ११ ॥
 निकट रहा निज रूप ।
 भीतर वस्तु अनूप ॥ १२ ॥

५. खसी=हिजड़ा ।

भीतर तो भेदा नहीं, बाहिर कथे अनेक ।
 जो पै भीतर लिख परे, भीतर बाहिर एक ॥ १३ ॥
 नैन समाने, नैन पै, नैन समाने, नैन ।
 जीव समाने, ब्रह्म पै, रहै ऐन के, ऐन ॥ १४ ॥
 शरीर फीसी कृप, में, भभकी, पानी माँहि ।
 सरै भभकी, सब पिटि गई, अत्र, कछु, कहनी, नाँहि ॥ १५ ॥
 भरा होय तो रीतई, रीता होय, भराय ।
 रीता ॥ भरा, न, प्राये, अतुभव सोय, कदाय ॥ १६ ॥
 कहा सिखापन देत हो, समुझि देख मतु माँहि ।
 सबै हरफ है द्वात महँ, द्वात न हरफन माँहि ॥ १७ ॥
 सुखपत माँहि सब गले, मन बुधि चित परेकास ।
 छिनक माँहि परलै मया, को ठाकुर को दास ॥ १८ ॥
 जागृत जागृत साँच है, मोषन सपुना साँच ।
 देह गये, दोऊ गये, ज्यों भगली का नाच ॥ १९ ॥
 अंधरे को हाथी ज्यों, सब काहू को ज्ञान ।
 अपनी अपनी कहत है, काँको धरिये ध्यान ॥ २० ॥
 अंधे मिलि हाथी छुआ, अपने अपने ज्ञान ।
 अपनी अपनी सब कहे, किसको दीजै फान ॥ २१ ॥

—१४-ऐन—एक—१७. हरफ—अक्षर—

१८. सुखपत=सुपुष्टि अरस्था । १९ भगली=जादूगरी ।

अंधरन को हाथी सही, हँ साचे सघरे ।
 हाथन की रोई बटै, आँखिन के अंधरे ॥२२॥
 अंधों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोल ।
 आँखों से नहि देखिया, ताते भिन भिन बोल ॥२३॥
 दूजा हूँ तो बोलिये, दूजा झगरा सोरि ।
 दो अंधों के नाच भँ, कापै बाको मोहि ॥२४॥
 निरजानी सों कडिये कदा, कहत कवीर लजाय ।
 अंधे आगे नाचते, कला अकारय जाय ॥२५॥
 वचन वेद अनुभव जुगति, आनंद की परछाँहि ।
 बोध रूप पुरुष अवांडित, कहये में कहु नाहि ॥२६॥
 बुझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाँहि ।
 जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसे माँहि ॥२७॥
 ज्ञानी तो निरमय भया, मानै नाहीं संक ।
 इन्द्रिन धरे बसि पडा, भुगतै नरक निसंक ॥२८॥
 ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता ।
 ताते संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥२९॥

२५. निरजानी=अज्ञानी ।

१. पा० इन्द्रि एको बस नहीं, पीवै थियप निसक ।

सहज को अंग ।



सहज सहज सब कोय कहे,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै साद्विध मिलै,	सहज कदावै सोय ॥ १ ॥
सहज सहज सब कोय कहे,	सहज न चीन्है कोय ।
पाँचौ राखै पसरती,	सहज कदावै सोय ॥ २ ॥
सहज सहज सब कोय कहे,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै विषया तनै,	सहज कदावै सोय ॥ ३ ॥
सहजै सहजै सब भया,	मन इन्द्रो का नास ।
निष्ठनामी सों मन मिला,	कटी करम की फाम ॥ ४ ॥
सहजै सहजै सब गया,	सुन बिन काम निकाम ।
एक मेरु है मिलि रहा,	दास कसीरा राम ॥ ५ ॥
काहे को कल्पत फिरै,	दुखी होत बेकाम ।
सहजै सहजै होयगा,	जा कछु रचिया राम ॥ ६ ॥
जो कल्पै तो दूरि है,	अनकलरै हूँ सोय ।
सतगुरु मेटी कल्पना,	सहज होय सो होय ॥ ७ ॥
जो कछु आवै सहज में,	सोई मीठा जान ।
कटुवा लागै नीम सा,	जामें पेंचातान ॥ ८ ॥

२. पसरती=पली गइ । पचहानेन्द्रियों के अपने २ प्रियों में रहने पर भी चित्त की एकाग्रता होना सहज-वस्था है ।

५. सुन बिन काम-निकाम-निकाम । २ पुरंगमा, प्रीतिपणा और लोकैपणा को धीरे २ छोड़कर निकाम हो जाना ही सन्मार्ग-वस्था है ।

मध्य को अंग ।



म-य अंग लगा रहे,	तरत न लागै वार ।
दो दो अँग सो लगता,	यौ बूढ़ा संसार ॥ १ ॥
कवीर दुविधा दरि कर,	एक अंग है लाग ।
वा सीतल वा तपत है,	दोऊ कहिये आग ॥ २ ॥
अनल अकासै घर दिया,	म-य निरंतर वास ।
बसुधा वास विरक्त रहे,	बिना ठौर विश्वास ॥ ३ ॥
अनलपंख आवै नहीं,	सुत अपने को लैन ।
वह अलीन यह लीन है,	उलटि मिलै ते चैन ॥ ४ ॥
अनलपंख का चेटवा,	गिरने किया विचार ।
सुरति वांधि चेतन भया,	जाय मिला परिवार ॥ ५ ॥
वासर गम नहि रैन गम,	नहि सपनेतर गाम ।
'तहाँ कवीर विलंधिया,	जहाँ छँड नहि घाम ॥ ६ ॥
नर्क स्वर्ग ते पै रहा,	सतगुरु के परसादि ।
चरन कमल की भौज में,	रहसी अंत रु आदि ॥ ७ ॥
कावा फिर काशी भया,	राम जु भया रहीम ।
घोटा चुन मैदा भया,	बैठ कवीरा जीम ॥ ८ ॥
दास काबिर काढ़ी भली,	दोऊ राह बिच राह ।
अंधे लोग अचरज करैं,	सारैं करैं सराह ॥ ९ ॥

धरती और अकास में,	दो तुंबरी अबद्ध ।
पट्ट दरसन धोखे पड़े,	औ चौरासी सिद्ध ॥१०॥
सुरति निरति दो तुंबरी,	आश गवन अबद्ध ।
अन समझा धोखे पड़ा,	समझा सोई सिद्ध ॥११॥
प्रगट गुप्त की संधिमें,	जो यह भस्तिर होय ।
ज्यौ देहल का दीवला,	अंदर बाहर सोय ॥१२॥
पाया कहे ते वावरे,	खोया कहे ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं,	ज्यौं का त्यों भरपूर ॥१३॥
मज्जू तो को है भजन को,	तज्जू तो को है आन ।
भजन तजन के मध्यमें,	सो कबीर मन मान ॥१४॥
लेऊं तो महा प्रतिग्रह,	देऊं तो भोगन्त ।
लेन देन के मध्य में,	सो कबीर निज सन्त ॥१५॥
दुआ देऊं तो दोजख जाऊं,	बद दुआ भी नाँहि ।
दुआ बददुआ किसको देऊं,	साहिव है सय माँहि ॥१६॥
मँडि रहना मैदान में,	सनमुख सहना तीर ।
जमरा औ जगदीस के,	मधिमें वसै कबीर ॥१७॥
गुरु नहीं चेला नहीं,	मुरीद हू नहि पीर ।
एक नहीं दूजा नहीं,	बिलमै दास कबीर ॥ १८ ॥

१०. दो तुंबरी-साहब और साधु । ये दोनों किसी के बन्धन में नहीं पड़ते ।

११. पट्ट दर्शन=जोगी, जंगम, सपडा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण ।

१२. देहल—देहली । १५. प्रातप्रह-दान । १६. बददुआ शाय ।

हिन्दू ध्यावै देहरा, मुसलमान मसीत ।
 दास कविर तहँ ध्यावही, दोनों की परतीत ॥१९॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, मेरा नाम कबीर ।
 जिव मुक्तावन कारने, अविगत धरा सरीर ॥ २० ॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, सव्द कहूँ निरवान ।
 धंधन काट्टे जगत का, मैं रहिता रहमान ॥ २१ ॥
 हिन्दू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाय ।
 कहें कविर सो जीवता, दोउ के संग न जाय ॥ २२ ॥
 हिन्दू वहुँ तो धैं नहीं, मुसलमान भी नाँहि ।
 पांच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माँहि ॥ २३ ॥
 गैबी आया गैव ते, इहाँ लगाया ऐव ।
 उलटि समाना गैव में, (तव)कहाँ रहेगा ऐव ॥ २४ ॥
 गैबी तो गलियाँ फिरै, अज गैबी कोय एक ।
 अजगैबी हू जो लखै, जाके हियै विवेक ॥ २५ ॥
 आगे खोजी पचि मुआ, पीछै रहा भुलाय ।
 मध्य माँहीं वासा करै, ताको काल न खाय ॥ २६ ॥
 सोचै कोई न मानई, शूठ कहा - नहि जाय ।
 साँच शूठ के मध्य में, रहा कबीर समाय ॥ २७ ॥

अतिका भला न रोला, अति की मळी न चूप ।
 अतिका भला न वरसना, अति ही मळी न घूप ॥२८॥
 सबही भूमि बनारसी, सय निर गंगा तोय ।
 ज्ञानी आत्म राम है, जो निर्मळ घट होय ॥ २९ ॥

भेद को अंग ।



कवीर भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय ।
 सेरी पावै सब्द की, निरभय आवै जाय ॥ १ ॥
 भेदी जानै सर्व गुन, अनभेदी वया जान ।
 कै जानै गुरु पारग्वी, कै जिन लागी वान ॥ २ ॥
 भेद ज्ञान तौ लौ भलो, जाँ लौ मुक्ति न होय ।
 परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ विकल्प नहि कोय ॥ ३ ॥
 भेद ज्ञान मातुन भया, छुमिरन निरमल नीर ।
 अंतर धोई आत्मा, घोषा निरगुन चीर ॥ ४ ॥
 समझे को सेरी घनी, अन समझे को नाँहि ।
 द्वार न पावै सब्द वा, फिर फिर गोताँ खँहि ॥ ५ ॥
 समझा समझा एक है, अन समझे सय एक ।
 समझा सोई जानिये, जाँके दिये विपेक ॥ ६ ॥

समझा समझा एक है, अनसमझे सों मौन ।
 बातें बहुत मिलावई, तासों शीखै कौन ॥ ७ ॥
 समझा सोई जानिये, समझ समानी मोहि ।
 लष लग कछु न आवही, तव लग समझा नॉहि ॥ ८ ॥
 कोटि सयाने पचि मुये, कथै विचारै लोय ।
 समझा घट तव जानिये, रहित विचार जु होय ॥ ९ ॥
 भारी कहूं तो घडु डरूं, हलका कहूं तो झीठ ।
 मैं क्या जानूं राम को, नैना बछु न दीठ ॥ १० ॥
 दीठा है तो कस कहूं, कहूं तो को पतियाय ।
 हरि जैसा तैसा रहै, हरपि हरपि गुन गाय ॥ ११ ॥
 ऐसी अदभुत मति कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
 पेद कुराना नहि लिखा, कहूं तो को पतियाय ॥ १२ ॥
 जो देखै सो कहै नहि, कहै सो देखै नाहि ।
 सुने सो समुझावै नहि, रसन स्ववन द्विग काहि ॥ १३ ॥

१०. झीठ-तुच्छ ।

१३. आख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती और जीभ कहती है, परन्तु वह देख नहीं सकती । इसी प्रकार कान सुनता है, परन्तु वह समझा नहीं सकता, क्यों कि कान के जीभ और जीभ के कान नहीं हैं । इसी प्रकार जीभ के आख और आख के जीभ भी नहीं हैं । मान यह है कि वह तत्र अदृश्य, अत्राय्य और अश्राव्य है ।

“ श्रोत्रस्य श्रोत्र मनमो मनो यद्वाचोहवाचथ स उ प्राणस्य प्राण-
 धक्षुपथक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माह्लोकादमृता मयन्ति ” (केनोपनिषद्.)

जो पकरै सो चलै नहि,
 कहै कविर या साखि को,
 जो पकरै सो चले नहि,
 कर पद को तुम कहत हो,
 जानि के अनजान हुआ,
 गुरु किये ते लाभ है,
 चाद बिचादे विष घना,
 मौन गहि हरि सुमिरिये,
 पंडित सेती कहि रदा,
 यह अगाध ये क्यों कहै,
 बभै अपिंडी पिंड मैं,
 कहै कवीरा संतजन,
 घटमें हे मूत्रै नहि,
 मिला रहै औ न मिलै,
 आठ पहर चौबिस घडी,
 या नगरी प्रीतम बसे,
 प्रीतम को पतिया लिखूं,
 तनमें मनम नैन में,
 समदर्सी सतगुरु किया,
 भया उजारा ज्ञान का,

चलै सो पकरै नांदि ।
 अरथ समुझ मन मांदि ॥१४॥
 चलै सो पकरै नांदि ।
 समुझि लीन मन मांदि ॥१५॥
 तत्त्व लिया पहिचानि ।
 चेला किये न हानि ॥१६॥
 बोले बहुत उपाधि ।
 जो कोय जानै साध ॥१७॥
 कहा न माने कोय ।
 भारी अचाच होय ॥१८॥
 ताको लखै न कोय ।
 बडा अचंभा होय ॥१९॥
 कर सों गहा न जाय ।
 तासों कहा वमाय ॥२०॥
 मो मन यही अंदेस ।
 मैं जानूं परदेस ॥२१॥
 जो बह है परदेस ।
 ताको कहा सँदेस ॥२२॥
 भरम भया सर दूर ।
 निरमल जगा मूर ॥२३॥

समदर्शी सतगुरु किया, भरम किया सब दूर ।
 दूजा कोय दीखै नहि, राम रहा भरपूर ॥ २४ ॥
 * समदर्शी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान ।
 जहँ देखो नहँ एक ही, दूजा नाँही आन ॥ २५ ॥
 समदर्शी संतगुरु किया, मेदा भरम विकार ।
 जहँ देखो तहँ एक ही, साहब का दीदार ॥ २६ ॥
 समदर्शी सतगुरु किया, पाया मन विसराम ।
 जो हृषिको दिन धालता, सो गय ब्रह्म के धाम ॥ २७ ॥
 समदर्शी तव जानिये, मीतल समता होय ।
 सब जीवन की आत्मा, लखै एक सी सोय ॥ २८ ॥
 जो मन समझै ज्ञान में, ज्ञान दि होय सहाय ।
 सो फिर तोही ना रुचै, जाकूं तूं कहै माय ॥ २९ ॥
 समझै का घर और है, अन समझै का और ।
 जा घट में साहब बसै, सो विरला जानै ठौर ॥ ३० ॥
 समझै का मत और है, अन समझै का और ।
 समझै पीछे जानिये, राम वसै सब ठौर ॥ ३१ ॥
 भटकि मुआ भेदी विना, कौन बतावे धाम ।
 चलते चलते जुग गया, पाव कोस पर गाम ॥ ३२ ॥
 जा कारन हम टूटने, करते आस उमेद ।
 सो तो अंतर गत मिला, गुरु मुख पाया भेद ॥ ३३ ॥

जो देखा सो तीन में,
 चौथे कं परगट करै,
 जो बह एक न जानिया,
 एके ते सब होत है,
 दौड़ धूप छोडो मखी,
 उलटि वेद को भेद गहु,
 ईलम से उद्योग खिले.
 ईलम विन संसार में,
 मुख में रहे सो मानवी,
 घुरत रहे सो संन है.
 बोलत ही विष वाद है,
 ऐसे मन में समुझि के,
 अंतर कमल प्रकाशिया,
 मन भौरा जहं लुवधिया.
 जिन पाया तिन सुगह गहा.
 रतन निराला पाइया,
 कवीर टिल साविन भया,
 सापर मांदि ढंढोरतां,
 चार ईट चौरासि कुवा,
 भट पंडित खोजत मुवे.

चौथा मिले न कोय ।
 दरिजन कटिये सोष ॥३४॥
 बहु जाने क्या होय ।
 सबने एक न होय ॥३५॥
 छोडो कथा पुरान ।
 सार सबद गुरु ज्ञान ॥३६॥
 खिले नेकि से नूर ।
 समुझ अंधेरो धूर ॥३७॥
 मनसे रहे सो देव ।
 इस विधि जानो भेव ॥३८॥
 पृछन ही है वाद ।
 चूप रहे सोड साथ ॥३९॥
 ब्रह्म वास तहं होय ।
 जानेगा जन कोय ॥४०॥
 रसना लागी स्वाद ।
 जगत ढंढोला वाद ॥४१॥
 फल पाया समरथ्य ।
 हीरा पड़ि गया इध्य ॥४२॥
 सोलह सो पनिहार ।
 संतन किया विचार ॥४३॥

४३. चार ईट—चार अक्षर । चौरासीकुवा—चौरासी योनियों ।

सोल सो पनिहार—सोडशकण्य ।

कहने जैसी बात नहि, कहै कौन पतयाय ।
जहँ लागे तहँ लगि रहे, फिर पूछेगा काय ॥४४॥

साक्षी भूत को अंग ।

जा घट में साँई बसै, सो क्यों छाना होय ।
जतनं जतन करि दात्रिये, तउ उजियारा सोय ॥ १ ॥
मघ घट मेरा साँईया, सुनो सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय ॥ २ ॥
जा घट में संसै बसै, ता घट राय न होय ।
राम सनेही साधु विच, तिना न संचर जोय ॥ ३ ॥
जो मानौ तो भय नहिं, सनमुख रहा न जाय ।
सूना सिंघ न जगाइये, जो छेरै तिहि खाय ॥ ४ ॥
राय राय जिन ऊचरा, छिन छिन वारंवार ।
ते मुग्व भये जु ऊजला, कहै कवीर विचार ॥ ५ ॥
कवीर पछै राम सों, सकल भवन पतिराय ।
सबही करि न्यारा रहै, सोई देहु बताय ॥ ६ ॥
निहि विरियां साहिव मिले, ता सपान नहि और ।
सब कूं मुख दे सबद करि, अपनी अपनी ठौर ॥ ७ ॥

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय ।
 ल्युं मँहदीके पातवे, लाली लखी न जाय ॥ ८ ॥
 स्वास सुरति के मयही, न्यारा कमी न होय ।
 ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरतिमें जोय ॥ ९ ॥

एकता को अंग ।



अलख इलाही एक है, नाम धराया दोय ।
 कहैं कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ १ ॥
 राम रहीमा एक है, नाम धराया दोय ।
 कहैं कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ २ ॥
 कृष्ण करीमा एक है, नाम धराया दोय ।
 कहैं कविर दो नाम सुनि, भरम पढो मति कोय ॥ ३ ॥
 कासी कावा एक है, एकै राम रहीम ।
 मैदा इक एकवान बहु, वैठि कवीरा जीम ॥ ४ ॥
 राम कवीरा एक है, दूजा कवहुँ न होय ।
 अंतर टाटी भरम की, तातै देखै दोय ॥ ५ ॥
 राम कवीरा एक है, कहन सुनन को दोय ।
 दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय ॥ ६ ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पिठानि ।
 नाम पच्छ नहि कीजिये, सार तत्त लै जानि ॥ ७ ॥
 नाम भनन्त जो ब्रह्मका, तिनका चार न पार ।
 मन मानै सो लीजिये, कहै कबीर रिचार ॥ ८ ॥
 सब काहु का लीजिये, साचा सब्द निहार ।
 पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर बिचार ॥ ९ ॥
 हरिका बना सरूप सब, जेता यह आकार ।
 अन्तर अर्थ यौ भाखिये, कहै कबीर विचार ॥ १० ॥
 देखन ही की बात है, कइने को कहु नौहि ।
 आदि अन्त को मिलि रहा, हरिजन हरि हि माँहि ॥ ११ ॥
 सबै हमारे एक है, जो सुपिरै हरि नाम ।
 वस्तु लही पहिचानि के, वासन सों क्या काम ॥ १२ ॥
 खँड खिलौना ठो नही, खँड खिलौना एक ।
 तैमे सब जग देखिये, किये कबीर विषक ॥ १३ ॥
 खँड खिलौना तुम कहों, एक अहै नहि दीय ।
 नाम रूप दोसै पृथक्, हस्ती बोडा सोय ॥ १४ ॥
 उपजै एकै खँड त, हस्ती बोडा ऊंट ।
 खँड बिचारै पाइया, नाम रूप सब झूठ ॥ १५ ॥
 कबीर लोहा एक है, घडने में है फेर ।
 ताहोका बखतर बना, ताही की समसेर ॥ १६ ॥

त्योंही एकै ब्रह्म ते, जीव ईस जग जान ।
 ब्रह्म विचारै पाइया, नाम रूग को हान ॥१७॥
 जीव ब्रह्म व्यौरा नहीं, जीव ब्रह्म एक अंग ।
 ज्यों कनक कुँडल मृदुघट, सारा फेन तरंग ॥१८॥

व्यापक को अंग ।



जेता घट तेता मता, बहु वानी बहु भेद ।
 सब घट व्यापक साँइया, अगम अपार अलेख ॥ १ ॥
 पारब्रह्म सूभर भरा, जाका पार न पार ।
 खालिकु बिन खाली नहीं, सुइ जेता संचार ॥ २ ॥
 जाति जानि के पाहुने, जाति जाति के जाय ।
 साहिव सब की जाति है, घट घट रहा समाय ॥ ३ ॥
 ज्यों नैनों में पतली, त्यों खालिकु घट मांदि ।
 मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूँढन जांदि ॥ ४ ॥
 ज्यों तिल मांही तेल है, चक्रमक मांही आग ।
 तेरा भीतप तुझ में, जागि सकै तो जाग ॥ ५ ॥
 पुहुप मध्य ज्यौ बास है, व्यापि रहा जग मांदि ।
 सन्तो मांहीं पाइये, और कहीं कछु नांदि ॥ ६ ॥

भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बधि गइ बेल ।
 तेरा साँई तुझ हि में, ज्यों तिल मांहीं नेल ॥ ७ ॥
 पावक रूपी साँइया, सब घट रहा समाय ।
 चित्त चकमक लागै नहीं, ताँतै बुझि बुझि जाय ॥ ८ ॥
 काया कफ चित्त चकमकै, शारों वारं वार ।
 तीन बार धूँआ भया, चौधे पटा अंगार ॥ ९ ॥
 जैसी लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
 बायें केसू छिपि रहा, यायें गुरुप अलेख ॥ १० ॥
 तेरा साँई तुझ में, ज्यों पुहुपन में वास ।
 कन्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै घास ॥ ११ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, मिग हूँदै बन माहि ।
 ऐसे 'घटमें पीव है, दुनिया जानै नाहि ॥ १२ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, नाभि कमल हरि नाम ।
 नर हूँदै पावै नहीं, गुरु विन ठाम हि ठाम ॥ १३ ॥
 सो साहिव तनमें वसै, मरम न जानै तास ।
 कन्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै घास ॥ १४ ॥
 जा कारन जग हूँडिया, सो तो घट हि माहि ।
 परदा दीया भरम का, ताँतै मूँझै नाँहि ॥ १५ ॥
 समझै तो घर में रहै, परदा पळक लाया ।
 तेरा साहिव तुझमें, अन्त कहूँ मति जाय ॥ १६ ॥

मैं जानूँ हरि दूरि है, हरि हिरदै भरपूर ।
 मानुष हृदै बाहिरा, नियरे होकर दूर ॥१७॥
 तिलके ओटे राम है, परबत मेरे माय ।
 सतगुरु भिलि परिचै भया, तब पाया घट माँय ॥१८॥
 कवीर खोजी रामका, गया जु सिंगल दीप ।
 साद्विष तो घटमें बमै, जो आवै परतीत ॥१९॥
 घट बढ कहं न देखिये, प्रेम सकल भरपूर ।
 जानै ही ते निकट है, अनजानै ते दूर ॥२०॥
 कवीर बहुत भट्किया, मन ले विषय विराम ।
 हंडत हंडत जग फिगा, तिनका ओटे राम ॥२१॥
 राम नाम तिहं लोक में, सकल रहा भरपूर ।
 जो जानै तिहि निकट है, अन जानै तिहि दूर ॥२२॥
 सबै खिलौने खॉड के, खॉड खिलौना माँहि ।
 तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जान क माँहि ॥२३॥
 ज्यों ही एकै महल में, प्रतिभा विविध प्रकार ।
 कहै कबिर त्योंही बमै, ब्रह्म मध्य संसार ॥२४॥
 दाह मध्य ज्यों पूतरी, पूतरी मध्ये दाह ।
 कहै कबिर त्यों ब्रह्म में, भासत जग व्योढाह ॥२५॥
 ज्यों मृत्तिका घट मध्यमें, मृत्तिका मध्ये जोय ।
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जग सोय ॥२६॥

ज्यों बधूरा वाव मध्य,	मध्य बधूरा वाव ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत सुभाव ॥२७॥
ज्यों मृत्तिका घट फेन जल,	कुंडल कनक सो आय ।
त्यों कबीर जग ब्रह्म ते,	भिन्न कहूँ न दिखाय ॥२८॥
जैसे तरुवर बीज मँड,	बीज तरुवरै मँडि ।
कहै कबीर विचारि के,	जगत ब्रह्म के मँडि ॥२९॥
जैसे मूरज धूप मधि,	मूरज मध्ये धूप ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मध्य जग रूप ॥३०॥
जैसे स्याही अंक मधि,	स्याही मध्ये अंक ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत निसंक ॥३१॥
भूषण मध्ये कनक ज्यों,	भूषण कनक मँझार ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जग निरधार ॥३२॥
दरिया मध्ये लहर ज्यों,	लहर मध्य दरियाव ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत सुभाव ॥३३॥
देह मध्य ज्यों अंग है,	अंगे मध्य सरीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कबीर ॥३४॥
नीर मध्य ज्यों बुदबुदा,	बुदबुद मध्ये नीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कबीर ॥३५॥
चीर मध्य ज्यों तंतु है,	तंतु मध्य ज्यों चीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत कबीर ॥३६॥

आँधो यथा समीर मधि,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 तम मय मीत न पाइये,
 जीव ईस जग जोइले,
 ईश्वर में अरु जीव में,
 तिरविधि भेद न देखिये,
 कवीर भिन्न न देखिये,
 सब ही मध्ये ब्रह्म है,
 व्योम मध्य ज्यों घट मठ,
 कहै कविर यों ब्रह्म में,
 इधियार में लोह ज्यों,
 कहै कविर त्यों देखिये,
 पानी मध्ये लीक ज्यों,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 अहज स्वदेज उदभिज,
 कहै कवीर विचारि के,
 पावक एक अनेक जो,
 कहै कविर त्यों जानिये,
 मोमें तोमें सरवमें,
 राम विना छिन एक ही,

आँधो मध्य समीर ।
 ब्रह्म में जगत कवीर ॥३७॥
 ज्यों पावक विस्तार ।
 त्यों ही ब्रह्म विचार ॥३८॥
 ब्रह्म मध्य करीर ।
 सिंधु बुदबुदा नीर ॥३९॥
 जगत ईस अरु ब्रह्म ।
 ब्रह्म मध्य सब भर्म ॥४०॥
 अरु चिदाकास आकास ।
 जीव ईस जग भास ॥४१॥
 लोह मध्य इधियार ।
 ब्रह्म मध्य संसार ॥४२॥
 लीक मध्य ज्यों पानि ।
 ब्रह्म जगत में जानि ॥४३॥
 पिंडज आतम रूप ।
 यों ज्यों मूर्ज धूप ॥४४॥
 दीपक और मसाल ।
 ब्रह्म मध्य जग जाल ॥४५॥
 जहँ देखूँ तहँ राम ।
 सरै न एकौ काम ॥४६॥

खालिक विन खाली नहीं, सूइ धरन को ठौर ।
 आगे पीछे राम है, राम विना नहि और ॥४७॥
 घट विन कहुं न देखिये, राम रहा भरपूर ।
 जिन जाना तिस पास है, दूर कहा उन दूर ॥४८॥
 बाहिर भीतर राम है, नैनन का अभिराम ।
 जित देखूं तित राम है, राम विना नहि ठाम ॥४९॥
 ज्यों पत्थर में आग है, यों घट में करतार ।
 जो चाहो दीदार को, चकपक होके जार ॥५०॥
 साईं तेरा तुझहि में, ज्युं पत्थर में आग ।
 जोत सखी राम है, चित चकमक हो लाग ॥५१॥

जीवित मृतक को अंग ।



जीवित भिरतक है रहै, तमै खच्छक की आस ।
 रच्छक सपरथ सतगुरु, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
 जीवित में मरना मला, जो भरि जानै कोय ।
 मरना पहिले जो मरै, अजर अमर सो होय ॥ २ ॥
 मरने मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
 दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥ ३ ॥

वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार ।
 एक कबीरा ना मुआ, जाके नाम अधार ॥ ४ ॥
 कबीर मन मिरतक मया, दुरवळ भया सरीर ।
 पाठै लागै हरि फिरै, कहै कबीर कबीर ॥ ५ ॥
 काया माँहि समुद्र है, अन्त न पावै कोय ।
 मिरतक है करि जो रहै, मानिक लावै सोय ॥ ६ ॥
 मैं मरजीवा समुँदका, हुक्की मारी एक ।
 मूठी लाया ज्ञान की, जामे वस्तु अनेक ॥ ७ ॥
 हुक्की मारी समुँद में, जाके निकस आकास ।
 गगन भँडलवें घर किया, हीरा पाया दास ॥ ८ ॥
 हरि हीरा क्यों पाडये, जिन जीवै की आस ।
 गुरु दरियाँत काढसी, कोड मरजीवा दास ॥ ९ ॥
 गुरु दरिया सुमर भरा, जामे मुक्ता लाल ।
 मरजीवा ले नीकमे, पहिरि छिपाकी खाल ॥ १० ॥
 मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सात पताल ।
 लाज कानि कुळ मेटिके, गडि ले निकसा लाल ॥ ११ ॥
 तन समुँद मन मरजीवा, एक वार धमि लेय ।
 कै लाल लड़ नीकमै, कै लालच जिव देय ॥ १२ ॥
 मोती निपजै सीप में, सीप समुँदर माँहि ।
 कोय मरजीवा काढसी, जीवन की गम नाँहि ॥ १३ ॥

मन को मिरतक देखि के,
 साथ तहाँ लौं भय करै,
 मैं जानूं मन मरि गया,
 मूये पीछै उठि लगा,
 मनकी मनसा मिटि गई,
 गगन मंडलमें घर किया,
 मोहि मरन की चाव है,
 मति हरि बूझै वानरी,
 मोहि मरन की चाव है,
 की तनका कुटका करूं,
 जा मरना सों जग डरै,
 कब मरि हों कब भेटि हों,
 उंचा तरुवर गगन फल,
 इस फल को तो सो चखै,
 जब लग आस सरीर की,
 काया माया मन तजै,
 खरी कसौटी राम की,
 राम कसौटी सो टिकै,
 राम कहो तो मरि रहो,
 जखलग जीवत गम है,

मति माने विमवास ।
 जखलग पिंजर सॉस ॥१४॥
 मरि करि हुआ भूत ।
 ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
 अहं गई मव छूट ।
 काल रहा सिर कूट ॥१६॥
 मरूं तो राम दुवार ।
 दास मुआ दरवार ॥१७॥
 मरूं तो राम दुवार ।
 की ले उतरूं पार ॥१८॥
 मेरे मन आनंद ।
 पूरन परमानंद ॥१९॥
 बिरला पंछी खाय ।
 जो जीवत मरि जाय ॥२०॥
 मिरतक हुआ न जाय ।
 चौड़े रहै बजाय ॥२१॥
 खोटा टिकै न कोय ।
 जीवत मिरतक होय ॥२२॥
 जीवत मिले न राम ।
 तब लव काचा काम ॥२३॥

मूयं को क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
 रोइये वंदीवान को, हाटि हाट विकाय ॥२४॥
 भक्त परे क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
 रोइये साकिट वापुरे, हाटों हाट विकाय ॥२५॥
 मिरतक को धीजों नही, मेरो मन वह वाज ।
 वाजै वाव विकार की, कब फिर जीवै आज ॥२६॥
 मिरतक को दावा किता, अहं रहे नहि कोय ।
 मुआ मसाना पाजलै, यह कहु अचरज होय ॥२७॥
 कबीर मरि मरघट गया, किनहूँ न वृश्नी सार ।
 हरि आगे आडर लिया, गऊ बन्हा की छार ॥२८॥
 पैडा मांदि पडि रहो, दुरवल मिरतक होय ।
 जिहि पेंडे जम लट्टिया, यात न वृश्नै कोय ॥२९॥
 मरना मला विदेसका, जहँ अपना नहि कोय ।
 जीव जन्तु भोजन करै, सहज महोडा होय ॥३०॥
 कबीर चेरा सन्त का, दासन हू का दास ।
 अब तो ऐसा है रहु, पाव तले का घास ॥३१॥
 रोडा है रहु वाट का, तजि आपा अभिमान ।
 लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥३२॥

२७. मुआ मसाना—धार्मिक बलिदान सत्कार में आत्म प्रकाश कर देता है । अह-अहकार । ३०. महोडा—मृतकभोज ।

रोदा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पेहै की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उडि उडि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।

कवीर मिरतक देखकर	मति धारो विश्वास ।
कवहं जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज मुन्न में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज मुन्न में पाइये,	जहँ मरजीवा मन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतन ॥४५॥
फूले घे सो गिर पडे,	चरन कमल सँ दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन,	सत संगति सूचंत ।
कहै कविर जम क्या करे,	सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नही,	कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घड़ी इक का घमसान ।
मरे न जियै मरजीवा,	धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा भीच व्यापै नहीं,	मुखा न मुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	वैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौं रहो,	ज्यौं जल कमल निराल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहां नहीं जम काल ॥ २ ॥

रोडा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पैठे की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उहि उहि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि भजि निरमल होय ॥३६॥
 निरमल भया तो क्या भया, निरमल मांगै ठौर ।
 मल निरमल सों रहित हैं, ते साधु कोइ और ॥३७॥
 जिन पाँवन भुँई बहु फिरा, देखा देस बिदेस ।
 तिन पाँवन थिति पकडिया, आंगन भया बिदेस ॥३८॥
 मन उलठी दरिया मिला, लाग मल मल न्हान ।
 याहत याह न पावई, तूं पूरा रहमान ॥३९॥
 अजहूँ तेरा सब मिटे, जो जग मानै हार ।
 घरमें झगरा होत है, मो घर तारो जार ॥४०॥
 अजहूँ तेरा मय मिटे, जो मन राखै ठौर ।
 गम हो ते मय छोड दे, अगम पथऊँ दौर ॥४१॥
 मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ ।
 जो घर जारो अपना, चलो हमारे साथ ॥४२॥

कवीर मिरतक देखकर,	मति धारो विश्वास ।
कवहं जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज सुन्न में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन्न में पाइये,	जहँ मरजीवा मंन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतंन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पडे,	चरन कमल सँ दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन,	सत संगति सूचंत ।
फहँ कविर जम क्या करे,	सातौं गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नहीं,	कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घडी इक का घमसान ।
मरै न जियै मरजीवा,	धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा मीच व्यापै नहीं,	मुआ न सुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	वैद रमैया होय ॥ ? ॥
भौसागर ते यौ रहो,	ज्यौं जल कमल निराल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहाँ नहीं जम काल ॥ २ ॥

कबीर जोगी वन वसा, खनि खाया कंद मूल ।
 ना जानौं किस जडीसें, अमर भया अस्वूल ॥ १ ॥
 कबीर तो पिव पै चला, माया मोह से तोरि ।
 गगन मंडल आसन त्रिधा, काल रहा मुत्र मोरि ॥ ४ ॥
 कबीर मन तीखा किया, लाय विरह खरसान ।
 चित चरनोंसों चपटिया, (का)करै काल का वान ॥५॥
 काची रती मति करो, दिन दिन बढ़े त्रियाध ।
 राम कबीरा रुचि भई, याहि औपधि साध ॥ ६ ॥
 मनुवा भया दिसन्वरी, बोलै सब्द रसाल ।
 वात दिसावर की कहै, तहाँ नहीं जम काल ॥ ७ ॥
 ऐसी ताखी सुरति है, फोडि गई ब्रह्मंड ।
 राम निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ ८ ॥
 राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत गय लोन ।
 सुरनि सब्द एकै भया, जल ही हूगा मीन ॥ ९ ॥
 राम मरै तो हम मरै, नातर मरै वलाय ।
 अविनासी के चेटवा, मरै न मारा जाय ॥१०॥
 कबीर ससय जीव में, कोय न कहि समुझाय ।
 विधि विधि बानी बोलता, सो कित गया विलाय ॥११॥
 कबीर संसय दूरि कर, जनम मरन अरु भरंम ।
 पंच तत्त्व तत्त्वो मिला, सुन समाना परम ॥ १२ ॥

जप जौरा तो ही नहीं, सधै राम का रूप ।
 संसै खाई पिरपथी, रटा कवीरा कूक ॥१३॥
 तरुवर तासु विलंपिथा, चारह पास फरंत ।
 सीतल छाया सगन फरु, पंढी केलि करन्त ॥१४॥
 मुक्ता वाये दाहिने, मुक्ता आगै पीठि ।
 मुक्ता घरनि अकासमें, मुक्ता मेरी दीठि ॥१५॥
 मुक्ता पैड़ा जब भया, भान मुक्ति निरवान ।
 रूप मुक्ति तव जानिये, देखै दृष्टि पिडान ॥१६॥

वेहद को अंग ।

हद छोड़ा वेहद गया, लिया ठीकरा हाथ ।
 भया भिखारी नाम का, दरसन पाय सनाथ ॥ १ ॥
 हद वेहद दोऊ वजी, अवरन किया मिलान ।
 फहै कचिर वा दास पर, वारों सकल जहाँन ॥ २ ॥
 हद छाडी वेहद गया, अवरन किया मिलान ।
 दास कचिरा मिलि रदा, सो कहिये रदिमान ॥ ३ ॥
 हद छांटी वेहद गया, सुन किया अस्थान ।
 मुनिजन महल न पावहीं, तहाँ लिया विसराम ॥ ४ ॥

इरप सोक वा घर नहीं, नहीं लाभ नहि हान ।
 ईसा परमानंद में, धरें पुरुष को ध्यान ॥२४॥
 नहि देवी नहि देव हैं, नहि पट करम अचार ।
 नहि तीरथ नहि बरड हैं, नहीं वेद उचार ॥२५॥
 जापति परछैं लई नहीं, नहीं पुन्य नहि पाप ।
 ईसा परमानंद में, सुमिरे सबहुत आप ॥२६॥
 नहि सागर संसार है, नहीं परन नहि पानि ।
 नहि भरती आकास है, नहि शस्त्रा न नितानि ॥२७॥
 चरु शूर वा घर नहीं, नहीं करम नहि बाल ।
 गगत होय नाम दि गहै, हूटि गयो जंजाल ॥२८॥
 देवी भौंहि बिदेह हैं, साहब सुरति सरूप ।
 अंत लोक में रमि रहा, जाको रंग न रूप ॥२९॥
 कबीर गुण हैं बहना, वेद का गरु नाहि ।

गगन महल भाठी रुषी, चुबै अगर की धार ।
 जिन रहनी पाथै रहै, पीवत संत सुधार ॥३३॥
 गंगा जमुना सुसती, हो तिरवैनी तोर ।
 साहिव कविर वेहद छके, अम्पर होत सरीर ॥३४॥
 सरगुन की सेवा करो, निरगुन का करु ज्ञान ।
 निरगुन सरगुन के परै, तहाँ हमारा न्यान ॥३५॥
 निरालंम की खोज में, सब जग पडो मुञ्जाय ।
 जब सतगुरु दाया करै, तब ही पडै लखाय ॥३६॥

अविहड को अंग ।

—ॐ—

अविहड अखँडित पीव है, ताका निरभय टास ।
 तीनों गुन को मेलि के, चौथे किया निवास ॥ १ ॥
 कबीर साथी सोइ किया, दुख सुखजाहि न कोय ।
 हिलमिल के संग खेळई, कवहु बिलोह न होय ॥ २ ॥
 आदि अन्त अरु मध्य लौ, अविहड सदा अभग ।
 कबीर उस करतार का, कभी न छाडै संग ॥ ३ ॥
 जेहि घट जान बिजान, नेही घट अवटन घना ।
 बिन खांडे संग्राम, नित उदि मनमूजूना ॥ ४ ॥
 कबीर सिरजन हार बिन, मेरा हित न कोय ।
 गुन औगुन वेहै नहीं, स्वारथ बंधा लोय ॥ ५ ॥

अनदृष्ट चाजे निश्वर झूँ, उपजे ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतर परगटै, लागे परम त्रियान ॥ ६ ॥

भ्रमविध्वंस को अंग ।



पाहन केरी पूजरी, करि पूजै करतार ।
याहि मरोसे मति रहो, बूढो काली धार ॥ १ ॥
पाहन को क्या पूजिये, जो नहि देष जराय ।
अंधा नर आसा मुखी, यौही खोवै आव ॥ २ ॥
पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पुजुँ पधार ।
ताने तो चक्की भली, पीसि खाय संसार ॥ ३ ॥
पाहन पानि न पूजिये, सेवा जासी वाढ ।
सेवा कीजै साधु की, सत्तनाप कर याद ॥ ४ ॥
पाहन ही का देहरा, पाहन ही का देव ।
पूजनहारा आंधरा, क्यों करि मानै सेव ॥ ५ ॥
पाहन पानी पूजि के, पचि मूआ संमार ।
भेद अलहदा रहि गया, भेदबंध सो पार ॥ ६ ॥
पाहन ले देवल-चुना, मोटी मूरति माँडि ।
विद फूटि परधम रहै, सो ले तारे काटि ॥ ७ ॥

कवीर पाहन पुजि के, होन चहै मौ पार ।
 भीजि पानि वैरै नदी, बूढे जिन सिर मार ॥ ८ ॥
 कवीर दुनिया देखै, सीस नवावन जाय ।
 हिरदै मांहीं हरि वसै, तूं ताही ली लाय ॥ ९ ॥
 कवीर जैता आतमा, तेता सालिंग राम ।
 बोलनहारा पूजिये, नहि पाहन सों काम ॥१०॥
 कवीर सालिंग रामका, मोहि भरोसा नाँहि ।
 काल कहर की चोटमें, बिनसि जाय छिनमाँहि ॥११॥
 पूजै सालिंगराम को, मन की भ्रांति न जाय ।
 सीतलता सपनै नहीं, दिन दिन अधिकी लाय ॥१२॥
 सेवै सालिंगराम को, माया सेती हेन ।
 पहिरै काली कामली, नाम धरावै सेव ॥१३॥
 काजर केरी कोठरी, मसिके किये कपाट ।
 पाहन भूली पिरयवी, पंडित पाही बाट ॥१४॥
 हम भी पाहन पूजने, होते बनके रोज ।
 सतगुरु की किरपा भई, डारा सिरका बोज ॥१५॥
 मूरति धरि थंरा रचा, पाहन का जगदीस ।
 मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिसवा बीस ॥१६॥
 धरि गिरिवर करता किया, सो क्यों रहै अपून ।
 पाहन फोडि देरठ रचा, परमेश्वर सों दून ॥१७॥

कागद केी नाथरी, पाहन गहवा भार ।
 कहे कबीर विवारि के, मव बूडा संसार ॥१८॥
 मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान ।
 दन द्वारै का देहरा, तामें जोति पिठान ॥१९॥
 कांकर पाथर जोरिके, मसजिद लई चुनाय ।
 ता चढि मुल्ला वांग दे, बहिरा हुभा खुदाय ॥२०॥
 मुल्ला चढि किलकारिया, अलह न बहिरा होय ।
 जिहि कारन तू वांग दे, दिल ही अंदर जोय ॥२१॥
 तुरक मसीते देहरै हिन्दू, आप आप को धाय ।
 अलख पुरुष घट भीतरै, ताका पार न पाय ॥२२॥
 पूजा ; सेवा नेम घन, गुडियन का सा खेल ।
 जबलग पिय परसै नहीं, तजलग संसै मेल ॥२३॥
 कबीर या संसार को, समझायो मौं बार ।
 पूँछ जु पकडै भेड की, उतरा चाहै पार ॥२४॥
 जप तप . दीखै थोथरा, तीरथ व्रत विश्वास ।
 सूआ सेंभल सेंहपा, यौं जग चला निरास ॥२५॥
 तीरथ व्रत करि जग मुभा, जूडे पानी न्हाय ।
 सचनाम जानै बिना, काल जुगन जुग खाय ॥२६॥
 तीरथ चलै दुः जना, चिन चंचल मन चोर ।
 एकी पाप न काढ़िया, लायें दस मन और ॥२७॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय ।
 पीन सदा जल में रहे, धोये घास न जाय ॥२८॥
 प्रछरी तुरकै पकड़िया, वसै गंग के तीर ।
 धोय कुलाधि न भाजही, राम न कहै सरीर ॥२९॥
 तीरथ कांठे घर करै, पीवै निरमल नीर ।
 मुक्ति नहीं हरि नाम विन, यौं कथि कहै कबीर ॥३०॥
 निरमल गुरु के नाम सौं, निरमल साधू माय ।
 कोइला होय न ऊनला, सौं मन साबुन लाय ॥३१॥
 मनही में फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म ।
 कोटि करम भिरपर चढै, चेति न देखै मर्म ॥३२॥
 और धरम सब करम है, भक्ति धरम निह कर्म ।
 नादि इतियारी को कहै, कुवा वावरी मर्म ॥३३॥
 करम हमारे काटि हैं, कोइ गुरुमुख कलि माँहि ।
 कहै हमारी वासना, गुरुमुख कहियत नाँहि ॥३४॥
 अहिरन मारै कांख में, करै मूड़ का दान ।
 ऊंचे चढ़ि के देखई, केतिक दूर विमान ॥३५॥
 मरती विरियाँ दान दे, जीवत बड़ा कठोर ।
 कहै कबिर क्यों पाइये, खांडा का वै चोर ॥३६॥
 बहुत दान जो देत है, करि करि बहुते आस ।
 काहू के गज होयंगे, खैंहैं सेर पचास ॥३७॥

मुफ्त दान जो देत हैं, मुफ्त ही लेत असीस ।
ऊंट काहू के होयगे, लादेंगे मन वीस ॥३८॥
सब बन तो तुलसी भई, परबत साळिगराय ।
सब नदियें गंगा भई, जाना आत्म राम ॥३९॥
पांच तन्त्र का पूतरा, रज वीरज की वृंद ।
एकै घाटी नीमरा, ब्राह्मन छत्री सूद ॥४०॥
अकिल विहना आदमा, जानै नही गँवार ।
जैसे कपि परबस पर्यो, नाचै घग घर वार ॥४१॥
अकिल 'विहना सिंग ज्युं, गयो मसा के मंग ।
अपनी प्रतिमा देखि के, कीयो नन को भंग ॥४२॥
अकिल विहना आंधरा, गज फंदे पड़ो आय ।
ऐसे सब जग बंधिया, काहि कहू समुझाय ॥४३॥
पांच होत पंचम पर्यो, मूआ के बुधि नाँहि ।
अकिल विहना आदमी, योँ 'ंधा जग माँहि ॥४४॥
अकिल अरस सों ऊतरी, विधना दीन्ही वांट ।
एक अभागी रहि गया, एकन लई उछांट ॥४५॥
अलछ अकिल जानै नहीं, जीव जहदम लोय ।
हरदम हरि जाना नही, मिस्त कहों ने होय ॥४६॥
बिना बसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देह ।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेर ॥४७॥

पंडित सेती कहि रहा, भीतर बेधा नाँहि ।
 औरन को परमोधताँ, गया मोहरका माँहि ॥४८॥
 दुविधा जाके मन बसै, दयावंत जिय नाँहि ।
 कवीर त्यागो ताहि को, भूलि देइ जनि वाँहि ॥४९॥
 सत्तनाम कहु भा लौं, पीठा लागै दाम ।
 दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥५०॥
 चिऊँटी चावल ले चली, बिच में मिलि गइ दार ।
 कहै कबिर दो ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥५१॥
 आगा पीछा दिळ करै, सहनै मिलै न आय ।
 सो बासी जम लोक का, बांधा जमपुर जाय ॥५२॥
 कै तूं लोरै मुकदमी, कै तूं साहिव जोर ।
 दो दो घोड़ा मति चढ़ै, तेरे घर है चोर ॥५३॥
 तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी मार ।
 सबै तीर खाली पडा, चला रुपाना डार ॥५४॥
 बेझा मारै थिर रहै, खरा महीना खाय ।
 साहिव के दरवार में, भागि न कवहुं जाय ॥५५॥
 पड़ा सुना सीखा सभी, मिटो न समै सुल ।
 कहै कबिर कासों कहूं, यह सब दुख का मूल ॥५६॥

५१. चिऊँटी से अभिप्राय सुरति से है । चावल से अभिप्राय राम से और दार से माया अभिप्रेत है ।

५३. लोरै—चाहना । मुकदमी—ससार । ५४. बेझी—निशाना ।

नगर चैन तब जानिये, एकै राजा होय ।
 याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥५७॥
 तेरे हिरदै राम है, ताहि न देखा जाय ।
 ताको तो तब देखिये, दिल की दुबिधा जाय ॥५८॥
 देह निरंतर देहरा, तामें परतछ देव ।
 राम नाम सुमिरन करो, कह पाथर की सेव ॥५९॥
 पाथर मुख ना बोलही, जो सिर डारी कूट ।
 राम नाम सुमिरन करो, दृजा सबही झूठ ॥६०॥
 कुबुधी को सूझै नहीं, उठि उठि देवल जाय ।
 दिल देहरा की खबर नहि, पाथर ते कहँ पाय ॥६१॥
 मक्के पदिने मै गया, वहँ भी हरिका नाम ।
 मैं तुझ पूछँ हे सखी, किन देखा किस ठाम ॥६२॥
 सिदक सवूरी वाहिरा, कहा हज्ज को जाय ।
 जिन का दिल साबित नहीं, तिन को कहाँ खुदाय ॥६३॥
 आतम दृष्टि जानै नहीं, न्हावै मात हि काळ ।
 लोक लाज लीया रहै, लागा भरम कपाल ॥६४॥
 जप तप तीरथ सब करै, घड़ी न छाडै ध्यान ।
 कहँ कबीरा भक्ति दिन, कबहु न है कल्याण ॥६५॥

५७. दुराजी—दो राजाओं का राज्य ।

६३. सिदक—सत्य । सवूरी—सन्तोष ।

सुख को सागर में रचा, दुख सुख मेला पाव ।
 धिति ना पकड़े आपनी, चले रंक औ राव ॥६६॥
 लिखा पढ़ी में सब पड़े, यह गुन नजै न कोय ।
 सबै पड़े भ्रम जाल में, डारा यह जिय खोय ॥६७॥
 सत्तनाम निजमूल है, कहै कविर समुझाय ।
 दोड़ दीन खोजत फिरै, परम पुरुष नहि पाय ॥६८॥

सारग्राही को अंग ।



साधू ऐसा चाहिये, जैसा मूष सुभाय ।
 सार सार को गहि रहे, देइ असार बहाय ॥ १ ॥
 सत संगति है मूष ज्यों, त्यागे फटकै असार ।
 कहै कविर गुरु नाम ले, परसै नाँहि विकार ॥ २ ॥
 पहिले फटकै छाज के, घोथा सय उडि जाय ।
 उत्तम भाँडे पाइया, जो फटकै ठहराय ॥ ३ ॥
 औगुन को तो ना गहे, गुन ही को ले वीन ।
 घट घट महकै मधुप ज्यों, परमात्म ले चीन ॥ ४ ॥
 हंसा पय को काढि ले, छीर नीर निस्वार ।
 ऐसे गहे जु सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यौहार ।
 हंस रूप कोइ साधु है, तन का छाननहार ॥ ६ ॥
 पारा कंचन काढि ले, जो रे मिलावै आन ।
 कहै कबीरा सारमत, परगट किया बखान ॥ ७ ॥
 चुंवक काढै सार कुं, जो रे मिलावै रेत ।
 साधु काढे जीव को, उर अन्तर के देत ॥ ८ ॥
 रक्त छांडि पय को, गहै, ज्यौ रे गड का वच्छ ।
 औगुन छाडै गुन गहै, सार गिराही लच्छ ॥ ९ ॥
 वसुधा वन बहु भांति है, फूलै फूल अगाध ।
 मिष्ट वास कबिरा गहै, विषम गहै कोइ साध ॥ १० ॥
 कबीर सब घट आतमा, सिरजी सिरनन हार ।
 राम कहै सो राम सम, रहता ब्रह्म विचार ॥ ११ ॥

असारग्राही को अंग ।

कबीर कीट सुगंध तजि, नरक गहै दिनरात ।
 असार गिराही मानवा, गहै असार हि वात ॥ १ ॥
 पच्छी मल को गहत है, निरमल वस्तु हि छांडि ।
 कहै कबीर असार मत, पाँडि रहा मन पाँडि ॥ २ ॥
 आंघ्र तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहार ।
 कबीर साग हि छाँडिके, गहै असार असार ॥ ३ ॥

रस छाँडै छूटी गई, कोल्हू परगट देख ।
 गई असार असार को, हिरदै नाँहि विवेक ॥ ४ ॥
 रस छाँडै छूटी गई, सो कोल्हू का काम ।
 गई असार हि सार तजि, निस दिन आठों जाय ॥ ५ ॥
 दूध त्यागि रक्त हि गई, लगी पयोधर जोंक ।
 कहें कबीर असार मति, छलना राखे पोख ॥ ६ ॥
 लोहू गहि दूधे तनै, जोंक सुभाव परख ।
 ऐसा ही नर आंधरा, सार तें जाय सरक ॥ ७ ॥
 घूटी चाटी पान करै, कहै दुःख जो जाय ।
 कहें कबीर मुख ना गई, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥
 पापी पुत्र न भावई, पाप हि बहुत सुहाय ।
 माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुरगंध तहँ जाय ॥ ९ ॥
 निरमल छाँडै मल गई, जनम अमारै खोय ।
 कहें कबीर सार तजि, आवन गये विगोय ॥ १० ॥

पारख को अंग ।



कबीर देखी परखि ले, पारखी के मुख खोल ।
 साधु असाधु जानि ले, सुनि सुनि मुख का बोल ॥ १ ॥
 कबीर देखी परखि ले, परखि के मुखों बुलाय ।
 जैसी अन्तर होयगी, मुख निरुसगी आय ॥ २ ॥

पहिले सब्द पिछानिये, पीछै कीजै मोल ।
 पारख परखै रतन को, सब्द का मोल न तोल ॥ ३ ॥
 हीरा तहाँ न खोलिये, जँहँ खोटी है हाट ।
 कसि करी बांधो गाँठरी, उठि करि चाळो वाट ॥ ४ ॥
 हीरा परखै जौहरी, सब्द हि परखै साध ।
 कबीर परखै साधु को, ताका पता अगाध ॥ ५ ॥
 हरि हीरा जन जौहरी, ले ले माँडी हाट ।
 जब रे मिलेगा पारखी, तब हीरा की साट ॥ ६ ॥
 हरि हीरा मन जौहरी, परखि निरखि हिय लेय ।
 छै लुहार करि गहन में, ज्ञान चोट धन देय ॥ ७ ॥
 हरि हीरा सन मेहटा, पट्टन प्रान सुभट्ट ।
 गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी हट्ट ॥ ८ ॥
 हरि मोतियन की माल है, पोई काचै षाग ।
 जतन करो झटका घना, टूटेगी कहुँ लाग ॥ ९ ॥
 राम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल ।
 जबही मिलेगा पारखी, लेगा महँगे मोल ॥ १० ॥
 राम रसायन भेष रस, अमृत सब्द अपार ।
 गाहक बिना न नीकमै, मानिक कनक कुठार ॥ ११ ॥

६. साट—मोल तोल । ११. कनक कुठार—मोने का गडार ।

१. पा० कुमरों का ।

तन संदूक मन रतन है,	चुपकी दे हट तालं ।
गाहक बिन नहि खोलिये,	पूंजी सब्द रसाल ॥१२॥
जो जैसा उनमान का,	तैसों तासों बोल ।
पोता को गाहक नहीं,	हीरा गांठि न खोल ॥१३॥
जब गुन को गाहक मिलै,	तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुन को गाहक नहीं,	कौड़ी बदले जाय ॥१४॥
एक हीं बार परखिये,	ना वा बारं बार ।
बालू तौहू किरकिरी,	जो छानै सौ बार ॥१५॥
ज्ञानी जन हैं जौंहरी,	करमी सकल मजूर ।
देह भार का टोकरा,	लिये सीम भरपूर ॥१६॥
कवीर जग के जौंहरी,	घट की आँखी खोल ।
तुला सम्हारि विवेक की,	तोलै सब्द अमोल ॥१७॥
गाहक मिले तो कुछ कहूं,	नातर झगडा होय ।
अन्धों आगे रोइये,	अपना दीदा खोय ॥१८॥
जो हंसा मोती चुगै,	कांकर क्यों पतियाय ।
कांकर माथा ना नवै,	मोती मिले तो खाय ॥१९॥
मोती है बिन सीप का,	जगर मगर उजियार ।
कहै कवीर जब पावई,	भोजन मिले हप्पर ॥२०॥
हंसा देस मुदेस का,	पड़ै कुदेसा आय ।
जाका चारा मोतिया,	घोंघै क्यों पतियाय ॥२१॥

१३. पोता—काच का पीत ।

हंसा बगुला एक सा, मान सरोवर माँहि ।
 बाग द्विद्वारे बाछरी, हंसा मोती खाँहि ॥२२॥
 गावनिषा क मुख बसूँ, स्रोता के मै कान ।
 ज्ञानी के हिरदै वसूँ, भेदी का निज मान ॥२३॥
 किरतनिया मे कोस बिस, संन्यासी सों तीस ।
 बिरहा के हिरदै बसूँ, बैरागी के सीस ॥२४॥
 जो कछु है तो कुछ कहूँ, कहौं तो झगडा सोढ ।
 दो अन्गो का नाचना, कहिये काको मोह ॥२५॥
 उत्तर दक्षिण पूरव पच्छिम, चारों दिसा ममान ।
 उत्तम देन कबीर का, अमरापुर अस्थान ॥२६॥
 हड्डी पारि हारा लहा, नौ करोड को हीर ।
 जा मारग हारा लहा, सो रयौं तजै करीर ॥२७॥
 मंसै नहि साधू मिलै, मिलि मिलि करै विचार ।
 बोला पीछै जानिये, जो जाको बेवहार ॥२८॥
 पाग्व कीजै साधु की, साधु हि परखै कौन ।
 गान मंडल में घर करै, अनदद राखै मौन ॥२९॥
 चंदन गया बिदेमरे, सब कोय कहै पलास ।
 ज्यो ज्यो चूल्है झोंकिया, त्याँ त्याँ अधिक सुवास ॥३०॥
 चंदन रोया रात भरि, मेरा हितू न कोय ।
 जिस को राग्या पेट में, सो फिर बेरी होय ॥३१॥

चंदन काटा जड़ खनी, बांधि लिया सिर भार ।
 कालि जो पंछी बसि गया, तिसका यह उपकार ॥३२॥
 पौष पदार्थ पेलिया, कांकर ली-हा हाथ ।
 जोड़ी बिलहुरी हस की, चला बुगों के साथ ॥३३॥
 हसा तो महा रान का, आया थलिया पौंहि ।
 बगुला बरि करि मारिया, मरम जु जानै नाँहि ॥३४॥
 हंस बुगा के पावना, कोइ एक दिन का फेर ।
 बगुला कोहे गरबिया, बैठा पंग्व बिलेर ॥३५॥
 बगुला हंस मनाय ले, नीरां रकां बहोर ।
 या बैठा तू ऊजला, तासों प्रीति न तोर ॥३६॥
 एक अचंभौ देखिया, हीरा हाट बिकाय ।
 परखनदारा ब्राह्मरी, कौटी बदले जाय ॥३७॥
 पायो पर पायो नहीं, हीरा बड्डी मार ।
 कहै कविर यों ही गयो, परखे बिना गँवार ॥३८॥
 कविरा चुनता कन फिरै, हीरा पाया घाट ।
 ताको मरम न जानिया, ले खलि खार्ट हाट ॥३९॥
 हीरा का कलु ना घटा, घटा जु बेचनदार ।
 जनम गँवायो आपनो, अंधे पमू गँवार ॥४०॥
 हिरदे हीरा ऊषजे, नाभि बँवल के बीच ।
 जो कबहू हीरा लखै, कदै न आवै मीच ॥४१॥

हीरा साहिब नाम है, डिगदै भीतर देख ।
 बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥४२॥
 वाट वकै दम जात है, सुरति निरति ले बोल ।
 निन प्रति हीरा सब्द का, गाइक आगे खोल ॥४३॥
 मान उनमान न तोलिये, सब्द न मोल न तोल ।
 मूरख लोग न जानसी, आपा खोयो बोल ॥४४॥
 कबीर गुदरी वीखरी, सौदा गया विकाय ।
 खोटा बांधा गांठरी, खरा लिया नहि जाय ॥४५॥
 कबीर खांड हि छांडि के, कांकर चुनि चुनि खाय ।
 रतन गंवाया रेतमें, फिर पाछे पछिताय ॥४६॥
 कबीर ये जग आंधरा, जैसी अंधी गाय ।
 बलरा था सो भरि गया, ऊभी चाम चटाय ॥४७॥
 पप्पा सों परिचै नहीं, दहा गहिगा दूर ।
 लल्ला लौ लागी रहै, नचा सदा हजूर ॥४८॥
 पैडे मोती वीखरा, अंधा निकसा आय ।
 जोति बिना जगदीस की, जगत उलौंढा जाय ॥४९॥
 सागर में मानिक वसै, चीन्हत नहीं कोय ।
 या मानिक कूं सो लखै, जाको गुरुगम होय ॥५०॥

४५. गुदरी—बाजार, अठवाडिया ।

४८. पप्पा—परमेश्वर ।

दहा—दान । लल्ला—लेना । नचा—नहीं ।

अनजाने का कूकना,
 ज्यों अंधियारी रैन में,
 ये भारन सब ज्ञानिया,
 साइ चोर चीन्है नहीं,
 कोइ कुरंग जब चित मिलै,
 मैस के आगे धीन ज्यों,
 हंस काग की परख को,
 इंसा तो मोती चुगै,
 परदेसाँ खोजन गया,
 काच मनी का पारखी,
 मैं जानूं हरि दूर है,
 आडी टाटी कपट की,
 जाको आटा अंतरा,
 जान दूअ जड है रहे,
 कोइ एक ज्ञानी पारखी,
 कहे कविर तब बांचही,
 बक्ता ज्ञानी जगन में,
 सत्य पदारथ पारखी,
 ज्ञान जीव को धर्म है,
 सौंध पंथ पावै परखि,

कूकर का सा सोर ।
 माहन चीन्है चोर ॥५१॥
 कथत बकत दिन जाय ।
 कागा हंस लगाय ॥५२॥
 रहे सब्द लौ लाय ।
 वह वैठी पगुराय ॥५३॥
 सतगुरु दर्इ बताय ।
 काग नरक पर जाय ॥५४॥
 घर हीरा की खान
 क्यों पावै पहिचान ॥५५॥
 हरि है हिरटे माँहि ।
 तासे दीसतु नौँहि ॥५६॥
 ताको दिसे न कोय ।
 बळ तजि निरबळ होय ॥५७॥
 परखै खरा रु खोट ।
 रहे नाम की ओट ॥५८॥
 पंडित कवि अनंत ।
 विटला कोड संव ॥५९॥
 र्भम त्रास जो भेट ।
 जब तिदि सतगुरु भेट ॥६०॥

हीरा पडा जु गैल में, दुनिया जामें डोल ।
 जहाँ हीरा का पारखी, तहँ हीरा का मोल ॥६१॥
 अंधे औघट जात है, चारों लोचन नाँहि ।
 संत उपकारी ना मिला, छोडे वस्ती माँहि ॥६२॥
 गौ को अंधी मति कहो, गौ है स्याम सुपेन ।
 बज्जुवा था सो मरि गया, तऊ न छाँटे हेत ॥६३॥
 रंक कनक चुनता फिरै, वस्तू आई हाथ ।
 ताका मरम न जानिया, ले देखाया हाट ॥६४॥
 जवलग लाल समुद्र में, तबलगिलखौ न जाय ।
 निकनि लाल बाहिर भया, पडंगे मोल विकाय ॥६५॥
 हीरा बनिजै जाँहरी, ले ले मांडा हाट ।
 जबहि मिलेंगे पारखी, तब हीरों की साट ॥६६॥
 नाम हिरा धन पाइया, औ हीरा धन मोल ।
 चुनि चुनि बांधो गांठरी, पल पल देखो खोल ॥६७॥
 लाखों में दीसै नही, कोटिन में जाय देख ।
 कोटिन में कोइ एक है, जो जानै कोइ लेख ॥६८॥
 साधु परखिये सब्द में, रहनी तैसी भास ।
 नाना विधि के पुहुप हैं, फूले तैसी वास ॥६९॥

वेली को अंग ।



आंगन वेलि अकास फल,	अनव्याही का दूध ।
समा सिंग के धनुस को,	खैच बाझ सुत मूध ॥ १ ॥
आंगन वेली अलख है,	फल करता अभिलास ।
गगन मंडल में सोधि ले,	सतगुरु बोले साख ॥ २ ॥
अनव्याही आकास है,	मुपमनि सुरति त्रिलोय ।
अहनिसि तो तारी लगी,	मेम दूर जरि होय ॥ ३ ॥
छाया माया रहित है,	मुच्छम है अनमूत ।
आव गवन सो रहित है,	सोड बाझ का पूत ॥ ४ ॥
ससा सिंग के धनुस का,	पाया सब्द विवेक ।
भय दृढा निरभय भया,	सब घट देखा एक ॥ ५ ॥
सहज मुक्त में खर पडी,	वन में लागी लाय ।
कबीर दाधा होय तब,	आस पास मिटि जाय ॥ ६ ॥
पारप्रिया वन लाडया,	जला जु वन खंड घास ।
बीज जला वेली जली,	नहीं उगन की आस ॥ ७ ॥
मूल जला वेली जली,	हुआ बीज का नास ।
सुरति समानी सब्द में,	नहि उगन की आस ॥ ८ ॥
जो ऊगै तो ब्रह्म में,	अन्त कहें नहि जोय ।
हरिरस सींची वेलडी,	कधी न कडवी होय ॥ ९ ॥

जो मन में तो ब्रह्म में, अनत न कहूं समाय ।
 हरिस सींची बेलही, कद न निस्फल जाय ॥१०॥
 सिद्ध सहज ही खिर पड़ी, अगन जु लागी माँहि ।
 सिद्धि बेलि दोऊ जरी, अब फिर ऊँ नौहि ॥११॥
 जो काटै तो डहडही, सीचै तो कुम्हिलाय ।
 इस गुनवंती बेलि का, कछु गुन कहा न जाय ॥१२॥
 विना बीज का वृक्ष है, विन धरती अंकूर ।
 विन पानी का रंग है, तहाँ जीव का मूर ॥१३॥

कथनी को अंग ।

— ॐ —

कथनी कथे तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय ।
 कलाधूत का कोट ज्यों, देखत ही ढहि जाय ॥ १ ॥
 कथनी काची है गई, करनी करी न सार ।
 स्रोता बक्ता मरि गया, मूरख अनंत अपार ॥ २ ॥
 कथनी मीठी खांड सी, करनी विप की लोय ।
 कथनी से करनी करै, विप से अमृत होय ॥ ३ ॥
 कथनी वदनी छांड दे, करनी सोंचित लाय ।
 नर को जल प्याये विना, कवहूं प्यास न जाय ॥ ४ ॥

१३. विना बीज का वृक्ष—अपिनाशी पुरुष । विनधरती अंकूर—ज्ञान ।
 विन पानी का रंग—माया ।

कथनी कधि फूला फिरै, मेरे द्वियै उचार ।
 भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ गँवार ।
 कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार ।
 कहै कविर करनी मली, उतरै भौजल पार ॥ ६ ॥
 कथनी ऊं गीजूं नहीं, करनी मेरा जीव ।
 कथनी करनी दोउ पकी, महल पवार पीव ॥ ७ ॥
 कथनी के मुरे घने, थोथे बापे तीर ।
 विरह वान जिनके लगा, तिनके विकल सरीर ॥ ८ ॥
 कथनी को तो भानि के, करनी देय बहाय ।
 दास कवीरा यों कहै, ऐसा है तो आय ॥ ९ ॥
 कथते हैं करत नहीं, मुँह के बड़े लवार ।
 मुँह काला तो होयगा, साहिव के दरवार ॥ १० ॥
 कथते हैं करते सही, साँच सरोतर सोय ।
 साहिव के दरवार में, आठ पहर सुग्व होय ॥ ११ ॥
 ककस कूटै कन विना, विन करनी का ज्ञान ।
 ज्यों बडुक गोली विना, भडक न मारै आन ॥ १२ ॥
 आप राखि परमोधिये, मुनै ज्ञान अकरायि ।
 तुस कूटै कन बाहिरी, कह न आवै दायि ॥ १३ ॥
 पद जोरे साखी कहै, सायन पड़ि गइ रोस ।
 कादा जल पीवै नहीं, काढि पीवन की होस ॥ १४ ॥

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं टोस ।
 कहैं कबिर बेठा रहै, ता सिर करडै कोस ॥१५॥
 सोता तो घरही नही, वक्ता बकै सो वाद ।
 सोता वक्ता एक घर, तब कथनी का स्वाद ॥१६॥
 कथते वकते पचि म्ये, मूरख कोटि हजार ।
 कथनी काची पड़ि गई, रहनि रहै सो सार ॥१७॥
 कुल करनी छूटे नहीं, ज्ञान हि कयै अगाध ।
 कहैं कबिर वा दास को, मुख देखै अपराध ॥१८॥
 रहनी के भेदान में, कथनी आवै जाय ।
 कथनी पीसै पीसना, रहनी अमल कमाय ॥१९॥
 जैसी करनी आपनी, तैसा ही फल लेय ।
 कुरे करम कमाय के, साईं दोष न देय ॥२०॥
 राम झरुखै बैठि के, सब का मुजरा लेय ।
 जैसी जाकी चाकरी, तैसा तिन को देय ॥२१॥
 साहेब के दरवार में, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुरा कमाय के, वाद करै फरियाद ॥२२॥
 दाता नदिया एक सम, सब काहू को देत ।
 हाथ कुंभ जिसका जिसा, तैसा ही भरि लेत ॥२३॥
 कबीर हमने घर किया, गलकट्टों के पास ।
 करेगा सो पाइगा, तुमं क्यों भये उदास ॥२४॥

१. पा० कबीर का घर चौक में । २. पा० भरेगा । ३. पा० तू क्यों फिर उदास ।

एक हमारी सीख सुन, जो तू हुआ सीप ।
 करुं करुं तो क्या कहे, कीया है सो देख ॥२५॥
 जब तू आया जगत में, लोग हँसे तू रोय ।
 ऐसी करनी ना करो, पिछै हसे सब कोय ॥२६॥
 जैसी कथनी पै कयी, तैसी कथे न कोय ।
 करनी से साद्वि मिले, कथनी झूठी होय ॥२७॥
 पशु की होती पनडिया, नरका कछु न होय ।
 नर उत्तम करनी करै, नर नारायन होय ॥२८॥
 स्रम ही ते सब कछु बनै, विन स्रम मिले न काहि ।
 सीधी अंगुली थी जम्यो, कबहूँ निकसै नाहि ॥२९॥
 कैसा भी सामर्थ हो, विन उद्यम दुख पाय ।
 निकट असन विन कर चले, कैसे मुख में जाय ॥३०॥
 स्रम ही ते सब होत है, जो मन राखै थीर ।
 स्रम ते खोदत रूप ज्युं, थल में प्रगटे नीर ॥३१॥
 कथनी कथे अगाध की, ज्यो अकास का गीध ।
 चारा वाका भूमि पर, उडे भया क्या सीध ॥३२॥
 करनी करै सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती ।
 रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥३३॥

लगनी को अंग ।



लौं लागी तव जानिये,	छूटि न कचहूं जाय ।
जीवत लौं लागी रहै,	मूये तहाँ समाय ॥ १ ॥
लौं लागी तो डर किसा,	आप विसरजन देह ।
अमृत पीये आतमा,	गुरु सों जुडै सनेह ॥ २ ॥
लौं लागी तव लौं लगूं,	कहूं न आऊं जाँव ।
लै बूझूं तो लै तरुं,	लै लै तेरा नाँव ॥ ३ ॥
जैसी लौं पहिले लगी,	तैसी निवहै ओर ।
अपने देह को को गिनै,	वारी पुरुष करोर ॥ ४ ॥
लै पाऊं तो लै रहूं,	लेन कहूं नहि जाँव ।
लै बूडै सो लै तिरै,	लै लै तेरो नाँव ॥ ५ ॥
जैसी लौं प्रथमहि लगी,	तैसी ही रहि जाय ।
जाके हिरदै लौं बसै,	मो मोहि माँहि समाय ॥ ६ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी पुरी बलाय ।
लागी मोई जानिये,	वार पार है जाय ॥ ७ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी नांही एक ।
लागी सोई जानिये,	पडे कलेजे छेक ॥ ८ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी सोइ सराह ।
लागी तव ही जानिये,	उठे कराह कराह ॥ ९ ॥

लगी लगन छूटे नहीं, जीम चोंच जरि जाय ।
 मीठा बड़ा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१०॥
 जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले नी ।
 बलह कल्पना भेटि कर, चरनों चित दे नी ॥११॥
 सोऊं तो सुपनै मिलूं, जागू तो मन मॉहि ।
 लोयन राता सुधि हरी, विडुवात कबहुं नॉहि ॥१२॥
 और मुरति विसरी सकल, लौं लागी रहै संग ।
 आव जाव कासों बहू, मन राता हरि रग ॥१३॥
 जबलग कथनी हम कधी, दूर रहा जगदीस ।
 लौं लागी कल ना पडै, अब बोलै न हदीस ॥१४॥
 ग्रंथन माहीं अर्थ है, अर्थ मॉहि है भूल ।
 लौं लागी निरभय भया, मिटि गया सँसै मूल ॥१५॥
 गग जमुन के बीच में, महज मुन्न लौं पाट ।
 तहाँ बधीरा मठ रचा, मुनिजन जोवै वाट ॥१६॥
 जिहि पुन सिंघ न संचरै, पच्छी उडि ना जाय ।
 रैन दिवस की गम नहीं, तहाँ कबिर लौं लाय ॥१७॥
 काय कपंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर ।
 पीवत तृषा न भाजई, तिरपावंत कवीर ॥१८॥

१४ हदीस-कुरान । अर्थात् शिक्षा की आवश्यकता नहीं ।

१६. गगजमुन-इगला पिंगल । १७ सिंह से तात्पर्य नीर । अ
 पच्छी से मन है ।

सुरति हीकुली नेज लौ, मन नित डोलन हार ।
 कमल कूप में ब्रह्म जल, पीवै वारंवार ॥१९॥
 मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्दान ।
 थाहत थाह न पावई, सो पूरा रहमान ॥२०॥
 नाम न जानै गाँव का, पीछै लागा जाय ।
 कालिड जो कांठ भांगसी, पहिले क्यों न सुराय ॥२१॥
 सीख मई संसार सो, चला जु साई पास ।
 अविनासी मोहि ले चला, पुरई मेगी आस ॥२२॥
 इन्द्र लोक अचरज भयो, ब्रह्मा पडा विचार ।
 कबीर चाला राम पै, कौतिकहार अपार ॥२३॥
 सद पानी पाताल का, कादि कबीरा पीव ।
 वासी पावक पडि मुआ, विषय बिलंबा जीव ॥२४॥
 कबीर हरि का डरपता, ऊन्हा धान न खाव ।
 डिग्हा भीतर हरि बसै, दासन ते जुडराव ॥२५॥
 अब तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम ।
 पहिले काच कधीर था, फिरता ठाम हि ठाम ॥२६॥
 भौसागर जल विष भरा, मन नहि बाँधे धीर ।
 सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कबीर ॥२७॥
 भला सुहेला ऊतरा, पूरा भैरा भाग ।
 सत्तनाम बांका गहा, पानी पग नहि लाग ॥२८॥

१९. नेज-रस्ती । मन को डोल बनाकर सुरती की टेकली और लव की रस्ती बनानी चाहिये । २८. सुहेला-अब देशवालों का एक मांगलिक तारा ।

सुपना में साईं मिला, सोवत लिया जगाय ।
 आंखि न मीचीं हरपता, पति सुपना है जाय ॥२९॥
 कबीर कैसो की दया, संसै मेला खोय ।
 जो दिन गया हरि भजन दिन, सो दिन सालै मोय ॥३०॥
 कबीर जांचन जाय था, आगे मिला अजाच ।
 आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साच ॥३१॥
 लौं छागी निरमय भया, भरम भया सब दूर ।
 वन वन में कहुँ दृढता, राम इहां भरपूर ॥३२॥

निजकर्ता को अंग ।

अल्लै पुरुष एक पेड है, निरंजन बाकी द्वार ।
 तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
 नाद बिंदु ते अगम भगोचर, पांच तत्त्व ते न्यार ।
 तीन गुननु ते भिन्न है, पुरुष अल्लै अपार ॥ २ ॥
 तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पढ़ा संसार ।
 कहै कबिर निजनाम बिन, केसै उतरै पार ॥ ३ ॥
 हरा होय गूखै मही, यों तिरगुन विस्तार ।
 प्रथमदि ताको सुधिरिये, जाका सकल पसार ॥ ४ ॥
 सन्द सुरति के अंतरै, अलख पुरुष निरवान ।
 लखनेहारे लखि लिया, जाकी है गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥

राम क्रिष्ण औंनार हैं, इन की नाहीं मांड ।
 जिन साहिव सृष्टि किया, किन्हु न जाया रांड ॥ ६ ॥
 राम क्रिष्ण को जिन किया, सो तो करता न्यार ।
 अंग ज्ञान न बूझई, रुहे कवांग विचार ॥ ७ ॥
 संपुट साहि समाइया, सो साहिव नहि होय ।
 सकल मांड में रमि रहा, मेरा साहिव सोय ॥ ८ ॥
 साहेब मेरा एक है, दूजा कदा न जाय ।
 दूजा साहिव जो कहें, साहेब खरा रिसाय ॥ ९ ॥
 जाके मुँह पाया नहीं, नाहीं रूप अरूप ।
 पुहुप वास ते पातला, ऐसा तत्व अनृप ॥ १० ॥
 बूझो करता अपना, मानो बचन हमार ।
 पाच तत्व के भीतर, जाका यह भंसार ॥ ११ ॥
 निचल सबल जो जानि के, नाम धरा जगदीस ।
 कहें करिग जनमै मरै, ताहि रहूं नहि सीस ॥ १२ ॥
 जनम परन से रहिव है, मेरा साहिव सोय ।
 बलिहारी बही पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥ १३ ॥
 सभुँद पायी लका गयो, सीता को भरतार ।
 ताहि अगस्त अचै गयो, इन में को करतार ॥ १४ ॥
 गिरिवर धार्यो कृष्णजी, द्रोना गिरि हनुमंत ।
 सेसनाग रानी धरी, इन में को भगवत ॥ १५ ॥

अविगति पीसै पीसना, गौसा बिनै खुदाय ।
 निरंजन तो रोटी करै, गौरी बैठा खाय ॥१६॥
 तीन देव को सब कोइ ध्यावै, चौथे देव का मरम न पावै ।
 चौथा छोड पंचम चित लावै, कहै कविर हमरै दिग आवै ॥१७॥
 जो ओंकार निश्चय किया, यह करता मति जान ।
 साचा सद्ध कवीर का, परदे में पहिचान ॥१८॥
 अलख अलख सब कोउ कहै, अलख लखै नहि कोय ।
 अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहि होय ॥१९॥
 कथत कथत जुग थाकिया, थाकी सबै खलक ।
 देखत नजरि न आइया, हरि को कहा अलख ॥२०॥
 तीन लोक सब राम जपत, जानि मुक्ति को धाम ।
 रामचंद्र बे वसिष्ठ गुरु, काह सुनायो नाम ॥२१॥
 जग में चारों राम हैं, तीन राम ब्याहार ।
 चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार ॥२२॥
 एक राम दसरथ घर डोलै, एक राम घट घट में बोलै ।
 एक राम का सकल पसारा, एक राम तिरगुन ते न्यारा ॥२३॥
 कौन राम दसरथ घर डोलै, कौन राम घट घट में बोलै ।
 कौन राम का सकल पसारा, कौन राम तिरगुन ते न्यारा ॥२४॥

१६. अविगति-माया । गौसा—कडा । गौरी—अगम पुरुष ।

अर्थात्—माया, ईश्वर और निरंजन जगत के कारणकलाप हैं और गौरी साक्षी पुरुष है ।

भाकार राम दसरथ घर डोलै,
 बिंदु राम का सकल पसारा,
 जाकी थापी मांड है,
 जो थापा है मांड का,
 रहै निराला मांड ने,
 कवीर सेवै तासुको,
 चार भुजा के भजन में,
 कवीर सुमिरे तासु को,
 काटे वंथन विपति में,
 चीन्हो रे नर प्राणिया,
 कहै कविर चित चेतहु,
 राम हि करता कहत है,
 जाहि रोग उत्पन्न भया,
 वैद्य ब्रह्म बाहिर रहा,
 असुर रोग उनपति भया,
 कहै कवीर या साखि को,
 कवीर कारज भक्ति के,
 कहै कवीर विचारि के,
 हम कर्ता सब सृष्टि के,
 कहै कविर हमही चीन्हे,

निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सबही ते न्यारा ॥२५॥
 ताकी करहु सेव ।
 सो नहिं हमरा देव ॥२६॥
 सकल मांडतिहि मांदि ।
 दृजा सेवै नाँहि ॥२७॥
 भलि पड़े सब संत ।
 जाके भुजा अनंत ॥२८॥
 कठिन किया संग्राम ।
 गरुड बड़े की राम ॥२९॥
 सन्द करो निरुवार ।
 भूलि पर्यो संसार ॥३०॥
 औपधि देय जु ताहि ।
 भीतर धसा जु नाहि ॥३१॥
 औतार औपधि दोन्ह ।
 अरथ जु लीजो चीन्ह ॥३२॥
 भुक्ति हि दीन्ह पठाय ।
 ब्रह्म न आवै जाय ॥३३॥
 हम पर दूसर नाँहि ।
 नहि चौरासी माँहि ॥३४॥

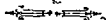
अर्नैत कोटि ब्रह्मपंड का, एक रती नहि भार ।
 साह्य पुरुष कवीर है, कुल का सिरजनहार ॥३५॥
 साह्य सब का धार है, वेदा किसीका नाहि ।
 वेदा होकर ऊतरा, सो तो साह्य नाहि ॥३६॥
 पिंड मान नहि तासु के, दप देही नहि सीन ।
 नाद विन्द आवै नहीं, पांच पचीस न तीन ॥३७॥
 राम राम तुम कहत हो, नहि सो अकथ सरूप ।
 वह नो आये जगत में, भये दूसरथ घर भूप ॥३८॥
 रेख रूप विनु वेद में, ओ कुरान बेचून ।
 आपस में टोक लड़े, जाना नहि दोहन ॥३९॥
 सहज सुन्न में सांझ्या, ताका वार न पार ।
 धरा सकल जग धरि रहा, आप रहा निरधार ॥४०॥
 देखन सरिखी बात है, कहने सरखी नाँहि ।
 अदभुत खेला पेखि के, समुझि रहो मन माँहि ॥४१॥

कसौटी को अंग ।

संत सरवस दे मिले, गुरु कसौटी खाय ।
 राम दोहाइ सत कहूँ, फेरि न उदर सपाय ॥ १ ॥
 खरी कसौटी राम की, चाचा टिकै न कोप ।
 राम कसौटी जे सहे, जीवत पिरतक होय ॥ २ ॥

खरी कसौटी तोलतों, निकसि गई सब खोट ।
 सतगुरु सेना सब हनी, सब्द बान की चोट ॥ ३ ॥
 हीरा पाया पारखी, घन महँ टीन्हा आन ।
 चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥ ४ ॥
 सोने रूपे घाह दइ, उत्तम हमरी जात ।
 वन ही में की घूबची, तोली हमरे साथ ॥ ५ ॥
 तोल बराबर घूबची, मोल बराबर नाँहि ।
 मेरा तेरा पत्ररा, टीजै आगी माँहि ॥ ६ ॥
 विपति भलि हरि नाम लेत, काय कसौटी दुख ।
 नाम बिना किस कामकी, पाया संपति मूल ॥ ७ ॥
 कांच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम ।
 कहै कथिर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥ ८ ॥
 कसत कसौटी जो टिके, ताको सब्द सुनाय ।
 सोड हमारा बस है, कहै कविर समुझाय ॥ ९ ॥

सूक्ष्म मार्ग को अंग ।



कवीर मारग कठिन है, रिपि मुनि बैठे थाक ।
 तहाँ कवीरा चढ़ि गया, गा सतगुरु की साक ॥ १ ॥
 सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाप ।
 मोटा भाग कवीर का, तहाँ रहा लौ लाय ॥ २ ॥

मुर नर थाके मुनिजना, थाके विस्तु महेस ।
 तहाँ कवीरा चढि गया, सतगुरु के लपदेस ॥ ३ ॥
 अगम हूँ ते जो अगम हे, अपरम पार अपार ।
 तहँ मन धीरज वर्यो धरै, पंथ खरा निरधार ॥ ४ ॥
 अगम पंथ मन धिर करै, बुद्धि करै परवेस ।
 तन मन धन सब छाँडि कै, तब पहुँचै वा देस ॥ ५ ॥
 अगम हता सो गम किया, सतगुरु दिया वताय ।
 कोटि कल्प का पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥ ६ ॥
 भव हम चले अमरापुरी, टारै टरै टाट ।
 आवन होय सो आइयो, मूली ऊपर वाट ॥ ७ ॥
 सूली ऊपर घर करै, विप का करै अहार ।
 ताको काल कहा करै, आठ पहर हुसियार ॥ ८ ॥
 गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार ।
 सूली ऊपर साधा, जहाँ बुलावै यार ॥ ९ ॥
 यार बुलावै भाव सों, मो पै गया न जाय ।
 धन मैली पिव ऊनला, लागि न सकि हे पाय ॥ १० ॥
 जिस कारन में जाय था, सो तो मिलिया आय ।
 साँई तो सनमुख खडा, लाग कवीरा पाय ॥ ११ ॥

७. टारे—प्रपंच को हटाकर । ८. सूली ऊपर—कठिन मार्ग है ।

९. गगनमंडल में सुरति लगाकर हृदय में सत्यगुण को धारण करे ॥

१०. धन—प्रिया, सुरति । पिव—साहव ।

जो आवै तो जाय नहि, जाय तो कहँ सपाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥१२॥
 जो आवै तो जाय नहि, जाय तो आवै नाँहि ।
 अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माँहि ॥१३॥
 कौन देस कहाँ आइया, जानै कोई नाँहि ।
 बह पारग पावै नहीं, भूलि परै जग पाँहि ॥१४॥
 नाँव न जानै गांवका, बिन जानै कहँ जाव ।
 चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव ॥१५॥
 सतगुरु दीन दयाल है, दया करि मोहि आय ।
 कोटि जनम का पंथ या, पल में पहुँचा जाय ॥१६॥
 उत ते कोई न आइया, जासों बूझूँ धाय ।
 इत ते सब कोय जात है, भार लदाय लदाय ॥१७॥
 उत ते सतगुरु आइया, जाकी बुधि है धीर ।
 भौसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर ॥१८॥
 सब को पूछन में फिरा, रहनि कहे नहि कोय ।
 शीत न जोड़े नाम सों, रहनि कहाँ से होय ॥१९॥
 चलन चलन सब कोय कहे, मोहि अंदेसा और ।
 साहिव सों परिचै नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर ॥२०॥
 जाने की तो गम नहीं, रहने को नहि ठौर ।
 कहै कबिर सुन साधवा, अविगत की गति और ॥२१॥

जहां न चिऊंटी चढि मकै,	राई ना ठहराय ।
मनुवा तहां ले राखिपा,	सोई पहुँचा जाय ॥२२॥
वट मारग कित को गया,	मारग पहुँचे साद ।
मैं तो दोऊ गढि रहा,	लोभ बढ़ाई वाद ॥२३॥
बिन पौवन की राह है,	बिन बस्ती का देस ।
बिना पिंड का पुरुष है,	कहै कबिर संदेस ॥२४॥
घाट हि पानी सब भरै,	औघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीर का,	भरै सो निरमल होय ॥२५॥
चलते चलते पगु धके,	निपट करारी कोस ।
बिन दयाल झलका परे,	काको दीजै दोस ॥२६॥
जहाँ चतुरकी गम नहीं,	तहाँ मुरख किमि जाय ।
बाह विधाता नाथ है,	काग कपूर हि खाय ॥२७॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	वाहि देस की सीच ।
अवही कहाँ तिगाडिये,	बेडी पायन बीच ॥२८॥
करता की गति अगम है,	चल गुरुके उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे,	पहुँचेगो परमान ॥२९॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	अध कलु कडा न जाय ।
सिंधु समाना बुँदमें,	दरिया लहर समाय ॥३०॥

२५. घाट—वेद, मत, वर्ण और आश्रम की मर्यादा । औघट—सनागत, त्रिगुणातीत ।

२७. काग कपूर—अनधिकारी सत्य मार्ग को पकडना चाहते हैं ।

२८. तिगाडना—एत्रो चौडी धाते बनाना ।

प्रान पिंड को तजि चला, मुआ फई सब कोय ।
 जीव छता जामै मरै, मून्उप लखै न कोय ॥३१॥
 प्रान पिंड को तजि चला, छुटि गया जंजार ।
 ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३२॥
 सूक्ष्म सुरति का मरम है, जीवन जानत जाल ।
 कहै कवीरा दूरि कर, आत्म आदि हि काल ॥३३॥
 अंतःकरण ही मन महीं, मन हि मनोरथ मॉंदि ।
 उपजत उपजत जानिये, विनसत जानै नाँदि ॥३४॥
 साखी सैन सही करी, श्रवण सुनी ना जाय ।
 जैमे तेजा वायको, नाद हि कव लै जाय ॥३५॥
 हती साईं सव सुन लई, सैन सुनी नहि जाय ।
 नैन बैन दोइ थके, सैन हि माहि लखाय ॥३६॥

३१. स्थूल जन्म और मरण से सारा संसार परिचित है; परन्तु सूक्ष्म जन्म और मरण को कोई नहीं जानता । वह सूक्ष्म जन्म और मरण मनुष्य के जीते जी प्रतिदिन ही होता है । नई २ वासनाओं को प्रतिदिन हृदय में स्थान देना ही सूक्ष्म जन्म और मरण है ।

३२. दिन में सौ सौ बार—अनेक शिष्यों में चित्त को अटकाना ही दिन में सौ सौ बार मरना है ।

३५. जिस प्रकार हनु का शपाटा शब्द को उडा ले जाता है, इसी प्रकार मन की चंचलता श्रवण इन्द्रिय से पूरा ज्ञान नहीं होने देती, इस लिये साखी में बताई हुई सैन से निजानुभव करना चाहिये ।

मुरज किरन रोकी रहे, कुंम नीर ठहराय ।
 मुरति जु रोकी ना रहे, जहाँ पुरुष तहँ जाय ॥३७॥
 कबीर दीपक जोइये, देखा अपरं देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहाँ कबीरा सेव ॥३८॥
 पहुंचेगे तो कहेंगे, मीलेगे उस ठाय ।
 अजहं मेरा समुँद में, बोळि विगूचे काय ॥३९॥
 अगम पंथ कुं पग धरै, सो कोइ विरला संत ।
 मत वाडा में पडि गये, ऐसे जीव अनंत ॥४०॥
 मत वाडा में पडि गये, मूरख वारै वाट ।
 ऐमा कवहुं ना मिले, उलटे घाटे घाट ॥४१॥

भाषा को अंग ।



संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर ।
 भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥ १ ॥
 संस्कृत हि पंडित कहे, बहुत करै अभिमान ।
 भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥ २ ॥
 संस्कृत हि संसार में, पंडित करै बखान ।
 भाषा भक्ति हठावही, न्यारा पद निरवान ॥ ३ ॥

पूरन बानी वेद की, सोहत परम अनूप ।
 आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रुर ॥ ४ ॥
 बानी नो पानी भरे, चारों वेद मजूर ।
 चूका सेवक बंदगी, किया चाकरी दूर ॥ ५ ॥
 वेद कहै मैं कछु न जानूँ, स्वाँसा के संग आय ।
 दरस हेत कहँ बंदगी, गुन अनेक भैं गाय ॥ ६ ॥
 वेद हमारा भेद है, हम वेदोंके माँहि ।
 जौन भेद में मैं बसूँ, वेदों जानत नाँहि ॥ ७ ॥

पंडित को अंग ।



पंडित और पसालची, दोनों सूझत नाँहि ।
 औरन को करै चाँदना, आप अंधेरे माँहि ॥ १ ॥
 पंडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर का ज्ञान ।
 औरन सगुन बतावहीं, आपन फंद न जान ॥ २ ॥
 पंडित पोथी बांधि के, दे सिरदाने सोय ।
 वह अच्छर इन में नहीं, हलि दे भावै रोय ॥ ३ ॥
 पंडित बोडौ पातरा, कानी छँड कुरान ।
 वह तारीख बताय दे, थे न जिर्मी असमान ॥ ४ ॥

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु चोर ।
 जिस पढ़ने साहिव मिले, सो पढ़ना कछु और ॥ ५ ॥
 पढ़ै गुनै सीखै सुनै, मिठी न संसै सुल ।
 कहै कविर कासों कहैं, येही दुख का मूल ॥ ६ ॥
 पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पढ़ित हुआ न कोय ।
 एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७ ॥
 कवीर पढ़ना दूर करु, पोथी देहु बढाय ।
 वाचन अच्छर सोधि के, सचनाम लौ लाय ॥ ८ ॥
 कवीर पढ़ना दूर करु, अति पढ़ना संसार ।
 पीर न ऊपजै जीव की, क्यों पावै करतार ॥ ९ ॥
 में जानौ पढ़ना मला, पढ़ने ते भल जोग ।
 सचनाम सौं प्रीति कर, भावै बिंदो लोग ॥ १० ॥
 नहि कागड नहि लेखनी, निह अच्छर है सोय ।
 वांचहीं पुस्तक छोडि के, पढ़ित कहिये सोय ॥ ११ ॥
 धरती अंबर ना हता, को पढ़ित था पास ।
 कौन मुहरम थापिया, चाँड सुरज आकास ॥ १२ ॥
 कवीर ब्राह्मण की कथा, सो चोरन की नाव ।
 सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ ले जाव ॥ १३ ॥
 कवीर ब्राह्मण बूडिया, जनेऊ केरे जोर ।
 लख चौरासी माँगि लह, सतगुरु सेती तोर ॥ १४ ॥

ब्राह्मन गुरु है जगत का, संतन के गुरु नाँहि ।
 अरुझि परुझिके मरि गये, चारी वेदों माँहि ॥१५॥
 ब्राह्मन गढहा जगत का, तीरथ लादा जाय ।
 यजमान कहि पै पुन किया, वह महेनत का खाय ॥१६॥
 ब्राह्मन ते गढहा भला, आन देव ते कुत्ता ।
 मुलना ते मुरगा भला, सहर जगावै सुत्ता ॥१७॥
 कलि का ब्राह्मन पमखग, ताहि न दीनै ढान ।
 कुटुब सहित नरकै चला, माथ लिया यजमान ॥१८॥
 पढै पढावै कछु नहीं, ब्राह्मन भक्ति न जान ।
 व्याहै श्राद्धै कारनै, बैठा मूँडा तान ॥१९॥
 पारोसीमं रुठना, तिल तिल मुखकी हान ।
 पंडित भया सरावगी, पानी पीवै छान ॥२०॥
 चारि अठारह नव पढी, छौं पढि खोया मूल ।
 कबीर मुल जानै बिना, ज्यों पंछी चंडूल ॥२१॥
 लिखना पढना चातुरी, यह संसारी जेव ।
 जिस पढने सों पाइये, पढना किसी न सेव ॥२२॥
 चारि वेद पढवो करै, हरि से नाही हेत ।
 माल कबीरा ले गया, पंडित हूँदे खेत ॥२३॥
 पढी गुनी पाठक भये, समुझाया संसार ।
 -१५न तो समुझै नहीं, वृथा गया अवतार ॥२४॥

पढी गुनी ब्राह्मण भये, कीर्ति भई मंसार ।
 वस्तु की तो समुझ नहीं, ज्युं तर चंदन भाग ॥२५॥
 पढत गुनत रोगी भयो, वहा बहुत अभिमान ।
 भीतर ताप जु जगत का, घडी न पढती सान ॥२६॥
 पढे गुने सब वेद को, समुझे नहीं गमार ।
 आसा लागी भरपकी, ज्युं करोल की जाल ॥२७॥
 पंडित पढने वेद को, पुस्तक इसती छान ।
 मक्ति न जाने राम की, सबे परीक्षा वाद ॥२८॥
 पढते गुनते जनम गया, आसा लागी हेत ।
 बोधा बीज हि कुपतिने, गया जु निर्मल खेत ॥२९॥
 पढि पढि और समुझावइ, खोजि न आप सरीर ।
 आपहि संशयमें पड़े, युं कहि दास कवीर ॥३०॥
 चतुर्गई पोपट पढी, पढि सो पिंजर मॉहि ।
 फिर परमोधे और को, आपन समुझै नॉहि ॥३१॥
 हरि गुन गावे हरपिके, हिरदय कपट न जाय ।
 आपन तो समुझै नहीं, और हि ज्ञान मुनाय ॥३२॥
 ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पंडित कवी अनेक ।
 राम रता इंद्रि जिता, कोटी मध्ये एक ॥३३॥
 कुल मारग छोडा नहीं, रह मायामें मोह ।
 पारस तो परसा नहीं, रहा लोह का लोह ॥३४॥

आत्म तत्व जानै नहीं, कोटिक कथे जु ज्ञान ।
 तारे तिमिर न मागहीं, जब लग उगे न भान ॥३५॥
 अजहं तेरा सब मिटे, गुरु मुख पावे भेद ।
 पंडित पास न बैठिये, बैठि न सुनिये वेद ॥३६॥

निंदा को अंग ।



निंदक एकदू मति मिलै, पापी मिलै हजार ।
 डक निंदक के सीस पर, लाख पाप का भार ॥ १ ॥
 निंदक ते कुत्ता भला, हट कर मांडै रार ।
 कुत्ते से क्रोधी बुरा, गुरु दिलावै गार ॥ २ ॥
 निंदक तो है नाक विन, सोहै नकटों माहि ।
 साधजन गुरु भक्त जो, तिनमें सोहै नाँहि ॥ ३ ॥
 निंदक तो है नाक विन, निस दिन विष्टा खाय ।
 गुन छाँडै औगुन गई, तिसका यही सुभाय ॥ ४ ॥
 निंदक नेरै राखिये, आंगन कुटी छवाय ।
 विन पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय ॥ ५ ॥
 निंदक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान ।
 निरमल तन मन सब करै, बकै आन ही आन ॥ ६ ॥

निंदक हमरा जनि मरो, जीवो भादि जुगाटि ।
 कबीर सतगुरु पाइया, निंदक के परसाटि ॥ ७ ॥
 कबीर निंदक मरि गया, अब क्या कहिये जाय ।
 ऐसा कोई ना मिले, बीडा लेय उठाय ॥ ८ ॥
 सातो सायर में फिरा, जंबुदीप दै पीठ ।
 परनिंदा नाहीं करै, सो कोय विरछा दीठ ॥ ९ ॥
 दोष पराया देखि करि, चरै हसन्त हसन्त ।
 अपना याद न आवई, जाका भादि न अन्त ॥ १० ॥
 तिनका कवहुँ न निन्दिये, पाँव तलै जो होय ।
 कवहुँ उहि आँखों पड़े, पीर घनेरी सोय ॥ ११ ॥
 माखी गहै कुवास को, फूल वास नहि लेय ।
 मधु माखी है साधुजन, गुनहि वास चित देय ॥ १२ ॥
 कबीर मेरे साध की, निंदा करो न कोय ।
 जो पै चंद्र कलक है, तउ उजियारी होय ॥ १३ ॥
 जो कोय निन्दै साध को, संकट आवै सोय ।
 नरक जाय जनमै भरै, मुक्ति कवहुँ नहि होय ॥ १४ ॥
 जो तूं सेवक गुरुन का, निंदा की तज वान ।
 निंदक नेरै आय जब, कर आदर सनमान ॥ १५ ॥
 काहू को नहि निन्दिये, चाहै जैसा होय ।
 फिर फिर ताको बन्दिये, साधु लच्छ है सोय ॥ १६ ॥
 ऐसा कोई जन एक है, दूजे मेय अनेक ।
 निंदा बन्दा क्या करै, जो नहि हिरदा एक ॥ १७ ॥

निन्दा कीजै आपनी, धंदन सतगुरु रूप ।
 औरन सो क्या काम है, देख न रंक न भूप ॥१८॥
 आपन को न सराहिये, पर निन्दिये नाह कोय ।
 चढ़ना लंघा धौदरा, ना जानै क्या होय ॥१९॥
 आपन पौ न मराहिये, और न कहिये रंक ।
 क्या जानौं किहि रूख तर, कूरा होय करंक ॥२०॥
 लोग विचारा निन्दही, जिनहु न पाया ज्ञान ।
 सत्तनाम जानै नहीं, वके आनही आन ॥२१॥
 निन्दक न्हाग गगन कुरुखेत, अरुपै नारि सिंगार समेत ।
 चौसठ कूवा बाय दिखावै, तोमो निन्दक नरक हि जावै ॥२२॥
 अडमठ तीरथनिन्दकन्हाइके, दहे पलोसे मैल न जाहि ।
 छपनबोटिघरती फिरि आवै, तोभी निन्दक नरकहि जावै ॥२३॥
 निंदा हमरी जो करै, मित्र हमारा सोय ।
 बिन साबुन बिन पानिसे, मैल हमारा धोय ॥२४॥
 काहूको नहि निंदिये, सबको कहिये संत ।
 करनी अपनी से तरे, मिलि भजिये भगवंत ॥२५॥
 कंचन को तनवो सहल, महल त्रिया को नेह ।
 निंदा केरो त्यागवो, बडो कठिन है येह ॥२६॥
 कबीर रहै तो राम है, निंदने को कछु नाँहि ।
 कोइ विधि गोविंद सेविये, राम बसा सब माँहि ॥२७॥

आनदेव को अंग ।

आनं देव की आस करि, मुख मेले पट मांस ।
 जाके जन भोजन करे, निश्चय नरक निवास ॥ १ ॥
 होम कनागत कारनै, साकुट राधा खाय ।
 जीवत विष्ठा स्वान की, मूआ नरकै जाय ॥ २ ॥
 आरा नारा कारनै, जेता रळमळ खाय ।
 जीवत जनम हि स्वान का, पीछै नरकै जाय ॥ ३ ॥
 साकुट हित कुं जाय के, सरमा सरमी खाय ।
 कोटि जनम नरकै पढ़े, तऊ न पेट अघाय ॥ ४ ॥
 कन्या बल अरु कारनै, आनदेव को खाय ।
 सो नर होले वाजते, निश्चय नरकै जाय ॥ ५ ॥
 कामी तिरै क्रोधी तिरै, लोभी की गति होय ।
 सलिल भक्त संसार में, तरत न देखा कोय ॥ ६ ॥

प्रकृति गुन को अंग ।

पहिले सेर पचीस का, सन्तो करो अहार ।
 गुरु सव्यै लागे रहो, दुख न होय लगार ॥ १ ॥
 सुपपन दिव्वी पोत करि, दीन्ही आगि चढाय ।
 सेर पांच को राधि करि, सन्त होय सो खाय ॥ २ ॥

सेर पांच को खाय करि, सेर तीन को खाय ।
 सेर तिन खाड ना सकै, सेर दुई को खाय ॥ ३ ॥
 सेर दुई को खाय करि, पाया अगम अलेख ।
 सतगुरु सर्वद यों कहा, जाके रूप न रेख ॥ ४ ॥
 दुख महल को दाहने, सुख महल रहु नाय ।
 अभि अन्तर है उनमुनी, तामें रहो समाय ॥ ५ ॥
 कालज तजे न स्थामता, सुखटा तजे न स्वैत ।
 दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत ॥ ६ ॥
 दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सज्जन को नास ।
 सूरज जव गरपी करे, तव वरसन की आस ॥ ७ ॥
 कछु कहि नीच न छेडिये, भलो न वाको संग ।
 पत्थर दारे कीव में, उछलि विगाहे अंग ॥ ८ ॥
 चंद्रा सूरज चलत न दीसे, बढत न दीसे वेळ ।
 हरिजन हरिभजता ना दिसे, ये कुदरत का खेल ॥ ९ ॥
 जो जाको गुन जानता, सो ताको गुन लेत ।
 कोयल आमही खात है, काग लिबोरी लेत ॥ १० ॥
 इक्क खुन्नस खांसि जो, औ पीवे मदपान ।
 ये छूपाया ना छुपे, परगट होय निदान ॥ ११ ॥

काम को अंग ।



कामी का गुरु कामिनी,	लोभी का गुरु दाम ।
कवीर का गुरु सन्त है,	संतन का गुरु राम ॥ १ ॥ २
कामी कबहुँ न गुरु भजै,	भिट्टै न संसै मूल ।
और गुनह सब वखिग है,	कामी डाल न मूल ॥ २ ॥
कामी कुत्ता तीस दिन,	अन्नर होय उटास ।
कामी नर कुत्ता सदा,	छह रितु बारह मास ॥ ३ ॥
कामी क्रोधी लालची,	इन से भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोय सूरमा,	जाति वरन कुच खोय ॥ ४ ॥
कामी लज्जा ना करै,	मन मारिँ अहलाद ।
नींद न माँगै साथग,	भूख न माँगै स्वाद ॥ ५ ॥
कामी तो निरभय भया,	करै न काहू संक ।
इन्दी करे वसि पडा,	भुगतै नरक निभंत ॥ ६ ॥
कामी अमी न भावई,	विष को लेई तोष ।
कुबुधि न भाजै जीव की,	भावे ज्यों पामोय ॥ ७ ॥
कामी करम की केंचुली,	पहरि हूआ नर नाग ।
सिर फोड़ै मूत्रै नही,	कोइ पृथ्वला भाग ॥ ८ ॥

सह कामी दीपक दसा, सोखै तेळ निवास ।
 कबीर हीरा संतजन, संहजै सदा प्रकास ॥ ९ ॥
 दीपक सुंदर देखि करि, जरि जरि मरे पतंग ।
 बड़ी लहर जो विषय की, जरत न मोरै अंग ॥ १० ॥
 भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्रिन करे स्वाद ।
 हीरा खोया हाथ सों, जनम गँवाया वाद ॥ ११ ॥
 काम काम सब कोय कहे, काम चीन्है कोय ।
 जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥ १२ ॥
 जहाँ काम तहाँ नाम नहि, जहाँ नाम नहि काम ।
 दोनों कबहु ना मँछै, रवि रजनी इक ठाम ॥ १३ ॥
 काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घटमें खान ।
 कबीर मूरख पंडिता, दोनों एक समान ॥ १४ ॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, मानै नहीं गँवार ।
 वैरागी गिरडी कहा, कामी वार न पार ॥ १५ ॥
 काम कहर असवार है, सब को बारै घाय ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, जाके नाम सहाय ॥ १६ ॥
 कबीर कामी पुरुषका, संसै कबहु न जाय ।
 साहिव सो अलगा २२, वाके छिरदै लाय ॥ १७ ॥

कामी से कुत्ता भला, रितु सर खोलै काछ ।
 राम नाम जाना नहीं, बाची जाय न वाच ॥१८॥
 बुंद खिरी नर नारि की, जैसी आतम घात ।
 अहानी मान नहीं, येहि वान उतपात ॥१९॥
 भग भोगै भग ऊपरै, भगते वचै न कोष ।
 कहै कविर भगते वचै, भक्त रुहावै सोय ॥२०॥
 तन मन लज्जा ना रहे, काम धान उर साल ।
 एक काप सब वश किये, सुर नर मुनि बेहाळ ॥२१॥

क्रोध को अंग ।



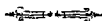
क्रोध अगनि घर घर बढो, जलै सकल संसार ।
 दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उवार ॥ १ ॥
 कोटि करम लागे रहे, एक क्रोध की लार ।
 किया कराया सब गया, जब आया इंकार ॥ २ ॥
 जगत माहि रोखा घना, अह क्रोध अह काल ।
 पौरी पहुँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥ ३ ॥
 दसौं दिमा से क्रोधकी, उठी अपराध आग ।
 सीतल संगति साधकी, तहाँ उर्वाण्ये भाग ॥ ४ ॥

१८. काछ खोलना—भोग करना ।

१९. बुन्द-बोध । ३ पौरी-गुक्ति का द्वार, विशेषदिक ।

यह जग कोठी काठकी, चहुँदिस लगी आग ।
 भीतर रहै सो जलि मुये, साधु उबरे भाग ॥ ५ ॥
 गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूवाँ होय ।
 इन तीनों को परिहरै, साधु कहावै सोय ॥ ६ ॥

लोभ को अंग ।



जब मन लागे लोभ सों, गया विषय में भोय ।
 कहे कवीर विचारि के, केहि प्रकार धन होय ॥ १ ॥
 जोगी जंभम सेवडा, ज्ञानी गुनी अपार ।
 पट दरसन से क्या वनै, एक लोभ की लार ॥ २ ॥
 कवीर औधी खोपडी, कवहुं धापै नाँहि ।
 तीन लोक की संपदा, कव आवै घर माँहि ॥ ३ ॥
 मूम धैली अरु स्वान भग, दोनों एक सपान ।
 घालत में मुख ऊपरै, काढत निकसै प्रान ॥ ४ ॥
 बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय ।
 कवीर संचे मूम धन, अन्त चोर ले जाय ॥ ५ ॥

मोह को अंग ।

मोह फंद सब फंदिया, कोय न सकै निवार ।
 कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्व विचार ॥ १ ॥
 मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि ।
 काहु सुरति जो ना करी, ताते फिरि आँतारि ॥ २ ॥
 मोह सलिल की धार में, बहि गये गहिर गंभीर ।
 मून्छप पछली सुरति हैं, चढ़ती उलटी नीर ॥ ३ ॥
 जब घट मोह समाइया, सबै भया अंधियार ।
 निर्मोह ज्ञान विचारि के, साधू उतरे पार ॥ ४ ॥
 जहाँ लगि सब संसार है, पिरग सबन को मोह ।
 सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥ ५ ॥
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लों, द्रुप सों रहे निनार ।
 पिरग हि चांधि विडारहु, कहै कबीर विचार ॥ ६ ॥
 प्रथम फंदे सब देवता, बिलसै स्वर्ग निवास ।
 मोह मगन मुख पाइया, मृत्यु लोक की आस ॥ ७ ॥
 दूजे ऋषि मुनिवर फँसे, तासों रुचि उपजाय ।
 स्वर्ग लोक मुख मानही, धरनि परत है आय ॥ ८ ॥
 सुरनर ऋषि मुनि सब फँसे, मृग त्रिम्ना जग मोह ।
 मोह रूप संसार है, गिरे मोहनिधि जोह ॥ ९ ॥

कुक्षेत्र सब मैदिनी, खेती करै किसान ।
 मोह मिरग सब चरि गया, आसन रहि खलिहान ॥१०॥
 काहू जुगति ना जानिया, किटि बिबि बचै सुखेन ।
 नहि बंदगी नहि दीनता, नहि साधू संग इत ॥११॥
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ, सबही मोह की खान ।
 त्याग मोह की वासना, कहै कबीर सुजान ॥१२॥
 अपना तो कोई नहीं, हम काहू के नाँहि ।
 पार पहुँची नाव जब, मिलि सब बिछुडे जाँहि ॥१३॥
 अपना तो कोई नहीं, देखा टोकि बजाय ।
 अपना अपना क्या करै, मोह भरम लिपटाय ॥१४॥
 मोह नदी विकराल है, कोई न उतरै पार ।
 सतगुरु केवट साय ले, हंस होय जम न्यार ॥१५॥
 एक मोह के कारनै, भरत धरी दो देह ।
 ते नर कैसे छुटि हैं, जिनके बहुत सनेह ॥१६॥

जहाँ आपा तहाँ आपदा, 'जहाँ संसै तहाँ सोग ।
 कहै कविर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग ॥ २ ॥
 अहं भई जो इस्तरी, माया हुआ मान ।
 यों ब्रसि पड़े खटीक के, पकूदी आनी कान ॥ ३ ॥
 हरिजन हरि तो एक है, जो आपा मिट जाय ।
 जा घट में आपा वसै, साक्षि कहाँ समाय ॥ ४ ॥
 अइता नहि आनिये, हरि सिंहासन देय ।
 जो दिळ राखै दीनता, सांइ आप करि लेय ॥ ५ ॥
 कबीर गर्व न कीजिये, रंक न इसिये कोय ।
 अजहू नाव समुद्र में, ना जानौं क्या होय ॥ ६ ॥
 आपा सब हो जात है, किया कराया सोय ।
 आपा तजि हरि को भजे, लाखन मध्ये कोय ॥ ७ ॥
 दीप कूं झोला पवन है, नरकू झोला नारि ।
 ज्ञानी झोला गर्व है, कहै कबीर पुकारि ॥ ८ ॥
 अभिमानी कुंजर भये, निज सिर लोन्हा भार ।
 जम द्वारै जम कूटहीं, लोहा घटै लुहार ॥ ९ ॥
 मद अभिमान न कीजिये, कहै कविर समुशाय ।
 जा सिर अहं जु संचरै, पड़े चौंरासी जाय ॥ १० ॥

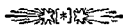
मान को अंग ।



मान बढ़ाई कूकरी,	धर्मराय दरवार ।
दीन लकुटिया बाहिरै,	सब जग खाया फार ॥ १ ॥
मान बढ़ाई कूकरी,	संतन खेदी जान ।
पांडव जग पावन भया,	सुपच विराजै आन ॥ २ ॥
मान बढ़ाई जगत में,	कूकर की पहिचान ।
प्यार किये मुख चाटई,	वैर किये तन हान ॥ ३ ॥
मान बढ़ाई ऊरपी,	ये जग का व्यवहार ।
दीन गरीबी बढ़गी,	सतगुरु का उपकार ॥ ४ ॥
मान बढ़ाई देखि कर,	भक्ति करै संसार ।
जब देखै कछु हीनता,	अवगुन धरै गँवार ॥ ५ ॥
मान दिया मन हरपिया,	अपमाने तन छीन ।
रुई कविर तब जानिये,	माया में लौ लीन ॥ ६ ॥
मान तजा तो क्या भया,	मन का भता न जाय ।
संत वचन मानै नहीं,	ताको हरि न सुहाय ॥ ७ ॥
कंचन तजना सहज है,	सहज तिरिया का नेह ।
मान बढ़ाई ईरपा,	दुरलभ तजना येह ॥ ८ ॥
माया मजी तो क्या भया,	मान तजा नहि जाय ।
मान बडे मुनिवर गले,	मान सचन को खाय ॥ ९ ॥

काला मुख कर मान का, आदर कावो आग ।
 मान बढ़ाई छाँडि के, रहौ नाप लौ लाग ॥१०॥
 कबीर अपने जीवते, ये दो बातौ धोय ।
 मान बढ़ाई कारने, अच्छता मूल न खोय ॥११॥
 खंभा एक गयंद दो, क्यों करि बंधू धारि ।
 मान करूं तो पिव नहीं, पिव तो मान निवारि ॥१२॥
 बढ़ी बढ़ाई ऊंट की, लादे जहँ लग साँस ।
 मुहकम सल्लिता लादि के, ऊपर चढै फरास ॥१३॥
 बड़ा बढ़ाई ना करै, बड़ा न बोलै बोल ।
 हीरा मुख से ना कहै, लाख हमारा मोल ॥१४॥
 बढ़ी विपति बढ़ाई है, नन्हा करम से दूर ।
 तारे सब न्यारे रहें, गहै चंद्र औ मूर ॥१५॥
 बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेठ खजूर ।
 पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥१६॥
 बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जो रे बड़ मति नाँहि ।
 जैसे फूल उमाड़ का, मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
 हरिजन को ऊंचा नवै, ऊंट जनम का होय ।
 तीन जगह टेढ़ा मया, ऊंचा ताकै सोय ॥१८॥
 ऊंचे कुल में जनमिया, देह धरी अस्थूल ।
 पार ब्रह्म को ना चढै, पास चिहना फूल ॥१९॥

मान को अंग ।



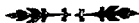
मान	बड़ाई	कूकरी,	धर्मराय	दरवार ।
दीन	लकुटिया	बाहिरै.	सब जग	खाया फार ॥
मान	बड़ाई	कूकरी,	संतन	खेदी जान ।
पांडव	जग	पावन भया,	सुपच	विराजै आन ॥
मान	बड़ाई	जगत में,	कूकर	की पहिचान ।
प्यार	किये	मुख चाटई,	वैर	किये तन हान ॥
मान	बड़ाई	ऊरमी,	ये जग	का व्यवहार ।
दीन	गरीरी	बदगी.	सतगुरु	का उपकार ॥
मान	बड़ाई	देखि कर,	भक्ति	करै संमार ।
जब	देखै	कछु हीनता,	अवगुन	धरै गँवार ॥
मान	दिया	पन हरपिया,	अपमाने	तन छीन ।
फहै	कविर	तब जानिये,	माया	में लौ लीन ॥
मान	तजा	तो कषा भया,	मन	का पता न जाय ।
संत	वरन	माने नहीं,	ताको	हरि न सुहाय ॥ ७
कंचन	तजना	सहज है,	सहज	तिरिया का नेह ।
मान	बड़ाई	ईग्या,	दुखलभ	तजना येह ॥ ८
माया	तजी	तो क्या भया,	मान	तजा नहि जाय ।
मान	बड़े	मुनिवर गले,	मान	सबन को खाय ॥ ९

काला मुख कर मान का, आदर छावो आग ।
 मान बढ़ाई छांडि के, रहौ नाम लौ लाग ॥१०॥
 कवीर अपने जीवने, ये दो बातों धोय ।
 मान बढ़ाई कारने, अछता मूल न खोय ॥११॥
 खंभा एक गयंद दो, क्यों करि बंधु वारि ।
 मान करुं तो पिव नहीं, पिव तो मान निवारि ॥१२॥
 बड़ी बढ़ाई ऊंट की, लादे जहँ लग सॉस ।
 मुहकम सलिता लादि के, ऊपर चढै फरास ॥१३॥
 बडा बढ़ाई ना करै, बड़ा न बोले बोल ।
 हीरा मुख से ना कहै, लाख हमारा मोल ॥१४॥
 बड़ी विपाति बढ़ाई है, नन्हा करम से दूर ।
 तारे सब न्यारे रहें, गहै चंद्र औ सूर ॥१५॥
 बडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
 पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥१६॥
 बडा हुआ तो क्या हुआ, जो रे बड़ मति नाँहि ।
 जैसे फूट उजाड़ का, मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
 हरिजन को ऊंचा नवै, ऊंट जनम का होय ।
 तीन जगह टेढ़ा मया, ऊंचा ताकै सोय ॥१८॥
 ऊंचे कुल में जनमिया, देह धरी अस्थूल ।
 पार ब्रह्म को ना चढै, बास बिहना फूट ॥१९॥

ऊँच कुल नीचा मता, नाहीं हरि सों हेन ।
 गीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥२०॥
 ऊँचै कुल के कारनै, भूलि रहा संसार ।
 तब कुल की क्या लाज है, जब तन होगा छार ॥२१॥
 ऊँचै कुल की कापिनी, भजै न सारंग पान ।
 कुल ही लनवान औतरी, सुधी सापिन जान ॥२२॥
 कशीर ऊँची नाक को, ऐठत है संसार ।
 जाते हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार ॥२३॥
 हाथी चढि के जो फिरै, ऊपर चँवर दुराय ।
 लोग कहें सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥२४॥
 कवीर हरि जाना नहीं, जाना कुल परिवार ।
 गदहा है करि औतरी, मांडा लादि कुम्हार ॥२५॥
 ऊँचा देखि न राचिये, ऊँचा पेड़ खजूर ।
 पंखि न बैठे छांपडे, फल लागा पै दूर ॥२६॥
 ऊँच पानी ना टिकै, नीच ही ठहराय ।
 नीचा है सो भरि पिये, ऊँच पियासा जाय ॥२७॥
 नर मूरख ते खर भला, जिहि मुख नाहीं राम ।
 सुकुन बतावै और को, पंथ चलेता नाम ॥२८॥
 प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय ।
 कहै कवीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥२९॥

लघुता में प्रभुता वसै, प्रभुता से प्रभु दूर ।
 कीटी सो मिसरी चुगै, हाथी के सिर धूर ॥३०॥
 जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय ।
 चेला को चेला मिलै, तब कछु हँ तो होय ॥३१॥
 बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बहु उतराय ।
 ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥३२॥
 बग ध्यानी ज्ञानी घने, अरथी मिलै अनेक ।
 मान रहित करीर कहैं, सो लाखन में एक ॥३३॥
 भक्त रु भगवत एक है, बूझत नहीं अज्ञान ।
 सीस नँवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥३४॥
 लेने को सतनाम है, देने को अँनदान ।
 तरने को है दीनता, बूडन को अभिमान ॥३५॥

आसा तृना को अंग ।



आसा तो गुरुदेव की, दूजी आस निराम ।
 पानी में घर मीन का, सो बर्यो परै मियास ॥ १ ॥

३२. प्यादा—सिपाही । फरजी—वजीर । शतरज के खेल में वजीर की चाल टेढ़ी और प्यादा की सीधी होती है । जब वजीर के घर में जाने से प्यादा वजीर को मारकर वजीर बन जाता है तब वह सीधी चाल छोड़ कर टेढ़ी चाल पकड़ लेता है ।

आसा एक जु नाम की, दुजि आस निवार ।
 दुजो आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार ॥ २ ॥
 आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरवै आस ।
 ज्यों पंडल कोरो रहै, वसै जु चदन पास ॥ ३ ॥
 आसा जोवै जग परै, लोग परै भरि जाँहि ।
 धन संचै ते भी भरै, उबरै सो धन खाहि ॥ ४ ॥
 आम बास जग फंदिया, रहै उरध लपगय ।
 नाम आस पूरन करै, सकळ आस मिटि जाय ॥ ५ ॥
 आमा बेठी करम बन, गरजै मन के साथ ।
 तृना फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥ ६ ॥
 आसा तृना सिंधु गति, तहाँ न मन उहराय ।
 जो कोइ आसा में फसा, लहर तमाचा खाय ॥ ७ ॥
 आसा तृना दो नदी, तहाँ न मन उहराय ।
 इन दोनों को लंघ करि, चौडै बैठे जाय ॥ ८ ॥
 चौडै बैठे जाय के, नाँव घरा रनजीत ।
 साहेब न्यारा देखिया, अन्तर गति की प्रीत ॥ ९ ॥
 आसा तरकस बाधिया, नै नै गये मुजान ।
 घने परेखू मारिया, झासरि जोरि कपान ॥ १० ॥
 आसा को ईधन करूं, मनसा करूं भभूत ।
 जोगी फिरि फेरि करूं, यों वनि आवै सूत ॥ ११ ॥

कबीर जोगी जगत गुरु, वज्रै जगत की आस ।
 जो जग की आसा करै, जगत गुरु वह टास ॥१२॥
 जोगी है जग जीतता, वहि रत है संसार ।
 एक अंदेसा रहि गया, पीछै पड़ा अहार ॥१३॥
 बहुत पसारा जनि करै, कर थोढ़ै की आस ।
 बहुत पसारा जिन क्रिया, तेई गये निरास ॥१४॥
 आसन पारै कह भयो, मरी न मनकी आस ।
 तेडी केरे बैल ज्यों, घर ही कोस पचास ॥१५॥
 सब आसन आसा तनै, निवरत कोई नाँहि ।
 निवृत्ति को जानै नही, प्रवृत्ति परंपन पाँहि ॥१६॥
 घाड चढन्ती बेलरी, उरझी आसा फंद ।
 टूटे पर जूटे नहीं, मई जो वाचा बंध ॥१७॥
 कबीर जग को कह कहं, मौजळ बूडे दास ।
 सतगुरु सप पति छाँडि के, करै मनुष की आस ॥१८॥
 आस आस घर घर फिरै, सहै दुखारी चोट ।
 कहै कबिर भरमत फिरै, ज्यों चौरस की गोट ॥१९॥
 आसा तो गुरुदेव की, और गले की फांस ।
 चंदन डिग चंदन मये, देखौ आक पलास ॥२०॥
 कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
 सीस चढाये गाठरी, जात न देखा काँय ॥२१॥

राम हि छोटा जानि के, दुनिया आगे दीन ।
 जीवन को राजा कहे, तृष्णा के आधोन ॥२२॥
 कबीर तृष्णा पापिनी, तासों प्रीति न जोर ।
 पैह पैह पाछे पड़े, लागे मोटी खोर ॥२३॥
 तृष्णा सीची ना बुझै, दिन दिन बढती जाय ।
 ज्ञावासा का रूख ज्यौ, घन मेढा कुम्हिलाय ॥२४॥
 आम आस जग फदिया, गले भरम की फांस ।
 जन्म जन्म भरमत फिरे, तबहु न छूटी आस ॥२५॥

कपट को अंग ।



कबीर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत ।
 जानो कली अनार को, तन राता मन सेत ॥ १ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चीत ।
 परपृष्टा औगुन घना, मुंहडे ऊपर भीत ॥ २ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जु नाना भाव ।
 न्यागे ही फल दहि पडे, बाजे कोइ कुवाव ॥ ३ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत ।
 नौ मन बीज जु धोयके, खाली रहिगा खेत ॥ ४ ॥

४. नया भाक्ति के करने पर भो चित कपटो का हृदय खाली ही रह जाता है ।
 १ पा० मापा ।

हेत प्रीति सों जो मिले, तासों मिलिये धाय ।
 अन्तर राखी जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥ ५ ॥
 चित कपटी सब सों मिलै, माहीं कुटिल कठोर ।
 एक दुरजन इकं आरसी, आगै पीछे और ॥ ६ ॥
 दिल ही पर जो दिल मिलै, तो दिख दगा न होय ।
 सो दिख कबहुँ न बीसै, कोटि करै जो कोय ॥ ७ ॥
 टिकली का नमना कहा, यह ना बहुरै वीर ।
 पहिले चरनों लागि के, पीछे सोखे नीर ॥ ८ ॥
 नमन नँवा तो क्या हुआ, मूधा चित्त न ताहि ।
 पारधिया दूना नैवे, मिरग दि टूकै जाहि ॥ ९ ॥
 नमन नमन बहु अन्तरा, नमन नमन बहु वान ।
 ये तीनों बहुतै नैवे, चीता चोर कमान ॥ १० ॥
 कपटी का गुरु चातुरी, गुरु गुन छनछन जाय ।
 औगुन केरी कांकरी, रही कलेजे छाय ॥ ११ ॥
 केंसुं भँवर न बैठही, जो अति फूले फूल ।
 खार कपट हिरदै वसै, मधुकर तजै समूल ॥ १२ ॥
 कहा बनावे बाहिरै, भीतरिया सों काम ।
 छानै छिप कै तू करै, सारा जानै राम ॥ १३ ॥

६. दर्पण का आगे का भाग उजल्य और पीछे का मैत्र होता है
 इसी प्रकार दुर्मन भी सामने सीधा और पीछे कुटिल होता है ।

आगे दरपन ऊजला, पीछे विषम विकार ।
 आगे पीछे आरसी, क्यों न पहै मुख छार ॥१४॥
 कपटी कधी न ऊधरे, सौ साधुन के संग ।
 मुंज पखालै गंग में, ज्यों भीजै त्यों तंग ॥१५॥
 कपटी मित्र न कीजिये, पेट पैठि बुधि लेत ।
 आगे राह दिखाय के, पीछे धक्का देत ॥१६॥
 कपटी के मन कपट है, साधू के मन राम ।
 कापर तो सब भगि चले, मूरा के मैदान ॥१७॥
 अंत कतरनी जीभ रस, नैनो उपला नेह ।
 त्नाकी संगति रामजी, सपनेहू मति देह ॥१८॥
 दिये कतरनी जीभ रस, मुख बोलन कारंग ।
 आगे भल पीछे बुरा, ताको त्रिये संग ॥१९॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव ।
 लागत ही फीके पढे, कोइ लगायो दाव ॥२०॥
 ऊजल बस्तर सिर जटा, एक चित्त सूं ध्यान ।
 फुंकि फुंकि पाँव उठि धरै, तामे कपट निदान ॥२१॥

१४. दर्पण को साफ करने के लिये उस पर छार डाला करते हैं ।
 जिस पुण्य का आगा और पीछा दर्पण के समान हो—अर्थात् सामने
 निर्मलता दिखानेवाला और पीछे से कपटाचार करनेवाला हो उसके
 मुंह में लोग अवश्य धूर डालते हैं ।

सरस मखा ऊजल वरन, एक पगा मूं ध्यान ।
 मैं जाना कुल हंस है, कपटी मिला निदान ॥२२॥
 ज्ञानी नमि गुरु मुख नमै, नमै चतुर मुजान ।
 दगाबाज दूना नमै, चित्ता चोर कमान ॥२३॥

दुख को अंग ।

--(५)--

जा दिन ने जिव जनमिया, कत्रहु न पाया मूख ।
 डालै डालै मैं फिरा, पातै पातै दूख ॥ १ ॥
 कधीर मुख रूं जाय था, विचमें मिलि गया दुख ।
 मुख जाहू वर आपने, मैं अरु मेरा दुख ॥ २ ॥
 मुखिया दंडत मैं फिरं, मुखिया मिलै न कोय ।
 जाके आगे दुख कहू, पहिले ऊठै रोय ॥ ३ ॥
 जाके आगे इक कहं, सो कश्ये डकवीम ।
 एक एक ते दाशिया, कहां ने काहं वीम ॥ ४ ॥
 विपका खेत जु खेडिया, विप का वोया जाह ।
 फल लागे अंगार से, दुखिया के गल हार ॥ ५ ॥
 झल वांयें झल टाहिने, झल ही में व्यवहार ।
 आगे पीछे झल हि है, राखै सिरजन हार ॥ ६ ॥

मैं रोऊँ संसार कूं, मुझै न रोवै कोय ।
 मुझ को रोवै सो जना, नाम सनेही होय ॥ ७ ॥
 कबीर दरिया परजला, दासै जल थल झोळ ।
 वस नाहीं गोपाल मूं, विनसै रतन अमोल ॥ ८ ॥
 संख समुंदा वीछुरा, लोग कहैं वाजंत ।
 प्रीतम आपन कारनै, घर घर धाह दयंत ॥ ९ ॥
 करनि विचारी क्या करै, हरि नहि होय सहाय ।
 जिहि जिहि डाली पग धरूं, सों सो नमि नमि जाय ॥ १० ॥
 सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड ।
 कहै कविर सब को लगै, देह धरै का दंड ॥ ११ ॥
 देह धरै को दंड है, सब काहू को होय ।
 ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥ १२ ॥
 भूप दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक विपरीत ।
 कहै कविर ये सब दुखी, सुखी संत मनजीत ॥ १३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख धूप न छांह ।
 कै सुख सारनै राम कं, कै सुख सन्तोँ माह ॥ १४ ॥
 भुवर्ग मृत्यू पाताल में, पूर तीन सुख नाँहि ।
 सुख साहिव के भजन में, अरु संतन केँ माँहि ॥ १५ ॥
 संपति देखि न हरिये, विपति देखि पति गोय ।
 संपति है तहाँ विपति है, करता करै सो होय ॥ १६ ॥

संपत्ति तो हरि मिलन है, विपत्ति जु राम वियोग ।
 संपत्ति विपत्ति राम कहूँ, आन कहै सब लोग ॥१७॥
 लछमी कहे मैं नित नवी, किसकी न पूरी आस ।
 किते सिंहासन चढ़ि चले, कितने गये निरास ॥१८॥
 दुख नहि था संसार में, नहि था सोग वियोग ।
 सुख ही में दुख ला दिया, बोली बोलें लोग ॥१९॥

कर्म को अंग ।



करम कचोई आतमा, निज कन खाया सोधि ।
 अंकुर विना न ऊगसी, भावै ज्यों परमोधि ॥ १ ॥
 मोह कुटी में जलि मुआ, करम किंवाड़ी वारि ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, भागा राम पुकारि ॥ २ ॥
 काया खेत किसान मन, पाए पुत्र तो धीव ।
 बोया लूने आपना, काया कसकै जीव ॥ ३ ॥
 काला मुँह करं करमका, आदर लावूं आग ।
 लोम बडाई छांदि के, राचो गुरु के राग ॥ ४ ॥
 जीव करम में जलि गया, कहै कहां ते राम ।
 कंचन जला कधीर में, जातो ठौर न ठाम ॥ ५ ॥
 मरम करम की जेवरी, बळ बंधा संसार ।
 वे क्यों छूटे वापुरे, जो बांधे करतार ॥ ६ ॥

कबीर सजड़े ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कहा करुं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग ।
 राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा मॉहि ।
 हय तो दाइत पंख बिन, तुम दाइत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कचहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आड़ा पहे, भिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै बुगई सुख चहै, कैसे पावै कोय ।
 रोवै पेड़ वखूळ का, आम कहां ते होय ॥ ११ ॥
 पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रमात ।
 लिखा पिटे नहि करम का, लिखा जु हरि के हाय ॥ १२ ॥
 चूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह जियरा पगु धरै, बखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अचिचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निमान किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 परारव्य पहिले बना, पीछे बना सरीर ।
 कबीर अचंभा है यही, मन नहि वांछे घोर ॥ १६ ॥

कवीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम ।
 भेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कवीर घट में राम है, रजक मौत जिव साथ ।
 कटा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 चखत कहो या करम कहु, नसिव कहो निरधार ।
 सहस नार हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर मुख दुख देन को, हुकुम करै मन मौय ।
 जब ऊठे मन चखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 चखत बलै भोजल तिरै, निबल भया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडे सीस ॥२२॥
 कीन्हे विना उपाय कछु, देव कबहु नहि देत ।
 खेत बीज बोवे नहीं, तो क्यों जायै खेत ॥२३॥
 दुख लेने जावै नहीं, आवै भाचा यूच ।
 मुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, विसर जात सब सुद्ध ।
 जैसी खिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य हो भूळ मन, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

कबीर सजड़ै ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कहा करूं मैं जळि गया, अन्तर लागी आग ।
 राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा माँहि ।
 हम तो दाझत पंख बिन, तुम दाझत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आड़ा पटे, मिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै चुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय ।
 रोवै पंड ब्रह्म का, आम कहां ते होय ॥ ११ ॥
 पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै ममात ।
 लिखा पिटै नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ ॥ १२ ॥
 चूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह भियरा पगु धरै, वखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अविचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निषान किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 पराख्य पहिले बना, पीछै बना सरीर ।
 कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर ॥ १६ ॥

कवीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम ।
 भेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कवीर घट में राम है, रजक मौत जिव साथ ।
 कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 बखत कही या करम कहु, नसिव कही निरधार ।
 सहस नाम हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय ।
 जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 बखत वलै भौजल तिरै, निबल भया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाडये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
 कीन्हे विना उपाय कलु, देव कबहु नहि देत ।
 खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जायै खेत ॥२३॥
 दुख लैने जावै नहीं, आवै आचा बूच ।
 सुख का पहरा होयगा, दूख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, विसर जात सब सुद्ध ।
 जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य ही भूळ मत, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

मन की संका मेदि कर, निसंक रहु निरधार ।
 निश्चय होय सो होयगा, जो करसी करतार ॥२७॥
 दुनी कई में दोरंगी, पल में पळटि जु जावँ ।
 मुख में जो सूता रहै, वाको दुखी बनावँ ॥२८॥
 नेरा बेरी कोइ नहीं, तैरा बेरी फैल ।
 अपने फैळ मिटाय ले, गळी गली कर सैल ॥२९॥
 अकास जा पाताल जा, फोड़ि जाहु ब्रह्मपंड ।
 कई कविर मिटिहै नहि, देह धरे का दंड ॥३०॥
 लिखा मिटै नहि करपका, गुरु कर मज हरिनाम ।
 सीधै मारग नित चळै, दया धर्म विसराम ॥३१॥

स्वाद को अंग ।

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय ।
 चोरो कुविया भिळि गई, पहरा किसका देय ॥ १ ॥
 खट्टा मीठा देखि के, रसना मेले नीर ।
 जब लग यन पाको नहीं, काचो निपट कथीर ॥ २ ॥
 जीभ स्वाद के कूप में, जहाँ हलाहल काम ।
 अंग अविद्या ऊपजै, जाय द्विये ते नाम ॥ ३ ॥
 अहार करै मन भावता, जिभ्या केरे स्वाद ।
 नाक तलक पूरन भरै, क्यों कहिये वे साथ ॥ ४ ॥

माखी गुड में गढि रहा, पंख रहा लपटाय ।
 तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बढाय ॥ ५ ॥
 मुंड मुंडाया मुक्ति को, सालन कूं पछिताय ।
 गोडा फूटै जोग बिन, लोगन सों सिथलाय ॥ ६ ॥
 रुखा सूखा खाय के, ठंडा पानी पीव ।
 देखि पराई चूपडी, मत ललचावै जीव ॥ ७ ॥
 आधी औ रुखी भली, सारी सोग सँताप ।
 जो चाहेगा चूपडी, बहुत करेगा पाप ॥ ८ ॥
 कबीर साईं मूझ को, रुखी रोटी देय ।
 चुपडी मांगत में इरुं, मत रुखी छिन लेय ॥ ९ ॥
 अँन पानी का हार है, स्वाद संग नहि जाय ।
 जो चाहे दीदार को, चुपडी चरै बढाय ॥ १० ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, तानों गृह में त्याग ।
 कबीर पहिले त्यागि के, पोछै ले ब्रैराग ॥ ११ ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, जो तीनों बम होय ।
 राजा परजा जमपुरी, गंजि सकै नहि कोय ॥ १२ ॥
 खाटा मीठा खाय कर, करे इन्द्रियाँ भोग ।
 मो कैमे जा पहुँचही, सादिवजी के लोग ॥ १३ ॥

६. सालन—भधुरव्यजन । गोडा ...दिम्बाऊ आसनोंसे ।

१०. हार—आहार । ११. जिभ्या—स्वाद । कर्म—कुकर्म ।
 कछोटरी—विषय ।

मासाहार को अंग ।



मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस अग ।
ताकी संगति मति करो,		पडत भजन में भंग ॥ १ ॥
मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस जान ।
ताकी संगति मति करै,		होय भक्ति में दान ॥ २ ॥
मांस खाय ते डेड सब,		मद पीवै सो नीच ।
कुल की, दुरमति परिहरै,		राम कहै सो ऊंच ॥ ३ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सों हेत ।
ते नर नरके जाहिगे,		माता पिता समेत ॥ ४ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सों हेत ।
ते नर जड से जाहिगे,		ज्यों मूरी का खेत ॥ ५ ॥
मांस भखै मदिरा पिबै,		धन बेन्वासों खाय ।
जूआ खेलि चोरी करै,		अन्त समूला जाय ॥ ६ ॥
मांस मांस सब एक है,		मुरगी ढिरनी गाय ।
आँख देखि नर खान हैं,		ते नर नरक हि जाय ॥ ७ ॥
यह कूकर को भक्ष है,		मनुष देह क्यों खाय ।
मुख में आमिष मेलिहै,		नरक पडे मो जाय ॥ ८ ॥
ब्राह्मन राजा वरन का,		औरों कौम छनीस ।
रोटी ऊपर माछली,		सवही बरन खवीस ॥ ९ ॥

कलियुग केरे ब्राह्मना, मांस मछलियाँ खाय ।
 पाँच छगें मुख मानही, राम कहै जरि जाय ॥१०॥
 पाँच पुजावै वैठि के, भलै मांस मद दाय ।
 तिनकी दीच्छामुक्ति नहीं, कोटि नरक फल होय ॥११॥
 सकल वरन एकत्र है, सक्ति पूजि मिलि खाँडि ।
 हरि दासन की भ्रान्ति करि, केवल जमपुर जाँडि ॥१२॥
 विष्टा का चौका दिया, हांडी सीझै हाड ।
 छूत बरावै चाम की, ताका गुरु है रांड ॥१३॥
 जीव इनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय ।
 पाप सवन जो देखिषा, पुन्र न देखा कोय ॥१४॥
 जीव इनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय ।
 निगम मृनी अस पाप ते, भित्त गया नहि कोय ॥१५॥
 इनिया सोई हंसी, भावै जान विजान ।
 कर गहि चोटी तानसी, साहिव के दीवान ॥१६॥
 तिल भर मछली खाय के, कोटि गऊ दे दान ।
 कासी करवत ले मरै, तौ भी नरक निदान ॥१७॥
 काटा कूटी जो करै, ते पाखंड को भेष ।
 निश्चय राम न जानहीं, कहै कविर संदेस ॥१८॥
 बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल ।
 जो बकरी को खात है, तिनका कौन ह्याल ॥१९॥

आठ बाट बकरी गई,
 अजहूं खाल खटीक के,
 अंदा किन बिसमिल किया,
 मछली किन जबहै करी,
 अंडे किन बिसमिल किये,
 जिभ्या के रस स्वाद में,
 मुलना तुझ करीम का,
 दया भाव हिरदै नहीं,
 काजी तुझ करीम का,
 घट फोडा घर घर किया,
 काजी का बेटा मुआ,
 वह माहेव सबका पिना,
 पीर मवन को एकसी,
 अपना गला कटाय के,
 सुरगी मुलना सो कहै,
 साहिब लेखा मांगसी,
 कबीर काजी स्वाद बस,
 चढ़ि पमीन एकै कहै,
 काजी मुलना भरमिया,
 दिल सों टीन निवारिया,

मांस मुलौं गय खाय ।
 भिस्न कहां ते जाय ॥२०॥
 घुन किन किया हलाल ।
 सब खाने का खयाल ॥२१॥
 मछली किया हलाल ।
 यह नर भया बेहाल ॥२२॥
 कब आया फरमान ।
 जबह करै हीवान ॥२३॥
 कब आया फरमान ।
 साहिब का नीसान ॥२४॥
 उरमें सलै पीर ।
 मला न मानै वीर ॥२५॥
 मूरख जानै नाँहि ।
 भिस्त बसै क्यों नाँहि ॥२६॥
 जबह करत है मोहि ।
 संकट पडि है तोहि ॥२७॥
 जीव इनत है मोय ।
 दरगह सांचा होय ॥२८॥
 चले दुनी के साथ ।
 रुद लई अब हाथ ॥२९॥

काळा मुँह करि करद का, दिल सों दुई निवार ।
 सबही रूढ सुभान की, अहमक मुला न मार ॥३०॥
 जोर करी जिबहै करै, मुख सों कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मांगसी, होसी कौन हवाल ॥३१॥
 जोर क्रिये ते जुलुम है, मांगै ज्वाब खुदाय ।
 खालिक दर सूनी पडा, मार मुँही मुँह खाय ॥३२॥
 गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मागसी, तवही कौन हवाल ॥३३॥
 गला काटि विसमिल करै, ते काफिर बेवूझ ।
 औरन को काफिर कहै, अपना कुफर न सूझ ॥३४॥
 गला गुसा को काटिये, मियाँ कहर को मार ।
 जो पाँचों विसमिल करै, तब पावै दीदार ॥३५॥
 यह सब झूठी रंदगी, बिरिया पाच निमाज ।
 सौँच हि मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥३६॥
 कबीर चाला जाय था, आगे मिले खुदाय ।
 मीरां तुझ सो कब फही, कब फरमाई गाय ॥३७॥
 सेख सजूरी साहिबा, हांका जम के जाय ।
 जिन का दिल साजुत नहीं, तिन को कडा खुदाय ॥३८॥

३०. सुभान-खुदा। रूढ-जीव । ३१. खालिक-माजिक ।

३३. कुफर-अपराध ।

कवीर तेई पीर हैं, जे जानै पर पीर ।
 जे पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर ॥४९॥
 खुश खाना है खीचडी, माँहि पढा टुक लौन ।
 मास पराया खाय कं, गला कटावै कौन ॥४०॥
 कहना हू कहि जात हू, कहा जु मान हमार ।
 जाका गल तुम काटिहो, सो फिर काटि तुम्हार ॥४१॥
 हिन्दू के दाया नही, मिहर तुरक कं नाँहि ।
 कहै कविर दोनों गये, लख चौरासी माँहि ॥४२॥
 मुसलिम मात्र करद सों, हिन्दू मार तरवार ।
 कहै कविर दोनों मिली, जै हैं जप्त के द्वार ॥४३॥
 अजामेय गोमेध जग, अश्वमेध नरमेध ।
 कहै कवीर अधर्म को, धर्म बतावै वेद ॥४४॥
 अंकुर भवै सो मानवा, मांस भवै सो स्वान ।
 जीव वधै सो काल है, सदा नरक परमान ॥४५॥
 जीव जीव सब एक हैं, जिव का करो विचार ।
 विन सांसा का जीव है, ताका करो अहार ॥४६॥
 जो जाको काटे, सो फिर ताहे बाटे ।
 कहै कविर ना छूटे, सामा सामी साटे ॥४७॥

नशा को अंग ।



कलियुग काल पठाइया,	मांग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नही,	वसै इन्हीं की सीम ॥ १ ॥
भांग तमाखू छतरा,	आफू भौर सराव ।
कौन करेगा बंदगी,	ये तो भये खराव ॥ २ ॥
अमल मांदि औगुन कडा,	कहो मोदि समुझाय ।
उत्तर प्रश्न हि में सुनो,	मन की संसै जाय ॥ ३ ॥
भांग भखै बल बुद्धि को,	आफू अहमक होय ।
दोय अमल औगुन कडा,	ज्ञानवंत नर जोय ॥ ४ ॥
औगुन कहें सराव का,	ज्ञानवंत सुनि लेय ।
मानुष सों पसुवा करै,	द्रव्य गांठि का देय ॥ ५ ॥
काम हरकत बल घटै,	तृष्णा नाहीं ठौर ।
ढिग हें बैठे दीन के,	एक चिलम भर और ॥ ६ ॥
पानी पिरथी के हते,	धूवा सुनि के जीव ।
हूके में हिंसा घनी,	क्यों करि पावै पीव ॥ ७ ॥
छाजन भोजन इक्क है,	और अनाइक लेय ।
आपन दोजख जात है,	औरों दोजख देय ॥ ८ ॥
गड जो बिष्ठा भच्छई,	विष तमाखू भंग ।
सस्तर बांधै दरसनी,	यह कलियुग का रंग ॥ ९ ॥

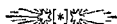
९. दरसनी—साधु ब्राह्मण ।

अमल अहारी आत्मा,	कचहुं न पावै पार ।
कहैं कबीर पुकारि के,	त्यागो ताहि विचार ॥१०॥
मद तो बहुतक भाति का,	ताहि न जानै कोय ।
तन मद मन मद जाति मद,	माया मद सब लोय ॥११॥
विद्या मद औ गुन हि मद.	राज मद उन मद ।
इतने मद को रट करै.	तव पावै अनहह ॥१२॥
मैं मतवाला नाम का,	मद मतवाला नाँहि ।
माम पियाला जो पिये,	सो मतवाला भाडि ॥१३॥
भाग तमाखू छूतरा,	जन वधीर जे खाँहि ।
योग यज्ञ जप तप किये,	सबै रसातल जाँहि ॥१४॥
भाग तमाखू छूतरा,	सुरापान लै घूट ।
कहैं कविर ता जीव का,	धर्मराय सिर कूट ॥१५॥
भाग तमाखू छूतरा,	इनसे करै पियार ।
कहैं कविर सो जीयरा,	बहुत सहे सिर माग ॥१६॥
भाग तमाखू छूतरा,	परनिदा परनार ।
कहैं कविर इनको तजे,	तव पावै दीदार ॥१७॥
भाग तमाखू फीम को,	दौड दौड करि लेहि ।
कहैं कविर हरि नाम को,	पीछे ही पग देहि ॥१८॥
भाग तमाखू गाहका,	राम नाम के नाँहि ।
कहैं कविर जनमे धरे,	लख चौरासी माँहि ॥१९॥

सुरापान अचबन करै, पिये तमाखू भंग ।
 कहै कवीरा राम जन, तामें दंग कुदंग ॥२०॥
 सुरापान अचबन करै, पिये तमाखू भंग ।
 कहै कवीरा राम जन, ताको करो न संग ॥२१॥
 राखें वरत एकादसी, करै अन्न को त्याग ।
 भांग तमाखू ना तजै, कहै कवीर अभाग ॥२२॥
 हरिजन को सोहै नही, हुका हाथ के माँहि ।
 कहै कवीरा रामजन, हुका पीवै नाँहि ॥२३॥
 हुका तो सोहै नहीं, हरिदासन के हाथ ।
 कहै कवीर हुका गई, ताको छोडो माथ ॥२४॥
 अमली के बैठी मती, एक पलक हू पास ।
 संग दीप तोहि लागि है, कहै कवीरा दास ॥२५॥
 अमली हो बहु पापसे, नमुझत नाहीं अंध ।
 कहै कवीरा अमलि को, काल चढ़ावै कंध ॥२६॥
 जह लग अमल हराम सब, दोउ दीन के माँहि ।
 कहै कवीरा रामजन, अमली हूजै नाँहि ॥२७॥
 भौंटी आवै वास मुख, हिरदा होय मलीन ।
 कहै कवीरा रामजन, मांगि चिलम नहि लीन ॥२८॥
 मुख में थुकन दे नहीं, मूहर कोइ जन देहि ।
 कहै कवीर या चिलम को, जूठ जगत मुख छेहि ॥२९॥

आन अमल मय त्यागि के, राम अमल जय खाय ।
 जन कबीर भाजै भरम, और न कछु मुहाय ॥३०॥
 नाम अमल को छोडि के, और अमल जो खाय ।
 कहै कबिर नेहि परिहरो, गुरु के सव्द समाय ॥३१॥
 कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३२॥

विवेक को अंग ।



फूटी आंख विवेक की, लखै न संन असंत ।
 जाके संग दस बीस हैं, ताका नाम महंत ॥ १ ॥
 जबलग नही विवेक मन, तब लग लगै न तोर ।
 भौसागर नामी तिरै, सतगुरु कहै कबीर ॥ २ ॥
 भगटे प्रेम विवेक दल, अप्रय निसान बजाय ।
 ऊग्र ज्ञान उर आव ते, जग का मोह नसाय ॥ ३ ॥
 गुरु पसु नरपसु नारि पसु, वेद पसू संसार ।
 मानुष ताको जानिये, जाको विमल विचार ॥ ४ ॥

कहैं कवीर पुकारि के, स-त विवेकी होय ।
 जायें सब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय ॥ ५ ॥
 जीव जन्तु जल हर वसै, गये विवेक जु भूल ।
 जल के जलचर यौ कहै, हम उडगन सम दूल ॥ ६ ॥
 मान काल के जाल में, आय गये तिहि माँहि ।
 जल के जलचर यौ कहै, उडगन पति जु नाँहि ॥ ७ ॥
 हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक ।
 बाहर मिलवा सौं मिलै, अन्तर सब सो एक ॥ ८ ॥
 राम राम सब कोइ कहै, कहने माँहि विवेक ।
 एक अनेकै फिर मिलै, एक समाना एक ॥ ९ ॥
 साधू मेरे सब वडे, अपनी अपनी ठौर ।
 सब्द विवेकी पारखी, सो माधे की पौर ॥ १० ॥

विचार को अंग ।



कवीर सोच विचारिया, दूजा कोइ नाँहि ।
 आपा पर जब चीन्हिया, उलटि समाना पाँहि ॥ १ ॥
 राम राम सब कोइ वडै, कहने माँहि विचार ।
 सोइ राम जो सनि कहै, सोई कौतिकहार ॥ २ ॥

६. जलहर—नदी तालार । ९. एक—वाचकज्ञानी । एक—तन्त्रज्ञानी ।
 २. कौतिकहार—तमाशा देखनेवाले ।

आग कई दाँसै नहीं, पाँव न दीसै माँहि ।
 जो पै भेद न जानहीं, राम कहा तो काहि ॥ ३ ॥
 पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार ।
 नाना बानी बोळता, जोति धरी करतार ॥ ४ ॥
 आधी साखी सिर कटै, जोरे विचारी जाय ।
 मन हि प्रतीत न ऊपनै, रात दिवस भर गाय ॥ ५ ॥
 आधी साखि कवीर की, जो निरुवारी जाय ।
 चंचल चित निहचल करै, ज्ञान भक्ति फल पाय ॥ ६ ॥
 कवीर आधा साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
 सत्तनाम जग झूठ है, सुरति सब्द पहिचान ॥ ७ ॥
 सत्तनाम जाना नहीं, पाना नहीं विचार ।
 कट्टे कबिर यह कपा लहै, मोक्ष मुक्ति का द्वार ॥ ८ ॥
 एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार ।
 भजिये निस दिन नाम को, तजिये बिषय विकार ॥ ९ ॥
 कवीर भूला दगा में, लोग कहै यह भूल ।
 करम हि बाट बतावहीं, भूलत भूला भूल ॥१०॥
 नौ मन सूत अरुझिया, कवीर घर घर बार ।
 तिन सुलझाया बापुगे, जानी मुक्ति सुरार ॥११॥

१. मुख की अग्नि की भाँति मुख का राम झूठा और सच्ची अग्नि की तरह हृदय का राम सच्चा होता है ।

ज्यों आवै त्यों ही कहै, बोलै नहीं विचार ।
 हते पराई आत्मा, जीभ लेय तरवार ॥१२॥
 सब ऋहू का लीजिये, सांचा सब्द निहार ।
 पक्षपात ना कीजिये, कहै कवीर विचार ॥१३॥
 बोली हमरी पळटिया, या तन याही देस ।
 खारी सों मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥१४॥
 कवीर हम सब की कहै, हमरी कही न जाय ।
 पूरब की वाता कहै, पच्छिम जाय समाप ॥१५॥
 अपनी अपनी सब कहै, हमरी कहै न कोय ।
 हम अपनी आप हि कहै, करता करै सो होय ॥१६॥
 आज्ञा को घर अमर है, बेटा के सिर भार ।
 तीन लोक नाती ठगा, पडित करो विचार ॥१७॥
 जो कतु करै विचार के, पाप पुत्र ते न्यार ।
 कह कवीर इक जानि के, जाय पुरुष दरवार ॥१८॥
 आचारी सब जग पिळा, विचारी मिळा न कोय ।
 कोटि आचारी वारिये, एक विचारी होय ॥१९॥
 सोइ अच्छर सोई भनै, सोइ जन जावन ।
 अकिलपंद कोइ कोइ मिलै, अभि महारस हि पिवन ॥२०॥
 मेश तो कोइ है नहीं, अरु मैं किमका नाँहि ।
 अन्तर दृष्टि विचारताँ, राम बभै मव माँहि ॥२१॥

नरपसु गुरुपसु वेदपसु, त्रिया पसु संसार ।
 कहै कबीर सो पसु नहीं, जाके विमल विचार ॥२२॥
 मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ।
 जाहि विवेक विचार नही, सो नर होर गँवार ॥२३॥
 आधी साखि कबीर की, सीखी मुनी न जाय ।
 रति इक घट में संचरै, अमर लोक ले जाय ॥२४॥

धीरज को अंग ।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै केवडा, रितु आये फल जोय ॥ १ ॥
 धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै सौ घड़ा, रितु आये फल जोय ॥ २ ॥
 धीरा हँ धमका सहै, ज्यों अहरन सिर घाव ।
 मेघा परबत हँ रदो, इत उत कहँ न जाव ॥ ३ ॥
 कबीर धीरज के धरे, हाथी मनभर स्वाय ।
 टुक एक के फारनै, स्वान घरै घर जाय ॥ ४ ॥
 कबीर तू काहे डरे, सिरपर सिरजन हार ।
 हाथी चढि करि डोलिये, कृकर भुसै हजार ॥ ५ ॥

कबीर भँवर में बैठिके, भौचक मना न जोय ।
 डूबन का भय छाँडि दे, करता करै सो होय ॥ ६ ॥
 मैं मेरी सब जायगी, तव आवेगी और ।
 जब यह निहचल होयगा, तव पावेगा ठौर ॥ ७ ॥
 बहुत गई थोरी. रही, व्याकुल मन मत होय ।
 धीरज सब को मित्र है, करी कमाइ न खोय ॥ ८ ॥
 धीरज बुधि तव जानिये, समुझे सब की रीत ।
 उनका अवगुन आप में, कबहु न लावै मीत ॥ ९ ॥
 साद्विच की गति अगम है, चल अपने अनुमान ।
 थोरे धीरे पांव धर, पहुँचेगा परमान ॥ १० ॥
 फिकिर (तो)सब को खा गई, फिकिर ही सबका पीर ।
 फिकीर का फाका करै, ताका नाम फकीर ॥ ११ ॥

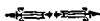
क्षमा को अंग ।

। . ॐ ॐ

क्षमा बदन को चाहिये, छोटन को उतपात ।
 कहा विस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ १ ॥
 क्षमा क्रोधको छै करै, जो काहु पे होय ।
 कई कधिर ता दास को, गंजि सकै नहि कोय ॥ २ ॥

भली भली सब कोइ कहै, रही क्षमा ठहराय ।
 कहै कविर सीतल भया, गई जु अगन बुझाय ॥ ३ ॥
 भली भली सब कोइ कहै, भली क्षमा का रूप ।
 जाके मन हि क्षमा नहीं, सो बूढै भव कूप ॥ ४ ॥
 करगस सम दुर्जन वचन, रहै संतजन टार ।
 विजुली पड़े समुद्र में, कहा सकेगी जार ॥ ५ ॥
 काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग ॥ ६ ॥
 काचै को क्या ताइये, होत जतनमें भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग ॥ ७ ॥
 बाद विबादै विप घना, बोलै बहुत उपाध ।
 मौन गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ८ ॥
 सबल क्षपी निर्गर्व, धनी, कोमल विद्यावंत ।
 भव यें भूपन तीन हैं, औरों सबै अनंत ॥ ९ ॥

शील को अंग ।



शील क्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तत्र होय ।
 बिना शील पहुंचै नहीं, लाख कथे जो कोय ॥ १ ॥

सील गद्दे कोइ सावधान, चेतन पहरे जाग ।
 वासन वासन के खिसै, चोर न सकई लाग ॥ २ ॥
 सील मिलावै नाम को, जो कोइ जानै राख ।
 कहै कबिर मैं क्या कहूं, शुकदेव बोलै साख ॥ ३ ॥
 सील द्वि राखि विरक्त मै, हरि के मारग जाँहि ।
 साखी गोरख नाथ जो, अमर भये कालि माँहि ॥ ४ ॥
 सीलवत सब सों बड़ा, सब रतनों की खान ।
 तीन लोक की संपदा, रही सील में आन ॥ ५ ॥
 सीलवत निरमल दसा, पाँव पड़े हे चहुं खूँट ।
 कहै कबिर ता दास की, आस करै वैकुण्ठ ॥ ६ ॥
 ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक ।
 जपिया नपिया बहुत हैं, सीलवत कोइ एक ॥ ७ ॥
 घायल ऊपर घाव लै, दोट्टे त्यागी मोय ।
 भर जोवन में सीलवत, विरला होय तो होय ॥ ८ ॥
 मुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह ।
 सब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिन नहि साह ॥ ९ ॥
 विषय पियारे प्रीति सों, सतगुरु अंतर नाँहि ।
 जब अन्तर सतगुरु बसै, विषया सों रुचि नाँहि ॥ १० ॥
 आव कहै सों औलिया, बेटे कहै सो पीर ।
 जा घर आव न बैठु है, सो काफिर बेपीर ॥ ११ ॥

सन्तोष को अंग ।

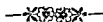


संतोष हि सद्बिदान है, सब्द हि भेद विचार ।
 सतगुरु के परताप ने, सहज सील मत सार ॥ १ ॥
 गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान ।
 जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूलि समान ॥ २ ॥
 साधु संतोषी सर्वदा, जिन के निरमल बैन ।
 जिन के डरसन परस ते, जिय उपजै सुख चैन ॥ ३ ॥
 चाह गई चिन्ता मिठी, मनुवा बे परवाह ।
 जिन को कछु न चाहिये, सो साहन पति साह ॥ ४ ॥
 निज आमन संतोष में, सहज रहनि की ठौर ।
 गुरु भजने आमा भई, ताते कछु न और ॥ ५ ॥
 जग सारा दरिद्र भया, धनवंता नहि कोय ।
 धनवंता सोऽ जानिये, राम पदारथ होय ॥ ६ ॥
 देनेद्वारा राम है, जाय जंगल में बैठ ।
 हरि को लेई ऊबरे, सात पताले पैठ ॥ ७ ॥
 कबहुं क मंदिर मालियां, कबहुं क जंगल वास ।
 सब ही ठौर सुहावना, जो हरि होवै पाम ॥ ८ ॥

५. जिनका हृदय सन्तोष और सहज भाव में स्थिर हो गया वे गुरु भजन के अधिकारी हैं ।

साहेब मेरे मुझ को, लूखी रोटी देय ।
 चुपड़ी पांगत में डरू, लूखी छीन नहि लेय ॥ ९ ॥
 सात गांठ कौपीन की, मन नहि मानै संक ।
 नाम भ्रमल माता रहे, गने इन्द्र को रंक ॥१०॥
 बिना मत कर निचिंत रह, पूरनहार सपर्य ।
 जल थल में जो जीव है, उनकी गांठि न अर्थ ॥११॥
 बिंता ऐसी डाकिनी, काटि करेजा खाय ।
 वैद विचारा क्या करै, कहांतक दवा लगाय ॥१२॥

साच को अंग ।

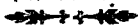


साँच सब्द हिरदै गहा, अलख पुरुष भरपूर ।
 प्रेम मोति का चोलना, पहिरै दास बजूर ॥ १ ॥
 साँच बिना सुमिरन नहीं, भय विन भक्ति न होय ।
 पारस में पडटा रहे, कंचन किट्टि विधि होय ॥२॥
 साँचै कोइ न पतोर्जई, झूठै जग पतियाय ।
 पांच टका की धोपटो, सात टक विक जाय ॥ ३ ॥
 साँचै कोइ न पतोर्जई, झूठै जग पतियाय ।
 गली गली गोरस फिरै, मदिरा घैठ विकाय ॥ ४ ॥

साँच कहै तो मारि है, यह तुरकानी जोर ।
 बात कहूं सतलोक की, कर गहि पकडै चोर ॥ ५ ॥
 साँच कहूं तो मारि है, झूठै जग पतियाय ।
 यह जग काली कूरी, जो छेडै तो खाय ॥ ६ ॥
 साँचै को साँच मिलै, अधिका बढ़ै सनेह ।
 झूठै को साँचा मिलै, तड दे तूटै नेह ॥ ७ ॥
 साँच कहै अरू सच मुनै, सत्तनाम की आस ।
 सत्तनाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥ ८ ॥
 साँच हुआ तो क्या हुआ, नाम न साँचा जान ।
 साँचा है साँचै मिलै, साँचै माँहि समान ॥ ९ ॥
 साँई सों साँचा रहो, साँई साँच सुहाय ।
 भावै लंबे केस रख, भावै चोट मुंडाय ॥ १० ॥
 जाकी साची सुरति है, ताका साँचा खेळ ।
 आठ पहर चौमठ घडी, है साँई सो मेल ॥ ११ ॥
 जिन नर साँच पिछानया, करता केवल सार ।
 सो पानी काहे चलै, झूठै कुल की छार ॥ १२ ॥
 कवीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साँच ।
 जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकडै काँच ॥ १३ ॥
 नरे अंदर साँच जो, बाहर नाहि जनाव ।
 ज अननहारा जानि है, अन्तर गति का भाव ॥ १४ ॥

अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच ।
 सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साँच ॥१५॥
 कबीर पूंजी साहु की, तू मति खोवै ख्वार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती चार ॥१६॥
 कंचन केवल गुरुभजन, दूजा वाच कथीर ।
 झूठा आल जंजाळ तजि, पकडा साँच कबीर ॥१७॥
 झूठ बात नहि बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 अहो कबीरा साँच गहु, आवागवन नसाय ॥१८॥
 झूठ को झूठा मिलै, अधिका बढै सनेह ।
 झूठा को सीचा मिलै, तब ही टूटै नेह ॥१९॥
 साहेब के दरवार में, साँचे को सिरपाव ।
 झूठ तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ॥२०॥
 कबीर झूठ न बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 ना जानो क्या होयगा, पलके चौथै भाय ॥२१॥
 साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
 जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥ २२ ॥

दया को अंग ।



दया भाव हिरदै नहीं, ज्ञान कथै बेहद ।
 ते नर नरक हि जाहिगे, मुनि मुनि साखी सख्द ॥ १ ॥

दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दय होय ।
 हमतो भये तमाशगी, नाटक बाजी जोय ॥ २ ॥
 दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय ।
 साईं के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ३ ॥
 दाया दिल में राखिये, तू क्यों निर्दय होय ।
 साईं के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ४ ॥
 भावै जाओ वादरी, भावै जाव हु गया ।
 कहै कबीर सुनो भाइ साधू, सब ते बड़ी दया ॥ ५ ॥
 दाध कलापी सब दुखो, सुखी न देखे कोय ।
 को पुत्र को बान्धवा, को धनहीना होय ॥ ६ ॥
 दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखे कोय ।
 जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ धीरज होय ॥ ७ ॥
 वैरागी है घर तजा, पग पहिरै पैजार ।
 अन्तर दया न ऊपै, धनी सहेगा मार ॥ ८ ॥
 वैरागी हू घर तजा, अपना रांघा खाय ।
 जीव हते जौहर करै, बांश जमपुर जाय ॥ ९ ॥
 आग जलावै अँन दहै, मोटा आरंभ येह ।
 दीखै जम की जोट में, कीट पतंगा देह ॥१०॥
 पाकी ते डाकी भला, तिथि त्योंदारा लेय ।
 जीव सतावै राम का, नित उठि चौका देय ॥११॥

पाकी को मन पानरे, कै गोबर कै गार ।
 और जनम कहा पाइये, यह तो चाला 'हार ॥१२॥
 चौकै चिऊंटी चूल्ह घुन, किरप बहुत जो नाज ।
 कहै कविर आचार यह, निव को होय अकाज ॥१३॥
 आचारी सब जग मिला, बीचारी नहि कोय ।
 जाके डिरटै गुरु नहीं, जिया अकारथ सोय ॥१४॥
 जहां दया वढै बर्म है, जहां लोभ तढै पाप ।
 जहां क्रोध वढै काल है, जहां क्षमा वढै आप ॥१५॥
 कुंजर मुख से कन गिरा, खुटे न वाको (आ) हार ।
 कीडी कन लेकर चली, पोपन दे परिवार ॥१६॥
 दाता दाता चलि गये, राह गये मरखी चूप ।
 दान मान समुझे नहीं, लड़ने को मजबूत ॥१७॥
 दया का लच्छन भक्ति है, भक्ति मे होवै ध्यान ।
 ध्यान से मिलना ज्ञान है, यह सिद्धांत डरान ॥१८॥
 दया दया सब कोड कहै, मर्म न जानै होय ।
 जात जीव जानै नहीं, दया कहां से होय ॥१९॥
 दया सब हि पर कोजिये, तू क्यों निद्रिय होय ।
 जाको बुद्धि ब्रह्म में, सो क्यों खूनी होय ॥२०॥
 कबीर मोटै पीर है, जो जानै पर पीर ।
 जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥२१॥

१२. पानरे—जल के रखने की जगह ।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप ।
जहां क्षमा तहां धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ॥२२॥

दीनता को अंग ।



दीन गरीबी बंदगी, साधुन सों आधीन
ताके संग में यों रहूं, ज्यों पानी संग मीन
दीन गरीबी बंदगी, सब सों आदर भाव
कहैं कबिर सोई बड़ा, जॉम बड़ा सुभाव
दीन गरीबी दीन को, दुंदर को अभिमान
दुंदर तो विष मों भरा, दीन गरीबी जान
दीन लखै मुख सदन को, दीन हि लखै न कोय
भली विचारी दीनता, नर हु देवता होय
इक वानी सो दीनता, सब कछु गुरु दरवार ।
यही भेट गुरु देव की, संतन कियो विचार
जळ थल जीव जिने तिते, रहे सकळ भरपूर ।
जो दिळ आवै दीनता, साई मिले हजूर ॥ ६ ॥
नहीं दीन नहि दीनता, संत नहीं मिटमान ।
ता घर जम देग दिया, जीवत भया मसान ॥ ७ ॥

कविर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय ।
 घालि तराजू तोलिये, नवै सो पारि होय ॥ ८ ॥
 आपा मेटे पिव मिलै, पिव में रहा समाय ।
 अक्य कहानी प्रेमकी, कहै तो को पतियाय ॥ ९ ॥
 नीचै नीचै मय तिरै, संत चरन छौ लीन ।
 जाति हि के अभिमान ते, बूढे सकल कुलीन ॥१०॥
 नीचै नीचै सब तिरै, जिहि तिहि बहुत अधीन ।
 चढि वोढित अभिमान की, बूढे ऊंच कुलीन ॥११॥
 बुग जो देखन मै चला, बुरा न मिलिया कोय ।
 जो दिल् खोजो आपना, मुझ सा बुरा न होय ॥१२॥
 कबीर सब ते हम बुरे, हम ते मळ मव कोय ।
 जिन ऐसा करि बूझिया, भीत हमारा सोय ॥१३॥
 दरसन को तो साधु हैं, सुमिरन को गुरु नाम ।
 तरवे को आधीनता, इबन को अभिमान ॥१४॥
 नमन नमन अरु दीनता, सब कूं आदर भाव ।
 कहै कविर सोई बड़े, जामें बड़ो सुभाव ॥१५॥
 मिसरी दिखरी रेत में, इम्ती चुनी न जाय ।
 कीटी है करि सब चुनै, तब साहिव कूं पाय ॥१६॥

विनती को अंग ।



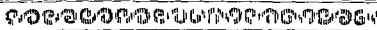
विनवत हूं करजोरि के,	सुन गुरु कृपा निधान ।
संतन को मुख दीजिये,	दया गरीबो ज्ञान ॥ १ ॥
क्या मुख ले विनती करूं,	लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत औगुन किया,	कैसे भाऊं तोहि ॥ २ ॥
वनजारी विनती करै,	नरियर लाई हाथ ।
टांडा था सो छदि गया,	नायक नाहीं साथ ॥ ३ ॥
औगुन किया तो बहु किया,	करत न मानी द्वार ।
भावे बंदा बख्शिये,	भावे गरदन मार ॥ ४ ॥
औगुन मेरे बापजी,	बख्शो गरीब निवाज ।
मैं तो पूत कपूत हूं,	तोहि पिता को लाज ॥ ५ ॥
मैं खोटा साईं खरा,	मैं गाथा मैं गार ।
मैं अपराधी आत्मा,	साईं सरन उवार ॥ ६ ॥

३. टांडा—त्रैलोक्य का अंड । दूसरे पक्ष में शरीर । वनजारी से अभिप्राय सुरति से है । और नरियर से मन का अर्थ लिया गया है । और नायक से जीवात्मा का भाव है । 'मन पतंग माने नहीं चले सुरती के साथ' इस वचन के अनुसार मन सुरति के पीछे दौड़ता है । मन को बश में करने का एक मात्र साधन सुरति को स्थिर करना है । चौका आरती में नरियर चलाने के समय गाया जाता है कि—'वनजारिन विनती करे सुनु साजना, नरियर लीन्हों हाथ सन्त मुनु साजना । इस शब्द में समाहित सुरति का वर्णन है जो कि सत्य लोक को ले जानेवाली है ।

मैं अपराधी जनपका, नख सिख भरा विकार ।
 तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्भार ॥ ७ ॥
 सुरति करो मम सांझ्या, मैं हूँ भोजल माँहि ।
 आपै हि मरि जाऊंगा, जो नहि पकड़ो बाँहि ॥ ८ ॥
 और पतित तो कृप हैं, मैं हूँ समुँद समान ।
 एक टुक गुरु नाम की, सुनियो कृपा निधान ॥ ९ ॥
 औसर बीता अल्पनन, पीव रहा परदेस ।
 कलंक उतारो सांझ्या, भानो मरम अंदेस ॥ १० ॥
 साईं मेरा सावधान, मैं ही भया अचेत ।
 मन बच करम न गुरु भजा, नाते निष्फल खेत ॥ ११ ॥
 अब की जो साईं मिले, सब दुख आखूं रोय ।
 चरनों ऊपर सिर धरूं, कहूं जो कहना होय ॥ १२ ॥
 कबीर माईं मिलहिंगे, पृछेंगे कुसलात ।
 आदि अन्त की सब कहूं, उर अन्तर की बात ॥ १३ ॥
 कर जोरै विनती करूं, भीसागर हि अपार ।
 बंदा ऊपर मिहर करी, आवा गवन निवार ॥ १४ ॥
 मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
 तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ १५ ॥
 तेरा तुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो मोर ।
 मेरा मुझ को सौंपते, दिल धडकंगा तोर ॥ १६ ॥

दरस दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
 और नहीं कछु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥१७॥
 तुम गुरु दीन दयाल हो, दाता अपरम पार ।
 मैं बूझूँ मँझ धार में, एकड़ि लगावो पार ॥१८॥
 अवरन को क्या वरनिये, मो पै वरनि न जाय ।
 अवरन वरनै वाहिरै, करि करि थका उपाय ॥१९॥
 मुझ में इतनी शक्ति क्या, गावूँ गला पसार ।
 वन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहूँ दरबार ॥२०॥
 जब का माई जनमिया, कितै न पाया सूख ।
 डारी डारा मैं फिरुं, पात पात में दूख ॥२१॥
 कबीर मैं तव ही डरुं, जो मुझ ही में होय ।
 पीच बुढापा आपदा, सब कह को जोय ॥२२॥
 कबीर करत है शीनति, मुनो संत चितलाय ।
 मारग सिरजनहार का, दीजै मोहि बताय ॥२३॥
 कबीर यह विनती करै, चरनन चित्त बसाय ।
 मारग सांचा संत का, गुरु मोहि देव बताय ॥२४॥

जन कबीर वंदन करै,
 किस विधि कीजै सेव ।
 वार पार की गम नहीं,
 नमो नमो निज देव ॥



चौरासी अंग

की

साखी ।

॥ सम्पूर्ण ॥



प्रश्नोत्तर को अंग ।

शुरु तुम्हाग कदा वसै,	चेला कहां वसाय ।
वयौ फरिके मिलना भया,	बिनुडे आवै जाय ॥ १ ॥
शुरु हमारा गगन मे.	चेला हे चित मॉहि ।
सुरति सब्द मेला भया,	बिनुडन कवहू नॉहि ॥ २ ॥
कदा बुद सायर मिला,	किहि त्रिधि कौन सनेह ।
यह मन मे संमै भया,	समुझि अर्थ कहि देह ॥ ३ ॥
गगन बुद सायर मिला,	उत्तम परम सनेह ।
मन का संसै दूर कर,	समुझि अर्थ गहि येह ॥ ४ ॥
सब्द कहां ते उठत हे,	कहु कहां जाय समाय ।
हाथ पाँव वाके नहीं,	कैमे पकडा जाय ॥ ५ ॥
नाभि कमल ते उठत हे,	सुन्न मे जाय समाय ।
हाथ पाँव वाके नहीं,	सुरति से पकडा जाय ॥ ६ ॥
सब्द कहां से आइया,	कहां सब्द का भाव ।
कहां सब्द का सोस हे,	कहां सब्द का पाँव ॥ ७ ॥

सब्द ब्रह्मंड ते आड्या,	मध्य सब्द का भाव ।
ज्ञान सब्द का सीस है,	अज्ञान सब्द का पाँव ॥ ८ ॥
कौन सब्द की नावरी,	कौन सब्द असवार ।
कौन मब्द की डोर है	कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
साँच सब्द की नावरी,	अकट सब्द असवार ।
सुरति सब्द की डोर है,	तुझै उतारै पार ॥१०॥
कौन सरोवर पानि विन,	कौन मीच विन काल ।
कौन सु परिमळ वास विन,	कौन त्रिच्छ विन डाल ॥११॥
यान सरोवर पानि विन,	निंद मीच विन काल ।
मब्द सु परिमळ वाम विन,	सुरति विच्छ विन डाल ॥१२॥
कौन कसै कमवाव को,	कौन जु लेय छुडाय ।
यह संसै जिय है रहा,	साधु कहीं समुझाय ॥१३॥
काल कसै कसवाव करम,	सतगुरु लिया छुडाय ।
कहै कबीर पुकारि के,	सुनो मंत चित लाय ॥१४॥
कबीर मन मैला भया,	याँमें बहुत विकार ।
यह मन कैसे धोइये,	साधु करो विचार ॥१५॥
गुरु धोवी सिप कापडा,	साधुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइये,	निकसे रंग अपार ॥१६॥
कबीर काया को झगो,	साँई साधुन नाम ।
राम हि , राम पुकारता,	धोया पाँचों ठाम ॥१७॥

इस नन में मन कहँ वसै, निकसि जाय किहि ठौर ।
 गुरुगम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और ॥१८॥
 नैनौ माहीं मन वसै, निकसि जाय नौ ठौर ।
 गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर भौर ॥१९॥
 दूध फाटि घृत कहँ गया, कांसा फूटी नाद ।
 तन छूटै मन कहाँ रहै, जानै विरला साध ॥२०॥
 दूध फाटि घृत दूध मिला, नाद मिली आकास ।
 तन छूटै मन तहँ गया, जहाँ धरी मन आस ॥२१॥
 कौन पवन घर संचरै, कहाँ किया परकास ।
 नाद बिंदु जब ना हता, तव कहँ किया निवास ॥२२॥
 हुलस पवन घर संचरै, पंचम किय परकास ।
 नाद बिंदु जब ना हता, तत्त्व हि किया निवास ॥२३॥
 सकळ पसारा पवन का, सात दीप नौ खंड ।
 कौन नाम उस पवन का, जो गरजै ब्रह्मंड ॥२४॥
 सकल पसारा पवन का, सात दीप नौ खंड ।
 सोहँ नाम उस पवन का, जो गरजै ब्रह्मंड ॥२५॥
 कौन पवन धरती वसै, कौन पवन आकास ।
 कौन पवन मध्ये वसै, कौन पवन परकास ॥२६॥
 धीर पवन धरती वसै, अगह पवन आकास ।
 मधुर पवन मध्ये वसै, अमर पवन परकास ॥२७॥

कौन पवन ले आवई,	कौन पवन ले जाय ।
कौन पवन भरमत फिरै,	सो मोहि देहु बताय ॥२८॥
सहज पवन ले आवई,	सुरति पवन ले जाय ।
जीव पवन भरमत फिरै,	कहैं कविर समुझाय ॥२९॥
तन का मंजन नीर है,	नीर हि मंजन पौन ।
कहैं कविर सुन पंडिता,	पौन का मंजन कौन ॥३०॥
तन का इन्दी मैल हं,	मन पवना ले धोय ।
ज्ञान जु गुरु सों पाइये,	पौन का मंजन सोय ॥३१॥
कौन देस ते आइया,	कौन तुम्हारा ठाम ।
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन पुरुष को नाम ॥३२॥
अमर लोक ते आइया,	सुखसागर है ठाम ।
जाति अजाति मेरी है,	सत्त पुरुष का नाम ॥३३॥
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन तुम्हारा नाँव ।
कौन तुम्हारा इष्ट है,	कौन तुम्हारा गाँव ॥३४॥
जानि हमारी आतमा,	प्रान हमारा नाँव ।
अलग्व हमारा इष्ट है,	गगन हमारा गाँव ॥३५॥
कहां से आया जीव यह,	किस में जाय समाय ।
कौन डोर से चढ़ि चला,	कहो मुझे समुझाय ॥३६॥
सुरगुन आया जीव यह,	निगुन जाय समाय ।
सुरति डोरि ले चढ़ि चला,	सतगुरु दिया बताय ॥३७॥

कौन सुरति ले आवई,
 कौन सुरति ह अस्थिरी,
 वास सुरति ले आवई,
 परिचय सुरति अस्थिरी,
 कौन राम दशम्य घर डोलै,
 कौन राम ता सकल पसारा,
 आकार राम दमरु घर डोलै,
 बुंद राम ता सकल पसारा,
 धरती तो रोटी भई,
 पृथ्वी अपन गुरु को,
 धीरज तो रोटी भई,
 कहे कवीरा बेटि के,
 कौन साधू का खेल है,
 कौन अपी का रूप है,
 पछिमा साधू का खेल है,
 सतगुरु अमृत कृप है,
 धरती अवर जायंगे,
 एकमेक है जायंगे,
 एकामेकी। होन दे,
 धरती अवर जान दे,

कौन सुरति ले जाय ।
 सो गुरु देहु बताय ॥३८॥
 सब्द सुरति ले जाय ।
 सो गुरु दिया बताय ॥३९॥
 कौन राम घट घट में बोलै ।
 कौन राम तिग्गुन से न्यारा ४०
 निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सब ही सो न्यारा ४१॥
 कागा लीया जाय ।
 कहीं बेटि के खाय ॥४२॥
 कुदधि काग लिय जाय ।
 वाद वृक्ष पर खाय ॥४३॥
 कौन सुरति का दाव ।
 कौन वज्र का घाव ॥४४॥
 सुमति सुरति का दाव ।
 सब्द वज्र का घाव ॥४५॥
 बिनसैगा कैलास ।
 तब कहें रहेंगे दास ॥४६॥
 बिनसन दे कैलास ।
 मोमें मेरे दास ॥४७॥

कै रती भर सुरति है,	कै रती भर काम ।
कै रती भर माया है,	कै रती निज नाम ॥४८॥
सोरा रनिभर सुरति है,	छत्तीस रति भर काम ।
माया महम रती भरै,	एक रती निज नाम ॥४९॥
कौन जगावै ब्रह्म को,	कौन जगावै जीव ।
कौन जगावै सुरति को,	कौन मिलावै पीव ॥५०॥
विरह जगावै ब्रह्म को,	ब्रह्म जगावै जीव ।
जीव जगावै सुरति को,	सुरति मिलावै पीव ॥५१॥
जीवत जीव कहँवाँ बसै,	मुये वसै किटि ठौर ।
कै तो याको अर्थ कर,	नातर गुरु कर और ॥५२॥
जीवत जीव हिरटै बसै,	मुये पुरुष के पास ।
दया भड जब कथीर की,	तय पायो र्मदाम ॥५३॥
कै मासे भर नाम है,	कै मासे भर पान ।
कै मासे भर पुरुष है,	जाको धरिये ध्यान ॥५४॥
अठ मासे भर नाम है,	नौ मासे भर पान ।
सोरा मासे पुरुष है,	जाको धरिये ध्यान ॥५५॥

५३ नामजप या जपयोग आठ मासा है अर्थात् आठ फल का देनेवाला है । और अमृत पान नव मासा अर्थात् उससे कुछ अधिक फलदायक है । और पुरुष साक्षात्कार तो सोरह मासा है अर्थात् पूर्णपद को देनेवाला है । “ पुरुषाज पर किंचिन् सा काष्ठा सा परा गति ”

श्रोता वक्ता कौन घर,	जब नर आवै नींद ।
सब्द विराजै कौन घर,	बूझौ कपिल मुनींद्र ॥८६॥
सब्द जाय दरवार में,	ब्रह्म रत्न के नीर ।
श्रोता वक्ता सब्द मंग,	मुनि सों कहै कबीर ॥८७॥
नाद नहीं था सिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द कटा ते आया ॥८८॥
नाद नहीं था सिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द मुक्त ते आया ॥८९॥
शोळता बहु रुहँ वसै,	केतिक रूप सरूप ।
कै पखुरि की सुरति है,	केतिक वस्तु अनूप ॥९०॥
बोळता मध्य हि में वसै,	हरा उरन सरूप ।
सात पखुरि की सुरति है,	किंचित् वस्तु भनूप ॥९१॥
साखी सब्दी कब कही,	मौन रहै मन माँहि ।
विठुरा था कब ब्रह्म मो,	कहिबे को कहु नाँहि ॥९२॥
साखी सब्दी जब कही,	तव कछु जाना नाँहि ।
विठुरा था तब ही मिका,	अब कहु कहना फाँहि ॥९३॥
हाथ पाँव मुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	तोर नाम कहै ठाम ॥९४॥
हाथ पाव मुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	मोर नाम सब ठाम ॥९५॥

सोई सीप समुद्र में,	सोइ सीप नदी नाल ।
मोती क्यों नहि नीपजै,	पंडित करो विचार ॥६६॥
सीप सीप सब एक है,	सब जग बरसै स्वांति ।
मोती यौ नहि नीपजै,	कोह कुबुधि बहु भाति ॥६७॥
सीप भई जो गरमसी,	ढरकि जाय सब नीर ।
स्वांति सनेही ना मिलै,	यौ कहै दास कबीर ॥६८॥
माटी में पाटी मिली,	मिछा पवन सौं पौन ।
में तोहि घूझूं पंडिता,	दो में मृआ कौन ॥६९॥
कुमति हती सो मिटि गई,	पिटयो बाद हंकार ।
दोनों का भेला मुआ,	कहै कबीर विचार ॥७०॥
कुमति किसकी मिटि गई,	किसका मिटा हँकार ।
क्यों करिके भेला हुआ,	सो मोहि कहो विचार ॥७१॥
कुमति चित की मिटी गई,	मिट गय मन हंकार ।
दोनों का झगडा मिटा,	कहै कबीर विचार ॥७२॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाप ।
ये मृतक संग देह के,	कहु कैसे करि जाय ॥७३॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाप ।
जील सरोवर न्हाइये,	तय यह मृतक जाय ॥७४॥

॥ सध्यानाम ॥

श्री विचार साहेब
की
विरल टीका-टिप्पणी के सहित
सद्गुरु कबीर साहब
का
साखी-ग्रंथ ।

॥ समाप्त ॥

अनुक्रमणिका ।

(अकारादिक्रमसे)

अ	अग ।	पृष्ठ ।	साखी ।
अकार निक्षे भया,	सुमिरन ।	११८,	२४
अकथ कथा या मन हि की,	मन ।	२४६,	८६
अकल अरस सों ऊनरी,	भर्मन्धिस ।	२७३,	४५
अकल बिहना आदमी,	"	"	४१
अकल बिहना आंधरा,	"	"	४३
अकल बिहना सिध ज्यों,	"	"	४२
अकास बा पाताल जा,	कर्म ।	४१८,	३०
अकास त्रेली अमृत फल,	परिचय ।	१५०,	१३०
अगन नहीं जैं तप करै,	"	१४४,	८३
अगम अगोचर गम नहीं,	"	१४१,	४०
अगम पय कू पग वैरै,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	४०
अगम पय को चालतौ,	गुरु पारख ।	३२,	१०
अगम पय को मन गया,	बेहद ।	३३९,	२०
अगम पय मन थिर करै,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७१,	५
अगम हतासो सुगम किया,	"	"	६
अगम हुते जो अगम है,	"	"	४
अगर तिलक मर सोहइ,	भेष ।	७०,	८
अगह गै र अगह कहै,	नेहद ।	३३०,	१८

अगुवानी तो आइया,	परिचय ।	१४०,	३९
अघट भया खटपट मिटै,	मन ।	२६६,	१४
अचर चरै चर परिहरै,	विपर्यय ।	२५४,	३९
अठै पुरुष एक पेड है,	निजकर्ता ।	३६९,	१
अजगर करै न चाकरी,	समर्थ ।	३०६,	४५
अजर जु धान अतीत का,	भेष ।	८७,	८१
अजपा सुमिरन घट विषे,	सुमिरन ।	१३०,	१३४
अजहू तेरा सत्र मटे,	गुर मुख पावै भेद । पडित ।	३८४,	३६
” ” ”	जो जग मानै हर । जीवतमृतक ।	३३४,	४०
” ” ”	जो मन राखै ठौर ” ”	” ”	४१
” “ ” ”	जो मानै गुर सीख । भोख ।	८८,	६
अजामिध गोमेय जग,	मासाहार ।	४१६,	४४
अठ मासे भर नाम है,	प्रश्नोत्तर ।	४४९,	५५
अडसठ तीरथ निंदक न्हाड,	निन्दा ।	३८६,	२३
अतिका भला न बोलना,	मध्य ।	३१७,	२८
अति हठ मति कर बाबरे,	उपदेश ।	३०१,	८१
अग्रम कथ सत्र काल के,	काल ।	३००,	७८
अधिक सनेहो माठ्यी,	प्रेम ।	१५४,	४१
अनल अक्रासे घर किया,	मध्य ।	३१४,	३
अनल पखि आरै नहीं,	” ”	” ”	४
अनल पखि का चेट्या,	” ”	” ”	५
अनहद बाजे निहार शरै,	अविहट ।	३४२,	६
अनजाने का कूकना,	पारख ।	३५७,	५१
अनमागा उत्तिम कही,	भोख ।	८८,	९

जनमाया तो श्रुति भला,	”	”	८
अनमिलता सों सग करे,	सगति ।	९७,	७५
अनराते सुख सोचना,	सेवक ।	१०१,	२७
अन वैस्नव कोई नहीं,	साधु ।	६१,	७३
अनन्त कोटि ब्रह्माड का,	निजकर्ता ।	३७३,	३५
अन-याही आकास है,	बेखी ।	३५९,	३
अनेक बधन सैं ग्राधिया,	समर्थ ।	३०६,	४९
अपना तो कोई नहीं, देखा ठोकि बजाय ।	मोह ।	३९४,	१४
” ” ” हम काहू के नाहि ।	”	”	१३
अपनी अपनी सब कहैं,	विचार ।	४२३,	१६
अपने अपने चोर को,	मन ।	२७२,	७९
अपने उरक्षे उरक्षिया,	”	२७०,	५९
अपने पहारै जागिये,	सुमिरन ।	१२३,	७६
अब की जो साई मिले,	चिन्ती ।	४३७	१२
अब तू काहे को डरे,	विश्वास ।	२१३,	३३
अब तो ऐसी है पडो, ना तुवरो ना बेलि ।	त्रिपर्यय ।	२५४,	४२
” ” ” मन अति निरमल कीन्ह ।	सती ।	२१४,	१
अब तो जूझे हि बने,	सुरमा ।	२२९,	३६
अब तो मैं ऐसा भया,	लगानी ।	३६८,	२६
अब तो हम कचन भये,	साच ।	४३१,	१५
अब हम चले अमरापुरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५,	७
अबरन को क्या बरनिये,	चिन्ती ।	४३८,	१९
अबरन बरन अमूर्त जो,	गुरुदेव ।	११,	५९
अधिहड अखडित पीत है,	अधिहड ।	३४१,	१

अबुध सुबुध सुत मातपितु,	गुरुदेव ।	१५,	८०
अभिमानी कुजर भये,	मद ।	३९५,	१०
अमर कुज कुरलाइया,	बिरह ।	१६०,	२
अमर लोक ते आइया,	प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३३
अमरापुर को जात हों,	चानक ।	३०९,	२५
अमल अहारी मानवा,	नशा ।	४१८,	१०
अमल माँहि अवगुन कहा,	"	४१७,	३
अमली के बैठो मति,	"	४१९,	२५
अमली हो बहु पापसँ,	"	"	२६
अमृत केरी मोटरी,	प्रेम ।	१५६,	५३
अमृत पाने ते जना,	"	"	५४
अलख अलख सब कोइ कहै,	निजकर्ता ।	३७१	१९
अलख इलाही एक है,	एकता ।	३२३,	१
अलख पुरुष की आरसी,	साधु ।	५९,	५५
अलख लखा लालच लगा,	परिचय ।	१३७,	२०
अलठ अकिल जाने नहीं	भर्मबिब्वस ।	३४६,	४६
अलमस्त फिरै क्या होत है,	उपदेस ।	१९३,	६३
अग्निगति पिसै पीसना,	निजकता ।	३७१,	१६
अविनासी की सेज का,	बिरह ।	१६९,	८४
अग्निनासी की सेज पर,	"	"	८५
अविनासी बिच धार तिन,	कनक-कामिनी ।	२८६,	७
अस औसर नहि पाइ हो,	सुमिरन ।	१२१,	५५
असुर रोग उतर्पात भया,	निजकर्ता ।	३७२,	३२
असुरी माया आप हि,	माया ।	२८५	७३

अहार करे मन भावता,
 अहिरन का चोरी करे,
 अहिरन मौर काख में,
 अहं अगिन हिरदै नरे,
 अहं भई जो इस्तरी,
 अहंता नहि आनिये,
 अंक भरे भरि भेटिया,
 अंकुर भखै सो मानुवा,
 अँखियन तो झाँई पडी,
 अँखिया प्रेम कसाइया,
 अंडज स्पेदज उदभिज,
 अंडा किन विसमिल किया,
 अंडा पाले काहुई,
 अंडे किन विसमिल किये,
 अन्त कतरनी जीम रस,
 अन्तर कमल प्रकासिया,
 अन्तर जपिये रामजी,
 अन्तर जानी एक तू,
 अन्तर पाहि विचारिया,
 अन्तर हरि हरि होत हे,
 अन्तःकरण मन गद्दी,
 अँन पानी का हार हे,
 अँदेसो नहि भागसी,
 अँधरन को हाथी सही,

स्वाद ।	४१०,	४
चितावनी ।	१९१,	१८६
भर्मविध्वंस ।	३४५,	३५
मद ।	३९४,	१
मद ।	३९५,	३
मद ।	॥	५५
विरह ।	१६८,	८०
मांसाहार ।	४१६,	४५
विरह ।	१६५,	५१
॥	॥	५५
व्यापक ।	३२९,	४४
मांसाहार ।	४१४,	२१
विश्वास ।	२११,	१२
मांसाहार ।	४१४,	२२
कपट ।	४०४,	१८
मेद ।	३२१,	४०
सुमिरन ।	१३३,	१६५
समरथ ।	३०४,	३४
उपदेस ।	१९३,	२
सुमिरन ।	१३३,	१६४
सूक्ष्म मार्ग ।	३७८,	३४
स्वाद ।	४११,	१०
विरह ।	१६४,	३९
आत्म अनुभव ।	३१२,	२२

अपरे को हाथी उधौ,	”	३११,	२०
अंधा ऊबट जात है,	सतगुरु ।	२७,	८२
अधा गुरु अधा जगत,	गुरु पारख ।	३१,	६
अधे औघट जात है,	पारख ।	३५८,	६२
अधे मिलि हाथी छुआ,	आतम अनुमन ।	३११,	२१
अधौ का हाथी सही,	”	३१२,	२३
अच्छर आदि जगत में,	सतगुरु ।	२९,	९९
अर्ध कपाले झलता,	चितावनी ।	१९०,	१८५
अर्ध पवन चढाप ले,	बेहद ।	३४०,	३२
अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ,	तुनसों रहे निनार । मोह ।	३९३,	६
” ” ” सब हि मोह की खान । ”		३९४,	१२

आ

आकार राम दशरथ घर डोलै,	निजकर्ता ।	३७२,	२५
” ” ” ”	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४१
आकासे औंधा कुवा,	विपर्यय ।	२४८,	१५
आग कहै दासै नहीं,	विचार ।	४२२,	३
आग जलावै अँन दहै,	दया ।	४३२,	१०
आग जु लागी नीर में,	विपर्यय ।	२४६,	८
आग लगी आकास में, कहै कबिर उठ जागरे (३),		२६२,	६४
” ” कबीर जलि कंचन भया (३) विरह ।		१६९,	८७
आगा पीछा दिल करै,-	भर्मविब्वस ।	३४७,	५२
आगि औंच सहजा सुगम,	प्रेम ।	१५७,	७२
आगे अधा कूप में,	गुरु पारख ।	३१,	८
आगे खोजी पचिमुभा,	मध्य ।	३१६,	२६

आगे दरपन उमंगला,	कपट ।	४०४,
नागे पीछे हरि सदा,	विश्वास ।	२१२,
आचारी सब जग मिला, कोटि अचारी बारिये (३)विचार ।		४२३,
” ” ” जाके हिरदे गुरु नहीं (३) दया ।		४२३,
आछे दिन पाछे गये,	चितावनी ।	१७७,
आज कहै मैं काल मंजूंगा,	”	”
आज काल के बीच में,	”	१७६,
आज काल के भोग हैं ।	साधु ।	७०,
आज काल दिन पांच में,	”	७६,
आज काल पल छिनक में,	काल ।	२९३,
आना को घर अमर हैं,	विचार ।	४२३,
आठा तबि भूसा गहे,	भारम्राही ।	३५०,
आठ गांठ कौपीन के,	रस ।	३६४,
आठ पहर चौबिस घडी, मो मन यही अंदेस ।	भेद ।	३१९,
आठ पहर चौसठ घडी, भरे और न कोष ।	पतिव्रता ।	२१९,
” ” ” लागि रहे अनुराग ।	प्रेम ।	१५९,
आठ पहर यौही गंगा,	चितावनी ।	१८५,
आठ बाट बकरी गई,	मांसाहार ।	४१४,
आतम अनुभव जब भयो,	आतम अनुभव ।	३०९,
” ” सुखकी,	”	३०९,
” ” ज्ञान की,	”	३१०,
आतम दृष्टि जाने नहीं,	भर्मविषय ।	३४८,
आतम पूजा जिव दया,	उपदेश ।	२००,
आदि अंत अय को नहीं,	गुरुशिष्य हेरा ।	४१,

आदि अन्त अरु मध्य लौ,	अत्रिहड ।	३४१,	३
आदिनाम निज मूल है,	सुमिरन ।	११६,	२५
आदिनाम निज सार है,	" "	" "	१४
आदिनाम पारस अहे,	" "	११६,	१३
आदिनाम बोरा अहे,	" "	" "	१२
आदि हती सब आप में,	गुरुशिष्यहेरा ।	४२,	२८
आध सन्द गुरु देव का,	गुरुदेव ।	१५,	८३
आधी औ खूबी भकी,	स्वाद ।	४११,	८
आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।-विचार ।		४२२,	६
" " " सौखी सुनी न जाय । "		४१४,	२४
आधी साखी सिर कटे,	" "	४२२,	५
आन अमल सब त्यागि के,	नशा ।	४२०,	३०
आन कया अन्तर पडे,	उपदेस ।	१९७,	४७
आन देव की आस करि,	आनदेव ।	३८७,	१
आन भने सो आधार,	बिभिचारिन ।	२२५,	१९
आप राखि परमोधिपे,	कथनी ।	३६१,	१३
आप साधु करि देखिये,	साधु ।	६१,	७४
आप स्वार्थी भेदिनी,	परमारथ ।	२४३,	६
आपन को न सराहिये,	निन्दा ।	३८६,	१९
आपन पै न सराहिये,	" "	" "	२०
आपा भेटे पिव मिले,	दीनता ।	४३५,	९
आपा भेटे हारे मिले,	विपर्यय ।	२४५,	४
आपा सब ही जात है,	मद ।	३०५,	७
आपन सकि हो तोहि पै,	विरह ।	१६४,	४०

आया अन आया भया,	चितावनी ।	१९१, १८८
आया एक हि देस ते,	परिचय ।	१४७, १०५
आया था ससार में,	"	१४०, ४३
आया प्रेम कहा गया,	प्रेम ।	१५२, २४
आया बबुला प्रेम का,	"	१५२, २४
आया बबुला प्रेम का,	"	१५४, ४०
आये हैं ते नापगे,	चितावनी ।	१८३, ११४
आरत सों गुर भक्ति करु,	भक्ति ।	१११, ४१
आरत है गुरुभक्ति करु,	"	" ४०
आरा नारा कारने,	आनदेव ।	३८७, ३
आर कहै सो बीलिया,	शाल ।	४२७, ११
आव गया आदर गया,	भोल ।	८८, ११
आवत गारी एक है,	उपदेस ।	१९६, ३४
आरत माधु न हरिया,	साधु ।	५८, ५१
आस आन घर घर फिरै,	आसातृस्ना ।	४०१, १९
आस आस नग बधिया,	"	४०२, २५
आम करै बैकुठ को,	सेयक ।	१०१, १८
आस पास योधा खडे,	काल ।	२९७, ४७
आस वास जग फदिया,	आसातृस्ना ।	४००, ५
आस वास मन मेलिया,	सूरमा ।	२४१, १५१
आसन तो इकान्त करै,	साधु ।	७३, १७४
आसन मारै कला भयो,	आसातृस्ना ।	४०१, १५
आसा एक जो नाम को, दूनी आस निहार ।	"	४००, "
आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरै आस ।	"	" ३

आसा को ईधन करू,	आसातृस्ना ।	४००,	११
आसा जीवे जग भरै,	" "	" "	४
आसा तरकस वाधिया,	" "	" "	१०
आसा तजि माया तजे,	साधु ।	७२,	१६९
आसा तो इक नाम को,	सुमिरन ।	१२१,	५६
आसा तो गुरुदेव की, और गले को फास ।	आसातृस्ना ।	४०१,	२०
" " " दूजी आस निरास ।	" "	३९९,	१
आसा तृस्ना दो नदी,	" "	४००,	८
आसा तृस्ना सिंधुगती,	" "	" "	७
आसा बासा संत का,	साधु ।	६२,	८२
आसा 'बेली' कर्मफल,	आसातृस्ना ।	४००,	६
आसे 'पासे' जो फिरे,	'काल ।	२९९,	६८
आहेरी 'धौ' लाइया,	विपर्यय ।	२४७,	११
आँखडियाँ काजल मरि,	सती ।	२०६,	१८
आँखडियाँ रतनालियाँ,	चिन्तानी ।	१८७,	१४०
आँसि न 'देखे' बानरा,	" "	१९१,	१९१
आँखों देखा घी मला,	निगुरा ।	५१,	४६
आगन बेलि अकास फल,	बेली ।	३५९,	१
आगन बेली अलख है,	" "	" "	२
आधी 'आई' प्रेमको,	माया ।	२८१,	३७
आधी यथा समीर मधि,	व्यापक ।	३२९,	३७
आत्म तरन जाने नहीं,	पंडित ।	३८४,	३५

इक नारी, इक नागिनी,	इक कलक कामिनी ।	२८८,	३०
इक बानी सो दीनता,	इक दीनता ।	४३४,	५

इक मरिचो इक मारिचो,
 इत कूना उत बाजली,
 इत परधर उत ह घरा,
 इन अटकाया ना रहै,
 इन पाचौं से, बधिया,
 इस, उदर के कारने,
 इस तन मे मन कहँ बसै,
 इन्द्र राज सुख भोग कर,
 इन्द्र लोक अचरज भयो,
 इन्द्रिय मन निग्रह करन,
 इन्द्रो एको प्रस नहीं,
 इन्द्री पोषत चाह सू,
 इरुत खुन्नस ग्वाँसि जो,
 इष्ट मिले अरु मन मिलै,

ई

ईलम से उद्याग खिलै,
 ईश्वर मे अरु जीन मे,

उ

उगन मीन सुधाकरा,
 उतपति परलय उहँ नही,
 उत त कोई न आइया,
 उत ते सनगुरु आइया,

सूरमा ।	२३४,	८४
समरथ ।	३०२,	०
चितानना ।	१८२,	१०१
साधु ।	५५,	१७
मन ।	२७१,	६७
चानक ।	३०७,	५
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	१८
भक्ति ।	११३,	५६
छानो ।	३६८,	२३
साधु ।	६६,	११३
चानक ।	३०९,	२९
मन ।	२७२,	७१
प्रकृति गुन ।	३८८,	११
उपदेश ।	१९६,	३०

भेद ।	३२१,	३७
व्यापक ।	३०९,	३९

साधु ।	६८,	१३३
वेहद ।	३४०,	२६
गूढमार्ग ।	३७६,	११७
, , ,	, ,	१८

उत्तिम भीख है अजगरी,	भीख ।	८८,	१३
उदर समाता अन्न ले,	"	'	७
उदर समाता मोंगि ले,	"	"	५
उनमुनि चढ़ा अकास को,	परिचय ।	१३८,	२५
उनमुनि लागी सुन्न में,	"	"	२४
उनमुनि सों मन लागिया, उनमुनि नहीं मिलिगि।	"	"	२७
" " " गगन हि पहुँचा जाय । "	"	"	२६
उपजे एकै खाड ते,	एकता ।	३२४,	१५
उल्टा ज्ञान विचार के,	निपर्यय ।	२५२,	३१
उलटि समाना आप में,	परिचय ।	१३५,	४
उलटे सुलटे जचन क,	सेवक ।	१०३,	३५
उत्तर दक्षिण पूर पच्छिम,	पारम्ब ।	३५४,	२६

ऊ

ऊँड खेडे टेकरां,	चितापनी ।	१७६,	४२
ऊजड घर में बैठि के,	निगुरा ।	५२,	५०
ऊनै आई ब्रादरी,	निपर्यय ।	२५४,	४०
ऊजळ देखि न धीजिये,	भेष ।	८,	१३
ऊजळ देखि न भरमिये,	"	"	१२
ऊजळ पहिने कापडा,	चितापनी ।	१८१,	८३
ऊजळ धुद अग्राम की,	सगति ।	९३,	४०
ऊजळ ब्रस्तर मिर जटा,	कपट ।	४०४,	२१
ऊचा पुल नाँचा मता,	मान ।	३०८,	२०
ऊचा चढि असमान को,	विपर्यय ।	२५५,	४४

ऊंचा तरवार गगन फल, पंखी मूआ झूर ।	सूरमा ।	२३७,	१०६
ऊंचा तरुवर गगन फल, विरला पंछी खाय ।	जंघतमृतक ।	३३२,	२०
ऊंचा दोसै धौहरा,	चितावनी ।	१७७,	५६
ऊंचा देखि न राचिये,	मान ।	३९८,	२६
ऊंचा महल चुनाहया,	चितावनी ।	१७७,	५८
ऊंचा महल चुनावते,	"	१७८,	५९
ऊंचा मंदिर मेडिया,	"	१७७,	५७
ऊंची जाति पपीहरा,	पतिव्रता ।	२२१,	४६
ऊंचे कुल कह जनमिया,	संगति ।	९३,	४७
ऊंचे कुल की कामिनी,	मान ।	३९८,	२२
ऊंचे कुल के कारने, घांस बघ्यौ हंकार ।	निगुरा ।	४८,	१९
" " " भूलि रहा संसार ।	मान ।	३९८,	२१
ऊंचे कुल में जनमिया,	मान ।	३९७,	१९
ऊंचे डाली प्रेम की,	माया ।	२८४,	६२
ऊंचे पानी ना टिकै,	मान ।	३९८,	२७
ऊंडा चित अरु समदसा,	साधु ।	६९,	१४१

ए

एक अनूपम । हम किया,	निगुरा ।	५१,	४९
एक अचंभौ देखिया,	पारस ।	३५५,	५०
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।	क०का० ।	२८६,	५
" " " दौड अगनिकी झार ।	" "	" "	३
" " " विष फल लिया उपाय ।	" "	" "	८
" " " ये लंबी तरवार ।	"	२८५,	२

एक खडा ही ना लहे,	समर्थ ।	३०३,	२४
एक घडी आधी घडी,	सगति ।	९०,	९
एक चित होय न पित्र मिले,	पतिव्रता ।	२२०,	३६
एक जान एकै समझ,	"	२२१,	४४
एक दिन ऐसा होयगा, को काहू का नाँहि । चितावनी ।		१८५,	१३५
" " " सब सँ पडे विठोह । "		१७६,	४१
एक दिना नहि करि सकै,	साधु ।	५४,	४
एक दृष्टि दो नन हैं,	प्रेम ।	१५९,	८६
एक दोस्त हमहू कित्ता,	विपर्यय ।	२४०,	२१
एक नाम जो जानि कर, दूजा दिया बहाय । पतिव्रता ।		३२०,	३२
" " दूजा देइ बहाय । सुभिरन ।		१२०,	५०
" " " मेट्टु करम का अक । "		"	४९
एक हि जार परखिये,	पारख ।	३५३,	१५
एक बुद के कारने,	चितावनी ।	१९०,	१७७
एक बुद ते सब किया, नरनारी का नाम । "	"	१८८,	१५६
" " ये देह का विस्तार । "	"	"	१५७
एक मोह के कारने,	गोह ।	३९४,	१६
एक राम दशरथ घर डोलै,	निजकर्ता ।	२७१,	२३
एक वस्तु के नाम बहु,	एकता ।	३२४,	७
एक सोम का मानवा,	चितावनी ।	१८४,	१२१
एक सन्द सुख ग्वानि है,	सन्द ।	२०४,	१५
एक सन्द सुपियार है,	सन्द ।	२०९,	६८
एक सन्द में सत्र किया,	विचार ।	४२२,	९
एक हमारी सोख सुन,	करनी ।	३६५,	२५

एकामैका	होन	दे,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४७	
एक	साधे	सत्र	पतिप्रता ।	२००,	३०	
—						
	ये					
ऐसा	अदबुद	मति	कथो,	भेद ।	३१८,	१२
ऐसा	अभिगति	अलख	है,	परिचय ।	१४७,	१०१
ऐसा	अभिगति	रूप	है,	"	१४९,	१२३
ऐसा	कोई	जन	ण्य है,	निंदा ।	३८५,	१७
ऐसा	कोई	ना	मिला, अपना करि भिरपा करै(३)गु शि हे ।	४०,	६	
"	"	"	घर दे अपन जराय ।	"	३९,	२
"	"	"	जलता जोति बुझाय ।	"	४०,	८
"	"	"	जामों कहैं दुख रोय ।	"	३९,	३
"	"	"	जासों कहैं निसक ।	"	४०,	७
"	"	"	जासों रहिये लाग ।	गुरु पारख ।	३७,	५१
"	"	"	टारै मनका रोस ।	गुरुशिष्यहेरा ।	४०,	९
"	"	"	ढाल दमामा ना सुनै (३)	"	३९,	५
"	"	"	सत्र त्रिधि देय बताय ।	"	"	४
"	"	"	सत्तनाम का मीत ।	गुरुदेव ।	१०,	५२
"	"	"	सब्द देखें प्रतलाय ।	गुरुशिष्यहेरा ।	४०,	१०
"	"	"	हमना दे उपदेस ।	"	३९,	१
ऐसा	कौन	अभागिया,	निश्वास ।	२१३,	३६	
ऐसा	गुरु	ना	कानिये,	गुरुपारख ।	३५,	४१
ऐसा	मारा	रत्न	का	सब्द ।	२०५,	२७
ऐसा	साधू	त्वानि	के,	साधु ।	६९,	१४०
ऐसा	गति	समार	का,	चिन्तायना ।	१८४,	१२०
ऐसा	ठाठा	ठाठिये,		भेष ।	८१,	२७
ऐसी	तोखी	सुरति	है,	मजीन ।	३३६,	८

ऐसी मानी बोलिये,	उपदेस ।	१९५,	२६
ऐसी व्याई सो तुई,	निपर्यय ।	२५०,	२५
ऐसी भाति जो सती है,	सती ।	२१५,	११
ऐसी मार करीर की,	सूरमा ।	२३१,	५७
ऐसे तो सतगुरु मिले,	गुरु पारख ।	३७,	५२
ऐसे महुँगे मोल का,	सुमिरन ।	१३०,	१४०
ऐसे सौँच न मानई,	काल ।	२९८,	५६

ओ

ओटा लिया न उगरे,	सूरमा ।	२३०,	४५
ओठ कठ हाँसे नहीं,	सुमिरन ।	१३३,	१६३

औ

औगुन कह सराब का,	नशा ।	४१७,	५
औगुन किया तो बहु किया,	बिनती ।	४३६,	४
औगुन को तो ना गहै,	सारप्राही ।	३४९,	४
औगुन मेरे बापजी,	बिनती ।	४३६,	५
औगुन हारा गुन नहीं,	समरथ ।	३०३,	२१
और धर्म सत्र कर्म है,	भक्ति ।	११३,	५४
और देन नहि चित्त बसै, मन गुरु चरन बसाया	साधु ।	६६,	११४
और देन नहि चित्त बसै, प्रिय प्रतीति भगवान ।	साधु ।	,,	११५
और धर्म सत्र कर्म है,	भर्मनिष्पस ।	३४५,	३३
और पतित तो कृप है,	बिनती ।	४३७,	९
और पुरुष सब कृप हैं,	समरथ ।	३०५,	४३
और सुरति बिसरी समल,	लगनी ।	३६७,	१३
औसर पीता अल्प तन,			

कवीर

कवि कुसग न कानिये, छाहा जल न तिराय ।	सगति ।	९२,	३६
कवि कुसग न कीजिये, जाका नाँव न ठाँव ।	सगति ।	,,	३७
कवि नै सो आपको,	दीनता ।	४३५,	८
कवि नारि की प्रीति से,	वनव कामिनी ।	२९०,	४८
कवि नैन झर लाइये,	सुमिरन ।	११९,	४१
कवि निर्भय नाम जपु,	सुमिरन ।	१०२,	६८
कवि भये हैं क्रेतजा,	दासातन ।	१०६,	२०
कवि सुनावत दिन गये,	चानक ।	३०९,	२४
कवि क्षुधा हैं कूकरी,	सुमिरन ।	११४,	८०
कविरा चुनता वन फिर,	पारख ।	३५५,	३०
कवीर अन हुआ हुआ,	चितावनी ।	१७४,	२१
कवीर अपने जोरत,	मान ।	३९७,	११
कवीर आद् एक हँ,	परिचय ।	१४९,	१२१
कवीर आधी साखि यह,	विचार ।	४२२,	७
कवीर आप ठगाइये,	उपदेस ।	१९३,	७
कवीर आपन राम कहि,	सुमिरन ।	११९,	३६
कवीर उलटा ज्ञान का,	त्रिपर्यय ।	२५२,	३२
कवीर ऊचो नाक को,	मान ।	३९८,	२३
कवीर औंधी खोपडी,	लोभ ।	३९२,	३
कवीर कठिनाई खरी,	सुमिरन ।	१२०,	४२
कवीर कमठ प्रकासिया,	परिचय ।	१४१,	५२
कवीर कमलन जल बसै,	साधु ।	७०,	१४०
कवीर कमाई आपना,	कर्मे ।	४०८,	१०
कवीर मरत है जानती, भरसागर के ताड ।	समरथ ।	३०५,	३०
” ” ” सुनो मत चित लाय	भिनता ।	४३८,	- ३

करीर करनी आपनी,	करनी ।	३६२,	१
करीर करनी क्या करै,	,,	३६२,	२
करीर कहै रु कल्पना,	सगति ।	९१,	२२
करीर कलियुग आई के,	विभिचारिन ।	२२३,	१
करीर कलियुग कठिन है,	चानक ।	३०६,	२
करीर कहते क्या बने,	सगति ।	९३,	३९
करीर कहहि पीर को,	चानक ।	३०९,	२३
करीर काजी स्वाद बस,	मासाहार ।	४१४,	२८
करीर कामो पुरुष का,	काम ।	३९०,	१७
करीर काया को जगो,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१७
करीर काया पाहुनी,	चिन्तामनी ।	१८९,	६८
करीर कारज भक्ति के,	निजकर्ता ।	३७२,	३३
करीर काहे जो डरे,	उपदेश ।	१९५,	२५
करीर कीट सुगव तजि,	असारग्राही ।	३५०,	१
करीर कुल सोही भला,	दासातन ।	१०५,	१८
करीर केवल नाम कह,	चिन्तामनी ।	१७५,	३४
करीर केवल नाम को,	,,	१८८,	१६५
करीर केशो को दया,	रगनी ।	३६९,	३०
करीर कोठी काठ की,	त्रिपर्यय ।	२५९,	५७
करीर कचन भासिया,	परिचय ।	१४२,	५८
करीर खाई कोट की,	सगति ।	९१,	२१
करीर खाणिक जागिया,	दासातन ।	१०४,	६
करीर खेत किसान का,	चिन्तामनी ।	१७४,	२०
करीर खोजी राम का,	व्यापक ।	३२७,	१९

कबीर म्वाड हि छाडि के	पारख ।	३५६	४६
कबीर गाफिल क्यों कर,	चिताननी ।	१७५,	३१
कबीर गाफिल क्यों फिर,	काल ।	२९६,	३७
कबीर गुदडी बीखरी,	पारख ।	३५६,	४५
कबीर गुरु औ साधु कू,	सेनक ।	१०३,	३०
कबीर गुरु को भक्ति कर,	भक्ति ।	१०९,	२२
कबीर गुरु को भक्ति का,	" "	" "	२४
कबीर गुरु को भक्ति मिनु, नारि कूकरी होर ।	निगुरा ।	४७,	११
" " धिऊ जीवन ससार ।	भक्ति ।	१०९,	२३
" " राजा रामभ होय ।	निगुरा ।	४७,	१२
कबीर गुरु को भक्ति से,	भक्ति ।	१०९,	२५
कबीर गुरु के देसमें,	सगति ।	९२,	३८
कबीर गुरु के भाव ते,	दासातन ।	१०४,	५
कबीर गुरु ने गम कही,	गुरुदेव ।	९,	४२
कबीर गुरु सत्र को चहै,	दासातन ।	१०४,	४
कबीर गुरु हैं हृद का.	बेहद ।	३४०,	३०
कबीर गुरु हैं घाट के,	गुरु पारख ।	३३,	२२
कबीर गर्भ न कोजिये, अस जोवन की आस ।	चिता० ।	१७२,	२
कबीर गर्भ न कोजिये, उचा देखि अयास ।	" "	" "	३
कबीर गर्भ न कोजिये, काल गह कर केम ।	" "	" "	१
कबीर गर्भ न कोजिये, चाम लपेटे हाड ।	" "	" "	४
कबीर गर्भ न कोजिये, देगा काल उखाड ।	" "	" "	५
कबीर गर्भ न कोजिये, देही देखि सुरग ।	" "	" "	६
कबीर गर्भ न कोजिये, रक न हभिये कोय ।	गद ।	३९५,	६
कबीर घट में राम ह,	कर्म ।	४०९,	१८

कवीर घोडा प्रेम का,	सूरमा ।	२२६,	५
कवीर चडै सिकार को, मूर्ख नर सो रहि गये (३) ”	”	२३९,	१२८
” ” मेरा मारा फिर उठै (३) ”	”	”	१२९
कवीर चाला जाय था, आगे मिले खुदाय । मासाहार ।		४१५,	३७
” ” पूछि लिया एक नाम । वेहद ।		३३९,	२१
कवीर चित-चचल भया,	सुभिरन ।	१२७,	११३
कवीर चिनगी विरह को,	विरह ।	१६३,	३४
कवीर चेरा सत का,	जीमतमृतक ।	३३३,	३१
कवीर चंदन के निरुद,	सगति ।	९१,	३३
कवीर चंदन के भिरै,	निगुरा ।	४८,	२०
कवीर चंदन परजला,	कर्म ।	४०८,	९
कवीर चंदन संग स,	सगति ।	८९,	७
कवीर चिंता क्या कल,	विश्वास ।	२१०,	९
कवीर चित्त चमाकिया	चिंतामनी ।	१७५,	३३
कवीर जग के जौहरां,	पारख ।	३५३,	१७
कवीर जग को क्या कहू,	आसातृस्ना ।	४०१,	१८
कवीर जब हम गावते,	परिचय ।	१४२,	५६
कवीर जाचन जाय था,	लगनी ।	३६९,	३१
कवीर जिन कछु जानिया,	विरह ।	१७०,	९५
कवीर जीवन कछु नहीं,	काल ।	२९६,	३४
कवीर जेता आत्मा,	भर्मनिघ्नस ।	३४३,	१०
कवीर जो कोड सुदरां,	त्रिभिचारिन ।	२२४,	११
कवीर जो दिन आज हैं,	चिंतामनी ।	१७३,	१७
कवीर जोगी जगत गुरु,	आमातृस्ना ।	४०१,	१२

कबीर जोगी बन बसा,	संजावन ।	३३६,	३
कबीर जंत्र न बाजही,	चितावनी ।	१७५,	३०
कबीर झूठ न बोलिये,	सांच ।	४३१,	२१
कबीर टुग टुग चोघताँ,	काल ।	२९३,	१८
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो कुल को हेत ।	उपदेस ।	१९५,	२९
” ” जहाँ सिद्ध को गाँव ।	” ”	”	३०
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत ।	कपट ।	४०२,	१
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव ।	कपट ।	४०४,	२०
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो नानाभाव ।	कपट ।	४०२,	३
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त ।	कपट ।	”	२
कबीर तहाँ न जाइये, नी मन बीज जु बोइये(३) ।	” ”	”	४
कबीर तासे प्रीति कर,	प्रेम ।	१५४,	३८
कबीर तासों संग कर,	संगति ।	९०,	१८
कबीर तुरी पछानिया,	सूरमा ।	२२६,	६
कबीर तू काहे डरे,	धीरज ।	४१४,	५
कबीर ते नर अंध हैं,	गुरुदेव ।	८,	३९
कबीर तेई पीर हैं,	मांसाहार ।	४१६,	३९
कबीर तेज अनंत का,	परिचय ।	१४१,	५०
कबीर तो पिय पै चला,	सजीवन ।	३३६,	४
कबीर तोडा मान गढ़, मारे पांच गनीम ।	सूरमा ।	२२६,	८
कबीर तोडा मान गढ़, छूटी पांची खान ।	सूरमा ।	२२७,	१०
कबीर तृस्ना टोकता,	चानक ।	३०६,	१
कबीर तृस्ना पापिनी,	आसातृस्ना ।	४०२,	२३
कबीर थोरा जीवना,	चितावनी ।	१७२,	

क़रीर दरसन साधु का, करत न कीजे कान	साधु ।	५३,	२
क़रीर दरसन साधु के, ग्वाली हाथ न जाय ।	साधु ।	५५,	२३
क़रीर दरसन साधु के, बडे भाग दरसाय ।	साधु ।	५३,	४
क़रीर दरसन साधु के, साहिब आत्रे याद ।	साधु ।	,,	१
" दरिया परजला,	दुख ।	४०६,	८
" दिलदरिया मिला, पाया फल समरथ्य ।	परिचय ।	१४१,	५५
" दिल दरिया मिला, बेठा दरगह आय ।	परिचय ।	१४२,	५७
" दिल साकित भया,	भेद ।	३२१,	४२
" दीपक जोह्या,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	३८
" दुनिया देहरै,	भर्मत्रिपुस ।	३४३,	९
" दुमिधा दूर कर,	मन्य ।	३१४,	२
" दुख सुख सब गया,	परिचय ।	१४९,	१२५
" देखा एक अग,	परिचय ।	१४१,	५१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखको खोल ।	पारख ।	३५१,	१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखों खुलाय ।	पारख ।	"	२
" देवल हाड का,	चितावनी ।	१७२,	९
" देवल बहि पडा, ईट भई सहार ।	चितावनी ।	१७३,	१०
" देवल बहि पडा, ईट रही समार ।	चितावनी ।	"	११
" धीरज के धरे,	धीरज ।	४२४,	४
" धूर सकेलि के,	चितावनी ।	१७३,	१२
" धधे धरि रहे,	चितावनी ।	"	१६
" नाव तो झांसरि,	चितावनी ।	१७४,	२८
" नौबत आपनी,	चितावनी ।	१७२,	७
" निन्दक मरि गया,	निन्दा ।	३८५,	८

कबीर पगरा दूर है, आय पड़ुची साझ ।	काल ।	३००,	७९
॥ पगरा दूर है, बीच पडी है रात ।	काल ।	२९६,	३६
॥ पडना दूर करु, आयि पडा ससार ।	पडित ।	३८१,	९
॥ पडना दूर करु, पोधी देहु बहाय ।	पडित ॥	॥	८
॥ परगट राम कहु,	सुमिरन ।	११९,	३५
॥ पाहन पूजि के,	भर्मत्रिघ्नस ।	३४३,	८
॥ पानी हीज का,	चितामनी ॥	१७५,	३२
॥ पीर पिरानना,	गिरह ।	१७१,	१०९
॥ पूछ राम सो,	साक्षोगूत ।	३२२,	६
॥ पय निहारतौ,	त्रिभिचारिन ।	२२४,	९
॥ पाच पखेरना,	चिनामनी ।	१७४,	२४
॥ पांनो बलधिया,	दामातन ।	१०४,	७
॥ पाची मारिये,	सूरमा ।	२२७,	११
॥ पूजा साटु की, तू जिन करे खुमार ।	चितामनी ।	१७५,	३५
॥ पूजा साटु की, तू मति खोने हमार ।	सौच ।	४३१,	१६
॥ पैडा दूर है,	चितामनी ।	१७४,	२५
॥ पन्न कारिना,	चितामनी ।	१९१,	१८७
॥ प्यालः प्रेम का,	नशा ॥	४२०,	३२
॥ उन उन में फिरा,	सगति ।	९०,	१७
॥ बहुत श्दुधिया,	व्यापका ।	३२७,	२१
॥ वेडा जरजग,	चितामनी ।	१७४,	२३
॥ वेडा सार था,	गुरु पाख ।	३५,	४०
॥ त्रैद बुलाइया, जिहिर औपध गुरु मिले ।	गु.शि है ।	४३,	३१
॥ त्रैद बुलाइया, पकरि के देखी नाह ।	गिरह ।	१६३	३७

कबीर वेद बुलाइया, जिहिर	ओषध हरि मिलै ।	विरह ।	१६३,	३६
" वैरी सबल हे,		मन ।	२६५,	९
" बंटा टोकनी,		चानक ।	३०८,	२१
" ब्राह्मण की कथा,		पंडित ।	३८१,	१३
" ब्राह्मण बूडिया,		" "	" "	१४
" भाठी प्रेम की,		प्रेम ।	१४४,	३६
" भूल बिगारिया,		ममरथ ।	३०४,	३२
" भूला दगा में,		विचार ।	४२२,	१०
" भेदी भक्त सों,		भेद ।	३१७,	१
" भेरै बैठि के,		पतिव्रता ।	२१८,	१५
" भेष अतीत का,		भेष ।	७९,	१
" भेष भगवंत का,		" "	८७,	७६
" भँवर में बैठिके,		धीरज ।	४२५,	६
" भिन्न न देखिये,		व्यापक ।	३२९,	४०
" मनका माहिला,		मन ।	२६५,	११
" मन कुं मारि ले,		" "	२७७,	१२०
" मन गाफिल भया,		" "	२६५,	४
" मन ताजी भया,		" "	२७७,	१२२
" मन तीखा किया,		सजीवन ।	३३६,	५
" मन तो एक है,		मन ।	२६४,	१
" मन दीया नहीं,		त्रिभिचारिन ।	२३३,	७
" मन निश्चल करो,		सुमिरन ।	१३३,	१६६
" मन परबत भया,		मन ।	२६४,	३
" मन पंछी भया,		संगति ।	९१,	२०

कवीर	मन मधुकर भया,	परिचय । १५१,	५३
"	मन मेरकट भया,	मन । २६५,	७
"	मन मिरलक भया, इन्द्रा अपन हान ।	ऊ०झा० । २०२,	६१
"	" " कहै कवीर कवीर (४) जी० प्र० ।	३३१,	५
"	" " यू कहि दाम कवीर (४) मन ।	२७६,	१०९
"	मन मंठा भया,	प्रश्नोत्तर । ४४१,	१५
"	मन हि गयद हं,	मन । २६५,	६
"	मनरा मोर है,	चिन्ताननी । १०२,	२०१
"	मरि मरघट गया,	जीवनमृतक । ३३३,	२८
"	माया जात हं,	माया । २७९,	१३
"	माया डाकिनो, ग्वाया सत्र ससार ।	माया । २८४,	७०
"	माया डाकिनो, सत्र काहु को ग्वाय ।	माया । २७८,	१०
"	माया पापिनी, फट लै वेठी हाट ।	माया । २७७	२
"	माया पापिना, मागी मिले न हाथ ।	माया । २७७,	१
"	माया पापिनी, लोभ भूलाया लोग ।	माया । २७८,	३
"	माया पापिनी हरि सो कहे हराम ।	माया । २७८,	४
"	माया बेसना,	माया । २७८,	५
"	माया मोहिनी, जग अधियारी लोभ ।	माया । २७८,	९
"	माया मोहिनी, नैसी मीठी ग्वाड ।	माया । २७८,	७
"	माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।	माया । २७८,	६
"	माया मोहिनी, सत्र जग धाला घानि ।	माया । २७८,	८
"	माया यौ कल,	माया । २७९,	१५
"	माया रूखडी.	माया । २७८,	११
"	माया सापिनी,	माया । २८३,	५६

कानीर	माया मृगशी,	माया । २७८,	१२
”	मारग कठिन हं,	मूक्षममार्ग । ३७४,	१
”	माया काट का, पहरो मुगद डुलाय ।	सुमिरन । १३२,	१५८
”	माया काट की, बहुत जनन का फेर ।	सुमिरन । १३१,	१४९
	मिरतरु देखि कर,	जीवनमृतक । ३३५,	४३
	मुख से राम कह,	सुमिरन । १२८,	११६
	मुख साई भला,	सुमिरन । ११९,	३७
”	मेरे साधु की,	निन्दा । ३८५,	१३
”	मेरी सुमिरनी,	सुमिरन । १२७,	११४
”	मोतिन की लडो,	परिचय । १४१,	५४
”	मदिर आपने,	काल । २९६,	३५
”	मदिर लार का,	चितावनी । १७३,	१३
”	मे तत्र ही डरू,	त्रिनती । ४३८,	२२
”	यह गन अटपटो,	मन । २६६,	१३
”	यह चितामनी,	चितामनी । १८७,	१५१
	यह तन जान है, सके तो ठौर लगान ।	चिता० । १७४,	१९
”	” ” नको तो रासु बहोरि ।	उपदेश । १९५,	२१
”	यह तन बन भया,	चितावनी । १७४,	२६
”	यह त्रिनती कर,	त्रिनती । ४३८,	२४
”	यह मन मसखरा,	मन । २६४,	२
”	यह मन लालची,	गन । २६५,	५
”	यह ससार है, जंसा सौंभल फल ।	चितावनी । १७३,	१५
”	यहै तो राम ह,	निन्दा । ३८६,	२७
”	या ससार की,	माया । २७९,	१४

- कबीर या संसार को, भर्मविध्वंस ।
 २२ या संसार हूँ, घना मनुष्य मति हीन । चिता० ।
 २३ ये जग आंधरा, पारख ।
 २४ रन में आय के, सूरमा ।
 २५ रसरो पॉव में, चितावनो ।
 २६ राम रिझाय ले, जिम्ब्या के रस स्वाद । सुमिरन ।
 २७ राम रिझाय ले, जिब्हा सों कर मोत । सुमिरन ।
 २८ राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय । सुमिरन ।
 २९ रामानंद को, सतगुरु ।
 ३० रेख सीदर अरु, पतिव्रता ।
 ३१ रेखा कर्म को, कर्म ।
 ३२ लहरि समुद्र की, कभी न निष्कल जाय । संगति ।
 ३३ लहरि समुद्र की, केती आवै जाँहि । मन ।
 ३४ लहरि समुद्र की, मोती बिखरै आय । निगुरा ।
 ३५ लोहा एक है, एकता ।
 ३६ लौंग इलायची, साधु ।
 ३७ लज्जा लोक कां, सॉच ।
 ३८ यह तो एक है, भेष ।
 ३९ वह मन कित गया, मन ।
 ४० या दिन याद कर, चितावनो ।
 ४१ विष घर बहु मिले, संगति ।
 ४२ व्याम कथा करै, चानक ।
 ४३ संजडे हीं जडा, कर्म ।
 ४४ सतगुरु सरन को, चितावनो ।

कवीर सतगुरु मेप्रिये,	सगति ।	९६,	६५
" सतियो कसतियो,	सती ।	२१६	१६
" मत्र पट आनमा,	साग्राही ।	३५०,	११
मत्र जग निरधना,	सुमिरन ।	११९,	३३
मत्र जग हेरिया	साधु ।	७०,	१४५
सत्र ते हम बुरे,	दानता ।	४३५,	१३
मत्र सुत्र राम हे,	काल ।	२९६,	३९
समझा कहत ह,	मतगुर ।	२८,	९३
साकट की सभा,	निगुरा ।	५१,	४२
सागी सा क्रिया,	अत्रिहट ।	३४१,	२
माधू दुरमति,	माधु ।	७७,	२०८
मालिग रामका,	भर्म विधिस ।	३४३,	११
" सिरजन हार पिन,	अत्रिहड ।	३४१,	५
" सीतल जल नहीं,	साधु ।	६२,	७८
" सोप समुद्रकी, खारा जलनहि लेय ।	पतित्रता ।	२१८,	१४
" " " रटे पियास पियास ।	"	"	१३
" सुखरु जाय था,	दग्ध ।	४०५,	२
" सुपन रैन के, उवरो आयै नैन ।	चिनायनी ।	१७३,	१४
" " ' पडा कलेजे छेका ।	त्रिह ।	१६३,	३५
" सुमिरन अग का,	सुमिरन ।	१३४,	१७७
' सुमिरन सार ह,	,	१२७,	१११
' सुरत मित्र की	प्रेम ।	१५८,	७९
" सूता क्या करे, उठिन भजो भगवान ।	सुमिरन ।	१२३,	७०
" " " ऊठिन न रोओ दूख ।	'	'	७३

करीर सूता क्या करे, दाहे न देखे जाग ।	सुभिरन	१२३	७५
" " ' गुन सतगुरुका गाव ।	'	'	७१
" " " जागन की कर चौप ।	'	"	७४
" " ' जागो जपो मुरार ।	"	१२२,	६९
" " " सूते होय अकान ।	"	१२३,	७२
' सेरी साकरी,	मन ।	२६५,	१८
" सेना दाड भला,	साधु ।	७३,	१७०
" सो धन सचिये,	आसा तृस्ता ।	४०१,	२१
" सोचि विचारिया,	विचार ।	४२१,	१
" सोई दिन भग,	साधु ।	५३,	३
" सोई पीर है,	दयान	४३३,	२१
" मोई सर्मा, जाके पाचौ हाथ ।	भूरमा ।	२२६,	३
' ' " पाचौ राखा चूर ।	'		२
" " ' मन मा माटै जूझ ।	"		१
करीर सगति साधुकी, करहु न निस्फल जाय ।	सगति	८०,	२
" " " जो करि नाने कोय ।	'	"	६
करीर सगति साधु का, जी की भृसी गाय ।	सगति ।	"	३
करीर सगति साधु की, नित प्रति कीनै नाय ।	सगति ।	"	१
करीर सगति साधु की, निस्फल कर्मो न होय ।	सगति ।	"	५
करीर सगति साधु की, ज्यौ गधीका बाम ।	सगति ।	"	४
करीर सर्गी साधु का,	उपदेस ।	१९६,	३१
करीर ससे जाय में,	सनीयन ।	३३६,	११
करीर ससे दूर कल,	सनीयन ।	"	१२
करीर साई मिलहिगे,	पिननी ।	४३७,	१३

कवीर माई मूझ को,	स्वाद ।	४११,	९
कवीर सांचा सूरमा,	सूरमा ।	२३७,	१११
कवीर सुंदरि यौ कहै,	विरह ।	१६३,	३२
कवीर सब्द सरौर में,	सब्द ।	२०२,	१
कवीर स्वामो कोय नहीं,	चानक ।	३०८,	१९
कवीर हृद के जोव मो,	बेहद ।	३३८,	१३
कवीर हम गुरु रस पिया,	प्रेम ।	१५४,	३७
कवीरे हम सब को कहै,	विचार ।	४२३,	१५
कवीर हमने घर किया,	करनी ।	३६४,	२४
कवीर हमरा कोई नहि,	साधु ।	७०,	१४३
कवीर हमरे नाम बल,	सुमिरन ।	११८,	३०
कवीर हरि जाना नहीं,	मान ।	३९८,	२५
कवीर हरि का डरपता,	लगनी ।	३६८,	२५
कवीर हरि के नाम में, वात चलावै और ।	सुमिरन ।	११८,	३२
कवीर हरि के नाम में, सुरति रहै करतार ।	सुमिरन ।	"	३१
कवीर हरिके मिलन की,	सुमिरन ।	११९,	३८
कवीर हरिके लुठते,	गुरुदेव ।	८,	४०
कवीर हरि रस जिन पिया अन्तरगत लो लय ।	रस ।	२६२,	१
कवीर हरि रस जिन पिया, मांगे सोम कलाळ ।	रस ।	"	४
कवीर हरिरस बटत है,	रस ।	"	३
कवीर हरिरस बरपिया,	निगुरा ।	४८,	१७
कवीर हरिरस भरि पिया,	रस ।	२६२,	२
कवीर हरि माँ हेत कर,	काल ।	२९६,	३८
" हरि हरि सुनिरि ले,	सुमिरन ।	१२७,	११२

कबीर हसना दूर कर,	बिरह ।	१९३,	३३
कबीर हीरा बनिजिया, महेंगे मोल अपार ।	सूरमा ।	२२६,	७
कबीर हीरा, बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि ।	सतगुरु ।	२५,	६३
कबीर हृदय कठोर के,	निगुरा ।	४७,	१४

रु

कई बार नहि करि सकै,	साधु ।	५३,	६
कछु कहि नीच न छेडिये,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	८
कठिन कमान कबीर की,	सूरमा ।	२३२,	६१
कठिनाई कछु है नहा,	सूरमा ।	२३७,	११२
कडी कमान कबीर की, धरी रहै मैदान ।	सूरमा ।	२३२,	६२
कडी कमान कबीर को, न्यारे न्यारे तीर ।	सूरमा ।	"	६३
कडी कमान कबीर की, काचा टिकै न कोय ।	सूरमा ।	"	६४
कडी है धारा राम की,	सूरमा ।	"	६५
कथत कथत जुग थाकिया,	निजकर्ना ।	३७१,	२०
कथते हैं करते नही,	कथनी ।	३६१,	१०
कथते हैं करते सही,	कथनी ।	"	११
कथते बरते पचि मुये,	करनी ।	३६४,	१७
कथनी कपि कृष्ण फिर,	कथनी ।	३६१,	५
कथनी कथै अगाध की,	करनी ।	३६५,	३२
कथनी कथै तो क्या हुआ,	कथनी ।	३६०,	१
कथनी काची है गई,	करनी ।	"	२
कथनी कू धीजू नहीं,	कथनी ।	३६१,	७
कथनी के मूरे घने,	कथनी ।	"	८
कथनी को तो भानि के,	कथनी ।	"	९
कथनी थोथी जगत में,	कथनी ।	"	६

कथनी ब्रदनी छाड दे,	कथनी ।	३६०,	४
कथनी मीठी खाड मी,	कथनी ।	,,	३
कथा करो करतार को, निसदिन साझ सकार ।	उपदेस ।	१९७,	४४
कथा करो करतार को, सुनो कथा करतार ।	"	"	४७
कथा कोरतन करन को,	"	"	४१
कथा कोरतन कलि त्रिप, तरवे को उपकार ।	"	"	४८
कथा कोरतन कलि त्रिपे, भीसागर को नाव ।	"	१९६,	४०
कथा कोरतन छाडि के,	"	१९७,	४२
कथा कोरतन रात दिन,	"	"	४३
कथा कोरतन सुनन को,	"	"	४९
कल रुजा गुरु हृदया,	गुरु पारख ।	१३४,	२८
कपट कुठिलता दुर्वचन,	साधु ।	६६,	११८
कपट कुठिलता छाडि के,	"	"	११७
कपटो कदो न ऊधरे,	कपट ।	४०४,	१५
कपटो का गुरु चातुरी,	कपट ।	४०३,	११
कपटो के मन कपट वसे,	कपट ।	४०४,	१७
कपटो मित्र न कीजिये,	कपट ।	४०४,	१६
कपास विनूठा कापडा,	कलक कामिनी ।	२९१,	९७
कफ काया चित चरुमका,	त्रिपर्यय ।	२५७,	५२
कनहुँक मन गगन हि चढे,	मन ।	२७१,	६४
कनहुँक , मंदिर मालियो,	सन्तोष ।	४२८,	८
कनठ पत्र हैं साधु जन,	साधु ।	६७,	१२६
कर कनान मर साधि के,	सतगुरु ।	२५,	६६
कर गदन दुर्जे वचन,	सब्द ।	२०६,	४०

कर जोरीं प्रिनना करू,	प्रिनता ।	४३७,	१४
नरगम सम दूर्जन उचन,	क्षमा ।	४२६,	५
करता की गति अगम है,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७७,	२९
करता था तो क्यों रहा,	उपदेस ।	१९९,	६७
करता दोसै कौरतन,	चानक ।	३०८,	१३
करना करनी सर कई,	करनी ।	३६३,	७
करना कर मो पूत हमारा,	करनी ।	३६५,	३३
करना का रनमा नहीं, करनी कथै अपार ।	करनी ।	३६३,	५
करनी का रजमा नहीं, करनी मेर समान ।	करनी ।	३६३,	८
करना गर्भ न जानिये,	करनी ।	३६३,	८
करनी प्रिन कथनी कथै, अज्ञानों दिनरात ।	करनी ।	३६२,	४
करना प्रिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न भाय ।	करनी ।	३६२,	३
करना निचारी क्या करै,	दुख ।	४०६,	१०
करम कचोडे आतमा,	कर्म ।	४०७,	१
करम हमारे काटि हँ,	भर्मविषय ।	३४५,	३४
करहु छाड बुलु छान,	मतगुरु ।	२९,	९८
करिये तो करि जानिये,	भेष ।	८३,	४४
कर दूरि अज्ञानता,	गुरुदत्र ।	१५,	८४
करै बुराई सुख चहै,	कर्म ।	४०८,	११
करै सुहाली लपसा,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२०
करक पडा मैदान में,	माया ।	२८३,	५८
कर्म आपना परखि लै,	कर्म ।	४०९,	०२
कर्म करीमा लिखि रहा, अत्र कहु लिखा न होय । निश्चा०		२१२,	२८
“ ” नर सिर भाग अभाग । निश्चास ।		२१२,	२९

कर्म फल जग फदिया,	मन्त्र ।	२०८,	५५
कलि का ब्राह्मन मसखरा,	पटित ।	३८२,	१८
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धर खटाय ।	चानक ।	२०७,	७
“ ” मनसा रहै यधाय ।	चानक ।	३०७,	६
कलि के गुरुना लालची,	गुरु पारख ।	३२,	१३
कलियुग एकै नाम है,	साधु ।	७१,	१५८
कलियुग काल पठाइया,	नशा ।	४१७,	१
कलियुग केरे ब्राह्मना,	मांसाहार ।	४१३,	१०
कवि तो कोटिन कोटि हँ,	भेष ।	८६,	६८
कसत कसौटी जो टिकै,	कसौटी ।	३७४,	९
कस्तूरी नाभी वसे, नाभि कमल हरि नाम ।	व्यापक ।	३२६,	१३
“ ” मिरग हूँ है बन मोंहि ।	व्यापक ।	३२६,	१२
कह अकास को फेर हे,	साधु ।	५९,	५९
कहत सुनत जग जात है,	चिनाग्रनी ।	१८१,	००
कहत सुनत सत्र दिन गये,	मन ।	२७३,	८२
कहता हू कहि जात हू, कहा जो मान हमार ।	मासा०	४१६,	४१
“ ” कहू बजाये डोल ।	सुमिरन ।	१३०,	३९
“ ” देता हू हेला ।	गुरु पारख ।	३८,	६७
“ ” मानै नहीं गभार ।	काम ।	३९०,	१५
“ ” सुनता है सत्र कोय ।	सुमिरन ।	१३२,	१५७
कहते को कहि जान दे,	उपदेस ।	१९५,	२८
कहना था गो कहि दिया, अत्र कछु कहा न जाय ।	परि०	१३७,	२१
“ ” अत्र कछु कहना नैहि । ”		१४७,	१०४
कहने को चूक नहीं,	सब्द ।	२०९,	७३

का

काग साधु दरसन कियो,	साधु ।	७७,	२१२
कागद केरी नागरी, पानी केरी गग ।	मन ।	२७१,	६६
कागद ,, पाहन गरुजा भार ।	भर्मिप्रियस ।	३४४,	१८
कागद लिये सो कागदा	आत्मानुभव ।	३१०,	७
कागा करध दडोरिया,	प्रिह ।	१६७,	७३
,, करक न चूधिये,	,,	१६८,	७५
,, काका धन हरे,	सब्द ।	२०९,	७१
,, ते हमा भयो,	साधु ।	७८,	२१५
काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भग ।	क्षमा ।	४२६,	६
काचा सेती मति मिलै,	सगति ।	९४,	४९
काची काया मन अधिर,	काल ।	२९७,	४३
काची रानी मति करो,	सजीवन ।	३३६,	६
काचे का क्या ताइये,	क्षमा ।	४२६,	७
काचे गुरु के मिलन से,	गुरु पारख ।	३५,	३९
काज वनागत कारटा,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२२
काजर केरी कोठरी, एसो यह समार ।	टाखातन ।	१०४,	८
,, ,, काजर ह का कोट ।	,,	,,	९
,, ,, मभिके किये कपाट ।	भर्मिप्रियस ।	३४३,	१४
काजल तजे न स्यामना,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	६
काजी का वेटा मुआ,	मासाहार ।	४१४,	२५
काना तुझे करीम का,	मासाहार ।	४१४,	२४
कानी मुलना भरनिया,	मासाहार ।	४१४,	२९
काट्टु जम के फट,	सुभिरन ।	१२५,	८७

काटा कटा जो कर,	मासाहार ।	४१३,	१८
काटा कटा माछरी,	मन ।	२७३,	७२
काट पधन विपति में,	निनकर्ता ।	३७२,	२९
काठ हि धुन नो खाइया,	ग्रिह ।	१६६,	५८
कान दर्गा सुनहा कहें,	काल ।	२०४,	१३
कान हभिया मुम् प्रक्रिया,	सूरमा ।	२३८,	१२०
काना फिर जानी भया,	म य ।	३१४,	८
काम नरा सुनिये नहीं,	उपदेस ।	१९७,	४५
काम कहर असवार हं,	काम ।	३९०,	१६
काम काम सब काट रहे,	"	३९०,	१२
काम मोध तस्ला तनै,	उपदेस ।	२०१,	८७
काम क्रोध मट लोभ की,	काम ।	३९०,	१४
,, नाथ मूतक मदा, ये मूतक सग देहक (३) प्रश्ना० ।	४२७		७३
,, " " सील सरोवर न्हाइये (३) ,,	"		७७
,, हरकत बल घटै,	नशा ।	४१७,	६
कामिना कारी नागिनी,	कलक कामिनी ।	२८८,	२८
,, सुदर सर्पिनी,	"	"	२९
कामी अमा न भाई,	काम ।	३८०,	७
,, मरु न गुरु भनै,	"	"	२
,, का गुरु कामिनी,	"	"	१
,, कुत्ता तीस दिन,	"	"	३
,, बर्म का फेंचुली,	"	"	८
,, तिर कावी तिरै, लोभी की गति होय । आनद ।	३८७,		६
,, " " " " " रोमी तिरै अनन । त्रिभिचारिन ।	२२५,		२१

कामी तो निर्मय भया,	काम । ३८९,	६
„ लज्जा ना करे,	„ „	५
„ सैं कुत्ता भला,	„ ३९१	१८
„ क्रोधी लात्ची,	„ ३८९,	४
„ „ „	भक्ति । ११०,	३४
काय कमटल भरि लिया,	लगनी । ३६७,	१८
कायन कागन काडिया,	चिन्तावनी ! १७५,	३८
कायर कचरी . व्रठिके,	सूरमा । २३८,	११८
कायर का काचा मना,	„ „	११७
कायर का घर फुसका,	„ २३५,	८८
कायर काम न आरई,	„ २३९,	१३४
कायर को कौतुक भया,	„ २३५,	८७
कायर बहुत पमारई,	„ „	८९
कायर भया न छुटि हो,	„ „	८६
कायर भागा पीठ दे,	„ „	९१
कायर सेरी ताकि के,	„ „	९०
कायर हुआ न छुटि है,	„ २३४,	८५
काया कजरौ बन अहं,	मन । २७२,	७३
काया कफ चित चकमके,	व्यापक । ३२६,	९
काया कसौ कमान च्यौ,	मन । २७२,	७५
काया खेत किमान मन,	कर्म । ४०७,	३
काया देखल मन घना,	मन । २७२,	७४
„ मंजन क्या करै,	चिन्तावनी । १८१,	९२
„ माहि समुद्र हे,	जीवनमृतक । ३३१,	६

काया सिप मसार में,	परिचय ।	१८४,	७४
„ मों कारज करे,	उपदेस ।	२०१,	८
काल करम तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	४
„ करे सो आज कर, आज करै सो अब्द । चिन्तामनी ।		११७,	५३
„ करे सो आज कर, सब हीं साज तुम साय । „		„	५२
„ कैसे कसयान कर्म,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१४
„ काल तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	३
„ काल मत्र कोट कहे,	काल ।	३००,	७५
„ के माथे पांन दे,	सतगुरु ।	२७,	७९
„ चिचाना है, मडा,	काल ।	२९२,	३
„ चक्र चही चले,	चिन्तामनी ।	१८४,	१२२
„ जीव को प्रासई,	काल ।	२९२,	१
„ जीव मानै नहीं,	उपदेस ।	१९९,	७०
„ पाय जग उपजो,	काल ।	३००,	७४
„ फिरे सिर ऊपरै, जीव हि नजरि न आय । सव्द ।		२०५,	२६
„ फिरे सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान ।	काल ।	३००,	७६
„ हमारे सग है,	काल ।	२९२,	२
काला मुख कर मानका,	मान ।	३०७,	१०
„ मुँह करि करद का,	मामाहार ।	४१५,	३०
„ मुँह करु करम का,	कर्म ।	४०७,	४
कासी काया एक है,	एकता ।	३२३,	४
काहू जुगति ना जानिया,	मोह ।	३९४,	११
„ कां नहि निन्दये, चाहे जैसा होय ।	निन्दा ।	३८५,	१६
„ कां नहि निन्दये, सबको कहिये सत ।	निन्दा ।	३८६,	२५

काहू को न संतापिये,	दासातन ।	१०६,	२१
काहे को कल्पत फिरे, काहे पावे दूख ।	विश्वास ।	२१३,	३२
,, को कल्पत फिरे, दुखी होत बेकाम ।	सहज ।	३१३,	६
किये बिना मागे बिना,	विश्वास ।	२१३,	३७
किगतनियासें काम विस,	पारख ।	३५४,	२४
कीडी जु चाली सासरे,	विपर्यय ।	२६०,	६०
कीया कड न होत है,	समर्थ ।	३०१,	७
कुल करनी कुल करम गति,	परिचय ।	१४१,	४६
कुटिल बचन मत्र ते बुरा,	सव्द ।	२०६,	३९
कुटिल बचन नहि बोलिये,	,,	२०६,	४१
कुदरत पाई न्वरी सों	सतगुरु ।	२६,	७३
कुबुद्धि कमानो चडि रहै,	सव्द ।	२०६,	३८
कुबुद्धि को मझे नहीं,	भर्मविध्वंस ।	३४८,	६१
कुमति किर्मा का मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७१
कुमति काच चेला भरा,	गुरुदेव ।	४,	१२
कुमति चिन की मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७२
कुमति हती सो मिटि गई,	,,	,,	७०
कुरु क्षेत्र सत्र मेदिनी,	मोह ।	३९४,	१०
कुल करनी के कारनै, दिगहि रहि गया राम ।	चि० ।	१८१,	८९
,, ,, ,, हसा गयो विगोय ।	,,	,,	८८
कुल करनी छटे नहीं,	करनी ।	३६४,	१८
कुल खोये कुल ऊबरे,	चितावनी ।	१८१,	८७
कुल टूटे कार्ची पडी,	संगति ।	९४,	५१
कुल मारग छोडा नहीं,	पंडित ।	३८३,	३४

कुञ्जता कोटिक मिले,	साधु ।	७६,	१९५,
कुसल कुसल जो पूछता,	काल ।	२९४,	१८
कुसल जो पूछो असल की,	"	"	२१
कूकर बहु बहु जरि मुआ,	विपर्यय ।	२५३,	२६
कूकस कूटै कन रिना,	कयनी ।	३६१,	१२
कूप पराया आपना,	कनक कामिनी ।	२८६,	११
कूसगति लागे नहीं,	सगति ।	९६,	७०,
केना जिन्या रस भवै,	साधु ।	७७,	२११
केता बहाया बहि गया,	वनक कामिनी ।	२९१,	५६
केते पडि गुनि पचि मुआ,	सतगुरु ।	२९,	९७
केता कह दुझाय के,	चितामनी ।	१८५,	१३३
केसन कहा विगारिया,	मेव ।	८१,	२१
केसर कहि कहि कृकिये,	सुमिरन ।	१२४,	७९
केसू भँवर न रैटहीं,	कण्ट ।	४०३,	१२
के कूसल अनजान के,	काल ।	२९४,	२०
कै खाना कं सोरना, सतगुरु सन्द प्रिसारिया । (३)चि० ।		१७६,	४७
" " हरिसा प्रातम वीसरा (३) चानक ।		३०७,	४
के तू लोरै मुकदमी,	भर्मनिघस ।	३४७,	५३
कै त्रिहिनी को मीच दे,	बिरह ।	१६४,	४४
कै मासे भर नाम है,	प्रशास्त्र ।	४४५,	५४
कै रता भर सुरति है,	"	४४५,	४८
कसा भा सामर्थ हो,	करनी ।	३६५,	३०
कोइ एक ज्ञानी पारखी,	पारख ।	३५७,	५८
कोइ कुरग चित जय मिलै,	पारख ।	३५७,	५३

कोड मरि तिर तोष सू,	सरमा ।	२४१,	१४८
वाइला मि हू ऊनल,	सगति ।	९३	४४
कोई आपै भाय ले,	साधु ।	६७,	१२२
कोई न जम सों गच्छिया,	सुमिरन ।	११८,	२८
कोटि करम वटि पलकमें, रचक आपै नाम ।	सुमिरन ।	१२१,	५७
कोटि करम करै पलक में, या मन निषया स्वाद ।	मन ।	२७१,	६५
कोटि करम लागे रहें,	क्रोध ।	३९१,	२
कोटि कोटि तारथ को,	साधु ।	६२,	८१
कोटि नाम ससार में,	सुमिरन ।	११७,	१६
कोटि सयान पचि मुये,	भेद ।	३१८,	०
कोटि सगरी काम,	उपदेस ।	१९६,	३५
कोटिन चदा उगहाँ,	गुरुदेव ।	१३,	६४
कोट ऊपर दौटना,	चित्ताननी ।	१८२,	१०३
कोन पडा न छुटि है,	मूरगा ।	२३४,	८३
कोतुऊ देखा देह त्रिना,	परिचय ।	१३९,	३५
कोन कने कसनाय को,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१३
कोन जगापै ब्रह्म का,	प्रश्नोत्तर ।	४४५,	५०
कोन तुम्हारा जाति हे,	प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३४
कोन देस कहाँ आइया,	सूक्ष्ममार्गी ।	३७६,	१४
कोन देस ते आइया,	प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३७
कोन पन घर मचो,	प्रश्नोत्तर ।	४४२,	२२
कोन पन धरती रसे,	प्रश्नोत्तर ।	"	२६
," पन ले आनई,	"	४४३,	२८
," राम दसरय घर डोले,	"	४४४,	४०

कौन राम दूसरथ घर डोलै,	निजवर्ती ।	३७१,	२४
„ सरोवर पानी विनु,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	११
कौन साधु का खेल है,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४४
„ मुरति लें आनई,	„	„	३८
कौन सब्द का नामरी,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	९
कीर साधु दरमन कियो,	साधु ।	७७,	२१४
कचन को कछु ना लगे,	उपदेश ।	२००,	७४
कचन को तजयो सहल,	निन्दा ।	३८६,	२६
कचन केउठ गुरु भजन,	माच ।	४३१,	१७
कचन तनना सहज है,	मान ।	३९६,	८
कचन दीया करन ने,	साधु ।	५६,	२७
कचन मेरु अरपुर्ही,	निगुरा ।	४९,	२५
„ भी पारस पगमि,	मगति ।	९५,	६३
काकर पाथर जोडि के,	भर्मिप्रियस ।	३४४,	२०
काच कथीर अथीर नर, ताहि न ऊपजि प्रेम ।	कसीटी ।	३७४,	८
कासै ऊपर घोरुरी,	नेहट ।	३३९,	१७
कुनर मुख से कन गिरा,	दया ।	४३३,	१६
कुभे गोथा जल रह,	मन ।	२७४,	९२
कन्या नल अरु कारणे,	आनदेव ।	३८७,	५
कृत्न करीमा एक हे,	एकता ।	३२३,	३
क्या करिये क्या जोडिये,	चितावनी ।	१८९,	१७४
क्या मुख ले प्रिनती करु,	प्रिनती ।	४३६,	२
क्यों खोवै नर तन प्रिया,	चिनामनी ।	१९१,	१९२
क्यों छूटै जम जाल,	सुमिरन ।	१२५,	८६

क्यों नृप नारी निन्दिये,	साधु ।	६०,	६६
क्रिया करे अगुरि गिने,	सुमिरन ।	१३१,	१५०
क्रोध अगनि घर घर बढी,	क्रोध ।	३९१,	१

ख

खर कृकर की भीख जो,	भीख ।	८८,	१५
खरी कसौटी तोलताँ,	कसौटी ।	३७४,	३
खरी कसौटी रामकी, काचा टिकै न कोय ।	, ।	३७३,	२
” ” ” खोटा टिकै न कोय । जीमत्तमृतक ।	जीमत्तमृतक ।	३३२,	२२
खलक मिला खाली हुआ,	चिताननी ।	१८४,	१२७
खसम उलटि बेठा भया,	निपर्यय ।	२५७,	९०
खसम कहानै मंत्रन,	निगुरा ।	९१,	४८
खन मीठा चरपरा,	स्वाद ।	४१०,	१
खदा मीठा देखिके,	”	”	२
खास लपेटे जो रहै,	उपदेश ।	२०१,	९०
खाटा मीठा खाय कर,	स्वाद ।	४११,	१३
खान खरचन बहु अन्तरा,	माया ।	२८१,	३६
खाय पकाय लुटाय के,	उपदेश ।	१९३,	१०
खाय पकाय लुटाय ले,	”	”	९
खारा नाला हीम जळ,	परिचय ।	१४७,	१०७
खालिक दिन खाली नहीं,	व्यापक ।	३३,	४७
खाला माधु न प्रिदा करू,	साधु ।	५५,	१९
खुली खेली ससार में,	काल ।	२९९,	६३
खुश खाना है खीचडी,	मासाहार ।	४१६,	४०

खेत न छाड़ै सूरमा,	सूरमा ।	२२९,	३५
खेत बिगार्यो खरतुब्बा,	भक्ति ।	११२,	४७
खेळ जु मँडा खिलाडि सों,	प्रेम ।	१५७,	७१
खेळ मन्चा खेलाडि सों,	सतगुरु ।	२८,	९०
खेह भई तो क्या भया,	जीवितमृतक ।	३३४,	३४
खोजि पकरि विश्वास गहु,	विश्वास ।	२११,	१४
खोजी कौ डर बहुत है,	सूरमा ।	२३३,	७४
खोजी हुआ सन्द का,	सन्द ।	२०४,	१८
खोद खाद धरती सँहै,	"	२०६,	४३
खेभा एक गयंद दो,	मान ।	३९७,	१२
खाड खिलौना एक है,	एकता ।	३२४,	१३
खाड खिलौने तुम कहो,	"	"	१४
खाडा तिसको बाहिये,	सूरमा ।	२१४,	८२
खैचूं तो अनि नहीं,	मन ।	२७०,	५७

ग

गगन गरजि बरपै अमो,	परिचय ।	१४२,	५९
गगन दमामा बाजिया, पडत निसानै चोट ।	सूरमा ।	२२७,	१२
" " " पडत निसानै घाय ।	"	"	१३
" " " हनहनिषा के कान ।	"	"	१४
गगन बुंद सायर मिला,	प्रथोत्तर ।	४४०,	४
गगन मंडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर ।	परिचय ।	१४२,	६४
" " " शलकै सतका नूर ।	"	"	६०
" " " तह्रों शलकै नूर ।	निगुरा ।	४७,	१३

गगन मडल के नीचमें, तुरी तत्त इक गात्रा परिचय ।	१४२,	६३
” ” ” त्रिना कल्म की ठाप । ”	”	६२
” ” ” महल पडा इक चीन्हि । ”	”	६१
गगन महल भाठा रुपी,	वेहद ।	३४१, ३३
गरजै गगन अमा चुपै, तहा कबीरा बदगो(३)परिचय ।	१४३,	६६
” ” ” तहाँ कबीरा सतजन(३) ”	१४२,	६५
गरभ जागेश्वर गुरु त्रिना,	निगुरा, ।	४६, ४
गला काटि कअमा भरे,	मासाहार ।	४१५, ३३
गला काटि विसमिल करै,	”	३४
गला गुसाँ को काटिये,	”	३५
गली तुम्हारे नाम पर,	त्रिह ।	१६७, ६९
गहरी प्रीति सुजान की,	प्रेम ।	१५८, ७८
गहे सब्द निज मूल,	सब्द ।	२०८, ६३
गागर ऊपर गागरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५, ०
गाय भेंस घोडी गधी,	कलकामिनी ।	२९०, ४४
गाय रोय हसि खेरिके,	”	४३
गाया दिन पाया नहीं,	प्रिश्वास ।	२११, १७
गार अगारा क्रोध झल,	क्रोध ।	३९२, ६
गारी मोटा ज्ञान,	उपदेस ।	१९६, ३४
गारी ही सैं ऊपरै,	”	३६
गाननिया के मुख बस	पारख ।	३५४, २३
गानन ही में रोचना,	प्रिश्वास ।	२११, १८
गाहक मिले तो कुछ कहू,	पारख ।	३५३, १८
गिहरी का दुखटा चुरा,	सुमिरन ।	१२४, ८१

गिरही-का चिन्ता घना,	भेष ।	८७,	७७
गिरही द्वारे जाय के,	भेष ।	८४,	४७
गिरही सेवै साधु को, भाव भक्ति आनन्द ।	भेष ।	,,	५४
गिरही सेवै साधु का, साधू सुमरै नाम ।	भेष ।	,,	५३
गिरिये परत भिखर ते,	सगति ।	९३,	४२
गिरिवर धायो वृक्षनी,	निनकर्ता ।	३७०,	१५
गु अधियारी जानिये,	गुरु पारख ।	३६,	४३
गुन इन्द्रा महजं गये,	परिचय ।	१४६,	९२
गुन गाये गुनना कटे,	सुमिरन ।	१२४,	८४
गुनरता औ द्रव्य को,	प्रेम ।	१५६,	६४
गुर आज्ञा ले आरई,	सेनक ।	१०३,	३७
गुर आज्ञा तें जो रमै,	भेष ।	८५,	५८
गुर आज्ञा मानै नहो,	सेनक ।	१०१,	१०
गुरु भिया है देह का,	गुरु पारख ।	३३,	२८
गुरु को आज्ञा आरई,	गुरुदेव ।	४,	९
गुरु को महिमा को कहै,	गुरुदेव ।	७,	३१
गुरु की सूना आनमा,	गुरुपारख ।	३५,	३८
गुरु कौन जानि के,	गुरुशिष्यहेरा ।	४५,	४९
गुरु कुम्हार सिष कुम है,	गुरुदेव ।	५,	१४
गुरु के सन्मुख जो रहै,	भेष ।	८५,	५९
गुरु को कौजै दडगत,	गुरुदेव ।	३,	१
गुरु को चेला घोष दे,	माया ।	२८३,	६१
गुरु को दाप रती नहो,	गुरु शिष्य हेरा ।	४३,	३५
गुरु को पूजै गुरु मुग्गी,	उपदेस ।	२०२,	९४
१५ गुरु का मानुष जो गिजे,	गुरुदेव ।	५,	२०

गुरु चेचारा क्या करै, हिरदा मया कठोर ।	गुरुपारख ।	३८,	६४
" " " सद्द न लागे अंग ।	" "	" "	६५
" सक्ता मम भक्त है,	गुरुदेव ।	७,	३०
" शक्ति अति कठिन है,	भक्ति ।	११०,	३३
" महिमा गावत सदा,	गुरुदेव ।	६,	२५
" मारि गुरु इटकरी,	"	७,	२९
" मिला नहि सिष्य मिला,	गुरुपारख ।	३१,	२
" मुख गुरु आज्ञा चले,	सेवक ।	१०३,	३४
" " " चितवत रहै, जैसे भनी मुयंग ।	"	१०२,	३२
" " " " साह दिवान ।	"	१०३,	३३
" " वानी ऊचै,	गुरुदेव ।	७,	३२
" " सद्द प्रतीत कर,	उपदेश ।	२०१,	८९
" मूर्ति आगे खडी,	गुरुदेव ।	८,	३६
" " गति चंद्रमा,	"	"	३३
" नयाँद न भक्ति पन,	विभिचारिन ।	२२३,	२
" मुक्ताये जीव को,	गुरुदेव ।	६,	२७
" लोभी सिष्य लालची,	गुरुपारख ।	३१,	१
" समान दाता नहीं,	गुरुदेव ।	५,	१५
" समस्य सिर पर खडे,	दासातन ।	१०३,	
" सरनागत छाडिके,	गुरुदेव ।	८,	३५
" सों प्रीति निवाहिये,	"	७,	२८
" सों ज्ञान जु लजिये,	"	४,	८
गुरु सौंज ले सीष का,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४०
गुरु हमारा गंगन में,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	२

गुरु हान्नि चहुँ दिसि खडै,	परिचय ।	१४९,	१२६
गुरु हँ पूरा सिप हे मूरा,	गुरु पारख ।	३८,	६६
गुरु है ऋड गोविंद ते,	गुरुदेव ।	४,	६
” गुग्गु में मेद हँ,	गुरु पारख ।	३०,	१७
” नाम है गम्य का,	”	३५,	४२
” प्रतापै साधवो,	”	३७,	५४
” विचारा क्या करै, बास न ईधन हाय ।	गु शि ह ।	४४,	४६
” भया नहि सिप भया,	”	४५,	४७
” मिले सीतल भया,	परिचय ।	१३९,	३२
” समाना सोप में,	गुरुदेव ।	८,	३४
गैरा आया गेरा ते,	मभ्य ।	३१६,	२४
गैरी ता गलियोँ फिरै,	”	३१६	२५
गोता मारा सिधु में,	प्रेम ।	१५३	३४
गाधन गन्धन नानिधन,	सतोप ।	४२८,	०
गोविंद के गुन गोपता,	सुभिरन ।	१०४	८३
गोसा ज्ञान कमान का,	सतगुरु ।	१९,	१६
गो को अधी मति कहो,	पारख ।	३५८,	६३
गो जो पिछा भक्षई,	नशा ।	४१७,	९
गग जमुन के बीच में,	लगनी ।	३६७,	१६
गगा जमुना सुरसती,	बेहद ।	३४१,	३४
गाठि हाय सो हाथ कर,	उपदेस ।	१९४,	१८
गाठी दाम न बाधई,	साधु ।	६६,	१०१
गूगा हुआ वाररा,	सतगुरु ।	२६,	७०
अथन माहीं अर्थ है,	लगनी ।	३६७,	१५

घट का पट्टा खोलकर,	गुरु पारख । ३८, ६०,
११ बड़ कढ़ं न देखिये,	व्यापक । ३२७, २
११ दिन कढ़ं न देखिये,	व्यापक । ३३०, ४८
११ में खीचट पाइया,	परिचय । १४४, ७५
११ में जोति अनूप है,	विश्वास । २११, १९
११ में ई सृष्टे नहीं,	मेद्र । ३१९, २०
११ समुद्र लखि ना पड़े,	ममरय । ३०२, १०
११ हि नाम की आस करु,	सुमिरन । १२०, ४५
घटी बडी, जाने नहीं,	विपर्यय । २५३, ३५
घडि जो बाजे राजदर,	काठ । २९४, १२
घडि ही का आधी घडी,	संगति । ९०, १०
घन घसिया जोई मिले,	गुरुशिष्यहेरा । ४४, ३८
घर घर हम सब सों कहा,	बद्ध । २०९, ६५
घर जारे घर ऊवरे,	विपर्यय । २४५, ५
घर परमेधर पाहुना,	प्रतिव्रता । २२१, ४३
घर में घर दिखलाय दे,	गुरु पारख । ३६, ४८
घर में रहै तो भक्ति करु,	मेप । ८७, ७९
घर में माकट इस्तरी,	निगुरा । ५१, ४७
घर रसवाला बाहिरा,	चितावनी । १७८, ६६
घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।	काठ । २९८, ६१
११ ११ सुबका झारा लेसु ।	काठ । २९८, ५९
घाट हि पानी सब भरी,	सूक्ष्म मार्ग । ३७७, २५
घायल ऊपर घायल ले,	शौक । ४३७, ८

घायल की गति और है,	सूरमा ।	२३०,	४६
घायल तो घूमत फिरे,	”	”	४१

च

चकरी विछुरी रैन की,	बिरह ।	१६०,	३
चढ़ी अखाडै सुदरी,	पतिव्रता ।	२२१,	३८
चतुर त्रिवेकी धीर मत,	सेवक ।	१०२,	२८
चतुराई क्या कीजिये,	उपदेस ।	१९९,	६२
चतुराई चूल्हें पडो,	कथनी ।	३६२,	१८
चतुराई पोपट पडो,	पडित ।	३८३,	३१
चतुराई हरि ना मिले,	मेघ ।	८३,	४०
चलती चाकी देखि के,	काल ।	२९९,	६७
चलते चलते पगु धके,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२६
चलते चलते युग गया,	सतगुरु ।	२८,	८९
चलन चलन सब कोइ कहै,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	२०
चले गये सो ना मिले,	चितावनी ।	१८८,	१६१
चलो चलो सत्र कोइ धरै,	कनककामिनी ।	२८५,	१
चहुँदिस ठाढे सूरमा,	काल ।	२९७,	४६
चहुँदिस पक्का कोट था,	काल ।	२९७,	४५
चाकी चली गोपाल की,	काल ।	२९९,	६६
चातक चित हि चुभि गया,	पतिव्रता ।	२२८,	५२
चातक सुत हि पडानई, आन नीर मति लेय ।	”	”	५०
” ” सुनो बात यह तात ।	”	”	५१
चातुर धो चिता धनी,	उपदेस ।	२००,	७३

चार अठारह नौ पड़ि,	पंडित ।	३८२,	२१
चार ईंट चौरासि कुवा,	भेद ।	३२१,	४३
चार चरन नौ पंख है,	विपर्यय ।	२५९,	५५
चार चिन्ह हरि भक्ति के,	भक्ति ।	११२,	५३
चार भुजा के भजन में,	निजकर्ता ।	३७२,	२८
चार वेद पंडवों की,	पंडित ।	३८२,	२३
चारि स्थानि में भरमता,	सतगुरु ।	२४,	५१
चाल बकुल की चढत हैं,	मेष ।	८०,	१४
चाह गई चिन्ता मिठी,	संतोष ।	४२८,	४
चिऊँटी चावल ले चली,	भर्माविध्यंस ।	३४७,	५१
चिन कपटी सब सों मिले,	कपट ।	४०३,	६
चित चटकी लागी नहि,	चानका ।	३०९,	२७
चित चेतन ताजी करे,	सूरमा ।	२३०,	४७
चित चोखा मन निरमला,	सतगुरु ।	२७,	७५
चितमनि पाई चौहटे,	परिचय ।	१४६,	९८
चित्त चैन में गरकि रहा,	साधु ।	६९,	१४२
चिडिया प्यासी समुँद गई,	समरथ ।	३०५,	४४
चौख जमिया चून का,	विरह ।	१६६,	५९
चीर मध्य च्यों तंतु है,	व्यापक ।	३२८,	३६
चूडी पटकू पलंग से,	विरह ।	१६९,	९२
चेतन चौकी बैठि के,	सतगुरु ।	२६,	६७
चेत सवरे दावरे,	चितावनी ।	१९१,	१९३
चोट सतावि विरह की,	विरह ।	१६५,	५०
चोट सहै जो सेल की,	सूरमा ।	२४१,	१४६

चि चित्त प्रिसारिये,	मन ।	२७१,	६१
चिन्ता छाडि अचिन्त रह,	विश्राम ।	२११,	११
चिन्ता ता सतनाम की,	सुभिरन ।	१२०,	१०७
चिन्ता मति कर निचिन्त रह,	सन्तोष ।	४२९,	११
चिन्तामनि चिन में प्रसै,	विश्वास ।	२११,	१०
चुप्रक बाडै सार कू,	सारप्राहा ।	३१०,	८

छ

ऊँ मास नहि करि सक,	साधु ।	५४,	१४
अन्न भोजन प्र त सों,	साधु ।	१८,	५२
अन्न भोजन ह्व है,	नशा ।	४१७,	८
अडै प्रिन छुटै नहीं,	माया ।	२८४,	६९
अया माया रहित ह,	बेली ।	३१९,	४
अिन हि चडै अिन ऊतरै,	प्रेम ।	१५२,	२३
अिमा खेत भळ जानिये,	भक्ति ।	१०९,	२७
अिमा साधु का संघ है,	प्रश्नात्तर ।	४४४,	४५
अपा रगै सुरग रग,	गुरुपारम्ब ।	३६,	४९
अर रूप मतनाम है,	सारप्राहा ।	३१०,	६
छुरा पराई आपना,	कनक कामिना ।	२८६,	१२
अटो भाटी कामिनी,	”	२८९,	३०

ज

जग जहदा में राचिया,	चितानना ।	१८,	७९
जग भीसागर माहि,	सतगुर ।	३०,	१०४
जग मूजा विषधर धर,	सतगुर ।	२७,	८१

जग सारा दरिद्र भया,	सन्तोष ।	४२८,	६
जग हटारा स्वाद टग,	माया ।	२८१,	३२
जग में चारों रान हैं,	निजकर्ता ।	३७१,	२२
जग में डोडी कामिनी,	कनक कामिनी ।	२९१,	५४
जग में बहु परपत्र,	सब्द ।	२०८,	६२
जग में वैरी कोई नहि,	उपदेश ।	१९५,	२७
जग में भक्त कहाई,	कनक कामिनी ।	२९०,	४५
जग में युक्ति अनूप है,	सतगुरु ।	२८,	८४
जग सौं आपा राखिके,	संगति ।	९४,	५३
जगत जनायो जिहि सकळ,	गुरुदेव ।	१३,	६६
जगत माहि धोसा घना,	क्रोध ।	३९१,	३
जन केशीर बदन करै,	प्रियती ।	४३८,	२५
जनक विदेही गुरु किया,	निगुरा ।	४६,	५
जनम मरन सें रहित है,	निजकर्ता ।	३७०,	१३
जनमें मरन विचारि के,	चित्तानी ।	१७९,	६८
जप तप तीरथ सब करै,	भर्मविघ्नस ।	३४८,	६५
जप तप दीखै योथरा,	”	३४४,	२५
जप तप सजम साधना,	सुमिरन ।	१२७,	१०८
जप माला छापा तिलक,	भेष ।	८३,	४१
जप का माई जनमिया,	प्रियती ।	४३८,	२१
जप गुन को गाहक मिलै,	पारख ।	३५३,	१४
जप घट मोह समाइया,	मोह ।	३९३,	४
जप जागे तत्र नाम जप,	सुमिरन ।	१३३,	१६१
ज तू आया जगत में,	करनी ।	३६५,	२६

नम दिख मिला दयाठ सों,	परिचय ।	१४५,	८७
भ्रम मन लागे लोभ सों,	लोभ ।	३०२,	१
नम भे था तत्र गुरु नहि, जनीर नगराण्व में(३)परिचय ।		१४१,	४७
,, भे था तत्र गुरु नहि, प्रेम गला अति साधनी(३) प्रेम ।		१५४,	३९
नम रग था तत्र ना रगा,	चित्तदर्शी ।	१८७,	१५२
नमलग आस मरीर कौ,	खानतमृतक ।	३३२,	२१
जमग कथना हम कथी,	लगना ।	३६७,	१४
जमग घड पर सास हे, सूर कहारै कोय । मूरमा ।		२३१,	५३
,, ,, ,, मूरा कहिये नाहि । मूरमा ।		२३७,	११०
नमग नाता नातिना,	भक्ति ।	१०९,	२६
नमलग पिय परिचय नहौ,	परिचय ।	१४६,	९३
जमग भक्ति मराम है,	भक्ति ।	११०,	३६
नमलग राग समुद्र में,	पारम ।	३५८,	६५
जमगि आमा टह का,	भक्ति ।	११२,	५२
नमगि मगन में टरै,	प्रेम ।	१५६,	६०
जम हि नाम हिरदै धरा,	सुमिरन ।	११८,	७७
नम हा मारा मैचि क,	मतगुरु ।	२६,	६८
नम गरज मठ राव क,	गुरुदेव ।	११,	७८
नम जोरा तो हे नही,	सनायन ।	३३७,	१३
जम द्वार में दूत मर,	मतगुरु ।	७४,	५०
नमन जाय पुनारिया,	काल ।	२९९,	६४
नम आय नारा किया, पिय अपना पहिचान । काल ।		७०३,	१०
नम आय नारा भिया, नैनन दीन्हा पीठ । काल ।		,,	११
नम बुना नोयन मसा,	काल ।	२९४,	१७

जरा मोच व्याप नहीं,	मज्जावन ।	३३५,	१
नठ यो प्यारा माठर्यो,	भक्ति ।	११०,	२८
जठ थठ जात्र निने निते,	दानता ।	४३४,	६
जठ दाशा चींगठ नग,	त्रिपर्यय ।	२४६,	१०
जठ परमान माठरा	गुरदेव ।	१०,	५३
जठ में गेन ना ना चुरे,	त्रिपर्यय ।	२५०,	२३
जठ में वसे कमोदिनी,	प्रेम ।	१५७,	६७
जगे हमारा जीवना,	त्रिरह ।	१७०,	०८
नहर पराया आपना,	फलक कामिनी ।	२८६,	१०
नहें यह जियरा पगु धरे,	कर्म ।	४०८,	१४
जहें लग अमर हराम सत्र,	नशा ।	४१०,	२७
जहों आपा तही आपदा,	मद ।	३९५,	२
जहा काम नहा नामु नहि,	काम ।	३००,	१३
जहों चतुर की गम नहीं,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२७
” जराई सुदरी,	फलककामिनी ।	२०१,	५०
” जैसी मगति तेरे,	मंगति ।	९५,	५९
” दया वहें धर्म है,	दया ।	४३३,	१५
” न चिउट्टी चिट्टि सकें,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२२
” न जाको गुन लहै,	उपदेस ।	२००,	८०
” पुरप मत भात्र है,	बेहद ।	३३९,	२३
” प्रेम तह नम नहीं,	प्रेम ।	१५३,	३०
” वाज जामा करे,	मन ।	२७३,	८१
” भक्ति तहें भेष नहि,	भक्ति ।	११०,	३१
” लगि सत्र ससार है,	मोह ।	३९३,	५

जहा साक व्याप नहा,	वेहद ।	३३०,	१०
जा कारन जग हूँडिया,	व्यापक ।	३२६,	१५
” ” में जाय था, सो तो मिलिया आय । परिचय ।		१४४,	७६
” ” ” ” ” पाया ठौर । ”		”	७७
” ” हम जाय थे,	”	१४९,	१२७
जा कारन हम हूँटते,	भेद ।	३२०,	३३
” गुरु को तो गम नहीं,	गुरुपारख ।	३४,	२९
” ” ते भ्रम ना-मिटे,	”	३३,	२५
” घट प्रीति न प्रेम रस,	सुमिरन ।	१२८,	४६
” ” प्रेम न संचैरे,	प्रेम ।	१५३,	२९
” ” में संसे बसै,	साक्षीभूत ।	३२२,	३
” ” साई बसै,	”	”	१
” घर गुरु की भक्ति नहि,	संगति ।	९०,	१३
” ” साधु न संबहो,	साधु ।	६०,	६२
जा तन में विरहा बसै,	विरह ।	१७१,	१०४
” दिन किरतम ना हता,	परिचय ।	१४४,	७८
” ” ते जिव जनमिया,	दुख ।	४०५,	१
” पल दरमन साधुका,	संगति ।	९०,	११
” बन सिंघ न संचैरे, रहा कवीर समाय(४)परि० ।		१४३,	७२
जा मरना सो जग डैरे,	जीवतमृतक ।	३३२,	१०
जा सुख को मुनिवर रटे,	साधु ।	६१,	७५
जाका गुरु है आंधरा,	गुरुपारख ।	३१,	३
” ” ” गोरही,	”	३६,	४५
” ” ” लालचो,	”	३२,	११

जाका, ताकं दाजिये,	सूरमा ।	२३६,	१०१
जाकी गाठी नाम है,	सुमिरन ।	१२१,	५०
" थापी माड है,	निजकर्ता ।	३७२,	२६
" घोती अधर तपै,	साधु ।	७५,	१९३
" पृजी सास है,	सुमिरन ।	१३०,	१३८
" साचो सुरति "	साच ।	४३०,	११
जाके आगे इक कहूं,	दुख ।	४०५,	४
जाके चित अनुराग है,	प्रेम ।	१५९,	८९
जाके दिल में हरि वसै,	विश्वास ।	२१२,	२२
" मन विश्वास है,	"	२१०,	१
" मुँह माथा नहीं,	निजकर्ता ।	३७,	१०
" हिय साहिव नहीं,	गुरुपारख ।	३२,	१४
" सिर गुरु ज्ञान है,	गुरुदेव ।	१३,	६८
जाको आडा अन्तरा,	पारख ।	३५७,	५७
" जितना निर्मान किया,	कर्म ।	४०८,	१५
" राखै साइया,	समर्थ ।	३०६,	४७
जागन में सोवन करै,	सुमिरन ।	१३४,	१७५
जागो लोगो मत सुबो,	चितावनी ।	१८९,	१७५
जागृत जागृत साच हैं,	आत्मानुभन ।	३११,	१९
जाता है जिस जान दे,	काल ।	२९०,	६५
जाति जाति के पाहुने,	व्यापक ।	३२५,	३
" न पूछो साधु को,	साधु ।	५९,	५७
" वरन कुल स्वायंक,	भक्ति ।	११०,	३१
" हमारी आतमा,	प्रश्नोत्तर ।	४४३,	१५

जान भक्त का नित मरन,	भक्ति ।	१११,	३७
जानिके अनजान हुआ,	भेद ।	३१९,	१६
जानि बूझि मांची तर्ज,	संगति ।	९४,	४८
जानीता जब बूझिया,	गुरुपारख ।	३१,	९
जानीता बूझा नहीं,	"	"	४
जाने की तो गम नहीं,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	२१
जाप मर अजपा मर,	सुमिरन ।	१३१,	१५२
जाय झरोखे सोवता,	काल ।	३००,	७७
जाय पृछो उस धायलां,	सूरमा ।	२३०,	७०
जाय मर मो जीव हे,	चितावनी ।	१९०,	१८२
जाय मिल्यो परिवार में,	सतगुरु ।	२७,	८०
जाया जाया सब कहै,	काल ।	२९८,	५२
जारन हारा भी मुआ,	काल ।	२९५,	३१
जारि चारि मिस्मी करे,	काल ।	२९८,	५५
जाहि रोग उत्पन भया,	निजकर्ता ।	१७२,	३१
जाहु वैद भर आपने,	विरह ।	१६४,	३८
जितना अवगुन भै कित्या,	विरह ।	१७१,	१०६
जिन स्थाया सोई मुआ,	कनक कामिनी ।	२८८,	२६
जिन गुरु की चोरी करी,	चितावनी ।	१७९,	६९
जिन गुरु जैसा जानिया,	उपदेस ।	१९८,	६०
जिन घर नौबत बाजनी,	चितावनो ।	१८९,	१७३
जिन जेता प्रमु पाइया,	परिचय ।	१५०,	१२९
" हंडा निन पाइया, जो बपुरा डूबन डरा (३) उपदेस ।		१९९,	६१
" हंडा तिन पाइया, में बपुरा डूबन डरा(३)गु.शि.हं. ।		४१,	१९

जन नर साच पृष्ठानथा,	सांच ।	४३०,	१२
" पाया तिन सुगह गहा.	भेद ।	३२१,	४१
" पावन भुँइ बहु फिरा. तिन पावन थिति पकडिया(३)जो.	मृ.३३४,	६८	
" " " पिया मिलन जव होइया(३)परि. ।	१३५,	३	
" के नाम निसान हं,	काल ।	२९८,	६०
" के नीबत बाजतो,	चितावनी ।	१७६,	३९
" को साई रंग दिया,	माया ।	२८२,	४८
जिनमें जितनी बुद्धि है,	उपदेस ।	१९९,	६९
जिस कारन मै जाय था ,	मूखमार्गी ।	३७५,	११
„ नही कोई तिस हि तूं,	समरथ ।	३०२,	१८
जिसका गुरु है लालची,	गुरुपारम्भ ।	३२,	३२
जिसके कोई संग नहीं,	समरथ ।	३०३,	१९
जिसको रहना उत घरा,	चितावनी ।	१८२,	१००
जिहि जिबरी ते जग बंधा,	उपदेस ।	१९८,	१५९
„ वन सिध न संचैरे,	लगनी ।	३६७,	१५
जिहि विरिया साहिव मिले,	साक्षांभूल ।	३२२,	५
„ विधि सिपको मन बसै,	गुरुदेव ।	१४,	७८
„ सर घड़ा न बूडता,	विपर्यय ।	२४८,	१५
„ साई का सोच है,	विरह ।	१७०,	९९
„ सव्दे दुख ना लगे,	सद्व ।	२०९,	७९
जिन्या कर्म कठोटी, जो तीनों बस होय ।	स्वाद ।	४११,	१२
„ " „ तीनों गृह मे त्याग ।	„	„	११
जिन्या जिन बस में करी,	मद्व ।	२०९,	७९
„ सकर जीभ दुध,	„	२०७,	४५

जिम्या में अमृत प्रभे,	सम्भ । २०६, ४४
जीना गेडा ही भला,	सुमिरन । ११८, १६८
जीभ स्वाद के कृप में,	स्वाद । ४१०, ३
जीव अधम अति दुग्धि हं,	सतगुरु । २७, ७७
जात्र करम में जलि गया,	कर्म । ४०७, ५
" जीव मत्र एक हैं,	मासाहार । ४१६, ४६
" जन्तु जलहर वसे,	पिंवक । ४२१, ६
" दया चित राखि के,	उपदेस । १९३, १
" ब्रह्म व्यौरा नहीं,	ष्वक्ता । ३०५, १८
" मिलमा जीवसा, अलख ल्गो नहि जाय । निरह ।	१६८, ८१
" " " पिय जो लिया मिलाय । "	१६८, ८२
" हर्ने हिमा कर, निगम सुनी अस पापते(३)मा० ।	४१३, १५
" " " पाप सघन जो देखिया(३) ' ' ।	' १४
जीवन कोय समुझै नहीं,	उपदेस । १०८, ५७
" जीव कर्हो वसे,	प्रश्नोत्तर । ४४५, ५२
" " हिरद वसे,	" ४४७, ५३
" मिरनर हो रही,	पतिव्रता । २२१, ४७
" " है रूँ,	जीवनमृतक । ३३०, १
" में मरना भग,	" " २
जीवन जीवन रानमद	सगति । ९४, ५४
जूआ चोरी मुम्भिरा,	साधु । ७१, १५१
जूझन चाले मूरमा	मूरमा । २३०, १३२
जूझे तन कहेगे,	" २३१, १
जूझै ते नर झुपिया,	" २४१, १४०
" " भागिया,	" २४०, १४४

जे मूआ हरि हेत सुं,	सूरमा ।	२४०,	१३५
जे राते सतनाम सों,	सुमिरन ।	१३१,	१४४
जेता घट तेना मता, घट घट और सुभाव ।	उपदेस ।	१९६,	३८
” ” बहु बानी बसु भेष ।	व्यापक ।	३२५,	१
जेता नारा रैन का,	सूरमा ।	२३१,	५६
” मीठा बोलया,	भेष ।	८०,	१६
जेती लहरि समुद्र की,	मन ।	२७०,	५५
जेहि खोजत ब्रह्मा यके,	सतगुरु ।	२७,	७८
” घट जान विजान,	अविहड ।	३४१,	४
जैसा दूंदत मैं फिरूं,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१,	१५
” भोजन खाइये,	उपदेस ।	१९६,	३९
जैसा मीठा घृत पकै,	भेष ।	८४,	५६
जैसि तिलक उनहार है,	”	७९,	९
जैसी करनी आपनी,	करनी ।	३६४,	२०
” ” जासुकी,	”	३६३,	१३
” कथनी मैं कथी,	”	३६५,	२७
” प्रीति कुटुम्ब की,	गुरुदेव ।	१०,	५४
” मुख ते नीकसे, तैमो चालै चाळ ।	करनी ।	३६३,	१०
” ” ” ” ” नौहि ।	”	”	९
” लकडी ढाक की,	व्यापक ।	३२६,	१०
” ली पहिले लगा,	लगानी ।	३६६,	४
” ” प्रथम हि लगे,	”	”	६
” सेवा सिप करै,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३,	३९
जमे तम्बर योज में,	व्यापक ।	३२८,	२०

जैसे फनिपति मत्र सुनी,	सुमिरन ।	१२१,	५१
.. भाषा मन रै,	..	१२०,	४७
.. सती पिय भंग जेर,	गुस्शिष्यहेरा ।	४३,	३३
जैसे मूरज घूप मधि,	व्यापक ।	३२८,	३०
' स्याही अफ मधि,	व्यापक ।	"	३१
जो आरै तो जाय नहि, जैसे बूझी जाय(४) मूळमार्ग ।		३७६,	१२
जो आरै तो जाय नहि. समुझि छेहु मनमाहि(४) "		"	१३
" उगं. तो ब्रय में,	वेग ।	३५९,	९
" उगे मो आयमें,	काट ।	२९५,	३२
" औजार निधय विपा,	निवृत्ता ।	३७१,	१८
" कटु आरि महन में,	महन ।	३१३,	८
" कटु पित्या मो तुम पित्या,	ममरय ।	३०१,	६
" कटु करे विचारि के,	विचार ।	४२३,	१८
" कटु होय न कटु,	पारम ।	३५४,	२५
' करहुँ के देखिये,	कलक कामिना ।	२८९,	४१
" कर्मा अन्तर वसे,	कर्मा ।	३६३,	११
" काटे तो टहटहा,	वेग ।	३६०,	१२
" कामिनी परद रई,	मिगुरा ।	४७,	१०
" कोइ निन्दै माधु को,	निन्दा ।	३८५,	१४
" कोइ ममुक्षे सैन में, तामों कहिये सैन । उपदेस ।		१९८,	५८
" कोइ ममुक्षे सैनमें, तामों कहिये धार्य । परिचय ।		१३७,	२२
' कोइ सुमिरन अंग को, निमिवासर करे पाठ । सुमिरन ।		१३४,	१७९
" कोइ सुमिरन अंग को, पाठ करे मन छाय । ..		"	१७८
" कोय करे मो स्वारथी,	परमाथ ।	२४३,	

जो कल्पे तो दूरि है,	सहज ।	३१३,	७
" गर्भे सो गायना,	पतिव्रता ।	२२१,	४२
" गुरु पूरा हाथ	गुरुदेव ।	११,	७९
" छोट ता जाधग,	सगनि ।	०६,	६८
" जन गिरहो नाम क,	गिरह ।	१६८,	७८
" जन होइ है, नॉहरि,	सुमिरन ।	११८,	२५
" नल बाढे नात्र में,	उपदेस ।	२०१,	८६
" जाना सरन गहै,	समरथ ।	३०५,	४२
" जाकी बाही लंगो,	समरथ ।	३०६,	९१
" जाको नाटे,	मासाहार ।	४१६,	४७
" जानो गुन जानता,	प्रवृत्तिगुन ।	३८८,	१०
" जागत सो सपन में,	प्रेम ।	१५५,	४८
" जेसा उनमान वा,	पारख ।	३५३,	१३
" त पडा हे पदमें,	चिन्तायनी ।	१८९,	१६७
" तू पियर्का प्यारनी,	लगनी ।	३६७,	११
" तू प्यासा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३,	३२
" तू सेयक गुरन जा,	निन्दा ।	३८५,	१५
" तोको काटा बुने,	उपदेस ।	१९३,	५
" दिल दिल ही में रहै,	प्रेम ।	१५६,	५८
" दीसं सो त्रिनसिहै,	सतगुरु ।	२६,	७२
" देखा सो तीन म,	भेद ।	३२१,	३४
" देखै सो कहै नहीं,	"	३१८,	१३
" निगुरा सुमिरन करै,	निगुरा ।	४६,	१
" पकरं सो चले नहीं, करपद को तुम कहत हो(३) भे ।		३१९,	१५
" " " कहै कविर या साखिको (३)भेद ।			१४

जो बोले तो राम कहू,	सुमिरन ।	१२८,	१२०
॥ भावों तो भय नहीं,	साक्षात्भूत ।	३२२,	४
॥ मन लगा एक साँ, न्याय तमाचा, स्त्राय (४) चानक ।		३०८,	२०
॥ मन लागे एक सो, घना तमाचा स्त्राय (४) पति ।		२२०,	३१
॥ मन समझे ज्ञान में,	भेद ।	३२०,	२९
॥ मन में तो प्रद्व में,	वैली ।	३६०,	१०
॥ मैं मूल प्रिगारिया,	समरथ ।	३०४,	३१
॥ मानुष गृहि धर्म युत,	भेष ।	८४,	४९
॥ मूत्रा हरि हत में,	मग्ना ।	२४०,	१३६
॥ यह एक न जानिया,	पतिव्रता ।	२२०,	२७
॥ यह एकै जानिया,	"	२७०,	२८
॥ या घाटी लम्ही,	फलकस्तामिनी ।	२८६,	६
॥ यह एक न जानिया,	भेद ।	३२१,	३५
॥ विभूति साधुन तर्ना,	साधु ।	७०,	१४७
॥ साचा प्रिधाम है,	प्रिश्वास ।	२१३,	३०
॥ मिर मौपा साड को,	सूरमा ।	२३६,	१००
॥ सत्तनाम ममाय,	सतगुर ।	२९,	१०२
॥ है जाका भावना,	प्रेम ।	१५७,	६६
॥ हारों तो सेव गुरु,	मूरमा ।	२३३,	७३
॥ हसा मोता चुर्गी,	पारख ।	३५३,	१९
जोइ गहे निज नाम को,	सुमिरन ।	१३४,	१७६
जोड मिले सो प्रीति में,	प्रेम ।	१५६,	५७
जोग से तो जोहर भया,	सूरमा ।	२३२,	५९
जोगी जगम सेकडा, सन्यासी दरवेश ।	प्रेम ।	१५३,	३१
॥ ॥ ॥ ज्ञानी गुनी अपार ।	लोभ ।	३९२,	

जोगी हुआ झक लगी,	परिचय ।	१३५,	५
„ है जग जोतता,	आसातृस्ना ।	४०१,	१३
जोवन मित्रदारी तजी,	काल ।	२९३,	१२
जोर करी जिवह हे,	मासाहार ।	४१५,	३१
„ किये ते जुल्म हं,	„	„	३२
जारु गठन जगत की,	कनकनामिनी ।	२९०	४७
जोन चाल ममार को,	साधु ।	६६,	१२०
„ भाव ऊपर रहै,	„	६८,	१३४
„ मिला सो गुरु मिला,	मान ।	३९९,	३१
जगल डेरी राव को,	किताबना ।	१८१,	९७
जत्र मत्र सत्र झूठ है,	सब्द ।	२०७,	५०
ज्यो आप त्यों ही कहै,	विचार ।	४२३,	१२
ज्यो कोरी रेजा बुनै,	किताबना ।	११२,	१०२
ज्यो गूगा के सन को,	आमानुभव ।	३१०,	४
ज्यो नल में मच्छी रहे,	साधु ।	७६,	२००
ज्यो गुरु माभलें, लागे पन भागे नहों(३) मरमा ।		२३३,	७१
ज्यो गुरु गुन साभलों, साटी साटी झडि पडि (३) „		„	७०
ज्यो तिल मोहीं तेल हे,	व्यापक ।	३२५,	५
ज्यो नीनों में पूतली,	„	„	४
„ पय मध्ये धीव है,	साधु ।	५८,	४३
„ पथर में आगि हे,	व्यापक ।	३३०,	५०
„ बधूरा वाय मध्य,	„	३२८,	२७
„ प्रतिका घट फैन जल,	„	„	२८
„ मृतिना घट मध्य में,	„	३२७,	२६

ज्यों मेरा मन तुझ सों,	प्रेम ।	१५५,	४६
„ ही एकै महल में,	व्यापक ।	३२७,	२४

झ

झल वेंये झल दाहिन,	दुख ।	४०५,	६
झारी फाँसी कृप में,	आत्मानुभव ।	३११,	१५
झालि उठी शोली जला,	निपर्यय ।	२४६,	७
झिरमिर झिरमिर बरधिया,	निगुरा ।	४८,	१५
झीनी गाया जिन तना,	माया ।	२८१,	३५
झूठ बात नहि मोरिये,	साच ।	४३१,	१८
झूटा सत्र ससार है,	चितानना ।	१८५,	१३४
„ सुख को सुख कहै,	काल ।	२९३,	४
झूठे को झूठा मिले,	साच ।	४३१,	१९
झूठे गुरु के पक्ष को,	गुरुपारख ।	३४,	२६

ञ

ठीला ठीली बाहि क,	सद्व ।	२०६,	३७
टूका माँहीं टूक दे,	साधु ।	५६,	२६
टेक करै सो जानरा,	निगुरा ।	४९,	३१
टेक न कीँनै बारै,	„	„	३०

ड

डग डग पै जो डर करे,	दासातन ।	१०६,	२५
डर करनी डर परम गुर,	चिताननी ।	१८४,	१२६

ढाल जाँ दृष्ट मूल को,	गुरुशिष्य० ।	४२,	२५
डाण भई है मूल तें,	"	"	२६
हुवकी मारी समुद्र में,	जी०मृतक ।	३३१,	८
हूना औघट ना तरे,	सनगुरु ।	२९,	९४
हारा लागी भय मिटा,	विद्याप्त ।	२१०,	२०

४

ढालें हूँ दिन गया,	काल ।	२९३,	७
ढाल दमामा गडपटी,	साधु ।	६८,	१३०
" " दूरपरी,	चितायना ।	१७३,	४०
" " प्राजिया,	सती ।	२१४,	२
टिंशली का नमना कहा,	कपट ।	४०३,	८

५

तकत तमापत रहि गया,	भर्मीनि रस ।	३४७,	५४
तज काग की देह-	सुमिरन ।	१२५,	८८
तत दरमा जो होय,	सतगुरु ।	२०,	१०३
तन प्राया तन बीसरा,	परिचय ।	१३०,	३४
तस्त तले की सो जूहे,	गुरु पारग्व ।	३७,	५६
तत समाना तत में,	निपथय ।	२६१,	६३
तत्त तिलक का खानि है,	भेष ।	७०,	४
तत्त तिलक तिहुँ लोक में,	भेष ।	"	३
तत्त तिलक माथे दिया,	भेष ।	७२,	६
तत्त हि फल मन तिलक ह,	भेष ।	"	६
तन तुंग असवार मन,	मन ।	२७३,	८०
तन विर मन विर वचन विर,	सुमिरन ।	१३१,	१५१
तन दिखलाये आपना,	प्रेम ।	१५७,	६८
	३६ गण		

तन माहा, नो मन रे,
 तन समुद्र, मन मरजीया,
 तन मराय मन पाहण्ण,
 तन मदूक मन रतन हे,
 तन ज्ञा इन्द्रा मेल हे,
 तन का पैरा कोद नहि,
 तन का मनन नीर हे,
 तन की पाने मन की जाने,
 तन कृ मन मिटना नहा,
 तन को जांगो सत्र वर,
 तन में सात सत्र हे,
 तन हि नाप निरको नही,
 तन मन जोवन जरि गया,
 तन मन जोवन जरि कर,
 तन मन जोवन नारिके,
 तन मन जोवन यो नला,
 तन मन ताको दीनिये,
 तन मन दिया जु आपना,
 तन मन दिया जु म्या हुआ,
 तन मन दिया तो भन्निया,
 तन मन लजा ना रहे,
 तन मन सीम निठारैर,
 तनही गुरु प्रिय तैन कही,
 तन मन सीम न पाइये,

मन ।	२७१,	६२
जीवतमृत्नरु ।	३३१,	१२
चिनामना ।	१८३,	१०९,
पागव ।	३५३,	१२,
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३१,
मन ।	२७६,	११४
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३०,
समग्र्य ।	३०६,	५४
मन ।	२७६,	११३
भय ।	८७,	३७
साधु ।	६८,	१३५
साधु ।	७३,	१७२
गिरह ।	१६९,	८६
गिरह ।	,,	८८
गिरह ।	१६४,	४९
गिरह ।	१६५,	४९
गुरुदेव ।	१०,	५१
सनगुरु ।	२५	५९
सतगुरु ।	,,	५८
गुरुदेव ।	१०,	५०
, काम ।	३९१,	२१
गुरुदेव ।	१४,	७५
गुरुदेव ।	१४,	७६
व्यापक ।	३९९,	३४,

तरुवर जड सँ काटिया,
 तरुवर तासु मिलविया,
 तरुवर पात सों यों कहै,
 ताको लच्छन को कहै,
 ताजी छटा सहर ते,
 ताते सब्द निवेक कर,
 तारा मटल वैठि के,
 तिनका वरहु न निन्दिये,
 तिमिर गया रनि देखते,
 तिल के ओटैं राम हं,
 तिल भर मडली खाय के,
 तिल समान तो गाय है,
 तीखा सुरति कभीर की,
 तीजे चौथै नहि करै,
 तीन गुनन की ग़दरी,
 तीन गुनन की भक्ति में,
 तीन ताप में ताप है,
 तीन देव का सब कोइ ध्यायै,
 तीन लोक उनमान में,
 तान लोक चोरी भई,
 तान लोक नी खड में,
 तीन एक सब राम जपत,
 तीन गेर हँ देह में,
 तीन सनहों ग़हु मिले,

- सगति ।	९८,	७९
सजीवन ।	३३७,	१४
काल ।	२९५,	२६
आत्मानुभ्र ।	३१०,	६
काल ।	२९७,	५०
गुरुदेव ।	१४,	७३
चानक ।	३०७,	१०
निन्दा ।	३८५,	११
भक्ति ।	११२,	४८
व्यापक ।	३२७,	१८
मासाहार ।	४१३,	१७
प्रियय ।	२४५,	६
परिचय ।	१५०,	१३१
साधु ।	५४,	१०
प्रियय ।	२५०,	२४
निजकर्ता ।	३६९,	३
उपदेश ।	२००,	७८
निजकर्ता ।	३७१,	१७
साधु ।	६८,	१३६
मन ।	२७२,	७७
गुरुदेव ।	१३,	६३
निजकर्ता ।	३७१,	२१
सतगुरु ।	२८,	८७
गु शि. हे.	४१,	१४

तीर तुपक सों जो लडै, सो तो सूर न होय । सूरमा ।	२२८,	२३
तीर तुपक सों जो लडै, सो तो सूर नाहि । ”	”	२४
तीरय कांटे घर वरै,	भर्मविध्वंस ।	३४५, ३०
तीरय चाले दुइ जना,	भर्मविध्वंस ।	३४४, २७
तीरय न्हाये एक फल,	साधु ।	६१, ६८
तीरय व्रत करि जग मुखा,	भर्मविध्वंस ।	३४४, २६
तुम गुरु दोन दयाल हो,	विनती ।	४३८, १८
तुम तो समरथ साइया,	समरथ ।	३०३, २२
तुम मति जानो बाँहुरे,	प्रेम ।	१५८, ७७
तुम्हें विसारि क्या बने,	समरथ ।	३०४, २९
तुरक मसीने देहरे हिन्दू,	भर्मविध्वंस ।	३४४, २२
तूटै बरत अकास सों,	साधु ।	६८, १३१
तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय । सुमिरन ।		१२९, १३३
” ” ” तुझमें रही न हूँय । सुमिरन ।	”	१३०
तू तू करू तो निकट है,	सेवक ।	१००, ८
तू मति जानै बाबरे,	चितावनो ।	१८३, ११६
तू मति जानै बीसरो,	विरह ।	१६७, ६७
तृस्ना मीचो ना / वुझै,	आसावृत्ना ।	४०२, २४
ते दिन गये अकारथी,	संगति ।	९०, १२
ते मन निरमल सत खरा,	गुरुदेव ।	१५, ८६
तेजपुंज का देहरा,	परिचय ।	१४७, १०६
तेरा तुझ में कछु नहीं,	विनती ।	४३७, १६
तेरा बैरी कोई नहीं,	कर्म ।	४१०, २९
तेरा भाई तुझ में,	व्यापक ।	३२६, ११

तेरि ज्योति में मन धरा,	मन ।	२७६,	२१६
तेरे जदर साच जां,	साच ।	४३०,	१४
तेरे प्रिन जोर जुन्म हे,	समरथ ।	३०२,	१५
तेरे हिरदे राम हे,	भर्मनिश्चय ।	३४८,	५८
तेल तिली सों ऊपजै,	सगति ।	९९,	८८
तोष्टै में भक्ति करे,	भक्ति ।	११२,	४९
तोळ वरार घृघची,	कसोटो ।	३७४,	६
तोहि पार जां प्रेम की,	सगति ।	९४,	९०
प्रिकुटो हि निजमूल ह,	शेष ।	७९,	७
प्रिया कृतघ्नी पापिनी,	कनक कामिनी ।	२९२,	६३
त्यो ही एकै ब्रह्म ते,	एकता ।	३२५,	१७

थ

थलि जो धरता भिरगला,	चिन्तामनी ।	१८२;	९९
थापन पाई थिर भया,	सतगुरु ।	२५;	६२
थिति पाई मन थिर भया,	मतगुरु ।	"	६५
थोडा सुमिरन बहुत सुख,	सुमिरन ।	१२७,	१०९
थोडे ही सों छात्रिया,	रस ।	२६३;	११

द

दया का लच्छन भक्ति है,	दया ।	४३३,	१८
" फोन पर कीलिये, हम तो भये तमासगी(६) "		४३२,	२
" गुरु " धाई के सज जीन हैं(३) "		"	३
" गरीबी बदगी,	साधु ।	७२,	१६७
" दीनता, मुमता सोळ बरार भक्ति ।		११४,	६९

दया दया मत्र कोइ नहै	दया ।	४३३,	१९,
धर्म का मूल है,	'	५३४,	२२
,, मात्र हिरदै नहीं	"	४३१,	१
,, सत्र त्रि पर कानिये,	, "	४३३,	२०
दयात्रत धरमक धना, माधु परम सुजान(४) साधु ।		६५,	११०
, " " सत्र परम सुजान(४) सत्रक ।		१०२,	२७
दरद न लै जात का,	चिनामना ।	१८९,	१७१
दरसन कीजे माधु का,	माधु ।	५३,	५
" का तो माधु है,	दानता ।	४०५,	१४
दरिया मये लहर यौं,	व्यापक ।	३२८,	३३
,, माहा सोप ह,	परिचय ।	१४८,	११५
दत्र लागी दरियात्र में, उठा अपर बल आग ।	त्रिपर्यय ।	२६०,	५९
" " नदिया मोइला होय ।	,	"	१८
दमो टिना स कोष का,	त्राघ ।	३०१,	४
दाग तु लागी नात्र ना,	मगति ।	९४,	५२
दाही मठ मुंडाय के,	भय ।	८१,	२०
दाना क ता धन घना,	पतित्रना ।	२२१,	४०
,, दाना चरि मये,	दया ।	४३३,	१७
,, नदिशा एक सम, ।	करना ।	३६४,	२३
,, नरक सम त्रैकुटे,	त्रिपर्यय ।	२५१,	२७
दाघ कलापा मत्र दुर्गा, का पुत्र का वाधया(३)दया ।		४३२,	६
" " , जेहँ जेहँ भक्ति बबोरका(३) ।	"	"	७
दाया द्रि में रादिये,	,	"	४
दाह मय, यौं पुतरी,	व्यापक ।	३३७,	२५

न्दारुक म पावक वसै,	निगुरा ।	४७,
दारु के पावक करै,	"	४९,
" तो सब कोइ "	सद्द ।	२०४,
दाँवै दाइन होत है,	रस ।	२६४,
दास कविर काढी भली,	मध्य ।	३१४,
" कहावन कठिन है, जबलग दूजी आन । दा० ।		१०६,
" " " मैं दासन का दास । "	"	"
" दुखी तो मैं दुखी,	"	१०५,
" " हरि "	"	"
दासातन हिरदै नहौं,	"	१०४,
" " वसै,	"	१०५,
दामी केरा पूत जो,	निगुरा ।	५२,
दिल लगा जु दयाल सौ,	परिचय ।	१४९,
" हि पर जो दिल मिलै,	कपट ।	४०३,
" ही में दोदार है,	सतगुरु ।	१७,
दीठा है तो कस कहूं,	भेद ।	३१८,
दीन गरीबी दीन को,	दीनता ।	४३४,
" " वंदगी, सब सौ आदरै भाव । "	"	"
" " साधुन सौ आधीन । दीनता ।		४३४,
दीन गेवायो दुनी संग,	चितावनी ।	१८३,
" लखै मुख सवन को,	दीनता ।	४३४,
दोन्ही खांड पढ़कि कर,	माया ।	२८२,
दीप कुं शोला पवन है,	मद ।	३९५,
दोपक जोया ज्ञान का,	परिचय ।	१४३,
" शोला पवन का,	कनककामिनी ।	२९१,

शोषक दीन्हा तेल भरि,	मतगुरु ।	२४,	५३
” पायक आनिया,	गिरह ।	१६९,	२०
” सुदर देखि कै,	काम ।	३९०,	१०
दुख खडन भय मेटना,	भक्ति ।	११४,	६५
” नहि था सप्पार में,	दुःख ।	१२८,	१२२
” में खुमिरन सत्र करे,	सुमिरन ।	४०७,	१९
” लैन जाये नहीं	कर्म ।	२०,	२४
” सुख एक समान है,	साधु ।	६५,	१०४
” मिर ऊपर सहे,	दामालन ।	१०३,	२
दया देऊ ता दोऊम जाऊ,	मन्य ।	३१५,	१६
दनिया क घोखे मुआ,	चिन्तामनी ।	१८०,	८६
के में वखु नहीं,	चिन्तामनी ।	१८०,	८४
” खन पडि गई,	साधु ।	७०,	१४८
” भांडा दख रा,	चिन्तामनी ।	१८०,	८३
” सेना दामतां,		१८०,	८५
दना कहै में दो रगा,	कर्म ।	४१०,	२८
दुग्धिवा नाक मन उस,	भर्मिप्रियन ।	३४७,	४२
दुर्नम की वरणा बुरी,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	७
दुर्ल को न सताइये,	उपदेश ।	१९३,	६
दक्ख महल को ढाहन,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	५
दूजा होय तो बोलिये,	आमानुभव ।	३१२,	२४
दूजे श्रुपि मुनिर फेंमे,	मोह ।	३९३,	८
दूजे दिन नहि करि मकै,	साधु ।	५४,	९
दूध त्यागि रक्त हि गहै,	असारमाही ।	३५१,	६

दूध दूध सत्र एक है,	भेष ।	८६,	७४
दूध फाटि घृत कलौ गया,	प्रश्नात्तर ।	४४२,	२०
दूध फाटि घृत दूध भिगा,	"	"	२१
दूर भया तो क्या भया सत्गुरु मेला होय । मूरमा ।		२३७,	१०८
दूर भया तो क्या भया, सिर दे नियरा होय । "		"	१०७
दृष्टि मुष्टि जात्र नहीं,	साधु ।	७८,	२१८
देखा देखा पत्रडिया,	भक्ति ।	१११,	४४
देगा देखा भक्ति का,	"	४११,	४३
देखा देखी सत्र कहे,	सुमिरन ।	१३२,	१५५
दम्बा दम्बा सुर चडे,	मूरमा ।	२३६,	१०३
देखो करम करार का,	परिचय ।	१४७,	१०८
देगन देगन दिन गया,	निरह ।	१६६,	६२
देगन ही दह में पडे,	वलकल्कामिनी ।	२८९,	४०
देगन का सत्र कोड भला,	चानक ।	३०७,	११
देगन सरिगी मात है,	नितप्रता ।	३७३,	४१
देगन ही की बात है,	एकता ।	३२४,	११
दनेहारा राम है,	सतोष ।	४२८,	७
देगन मांही देहली,	परिचय ।	१३९,	३७
देरि देर माने मरी,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२३
देरि देव ठाढे भये,	"	"	२४
देरी घडा न देगना,	गुरुदेव ।	१३,	६९
देम दिमतन में फिर,	गुरुशिष्यहरा ।	४४,	४२
देह गेट हो नायगी,	उपदेम ।	१०४,	१६
दह धरे का गुन देही,	"	१९४,	१३

का टट है,
 देह निरतर देहरा,
 देह मय ज्यों अग हैं,
 देही भौलि विदेह है,
 दोनम्य हमहीं जगेनिया,
 दोष बरसन नहि करि सकी,
 दोष पराया देनि करि,
 दोड़ आय मो दौटनी,
 दौट घुप छोड़ो समी,
 दौडत दौडन शीलिया,
 दण्डनत गोविंद गुर,
 हादम निष्क बनावहीं,
 द्वार धनी के पडि रह,

दुख ।	४०६,	१२
भर्मविषम ।	३४८,	५९
व्यापक ।	३२८,	३४
वेहद ।	३४०,	२०
पतिव्रता ।	२२२,	५३
साधु ।	५४,	७
निन्दा ।	३८५,	१०
सतगुरु ।	२७,	८३
भद ।	३२१,	३६
मन ।	२७०,	५६
गुरुदेव ।	३,	२
मेघ ।	८०,	११
सेनक ।	१०१,	१७

ध

घड मै नाम अतारि के,
 घन घन मिय की सुरनिर्कुं,
 घन घन साई त बडा,
 घन गहूँ न नोत्रन रहे,
 घन मो माता सुदरो,
 घनुक वान की चोट हे,
 धरति गगन परनै नहीं,
 धरति समानी अधर में,
 धरति हती नहि पग धर,
 धरती और अकास में,

मूरमा ।	२३१,	४९
गुरुशिष्यदेरा ।	४४,	४५
समारथ ।	३०२,	११
परमारथ ।	२४३,	८
साधु ।	६२,	८४
मूरमा ।	२४०,	१४०
परिचय ।	१४४,	१८१
विषय ।	२५५,	४५
परिचय ।	१४४,	८२
मय ।	३१५,	१०

धरती अत्र जायगे,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४६
धरती अबर ना हता,	पटित ।	३८१,	१२
धरती करते एक पग,	काल ।	२९७,	४८
धरती तो राटा भई,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४२
धरती फाट मघ मिलै,	मन ।	२७४,	९५
धरन अकासा धरहरै,	मूरमा ।	२३८,	१२३
धरि गिरिवर करता किया,	भर्मिघ्नस ।	३४३,	१७
धरिया कू धोजू नहा,	पतिव्रता ।	२१८,	१६
धर्म क्रिये धन ना घट,	उपदेस ।	१९५,	२०
धर्मराय दरवार में,	समर्थ ।	३०५,	४०
धारा तो दोनी भर्खा,	धेष ।	८७,	८०
धीर पवन धरती तस,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	२७
धीरज तो रोटी भई,	"	४४४,	४३
धीरज बुधि तत्र जानिये,	धीरज ।	४२५,	९
वीरा हू धमका सहै, ज्या अहरन सिर घान ।	„	४२४,	३
„ „ ज्या अहरन का घान ।	मूरमा ।	२४०,	१३९
धीर धीरे रे मना, माळा सींच केमडा (३) धीरज ।		४२४,	१

न

तमग वैत तत्र जानिये,	भर्मिन्वत्त ।	३४८,	५७
नमन नमन बहु अन्तरा,	कपट ।	४०३,	१०
नमन नैरा तो क्या हुआ,	" "	" "	९
नर नारायन रूप हैं,	चितामनी ।	१९०,	१८४
नर नारायन होत हैं,	चानक ।	३०९,	२८
नर नारी के मूस को,	आत्मानुभव ।	३१०,	५
नर नारी सत्र नरक हैं,	सुभिरन ।	१२८,	१२१
नर पशु गुरु पशु वेद पशु,	भिचार ।	४२४,	२२
नर मूसख ते स्त्र भन्दा,	मान ।	३९८,	२८
नरक स्वर्ग ते में रहा,	मध्य ।	३१४,	७
नदिया जली कोइला भई,	विपर्यय ।	२४७,	१३
नलिनो सायर घर किया,	" "	२५१,	२९
नहि कागड नहि लेखिनी,	पडिन ।	३८१,	११
" देनी " देन है,	वेहद ।	३४०,	२५
" सागर संसार "	" "	" "	२७
नहीं दीन नहि दानना,	दीनता ।	४३४,	७
" हाट " बाट था,	परिचय ।	१४४,	८९
ना कछु किया न करि सका,	ना कछु करने जोग । सम० ।	३०१,	८
" " " नहि करने जोग सरार । "	" "	" "	५
ना मूआ ना भरि गया,	चितामनी ।	१९०,	
" में छाई छापरी,	परिचय ।	१५०;	१३२
नागिन के तो दीय फन,	कनककामिनी ।	२९१,	५३
नाचै गावै पद कहै,	चानक ।	३०७,	३

नाद नहीं था रिंदु नहीं था, सद् कहा ते आया (४) प्र०। ४४६,	५८
” ” ” ” सुन्नते आया(४) ” ”	५९
नाद रिंदु ते अगम अगोचर,	निज-कर्ता । ३६९, २
नादी विंदी रहु मिले,	गुरुपारख । ३७, ५५
नाभि कमल ते उद्यत है,	प्रश्नोत्तर । ४४०, ६
नाम अनन्त जो ब्रह्म का,	एकता । ३२४; ८
” अमल को छोड़िके,	नशा । ४२०, ३१
” करन नाना भये,	सूरमा । २४०; १३८
नाम कृल्हाडी कुमुधि वन,	” २२७, ९
” जपत कन्या भली,	सुमिरन । ११६, ८
नाम जपत कुष्टी भला,	सुमिरन । ११६, ७
नाम जपत दरिद्री भला,	” ११६; ९
” जपै अनुराग	” १३२, १५९
” जो रती एक है,	” ११६; ६
” धराया दास का,	दासातन । १०५, १३
” धरावे ” ” ”	” ” १४
” न जानै गोंध का, पींठे लगा जाय ।	लगनी । ३६८, २१
” ” ” विन जानै कहौ ”	सूक्ष्ममार्ग । ३७६, १५
नाम न रटा तो क्या हुआ,	पतिव्रता । २१९; १७
नाम नाम सब कोइ कहै,	सुमिरन । ११५, ३
नाम पियु का छोड़ि के,	सुमिरन । ११६, ११
नाम त्रिना बेकाम है,	सुमिरन । ११५, ४
नाम भजो मन बसि करो,	उपदेस । १९९, ६६
नाम रटत अस्थिर भया,	सुमिरन । १३२, १५६

नाम रत्न धन पाय कर,	सुमिरन ।	११५,	१
नाम रत्न धन संत पहुँ,	सुमिरन ।	"	२
नाम रत्न सो पाइ है,	सुमिगन ।	'	५
नाम रसायन प्रेम रस,	प्रम ।	१५५,	५०
नाम लिया निन सत्र खिया,	सुमिरन ।	११६,	१०
नाम सांच गुरु साच है,	सुमिरन ।	१३३,	१६९
नाम हिरा धन पाय्या,	पारम ।	३५८,	६७
नारद सरिखा सीप हं,	गुरुदेव ।	१६,	९०
नारि कहारि पीप की,	विभिचारिन ।	७२३,	९
नारि नमोने तीन गुन,	कनक कामिनी ।	२८७,	१४
नारि पराई आपना,	कनक कामिनो ।	२८६,	९
नारि पुरुष की इस्तरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	२१
नारि पुरुष मत्र ही सुनो,	कनक कामिनो ।	२८८,	२५
नारो कह कि नाहरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	१६
नारा काली ऊनला,	कनक कामिनो ।	२९१,	५८
नारी का झाई पडत,	कनक कामिनी ।	२८६,	८
नारी कुडो नरक का,	कनक कामिनो ।	२८७,	२३
नारी केरे राचने,	कनक कामिनी ।	२८८,	२४
नारी नरि न जोरिये,	कनक कामिनो ।	२८७,	२२
नारी नदिया मारखी, औ जो प्रगटे काल । क० का० ।		'	२०
नारा नदिया मारखा, वही अबरवल पूर । क० का० ।		'	१९
' नदी अथाह शल,		'	१५
नारी नरक न जानिये,	"	२९२,	६०
नाहीं जम अहै,		२८७,	१८
" नाहीं नाहरी,		'	१७

नारी निरखि न देगिये,	कनककामिनी ।	२८७,	१३
" मदन तलापडों,	"	२९१;	५९
" सेती नेह,	"	२८८,	२७
नान्हा काती चित दे,	चितामनी ।	१८३,	१०८
निगुनै गोंय न ग्रासिये,	सगति ।	९६,	७०
निगुरा ब्राह्मन नहि भला,	निगुरा ।	५२,	६०
निज आसन सन्तोष में,	सतोष ।	४२८,	५
" मत सतगुरु पाश,	सतगुरु ।	३०,	१०५
" मन तो नीचा किया,	गुरुदेव ।	१०,	४९
" " माना नाम सों,	"	"	४८
" सुख आत्म राम है,	सुमिरन ।	१२८,	११९
" स्वार्थ के कारण,	स्वार्थ ।	२४२,	२
निशर झरे अनहद रज,	सद्म ।	२०४,	१६
निघटक बैठा नाम प्रियु,	चितामनी ।	१७६,	४८
निमल सत्रल जो जानिके,	निजकर्ता ।	३७०;	१२
निरजानी सों कहिये कहा,	आत्मानुभव ।	३१२,	२५
निरवधन कथा रहै,	दासातन ।	१०४,	१०
निरमल गुरु के नाम सों,	भर्षनिघ्नस ।	३४५;	३१
" ठाडै मल गहे,	असारग्राही ।	३५१;	१०
" भया तो क्या भया,	जीवतमृतक ।	३३४,	३७
निरतर वासी निरमला,	बेहद ।	३३९;	१५
निराकार तिजरूप है,	साधु ।	५६,	२८
निरालम की खोज में,	बेहद ।	३४१;	३६
निर्पञ्ची की भक्ति है,	भक्ति ।	११२,	४९

निर्वैरी निह कामता,	साधु ।	६५,	१०७
निश्चय निर्धा मिलाय तत,	सतगुरु ।	२५,	६४
” काल गरामहो,	काल ।	२९६,	३३
निस दिन एकै पलक हा,	सुमिरन ।	१३३,	१६७
” ” दाञ्जै त्रिरहिनी,	विरह ।	१६५,	४८
निसरा पै विसरा नहीं,	साधु ।	७०,	१४६
निसि अधियारी कारनै,	निगुरा ।	४६,	७
निसर ह्वे रन में रहे,	मूरमा ।	२३०,	४४
निहकामा निरमल दसा, नित चरमों की आस । दा० ।		१०६,	२६
” ” पकडे चारों खूट । साधु ।		७५,	१८७
निहचल भर अरु दृढ मता,	”	६५,	१११
निहचिन्त ह्वे करि गुरु भने,	मन ।	२७१,	६८
नीचै नीचे सत्र निरे, निहि तिहि प्रहुत अधीन । दी० ।		४५,	११
” ” सत चरन छीलोन । दीनता ।	”		१०
नीर कबीर अलेख मिलि,	परिचय ।	१४७,	१०३
” भया तो क्या भया,	जीवनमृतन ।	३३४,	३६
” मय्य यौं बुद बुदा,	व्यापक ।	३२८,	३७
नीलकठ काडा भखे,	साधु ।	६१,	७२
नेत्र त्रिहुना देहरा,	परिचय ।	१३९,	३६
नेह निगहै ही रनै,	प्रेम ।	१-१७,	७३
” निभावन कठिन है,	”	१५८,	८३
नेन समान धैन में,	आत्मानुभव ।	३११,	१४
” हमारे बागरे,	विरह ।	१६७,	६५
ननन तो बडि लाव्या	”	१६५,	५२

मैनों अतर आत्र तू, निमदिन निरखु तोहि । त्रिहृ ।	१६६;	६४	
” ” ” नैन ज्ञापि तुहि लेय । पतिव्रता ।	२१८,	१२	
” काजल देयके, कनककामिनो ।	२८८;	३१	
” को करि कौठडी, प्रेम ।	१५६;	५९.	
’ , माहीं मन उम, प्रश्नोत्तर ।	४४२;	१९	
नौ मन मूल अरक्षिया, विचार ।	४२२;	११	
” सत सान सुदरो, विभिचारिन ।	२२४,	१३	
नौन गला पानी मिला, परिचय ।	१६७;	१८	
निन्द निसानी मीचरी, सुमिरन ।	१२३;	७७	
निन्दक एकहु मति मिलो,	निन्दा ।	३८४;	१
” ते कृता भला,	” ”	”	२
” नो हं नाक त्रिनु, निमदिन त्रिष्टा खाहि ।	”	”	४
” ” ” सोहै नक्वटो माहि ।	”	”	३
निन्दक दूर न कीनिये,	निन्दा ।	३८४;	६
” नियर राखिये,	”	”	५
” हमरा जनि मरो,	”	३८५;	७
” न्हाइ गगन कुररोत,	”	३८६;	२२
निन्दा कीजे आपनी,	”	”	१८
” हमरो जो करै,	”	”	२४
न्हाये धोये क्या भया,	भर्मदि प्रस ।	३४५;	२८

प

पच्छी उडानी गगन को,	त्रिपर्यय ।	२४७,	११
पदा पर्वाहा सुस्सरी,	पतिव्रता ।	२२२;	४७

पटत गुनन रोगी भये,	पटित ।	३८३,	२६
पटते गुनते जनम गयो,	पडित ।	"	२९
पटना गुनना चानुरा,	उपदेस ।	१९९,	६४
पटा गुना सीखा सभी,	भर्मात्रि-वस ।	३४७,	५६
पडि पडि और समुझाउड,	पडित ।	३८३,	३०
पटि पडि केपय्यर भये, लिखि २ भये जो ईट । उप० ।		१४९,	६५
पटि पटि के समुझाउडे,	वरनी ।	३६७,	१६
पडि पडि तो पय्यर भया, लिखिर भया जा चोरा प० ।		३८१;	५
पडी गुनी पाटका भये,	पटित ।	३८२,	२४
पडी गुनी त्रासन भये,	पडित ।	३८३,	२५
पडे गुने सत्र वद का,	पडित ।	"	२७
पडे गुने सीखे चुने,	पटित ।	३८१,	६
पट पटावे कडु महा,	पटित ।	३८२,	१९
पतिभरता ऐसी रहै,	पतिव्रता ।	२१८,	८
पतिभरता क एक तू,	पतिव्रता ।	"	१०
पतिभरता क एक हे,	पतिव्रता ।	२१७,	१
पतिभरता को मुख घना,	पतिव्रता ।	'	२
पतिभरता तत्र जानिये,	पतिव्रता ।	२१८,	७
पतिभरता तो फिर भजे,	पतिव्रता ।	'	११
पतिभरता पतिको भजे, और न आन सुहाय । "		२१७,	६
पतिभरता पति को नभै, पति भनि धरि सिखास । "		"	५
पतिभरता मैगी भली, काली कुचठ कुरूप । "		२१७,	३
पतिभरता मैला भली, गले काच की पोत । पतिव्रता ।		'	४
पतिभरता व्यभिचारिनी,	पतिव्रता ।	२१८,	९

पद गावै मन हरषि के,	चानक ।	३०७;	१२
पद गावै लौलोन है,	विश्वास ।	२११;	१६
पद जोरै साखी कहै,	कथनी ।	३६१;	१४
पन छूटै छूटा फिरै,	विभिचारिन ।	२२५;	२५
पपिहा को पन देखि कर;	पतिव्रता ।	२२२;	४९
पपिहा तो पिय पिय करै,	प्रेम ।	१५९;	८७
पपिहा पन को ना तजै,	पतिव्रता ।	२२२;	४८
पप्पा सौं परिचय नहीं,	पारख ।	३५६;	४८
परगट कहूं तो मारिया,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३२
परदे रहता पदमिनी,	चितामनी ।	१८६;	१४०
पय पानी की प्रीतडी,	मन ।	२७१;	६३
परदेसों खोजन गया,	पारख ।	३५७;	५५
परनारी का राचना,	कनककाभिनी ।	२८९;	३६
” के राचने,	”	”	३५
” पर सुंदरा,	”	”	३८
” पैनी छुरी, कजह छेडि न देखिये(३)	”	”	३३
” ” ना वह पेट सचारिये(३)	”	”	३४
” ” मति कोइ करो प्रसंग ।	”	२८८;	३२
” राता रहै,	”	२८९;	३७
परमत परवत में फिरा,	साधु ।	६२;	७७
परमारथ पाको रतन,	परमारथ ।	२४३;	१
परमेश्वर ते सत बड,	साधु ।	६१;	७१
परारब्ध पहिले बना,	कर्ष ।	४०८;	१६
परन नहीं पानी नहीं,	परिचय ।	१४०;	३८

पसु को होती पनहिया,	करनी ।	३६५;	२८
पसुवा सों पानी पर्यो,	निगुरा ।	४८;	१८
पहिले माका खसम भया,	निपर्यय ।	२५६;	४९
पहिले अगनि विरह की,	विरह ।	१७१;	१०५
” दाता मिष भया,	गुरुदेव ।	५;	१६
” पट पासै विना,	संगति ।	९५;	६४
” प्रेम न चामिया, चाखि न लीया स्वाद ।	प्रेम ।	१५३;	२७
” ” मुक्ति निरासी आय ।	” ”	”	२८
पहिले फटके छाज के,	भारग्राही ।	३४९,	३
” सुरा कमाय के,	गुरुदेव ।	१३,	६५
” बूडी पिरगरी,	भेष ।	८३,	३९
” यह मन काग था,	मन ।	२७०,	५८
” राखि न जानिया,	”	२७६,	१०७
” सेर पर्याम का,	प्रवृत्तिगुन ।	३८७,	१
” मद्र पिठानिये,	पारस ।	३५२,	३
पहुँचेंगे तत्र कहेंगे, अत्र कछु कहा न जाय ।	मूढम० ।	३७७,	३०
” ” बाहों देस की सींच ।	”	”	२८
” तो ” मोलेंगे उस ठाय ।	”	३७९,	३९
पाकी को मन पानरे,	दया ।	४३३,	१२
” लेती देखिके,	चिनामनी ।	१७८,	६४
” ते टाकी मला,	दया ।	४३२,	११
पाख पाख नहि करि सकै,	माधु ।	५४,	१२
पाँट लगा जाय था,	सतगुरु ।	२४,	५२
पात जो तरुन सों कहै,	काल ।	२९५;	२५

पात शरता या कहूँ,	काल ।	२९५,	२७
पान शरता देखिके,	काल ।	३००,	७३
पाथर मुख ना बोलहा,	भर्मनि-वस ।	३४८,	६०
पानी का सा बुदबुदा,	चितापनी ।	१८१;	९१
पानी केरा पूतला,	पिचार ।	४२२,	४
पाना करा बुदबुदा,	चितापनी ।	१७६,	४५
पाना यरि तलाव का,	चितापनी ।	१९१,	१८९
पानी निरमल अति घना,	सगति ।	९६,	७१
पाना पिरयो के हते,	नशा ।	४१७,	७
पानी माहों परजला	निपर्यय ।	२४७,	१२
पाना मिले न आपनो,	कथनी ।	३६२,	१३
पाना म का माउली, चि सो परपत गई ।	निपर्यय ।	२५७,	५१
पाना मे का माउरा, क्यों ते पकरो तीर ।	चितापनी ।	१८६,	१४२
पाना 'मय्य' लाक ज्यो,	व्यापक ।	३२९;	४३
पाना हा त हिम भया,	परिचय ।	१३८,	२८
पाना हू ते पातला,	निपर्यय ।	२५६,	४७
पापो का दाजस नहा,	निपर्यय ।	२४४,	२
पापी पुन्य न भानई,	असारआही ।	३५१,	९
पाया कहै ते जारे,	मय्य ।	३१५,	१३
पाया ना सो गहि रहा,	परिचय ।	१७०,	३४
पायो पर पायो नहीं,	पारख ।	३५५,	३८
पारस कोन साधु का,	पारस ।	३५४,	२९
पारस सूग गै सुना,	सूमा ।	२३८,	१२४
पारधिया मन छाव्या,	वेली ।	३५९,	७

पारमन के तेन का,	परिचन ।	१४०,	४०
" बूडो गोतिया,	निगुरा ।	७२,	५६
" सूभर भरा,	व्यापक ।	३०२,	२
पागस रूपा नाम है, लोहा रूपी जान ।	सुगिरन ।	१२२,	६१
पारम रूपा नाम है, लोह रूप समार ।	"	'	६२
पागस लोहा परसते,	सतगुरु ।	२५,	६०
पारा कचन काडि लें,	सागग्राही ।	३५०,	७
पागोसी मृ रटना,	पडित ।	३८२,	२०
पान पलक की सुधि नहीं,	चिनामना ।	१७७,	५४
पान पलक तो दूर है,	चिनामनी ।	"	५५
पापक एक अनेक जा,	व्यापक ।	३२९,	४५
पापक रूपा नाम हं,	त्रिह ।	१६९,	९३
पापक रूपा मान्या,	व्यापक ।	३०६	८
पासा परुडा प्रेम का,	प्रेम ।	१५७,	७०
पाहन करी पुतरा,	भर्मविप्रस ।	३४२	१
पाहन का क्या पूनिये,	भर्मविप्रस ।	"	२
पाहन पानि न पूनिये,	भर्मविप्रस ।	"	४
पाहन पानो पूनि क,	भर्मविधम ।	"	६
पाहन पूजे हरि मिले,	"	"	३
पाहन ले देल चुना,	"	"	७
पाहन हा का दहरा,	"	"	५
पिन का मारग कठिन हं,	प्रेम ।	१५६,	६१
पिय का मारग सुगम हं,	प्रेम ।	"	६२
पिय पिन निय तरसत है,	त्रिह ।	१६८,	७७

पिय सनमुख सेवा करे,	पतिव्रता ।	२२२;	५
पिया पिया रस जानिये,	प्रेम ।	१५४;	३
पिया पिया सब कोइ कहै,	रस ।	२६४;	१
पिया पियाला प्रेम का,	रस ।	२६३;	
पिव परिचय तव जानिये,	परिचय ।	१३५;	
पोंछै चाहै चाकरी,	विश्वास ।	२१३;	३
पीपर सूना फूल विन,	चितावनी ।	१८३;	११
पीपल पान शरंतिया,	काल ।	२९५;	२
पीया चाहै प्रेम रस,	प्रेम ।	१५३;	३
पीर सबन को एक सी,	मांसाहार ।	४१४;	२
पीळ अंदोरी सांझ्या,	विरह ।	१७०;	९
पुर पढ़न काया पुरी,	चितावनी ।	१८३;	११
पुर पढ़न सुवस बस,	नाथु ।	६०;	६
पुरव जनम के भाग सें,	संगति ।	९५;	५
पुहुप वास ते पातला,	विपर्यय ।	२५६;	४
„ मध्य ज्यों वास है,	व्यापक ।	३२५;	६
पुहुपन केरी वास ज्यों,	गुरुशिष्यहंरा ।	४१;	२
पूजा सेवा नेम व्रत,	मर्मविध्वंस ।	३४४;	२
पूजे सालिग राम को,	”	३४३;	१
पूत पियारा वाप को,	माया ।	२८२;	४
पूरन बानी वेद की,	भाषा ।	३८०;	४
पूरव का रवि पश्चिमै,	कर्म ।	४०८;	१
पूरा सतगुरु ना मिला, निकसा था हरि मिलन को (३) गु०पा० ३३;			२
” ” मूंड मुँडावै मुक्ति कूं (३) ” ”			२

पूरा मतगुरु ना मिळा, स्वांग जतीका पहिरिके(३) गु०पा०	३३,	१९
पूरा मतगुरु सेवना, अंतर प्रगटे आप । सतगुरु ।	२४,	५४
" " " सरनै पायो नाम । " "	२४,	५६
" " " सेव तूं, " "	" "	५५
" सहजे गुन करै, गुरुपारख ।	३३,	२३
पूरे कां पूरा मिले, निगुरा ।	४७,	९
" मतगुरु के बिना, गुरुपारख ।	३३,	१८
" से परिचय भया, जमसों बाकी कटी गई(३) परि० ।	१४३,	७०
" सो " " निरमल कान्ही आतमा(३) " ।	१५६,	२५
पृथिवी अपहु तेज नहीं, मह ।	२०८,	५७
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित ।	३८१,	७
पौ फाटी पगरा भया, विश्वाम ।	२११,	१३
पंख होत परबस पपों, भर्मविध्यस ।	३४६,	४४
पेज अममाना जव किया, मूरमा ।	२३२,	६०
पंडित और ममालचा, पंडित ।	३८०,	१
" केरी पोथियाँ, " "	" "	२
" पढते वेद को, " "	३८३,	२८
" पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरुदेव ।	११,	६०
" पोथी बांधि के, पंडित ।	३८०,	३
" बोडी पातरा, " "	" "	४
" मूढ विनासिया, मन ।	२७३,	८३
" सेती कहि रहा, कजा न मानै कोय । भेद ।	३१९,	१८
" " " भीतर, बेधा नाहि । भ०वि० ।	३४७,	४८
पंथी ऊभा पंथ सिर, काल ।	२९६,	४१

पाच तत्र या पूतरा, रज विरज की बुद। भर्मविधस ।	३४६,	४०	
” ” पूतला, मानुस धरिया नाम । चित्ताग्नी ।	१७८,	६३	
” ” गुन तीन के,	परिचय ।	१४५,	८४
” धातु का पित्रा,	चित्ताग्नी ।	१८८,	१५९
’ पचीमी मारिया,	त्रिपर्यय ।	२४४,	३
पाच सहाई जीव क,	मन ।	२७२,	७०
” सात सुमता मरी,	भेष ।	८५,	५७
” सगि पित्र पित्र करे,	सुमिरन ।	१२९,	१२८
पाची इन्डी उठा मन,	जीवतमृतक ।	३३५,	४७
” वैरी जीव के,	मन ।	२७१,	६९
” में फला फिरे,	भेष ।	८६,	७१
पाडर पित्र मन भंत्र,	विद्यास ।	२११,	१५
पौष पदारथ पेलिया,	पारख ।	३५५,	३३
पौष पुजारे वौठ के,	मांसाहार ।	४१३,	११
पित्र प्रम प्रवासिया, अन्तर भया उजास । परिचय ।		१४०,	४२
’ ” ” जागो जोति अनत ।		१३८,	२३
पिंड प्रान नहि तासु के,	निजकर्ता ।	३७३,	३७
पूजी मेरी नाम है,	सुमिरन ।	११८,	२९
पैडा भौहीं पडि रहा,	जीवतमृतक ।	३३३,	२९
पैडे मोती मोखरा,	पारख ।	३५६,	४९
प्रगट गुप्त की सधि में,	मध्य ।	३१५,	१२
प्रगटे प्रेम निवेक दल,	निवेक ।	४२०,	३
प्रथम ऋदे सत्र देवता,	मोह ।	३९३,	७
प्रभुता को सब कोड भजे,	मान ।	३९८,	३१

ध्रात काल के जाल म,	त्रिवेक ।	४२१,	७
-प्राण पिंड को तजि चला, छूटि गया जंजाल ।	सू०मा० ।	३७८:	३२
" " " मुआ कहै मव कोय ।	"	,	३१
प्रीत अटी है तुझ सों,	पनिप्रता ।	२१९,	२०
" करो सुख लेन को,	मगनि ।	९६;	६७
" रीत सब अर्थ की,	परमारथ ।	२४३;	३
प्रीतम को पतियौ लिम्बू,	भेद ।	३१९;	२२
" प्रीति बढ़ाय के,	प्रेम ।	१५९;	८५
प्रीति बु तासा कीजिये,	प्रेम ।	१५८;	८०
" बु लागी घुल गई,	"	१५५,	४७
" ताहि सों कीजिये,	"	"	४९
" पुरानि न होत है,	"	१५८;	७६
" बहुत ससार में,	"	१५६,	६३
प्रेम ठिपाया ना ठिपै,	प्रेम ।	१५२;	१७
" तो ऐसा कीजिये,	"	"	२१
" न बाढी ऊपजे,	"	१५१;	६
" पिडौरी तानि के,	"	१५८,	७५
" पियारे लाल सों,	"	१५१,	३१
" पियाला भरि पिया, जरा न किय़ा जतन ।	रस ।	२६३;	१०
" पियाला भरि पिया, राखि रहा गुरु ज्ञान ।	प्रेम ।	१५१;	८
" पियाला सो पिये,	"	"	७
" पय में पग धरै,	प्रेम ।	१५९;	९०
" पांखी पहिरि के,	"	१५२;	१६
" प्रीति सौ जो मिले,	"	१५८,	८४

प्रेम प्रेम सत्र काइ कहै, आठ पहर भीना रहि(३) प्रेम	१५१,	९
” , काइ कहै, जा मारग साहिव मिले(३) ”	”	१०
” अनि नहि करि सके,	”	१३
” मिनाता मैं सुना,	”	१२
” मिना जा भक्ति है,	भक्ति ।	११०, २९
” मिना नहि भेष कहु, नाहक करै सुवाद । प्रेम ।	१५२	१८
” मिना नहि भेष कहु, नाहक का सवाद । ”	”	१९
” मिना धीरज नहि,	”	१५१, १४
” भाव इक चाहिये,	”	१५२, २०
” भक्ति में रचि रहे,	”	१५
प्रेमी दूटत में फिर, मिष से अमृत होय (४)	”	२२
” दूडत में फिर, गुरु भक्ति दूड होय(४)गुंशि०हे० ।	४१;	१८

फ

फटरे हिया फाट नहि,	बिरह ।	१७०, १०१
फल कारण सेवा करे,	सेवक ।	१००, ९
फागुन आवत देखि के, बन रोता मन माहि । काल ।		२९५, २४
फागुन आवत देखि के, मन झूरे बनराय । काल ।		३००; ७२
फाटे कानों बाधिनी,	कनक कामिनी ।	२९०, ४७
फाटे दीदै मैं फिर,	बिरह ।	१७१, १०२
फारि पयारा धज करु,	बिरह ।	१६७, ६८
फाली फली गाडरी,	भेष ।	८६; ७०
फिकिर तो सत्र को खा गड,	धीरज ।	४२५, ११
फटा मन बदलाय दे,	साधु ।	७२, १६०

फूटी आगि त्रिवेक का,	त्रिवेक ।	४२०,	१
फूले थे सो गिरि पड़े,	जोत्नमृतक ।	३३५,	४६
फेर पडा नहि अग में,	परिचय ।	१४८,	१११

व

वक्त्री पातीं खान ह,	मासाहार ।	४१३,	१०
वक्ता ज्ञानी जगत में,	पारम्ब ।	३५७,	५९
वखन कहो या कर्म कह,	कर्म ।	४०९,	१९
वखन बले भोजल तरें,	कर्म ।	४०९,	२१
वग ध्यानी ज्ञानी बने,	मान ।	३९०,	३३
वगुला हम मनाय ले	पारम्ब ।	३५५,	३६
वगुली नीर मिटारिया,	निर्पर्यय ।	२४९,	२२
वचन वेद अनुभव जुगति,	आत्मानुभव ।	३१२,	२६
वडा बडाई ना करै, छोटा बट्ट इतराय ।	मान ।	३९९,	३२
वडा वडाई ना करे, बडा न बोले बोल ।	मान ।	३९७	१४
वडा हुआ तो क्या हुआ, जोरे वड मति नाहि । "	"	"	१७
वडा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड खजूर ।	मान ।	"	१६
वडी वडाई ऊट की,	मान	"	१३
वडी निपति वडाई हे,	मान ।	"	१५
वढही आनत पेखि के,	काल ।	३९५,	२३
वनजारी निनती करे,	निनती ।	४३६,	३
वनजारे के बेल ज्यों, टोंडो उतर्यो आय ।	उपदेस ।	१९८,	५४
वनजारे के बेल ज्यों, भरमि फियो चहुदेस ।	उपदेस ।	"	५६
वरस वरस नहि करि सकै,	साधु ।	५४,	१५
वरमि अमृत निपज हिरा,	परिचय ।	१९६,	९९
वलिहारी गुरु आपकी,	गुरुदेव ।	९,	४३

बलिहारी उस फल की,
 च्युषा मन बहु भाति हे,
 चस अपिण्डो पिण्ड में,
 मत्त कहीं दृष्टै कहीं,
 ग्रहता पानी निरमला,
 ग्रहत का ग्रहि नान दे,
 ग्रहते को मति ग्रहन दे,
 ग्रहन ग्रहता थल धरै,
 ग्रहन ग्रहता थिर करे,
 ग्रहनी सैं बेटी भई,
 बटु सम्रह विषयान को,
 ग्रहुत गई थोड़ी रही,
 " गुरु मे जगन मे,
 " नतन करि कीजिये,
 दान जो देत है,
 ग्रन्त दिनन का चोहती,
 ' पमारा जनि करा,
 ग्रान विट्टटा मिरगठा,
 ग्राटरिया दूमर भई,
 ग्राट चडती बेलरी,
 ग्राटी के विच भैर था,
 ग्रात बनाई जग टग्यी,
 ग्राद करै सो जानिये,
 " ग्रक दम जात है,

प्रेम ।	१५८,	८२
सारग्राही ।	३५०,	१०
भेद ।	३१९	१९
गुरुपारम्भ ।	३८,	६८
साधु ।	६७	१०८
उपदेश ।	१९७,	५०
उपदेश ।	१९८,	७१
समरथ ।	३०१	३
समरथ ।	"	४
विपर्यय ।	२१८	५४
भेष ।	८४,	५७
धारज ।	४२१	८
गुरुदेव ।	१४,	७१
लोभ ।	३९२	५
भर्गविभ्रस ।	३४१	३७
निरह ।	१६०,	५
आसातृस्ना ।	४०१,	१४
मन ।	२७५,	१०३
समरथ ।	३०२,	१६
आसातृस्ना ।	४०१,	१७
चिताग्ना ।	१८४,	११९
मन ।	२७६,	१००
गुमिरन ।	१३४,	१७२
पारम्भ ।	३५६,	४३

वाद विवादां मति करै, करु नित अपना काम । उप० ।	२०१;	८३
,, विवादां मति करो, ,, ,, एक विचार । सुमि० ।	१३४;	१७२
,, विवादे त्रिष घना, मौन गहो हरि सुमरिये(३) भेद ।	३१९,	१७
,, ,, ,, गहै सबकी सहै(३) क्षमा ।	४२६,	८
वान तीरछा भेदिया,	सूरमा ।	२४२; १५५
वाना पहिरै सिध का,	भेष ।	८२; ३५
वानी तो पानी भै, किया चाकरी दूर(४) भाषा ।		३८०, ५
,, ,, ,, रहनी का घर दूर(४) करनी ।		३६३; १४
वार वार क्या आखिये,	पतिव्रता ।	२१९, २६
,, ,, तोसों कहा,	उपदेस ।	१९८, ५३
,, ,, नहि करि सकै,	साधु ।	५४, ११
वारी वारी आपने,	चितावनी ।	१८६, १३८
वाल्क्य रूपी सांझ्या,	समरथ ।	३०३, २३
वाल्क्यना भोले गया,	काल ।	२९८, ५२
वाङ्ग जैसी करकरी,	उपदेस ।	२०१, ८४
वास सुरति ले आवई,	प्रश्नोत्तर ।	४४४, ३९
वामर गम नहि रनि गम,	मध्य ।	३१४, ६
,, सुख नहि देन सुख, ना सुख सपना मोहि । वि० ।		१६०, ४
,, ,, ,, धूप न छोह । दृश्य ।		४०६, १४
वाहिर क्या दिखलाइये,	सुमिरन ।	१२४, ८२
,, घाघ दिसै नहीं,	मूरमा ।	२४१, १५४
,, भीतर राम है,	व्यापक ।	३३०, ४०
,, सुख दुख देन का,	कर्म ।	४०९, २०
विन पौवन का पंथ है, विन वस्ती का देस । परिचय ।		१३७, १७

विन पौनन की राह ह,	मृत्युमार्ग ।	३७७.
११, भर और कमान विन,	सब्द ।	२०१,
११, मतगुरु उपदेस,	मतगुरु ।	२०,
११, , वाचे नहीं,	"	७७,
विनमत ह कर जारिके,	विनता ।	४३६,
विना शौच का पथ है, मझ सहर अस्थान ।	निर्षय ।	२५४,
११, प्रमीले चाकरी,	भर्मिन्स ।	३४६,
११, राज का वृक्ष है,	वेटी ।	३६०,
११, मोस का मिरग हें,	मन ।	२७२,
११, भौच सुमिरन नहीं,	सुमिरन ।	१३२,
त्रिपति भला हरि नाम लेत,	प्रसौटी ।	३७४,
विभिचारिन के बस नहीं,	विभिचारिन ।	२०३,
विभिचारिना विभिचार में,	"	"
त्रिगुण पूछ ब्रोज को,	गुरुशिष्यहेरा ।	४०,
११, " " " सों,	"	"
११, बबहु न फल भखे,	साधु ।	५९,
त्रिह अगनि तनमन जला,	त्रिह ।	१६२,
११, कमडल कर लिये,	"	१६१,
११, कुल्हाडा तन बहै,	"	१६२,
११, जगानै ब्रह्म को,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,
११, जलाई मैं जद,	त्रिह ।	१६२,
११, जरती मैं फिर,	,	१६१,
११, तेज तन में तपै,	"	"
११, प्रमल दठ माजिके,	'	"

विरह बडो बेरी मयो,	विरह । १६१,	१८
," प्रिया बैराग की,	" "	१७
विरहा जाया दरद सो,	" १६२,	२५
," कहै कगीर को,	" १६३,	३१
," पीन पठाइया,	विरह । १६२,	२४
," पूत छुहार का,	" "	२३
," विरहा मति कहो,	" "	२८
," बुरा जनि '	' १७१,	१०३
," मयो विद्याना,	" १६३,	३०
," मोसो यह कह,	" "	२०
," सेता मति अट,	' १६०,	२६
विरही भ्राना विरह को,	विरह । १६०,	२७
विरहिनी उठि उठि भुँड पड़े,	विरह । १६१,	१०
विरहिना उभी पय मिर,	" १६०,	६
विरहिना जउता देखि के,	" १६१,	१०
विरहिनी थी तो क्या रही,	' "	११
," देय सदेसरा, सुनह राम सुजान ।	' १६०,	८
विरहिना देय भदसरा, सुनो हमार पान ।	" '	७
विरहिनी विरह जलाइया,	'	०
विरहीना मरि नायगा,	विरह । १७१,	१०७
विरिया जाती उल घटा, जीरो बुरा कमाय ।	वा । २०४,	१६
विरिया राता उर फटा, कस पति भये जीर/	वाल ।	१७
विप वा मत तु मणिता,	दुस्त । ४०५,	५
विष्य यग जग है,	भक्ति । ११०,	५०

त्रिपय त्याग वैराग रत,	भक्ति ।	११२,	५१
बुरा जो देखन मैं चक्रा,	दीनता ।	४३५,	१२
बूझ सरीस्री गत हं,	आनानुभव ।	३१२,	२७
बूझो करता अपना,	निनमता ।	३७०;	११
बूटी बार्ता पानि करि,	असारग्राही ।	३५१,	८
बूटा था पर ऊमरा,	गुरुदेव ।	११,	५६
बेकामा का सिरजि निगारे,	निगुरा ।	५२,	५७
वेशा मारे फिर रहै,	भर्मनि प्रस ।	३४७,	५५
बेठा जाये क्या हुआ,	काल ।	२९७,	५१
बेठा बेटी इस्तरी,	माधु ।	५५,	२२
बेटी को भाटी ले गइ,	त्रिपर्यय ।	२५४;	४१
वेद कहे म कछ न जानू,	भाषा ।	३८०,	६
" हमारा भेद है,	भाषा ।	"	७
बेहद अगार्धी पीन हू,	बेहद ।	३३९;	१६
" पिचारो हठ तजो,	बेहद ।	३३८,	१४
बैद मुआ रोगी मुआ,	जीनतगतक ।	३३१,	४
वैरागी त्रिभक्त भला, गिरा पडा फल खाय ।	भेष ।	८३;	४६
" " " गिरही चित्त उदार ।	भेष ।	८७,	७८
" हू घर तजा, अपना राधा खाय ।	दया ।	४३२,	०
' हू घर तजा, पग पहिरे पैनार ।	दया ।	४३३,	८
बैसदर जाडै मरि,	त्रिपर्यय ।	२५१,	२८
बोलत ही त्रिप त्राद हे,	भद्र ।	३२१;	३९
बोलता यह कह प्रसे,	प्रश्नोत्तर ।	४४६;	६०
" मय हि मैं बसे,	"	"	६१

बोले ठोड़ी मसकरी,
 बोली हमरी पलटिया,
 बोले पुरुष कवीर में,
 ,, बोले विचारिके,
 बंदे तूँ कर बंदगी,
 बंधा मि पानी निरमला,
 बंधे को बंधा मिला,
 बांका गढ़ बांका मता,
 बांकी तैग कवीर काँ,
 बांकी कूट बावरा,
 बुंद गिरी नर नारी की,
 ,, पढी जा पटक में,
 ब्राह्मन केरी बेटिया,
 ,, गहदा जगत का,
 ,, गुरु है जगन का,
 ,, ते गहदा भला,
 ,, राजा बरन का,

भप ।	८६;	७२
विचार ।	४२३;	१४
समर्थ ।	३०५;	४१
सब्द ।	२०७;	४८
उपदेश ।	१९८;	१२
साधु ।	६८;	१२९
गुरुपारम्ब ।	३८;	६३
मूरगा ।	२३३;	६७
"	२३२,	६६
भेष ।	८०,	१८
काम ।	३९१;	१९
कर्म ।	४ ८;	१३
मंगति ।	९४;	५५
पंडित ।	३८२;	१६
"	"	१५
"	"	१७
मांसाहार ।	४१२;	९

भ

भग भोगी भग उपजै,
 भजन भरोसे आप के,
 भजूं ता को हैं भजन को,
 भटक मुआ भेदी बिना,

काम ।	३९१,	२०
विद्याम ।	२१४;	४०
मध्य ।	३१५;	१४
भेद ।	३२०;	३२

भय त्रिनु भाव न ऊपजै,	चितावनी ।	१८४;	१२४
” से भक्ति करै सर्वै,	”	”	१२५
भरम करम की जेनरी,	कर्म ।	४०७,	६
” न भागे जोर का,	भेष ।	८२,	३६
भरा होय तो रीतई,	आत्मानुभन ।	३११,	१६
भलका हे गजवेल का,	सूरमा ।	२३९,	१३३
भला सुहेला ऊतरा,	लगनी ।	३६८,	२८
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान ।	गुरुदेन ।	९,	४५
” ” ” जाते पाया ज्ञान ।	”	”	४६
” ” पिय मुआ,	त्रिह ।	१६७,	७२
” ” भय पडी,	परिचय ।	१४६,	९७
भली भई जो भय मिटा,	दासातन ।	१०५,	१९
” ” हरिजन मिले,	साधु ।	६२,	७९
” भली सब कोइ कहै, भली छिमाका रूप ।	क्षमा ।	४२६,	४
” ” ” रही छिमा ठहराय ।	”	”	३
भक्त जरु भगवत एक हे,	मान ।	३९९,	३४
” आप भगवान हे,	भक्ति ।	११३,	५७
” उलटि पोछै फिरै,	”	११४,	६२
’ भरोसे राम के,	विश्वास ।	२१२,	२४
भक्तन की यह रीत हे,	भक्ति ।	११३,	६०
भक्ति कठिन अति दुरलभ,	”	१०७,	६
” गैद चीगान की,	”	१०९,	१९
” जु सीढी मुक्ति की चढे भक्त हरषाय ।	”	१०८,	१३
” दुनारा मोकला,	भक्ति ।	”	१७

भक्ति दुवारा सांकरा,	भक्ति ।	१०८;	१६
॥ दुहिली गुरुन की,	"	"	१०
॥ दुहिली नामकी,	"	"	१२
॥ दुहिली राम की,	"	"	११
॥ द्राविड उपजी,	"	१०७;	१
॥ निसनी मुक्ति की, कुचल पड़े कू खाय (३) "	"	११४;	६२
॥ निसै नौ मुक्ति की, जनम जनम पठिताय (४) "	"	१०८;	१४
॥ पदारथ तब मिले,	भक्ति ।	"	९
॥ प्राण सों होत है;	"	१०७;	३
॥ रिगाडी कामिया,	काम ।	३०.०;	११
॥ विना नहि निसनरै,	भक्ति ।	१०८;	१५
॥ विनारै नाम विन,	भक्ति ।	१००;	२१
॥ बीज पलटै नहि,	"	१०७;	५
॥ " विनसै नहि,	भक्ति ।	"	४
॥ " है प्रेम का,	"	११४;	६६
॥ भजन हरि नाम ह,	सुमिरन ।	१३४;	१७४.
॥ भाग भादी नदी,	भक्ति ।	१०७;	२
॥ भेष बहु अन्तरा,	भक्ति ।	"	७
॥ भक्ति बहु कठिन है,	"	११३;	६१
॥ भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज । "	"	११३;	५५
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जानै भेन । "	"	११४,	६३
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति भक्ति में फेर । "	"	"	६७
॥ महल बहु ऊंच है,	"	११३;	५९
॥ रूप भगवंत का,	"	१०७;	८

भक्ति मरन हि ऊपर,	भक्ति ।	१०९,	२०
,, माड जी मान सों,	,,	१०८,	१८
भाई वीर बटाउना,	चिताग्नी ।	१८७,	१४९
भाग प्रिना नहि पाइय,	भक्ति ।	११०,	३०
भागि कहा का जाइये,	सूरमा ।	२३५,	९२
भागो भग न हायगा, बडु मुरातन सार ।	'	२३०,	३८
" ' मुडि चाल्ये घसि दूर ।	"	"	३९
' ' मुँह मोडे घर दूर ।	'	२२९,	३७
" भली न होयगी,		२३५,	९३
भारा कह ता बहु डहँ,	भेद ।	३१८,	१०
भार प्रिना नहि भक्ति जग,	भक्ति ।	११०,	३२
' भाटका सुरति सर,	सूरमा ।	२३३,	७५
' मुआ ता मरन दे,	उपदेस ।	२०२,	९१
भावे जाओ त्रदरो,	दया ।	४३२,	५
भीख तान परवार की	भीख ।	८८,	१२
भीतर तो भदा नहि,	आत्मानुभय ।	३१,	१३
" मनुया मानिया,	परिचय ।	१४९,	१२८
मुनगम वास न वेधई,	सगति ।	९२,	३१
मुक्ति मुक्ति भागो नहा,	सेवक ।	१०१,	२०
भूख गई भोजन मिले,	उपदेस ।	४००,	७५
भूखा भूला क्या करै,	विश्वास ।	२१०,	५
भूप दुखी अनधूत दुखी,	दुख ।	४०६,	१३
भूला भसम रमाय क,	मेघ ।	८१,	२६
' भूला क्या फिरै,	व्यापक ।	३२६,	७

भूले ये ससार भे,	माया ।	२८२;	४१
भूपन मथे चलन ज्यौ,	व्यापक ।	३२८,	३२
भेद ब्रान तन लौ भलो,	भेद ।	३६७,	३
" " सानुन भया,	" "	" "	४
भेटी जानै मरन गुन,	" "	" "	२
' लीया साव करि,	गुरुपाग्व ।	३८,	५९
भेरे चडिया झाझी,	" -	३६,	४४
" " सरप के,	निर्पर्यय ।	२६२;	६५
" तगि मायर तरी,	"	२६१,	६२
भेष देवि मनि मूलिये,	भेष ।	८६,	६९
भे भारत सत्र ज्ञानिया,	पारम ।	३५७,	५२
भोग मोक्ष मागों नहि,	सेरक ।	१०१,	२१
भारे भृगे स्वसम का,	पतिव्रता ।	२२१;	४१
भीमागर की ग्राम ते,	गुरद्वेज ।	१५,	८७
" जल विष भरा,	लगना ।	३६८,	२७
" ते यौ रहा.	मर्दान ।	३३५,	७
" भारा भया,	समर्थ ।	३०५;	३५
भेतर भोग मयम कडा,	भोग ।	८८,	१५
भेतर बाडो परिहरा,	निर्पर्यय ।	२४९,	२०
भाग भग वल बुद्धि को,	नशा ।	४१७,	४
' तमाग्य गाहका,	"	४१८;	१९
" " हतरा, कहे करार इनको तन(३) '	"	"	१७
" " " " " ता जीव को(३) "	"	"	१५
" " " " " सो जीवरा (३) "	"	"	१६

भाग तमाखू छूतरा, कौन करेगा बदगो (३) नशा ।	४१७,	२	
" " " योग यज्ञ जप तप किये (३) "	४१८,	१४	
भाग तमाखू फीम को,	नशा ।	४१८,	१८
भाइ भगाई खेचरी,	भेष ।	८६,	७३
भोंडी आवै वास मुग्व,	नशा ।	४१९,	२८

म

भक्तरार सों नेहरा,	परिचय ।	१४७,	१००
भक्के भदीने में गया,	भर्मनिघस ।	३४८,	६२
भच्छी भलको गहत है,	असारप्राही ।	३५०,	२
भठरी दह ठाडो नहीं,	चितापनी ।	१८६,	१४१
भठली तुरक पकडिया,	भर्मनिघस ।	३४५,	२९
" फिरि फिरि बाहुरी,	चितापनी ।	१८७,	१४६
भत बाडा में पडि गये,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९,	४१
भतवाला जूमत फिरे,	रस ।	०६४,	१४
भता हमारा भत्र है,	सद्र ।	२०४,	२०
भथुरा वासा द्वारका,	सगनि ।	९१,	२०
भद अभिमान न बीजिये,	भद ।	३९५,	१०
" तो जहुनक भाति वा,	नशा ।	४१८,	११
भभ्य अग लगा रहै,	भभ्य ।	३१४६	१
" गुफा नहीं सुरति हे,	भेष ।	८०,	१०
भन अपना समझाय ले,	भन ।	२७५,	१०२
भन उलटी दरिया भिडा, तू पूरा रहिमान । जा०मृ० ।		३३४,	३९
" " " सो " "	त्यनी ।	३६८,	२०

मन का मस्तक मूडि ले,	भय ।	८५,	६२
," को घाली हू गई,	मन ।	२६८,	३७
," की मनसा मिटी गई, अह गई सब छूट । जी०मृ० ।		३३१,	१६
," की " दुरमति सब भई दूर । भक्ति ।		१११,	३८
," की सका मेदि करि,	कर्म ।	४१०,	२७
मन कृपार महमत था,	मन ।	२६७,	२९
," के बहुतव रग हैं,	"	"	२६
मन के मते न चलिये, डाडि जांव की वानि ।	"	२६६,	१६
" " " मन के मते अनेक ।	"	"	१५
," के हारे बन गये,	"	"	१८
," के हारे हार हैं,	"	२६७,	३०
मन का मारु पटक के, टूटे पीछे फिर जुटे(३)	"	"	२१
" " " रिप की क्यारी बोयके(३)	"	२६६,	२०
," का मिरतक देखिके,	भर्मिन्वम ।	३४५,	३२
," गोरख मन गोविदा,	मन ।	२६७,	२३
मन चरतों तन भी चले,	मन ।	२६८,	३८
," चाले तो चलन दे,	"	२७६,	११०
," जो गण तो जान दे,	"	२६८,	३४
," जो सुभिर राम को,	सुभिरन ।	१२०,	१२९
," जानै सत्र रात,	मन ।	२६९,	४२
," लकस तन तोपसी,	मूरमा ।	२४१,	१४०
," ते माया ऊपनै,	माया ।	२८५,	७६
," दाना मन छाल्चा,	मन ।	२६७,	२७
मन दीज मन पाइये,	मन ।	०८८	२२

मन दीया कहुँ और ही,	संगति ।	९२;	३८
॥ नहि छोडी विषय रस,	मन ।	२६८;	३१
॥ ॥ मारा मन करी,	॥	॥	३६
॥ निरमल गुरु नाम मां,	॥	२६९;	४१
॥ पंखी बिन पंख का,	॥	२७५,	१०५
॥ पंछी तबलमि उडै,	॥	२६७;	२८
॥ पांचो के वस पडा,	॥	२६६;	१५
मन फाटे चित ऊचटै,	मन ।	२७४;	९६
॥ ॥ वायक बुरे,	॥	॥	९५
॥ भते माया तजो,	माया ।	२८४;	६५
॥ मथुरा दिल द्वारका,	भर्मविध्वंस ।	३४४;	१९
॥ मनसा को मारि करि,	मन ।	२६९;	४५
॥ ॥ ॥ ले,	॥	॥	४६
॥ ॥ जव जायगी,	॥	॥	४६
॥ मानिक जव ऊचटै,	॥	२७४;	९६
मन मारो भेदा कसं,	मन ।	२७६;	२१२
॥ माला तन मेखला,	भेष ।	८२;	२९
॥ ॥ तन सुमिरनी,	॥	॥	२८
॥ मुरोद संसार है,	मन ।	२६६,	१०
॥ मूया माया मुहै,	चितावनो ।	१९०,	१७९
॥ मेवासी मारि करि,	मन ।	२७७,	१२१
॥ ॥ मंडिये,	भेष ।	८१;	२२
॥ मैला तन ऊनला,	॥	८६,	६५
मन मोटा मन पातरा,	मन ।	२६७;	२४

१) राजा नायक भया,	उपदस ।	१९८, ५०
२) रजन परदुख हरन,	माधु ।	६६, ११२
३) सत्र पर असवार ह,	मन ।	२७६; १०८
४) से मत मिगता नहीं,	"	२६८, ३२
मन हि दिया निन सत्र दिया,	सतगुरु ।	२४, ७७
५) ही को परमोधिये,	मन ।	२६७, २२
६) ही में फला फिरै,	भर्मिगिरस ।	३४५, ३०
मना मनोरम छडि दे,	मन ।	२६८, ३९
मनुग छु क्यों वावरा,	मन ।	२७५, १०१
मनुग ता अन्तर बसा,	मन ।	२६८, ४०
मनुग तो गाफिल भया,	सुमिरन ।	१३३, १७०
मनुग पखी भया, जहा तहा उडि नाय ।	मन ।	२७५, १०४
मनुग तो पछी भया, उडि के चला अवासा ।	मन ।	२६७, २७
मनुग तो फला फिरै,	मन ।	२६८, ५५
मनुग भया दिसन्तरा,	सनीन ।	३३६, ७
मनुस जम तोकू दिया, भजिय को हरिनाम ।	चिन्तामनी ।	१८८, १६३
' जम तोकु दिया, भजिये को गाविद ।	चिन्तामनी ।	" १६४
मनुषा जनम हि पायक, जगदगि भया न राम		१८० १७२
मनुषा जम हि पाय के, भया न रघुपति राय ।		१८९, १६६
ममता मरा क्या कर,	परिचय ।	१४५, ८८
मरती प्रिया दान दे,	भर्मिगिरस ।	३४५ ३६
मरती प्रिया पुन करे,	चिन्तामनी ।	१८७, ५००
मरते मरते नग मुआ, जीसर मुग न काया ज्ञ० म० ।		३३०, ३

मरते मरते जग मुआ, सुत बित दारा जोया चितावनी ।	१९०,
मरना मला विदेस का,	जीवतमृतक । ३३३,
मरुं पर मांगू नहीं,	परमारथ । २४३,
मरुं मरुं सब कोड कई,	चितावनी । १९०,
मरेगे मरि जायंगे,	चिनावनी । १७५,
मल मल खासा पहिरते,	चितावनी । १८१,
मलयागिरि के पेड मों,	संगति । ८९,
महमंतां अविगत रता,	रस । २६४,
महमंता नहि प्रिन चरै,	रस । "
" मन मारि छे,	मन । २६९,
महलन माहीं पोडते, छत्रपती कां छारमें (३) चिता० ।	१८१,
" माहीं पोडते, ते सपने दीसै नहों (३) चितावनी ।	"
महन्त तो माया- गला,	चानक । ३०८,
मा मारै धी धर करै,	विपर्यय । २५३;
माइ मसानी सीढी सीतला,	विभिचारिन । २२५;
माई मंइं उस गूरु की,	गुरुपारख । ३२,
माखी गहै कुन्दास को,	निन्दा । ३८५;
" गुडमें गडि रही,	स्वाद । ४११;
" चंदन परिहौ,	संगति । ९५,
माटी कहे कुम्हार को,	चितावनी । १७९;
" केरा पूतला,	" १८९;
मात पिता सुत- इस्तरी,	साधु । ५४;
माता का सिर मूंडिये,	विपर्यय । २५९,

माया चार प्रकार की,	माया ।	२८५;	७२
," जोगवै कौन गुन,	,"	,"	७४
," छाया एकसी,	,"	२८०;	२४
," छोरन सब कहै,	,"	२८४;	६६
," शोला मारिया,	,"	२७९;	१८
," डोलै मोहती,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१;	१७
," तजी तो क्या भया,	मान ।	३९६;	०
माया तरुवर त्रिविधि का,	माया ।	२८०;	३१
," तो ठगनी भई,	,"	,"	२७
," दासी साधु की, ऊमो देइ असीस ।	,"	,"	२६
," " संत की, सावुट को सिरताज ।	,"	२८४;	६३
," दीपक नर पंतग,	,"	२७९;	२०
," द्रोप प्रकार की,	,"	२७०;	२१
," बड हे डाकिनी,	,"	२८४;	७
," मन की मोहिनी,	,"	२८०;	२०
माया मरि मन मारिया,	माया ।	२८०,	२०
," माथे सींगडौ,	,"	२८३;	५०
," माया सब कहै,	,"	२८४;	६०
," मुई न मन मुआ,	,"	२८०;	२०
," मेरे राम की,	,"	,"	२०
," सम नहि मोहिनी'	,"	२८४;	६०
माया सेती मति मिलो,	माया ।	२७९;	१०
," संख पदम लीं,	,"	२८५;	७

मिरतक को धीजों नहीं, मेरो मन वह बाज जी०मृ० ।	३३३,	२६
” ” ” ” ” वीर । मन ।	२७७,	११९
” तो तब जानिये,	जीवनमृतक ।	३३५, ४४
मिलता सेती मिलि रह,	साधु ।	७६; २०४
मिलना जग में कठिन है,	प्रेम ।	१५६; ५६
मिलि गय नीर करीर सों,	परिचय ।	१४७, १०२.
मोठा सब कोड खात है,	माया ।	२८१; ३८
मोठ बोल जु बोलिये,	भेष ।	८०, १७
मुख आप सोई कहै,	सद्र ।	२०७; ४७
” में थूकन दे नहीं,	नशा ।	४१९; २९
मुख से नाम रटा करै,	त्रिभिचारिन ।	२२३, ८
” से रहै सो मानगी:	भेद ।	३२१, ३८
मुख म इतनी शक्ति क्या,	विनती ।	४३८, २०
” औगुन तुझहि गुन,	समरथ ।	३०४, २७
” गुन एकी नहीं,	”	३३
मुखगामी को देखि कर,	साधु ।	७०; १५०
मुखग मुलना सों कहै,	मासाहार ।	४१४; २७
मुखदे को भी देत हैं,	विश्वास ।	२१३; ३८
मुखना तुझै करीम का,	मासाहार ।	४१४; २३
मुखलिम मारै करद सों,	”	४१६; ४३
मुक्ता पैदा जय भया,	सजीवन ।	३३७, १६
” बाये दाहिने,	’	” १५
मुफ्त दान जो देत हैं,	भर्मनिष्वस ।	३४६, ३८

मेरी मिट्टि मुक्ता भया,	परिचय ।	१३८; २९
मेरे मन होरो जरे,	विरह ।	१७०; १००
मेरे मन में पडि गई,	मन ।	२७४; ९६
„ संसय कोय नहीं,	सूरमा ।	२३१; ५२
मेरो चित्यौ हरि ना करै,	विश्वास ।	२१३; ३४
मेवासा मोही किया,	भक्ति ।	१११; ३९
मो चित तिल नहि बीसखं,	विरह ।	१७१; १११
„ „ पलहु न „	पतिव्रता ।	२१९, २३
मो विरहिनी का पित्र मुआ,	विरह ।	१६७, ७१
मो में तो में सर्व में,	व्यापक ।	३२९, ४६
मोटी माया सब तजे,	माया ।	२८१; ३४
मोनी उपजे सीप में,	„	२८२; ४४
„ निपजै „	जीवतमृतक ।	३३१; १३
„ „ सुन „	परिचय ।	१४८; ११३
„ भांग्यो वेधतो,	मन ।	२७५; ९९
„ है विन सीप का,	पारख ।	३५३; २०
मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार ।	चिन्तावनी ।	१८२; १०७
„ „ „ बल „ „	„	१०६
मोह कुटो में जलि मुआ,	कर्म ।	४०७; २
„ नदी विकराल है,	मोह ।	३९४; १५
„ पंद सब पंदिया,	„	३९३; १
„ मगन संसार है,	„	२
„ सलिल को धार में,	„	३
मोहर रुपैया पैसा,	साधु ।	५५; २०

मोहि मरन को चात्र है, की तन का बुटका वरु(३)जो मृ	१३३२;	१८
" " " मति गुरु वृक्षे जातरी(३) "	" "	१७
मौत विसारी वावरी,	चितापनी ।	१७८, ६७
मडि रहना मैदान में,	मय ।	३१५, १७
मदिग मोंहों झलकती,	चितापनी ।	१८५, १३७
मांगन को भल प्रोलनो,	उपदेश ।	२००, ७६
" गये सो मरि रहे,	मांस ।	८८, ४
" मरन समान है, तोहि दई मैं सीख ।	" "	८७, ३
मांगन मरन समान है मति कोइ मांगो भीख । भीख ।		८७, १
" " " सीख दई मैं तोहि ।	" "	" २
मांस महल की गुरु कई	गुरुपारम्ब ।	३७, ५७
मांस अहारा मानया, परतच्छ राउस अग ।	मासाहार ।	४१२, १
" " " " राउस जान ।	" "	" २
" साथ ते डेड सन,	" "	" ३
" गया पिनर रहा,	निरह ।	१६८, ७४
" भवि मदिरा पिने,	मासाहार ।	४१२, ६
" मउत्रिया खात है, त नर जडसे जाहिगे (३)	" "	" ५
" " " " नरके " "	" "	" ४
" मांस सत्र एक है आँखि देखि नर खात है (३)	" "	" ७
" " " नारि नारि सब एक "(३)क वा ।	२९२	६२
मड मुँडाया मुक्ति काँ,	स्वाद ।	४११; ६
" मुँडाये हरि मिले,	मेघ ।	८१, २४
" मुडावत दिन गया,	" "	" २३

मैं अकेल वह दो जना,	काल ।	२९३;	९
” अपराधी जन्म का,	बिनती ।	४३७;	७
” अबला पिय पिय करुं,	पतिव्रता ।	२२०;	३३
” उपकारी छेठ का,	गुरुपारख ।	३७;	५०
” कधि कहि कहि कहि गये,	उपदेश ।	१९९;	६८
” कवीर विचरुं नहीं,	सद्ग ।	२०९;	६६
” कलिया कोतवाल हूं,	”	२०५;	३३
” स्रोटा साईं खरा,	बिनती ।	४३६;	६
” जाना मैं और था,	परिचय ।	१४१;	४८
” जानूं पञ्जा भला,	पंडित ।	३८१;	१०
” ” मन मरि गया,	जीवनमृतक ।	३३२;	१५
” ” हरि दूर है, हरि हिरदे भरपूर ।	व्यापक ।	३२७;	१५
” ” ” ” है ” मैंहि ।	पारख ।	३५७;	५६
” ” ” ” मिदं,	माया ।	२८१;	३:
” तुमको दूँदत फिरुं,	विरह ।	१६८;	७९
” तोही पूछं हे सखी,	सर्ता ।	२१५,	१:
” तोहि सो कव कव्या,	निगुरा ।	५१;	४:
” था तब हरि नाहि जव,	परिचय ।	१४७;	१०९
” दीधानी नाम को,	विरह ।	१७१;	१०८
” भेंवरा तोहि बरजिया,	चिंतावनी ।	१८३,	११८
” मतवाला नाम का,	नशा ।	४१८,	१:
” मरजीया समुंद का, हुबकी मारो एक ।	जीवनमृतक ।	३३१;	१
” पैरु सात पत्ताल ।	”	”	”

मैं मांगूँ यह मांगना,	सगति ।	९५, ६२
” मेरा घर जालिया,	जीवतमृतक ।	३३४, ४२
” मेरी तृ जनि करै,	चिताननी ।	१८२, १०४
” ” सत्र जायगो,	घोरज ।	४२५; ७
” मैं बडी बलाय है,	चिताननी ।	१८२; १०५
” रोवूँ मसार कू,	दुस्त ।	४०६; ७
” लाग़ा उस एक सा,	परिचय ।	१४६, ९६
” भाँचोँ हित जानिके’	सगति ।	९७, ७७
” सैक समरथन-का, कबहु न होय अकाज । पति० ।		२२० ३४
” ” ” कोइ पुरवला भाग । ”		” ३५

य

यदपि हम कायर कुटिल,	समरथ ।	३०६, ४६
यह अउसर चैन्यो नहीं, चूक्यो मोटी घात । चिता० ।		१८९; १७०
” ओसर -” ” पसु ज्योँ पाली देह । ”		१७७, ४०
” औपधि अगहि लगो,	सुमिरन ।	११७, १७
” कलियुग आयो अत्रै,	साधु ।	७३, ११७
कृकर को मक्ष है,	मासाहार ।	४१२, ८
जग झोठी काठ काँ,	क्रोध ।	३९२ ५
जिन आया दूर ते,	काल ।	२९७, ४२
तत वह तत एक हँ,	प्रेम ।	१५४, ४३
तेन काचा कुभ हे त्रिया फिरै था साथ । चिता० ।		१८०, ८०
” ” चोट चहुँदिसि खाय । ”		” ८१
” ” मोहि किया रहिनास । ”		” ८२

यह तन त्रिप की बेलरी,	गुरुपारख ।	३७; ५३
„ तो घर है प्रेम का, खाला का घर नैहि ।	प्रेम ।	१५२; १
„ „ „ मारग अगम अग्राध ।	„	२
„ „ „ ऊंचा अधिक इफंत ।	„	३
„ तो गति है अटपटी,	मन ।	२७४; ८८
यह नर गर्व मुलाइया,	चितावनी ।	१९२; १९६
„ पद है जो अगम का,	परिचय ।	१४८; ११९
„ विरिया तो फिर नहीं,	चितावनी ।	१८४; १२८
यह मन अटक्यो चावरो,	मन ।	२७६; १११
„ मन को विसमिल करूं,	„	२६९; ४८
„ मन ताको दोजिये, सांचा सेयक होय ।	सेवक ।	१०१; २२
„ „ तो मिरगा भया,	मन ।	२६९; ४९
„ „ „ मँला भया,	„	२७०; ५१
„ मन धाकी धिर „	„	२७७; ११७
„ „ नीचा मूल ह,	„	२७०; ५४
„ „ फटकि पछोरिले,	„	२६९; ४७
यह मन फूला विषय बन,	चितावनी ।	१८५; १३०
„ „ ब्रीकारे पडा,	मन ।	२७०; ५२
„ „ मीवासी मया,	„	५१
„ मन साधू ले मिलो,	„	५३
यह „ हरि चरने चला,	„	२७७ ११८
„ रत मँाहीं पैठि कर;	सूरमा ।	२३७; १०९
„ रस मँहँगा सो पिबै,	प्रेम ।	१५५; ५६
„ सतगुरु उपदेश है,	सतगुरु ।	२०; १०६

यह सत्र झूठा बंदगी,	मासाहार ।	४१५,	३६
॥ ॥ लच्छन चित धरै,	मेजरु ।	१०२,	३१
यहाँ विसाहन करि चलो,	उपदेश ।	१९४,	१९
यहा प्रेम निरवाहिधे,	प्रेम ।	१५३,	२६
॥ बडाई सद्र की,	सद्र ।	२०४,	२४
॥ ॥ मत का,	साधु ।	६१,	७०
या तन का दिखळा करू,	निरह ।	१६५,	५८
॥ ॥ जाऊ मसि करू, धूँवा जाय सुरग ।	॥	१६४,	४१
॥ ॥ ॥ ॥ लिखु गुरु को नाँव ।	॥	॥	४२
या दुनिया दो रोन की,	उपदेश ।	१९५,	२३
या ॥ में आय के,	॥	१९३,	८
या देखा वा देखिया,	निपर्यय ।	२५१,	४६
॥ मन गहि जो धिर रहे,	चिन्तामनो ।	१८३;	११५
॥ माया के कारनै,	माया ।	२८१;	४१
॥ ॥ जग भरमिया,	॥	२८३,	५५
॥ मोतो कहु और हे,	पश्चिम ।	१४८,	११४
यार बुलायै भाय मों,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७५,	१०
ये तीनों उलटे बुरे,	मता ।	२१७,	२७

र

रक्त वह लोहा शरै,	मग्ना ।	२३३,	६८
रग बग टोपी सत्र कर्मा,	॥	२३८,	११६
रग रग चोली रामनी,	सुमिरन ।	१२९,	१३२
रगत नाम सत्र भवि गया,	निरह ।	१६८,	७६

रचनहार को चीन्हि ले,	विश्वास ।	२१०;	४
रज वीरज का कोठरी,	कनककामिनी ।	२९०,	५१
रति एक घूँगा सत का,	साधु ।	७५,	१८८
रन चट्टि सद्र पुकारही,	मूरमा ।	२४१,	१४७
„ जग वाजा वाजिया,	„	२३७,	११४
„ रहै सूरु भये,	„	२४०,	१४१
„ रोही अति ही हुआ,	„	२३४,	८०
„ हि घसा नो ऊवरा,	„	२३१,	५४
रनयो राम छिपाइया,	गिरह ।	१५७,	६६
रपट भैस पीपल चढी,	निपर्यय ।	२६१;	६१
रति को तेज घटे नहीं,	साधु ।	६६;	११९
रस ठाडै छही गहै, कोल्ह परगट येख । असारग्राही ।		३५१,	४
„ „ „ मो „ का दे काम ।	„	„	५
रहनी के मैदान में,	करनी ।	३६४,	१९
रहै निरला मांड ते,	निजकतां ।	३७२	२७
रक्त छँडि पय का गहै, ऐसा साधु लच्छ(४) साधु ।		६७,	१२३
„ „ „ सारगिराही „ „ सारग्राहा ।		३५०,	९
राई वार्ता वीसयो,~	प्रेम ।	१५७,	७४
राखन द्वारा राम हे,	विश्वास ।	२१२,	२६
राखै बरत एकादसी,	नशा ।	४१९,	२२
रान दूवार न जाइये, काटिक मिले जु हम ।	साधु ।	७२,	१६१
„ दुगार बाधिया,	चिन्तना ।	१८३,	११३
„ „ रामनन,	चानन ।	३०७,	८

गज पाट धन पाय कर,	जिनावनी ।	१९१; १९५
राजा का चोरी कर,	गुरुदेव ।	१६; ९१
॥ राना राव रंक,	सुमिरन ।	१२७; १०६
रत्न अंधेरी रैन में,	गुरुपारख ।	३२, ९
॥ गंगाई सोय करि,	चिनावनी ।	१७६; ४६
॥ जगधि रौंडिया,	विभिचारिन ।	२२४; १०
राता माता नामका, पोया प्रेम अघाय ।	रम ।	२६३; १२
॥ ॥ ॥ मटका माता नैहि ।	॥ ॥	१३
रता . राता मय कई,	संवक ।	१०२; २४
॥ रक्त न निकमै,	॥ ॥	२५
रामुं रजो विरहिनी,	विरह ।	१५९; १
राम कबोरा एक हैं, दूजा करट न हाय ।	एकता ।	३२३; ५
॥ ॥ ॥ कश्न सुनन को दोय ।	॥ ॥	६
॥ कशा जिन कहि लिया,	काल ।	२९४; १४
॥ कहै ते भिज मरै,	चिनावनी ।	१८३; ११०
॥ कश्यो तो मरि रहो,	जीवनमृतक ।	३३२, २३
राम किया मोई हुआ,	विश्राम ।	२१३; ३५
॥ कृष्ण औतार हैं,	निजकता ।	३७०; ६
॥ ॥ को जिन किया,	॥ ॥	७
॥ सरोसी वैठिके,	करनी ।	३६४; २१
॥ नाम को सुमिरता, उधरे पतित अनेक ।	सुमिरन ।	११७; २१
॥ ॥ ॥ हँसी कर भावै सीझ ।	॥ ॥	२२
॥ ॥ गुन ॥ गायते,	॥ ॥	१२८; ११७

रामनाम जाना नहीं, ता मुख आन धरम ।	चिता० ।	१७९;	७२
” ” ” पाळा सकल कुटुब ।	”	”	७०
” ” ” हुआ बहुत अकाज ।	”	”	७१
” ” ” मेला मना प्रिसर ।	”	”	७३
” ” ” बात प्रिनूठी मूळ ।	”	”	७४
” ” ” चूके अवकी घात ।	”	”	७५
” ” नहीं, जपा न अजपा जाप ।	चानक ।	३०८;	१५
” ” लागो मोठी खोर ।	सुमिरन ।	११७;	२३
रामनाम तिहुँ लोक में,	व्यापक ।	३२७;	२२
राम प्रियोगा प्रिकल तनः	विरह ।	१७०;	९६
” प्रिसारो वाररा,	चिताननी ।	१८८;	१६२
” बुलाया मेजिया,	सगति ।	९१,	२८
” भजो तो अत्र भजो,	चिताननी ।	१८४;	१२३
” मेरे तो हम मेरे,	मजीन ।	३३६;	१०
” मिटन के कारने,	माधु ।	७१;	१५६
राम रतन धन मोटरो,	पारख ।	३५२,	१०
राम रतन अस्थिर भया,	मर्जानन ।	३३६;	९
राम रसायन प्रेम रस,	पारग ।	३२२;	११
” रहिमा एक हे,	एकता ।	३२३;	२
” राम जिन ऊचरा,	साश्रीभूत ।	३२२;	५
” ” तुम करत तो,	निजफर्ता ।	३७३;	३८
” ” रटियो करे,	सगति ।	९२;	२९
” ” सब कोड करे, कलने माँहि विवेक ।	प्रियंक ।	४२१;	०
” ” ” ” ” ” ” ”	विचार । विचार ।	”	२

राम हि ठोटा नानि के,	आसातृस्ना ।	४०२,	२२
" हि थोरा "	माया ।	२८१;	३९
रिखु वसत पाचक भया,	उपदेस ।	२०१,	८५
रिद्धि सिद्धि मागू नहीं,	सगति ।	९०,	१४
रुखा सुखा लाय के,	स्वाद ।	४११,	७
रे मन भाग्य हि भूल मत.	कर्म ।	४००;	२६
रेन तिमिर नासत भयो,	सब्द ।	२०७,	४०
" पुँर वासर घटे,	निपर्यय ।	२५१,	३०
" समानी भानु में,	सब्द ।	२०४,	१७
रोडा भया तो क्या भया,	जीनतग्रतक ।	३३४,	३३
" हे रहु बाटना,	"	३३३,	३२
रोक्त रोक्त में फिर,	पिरह ।	१६६,	६३
रफ कनक चुनता फिरे,	पारख ।	३५८,	६४
" जीर जोई सोई,	माया ।	२८५,	७७
" बु धनको ना चई,	"	"	७८
रग तो कुरग हुआ,	"	२८२,	४७

ॐ

लफडो कहे लोहार में,	चितामनो ।	१८०,	७७
" जल डूबै नहीं,	सगति ।	९७,	७६
" जठि कुडला भई, कुडला जलि भइ रास ।	पिरह ।	१६९,	१८९
" " भये, मोतन अनहू आगि ।	"	१६४,	४७
लघुना में प्रभुता बसे,	मान ।	३९०;	३०
लच्छ कोस जो गुर रमै,	गुरदेव ।	५,	१८

लक्ष्मी कहे मैं नित नई,	दुख ।	४०७,	१८
लगा रहे सतनाम सों,	दासातन ।	१०६,	२३:
लगी लगन छूटै नही,	लगनी ।	३६७,	१०
लडने को सब ही चले,	सूरमा ।	२३१,	५०
लाखों में दिसे नहीं,	पारख ।	३५८,	६८
लागा भलका नामका,	सूरमा ।	२४२,	१५६
लागी लागी क्या करै, लागी धुरी बलाय ।	लगनी ।	३६६,	७
" " " " नाहीं एक ।	" "	" "	८
" " " " सोइ सराह ।	" "	" "	९
" " " " रही लगार ।	सब्द ।	२०५,	३१
लालच लोभ न मोह मद,	सूरमा ।	२३४,	७९
लाटी मेरे लाल की,	परिचय ।	१३५,	२
लिखना पढ़ना चातुरी,	पंडित ।	३८२,	२२
लिखा मिटै नहि करम का,	कर्म ।	४१०,	३१
लिखापदी मे सब पडे,	भर्मविध्वंस ।	३४९,	६७
लिखा लिखी की है नहीं,	आत्मानुभव ।	३१०,	८
लूटि सकै तो लूटि ले, नाम जु निगुन को गहो(३)सुमि० ।		१२२,	६६
" " " " फिर पाछे पछिताहुगे(३) "		" "	६५
लेऊं तो महा प्रतिग्रह,	मध्य ।	३१५,	१५
लेना देना मोहरा,	वितायनी ।	१७५,	३७
लेना होय सो जिल्दले,	उपदेस ।	१९४,	१०
लेने को सतनाम है, तरने को आधीनता(३)सुमिरन ।		१२२,	६६
" " " " है दीनता (३) मान ।		३९९,	३५
ले पाऊं तो ले रहूं,	लगनी ।	३६६,	'

अग विचारा निन्दही,	निन्दा ।	३८६,	२१
लाहू गहि दूध तन,	अमारग्राहा ।	३०१,	७
लो गमा तत्र जानिये,	जगना ।	- ,	१
" " तत्र डर किमा,	"		२
" " लौ लू,	"		३
" " निर्भय भया,	"	३२०	३०
" " त्रिप भागिया,	गुरुदा ।	१६,	८८
लम्बा मारग दूर घर,	सुगिन ।	१२०	७३
चैन गया पानी मित्र,	परिचय ।	१७७	०१

व

रुह तो मोता जानिये,	सत्र ।	२०७,	२२
" मारग कित को गया,	मृन्ममार्ग ।	३७७,	२३
गारी हरि क नाम पर,	गमरग ।	३०७,	२०
त्रिधा मद्र औ गुन हु मद्र,	नशा ।	४१८,	१२
त्रिष्य पियारे प्रांति सा,	शात्र ।	१०७,	१०
त्रिष्य रामना उरक्षि कर,	चितारनी ।	१८७,	१५७
त्रिष्ठा का चौका दिया,	मासाहार ।	४१३,	१३
त्रिष्ठासी द्वे गुरु भन,	त्रिधास ।	२१३.	३१
त्रुद एक त्रुला धक,	माधु ।	७२,	८३
वेद पुराना साधु गुरु,	गुरुदेव ।	१४,	७०
वेम्नत्र भया तो क्या भया,	निगुरा ।	५२,	०१
व्योम मध्य व्यौ घट मठ,	व्यापन ।	३००,	११

प

षट् दरसन को प्रेम करि,	सेवक ।	१०२,	३०
षड् विकार या देह क,	साधु ।	६६,	११६

म

सकल जगत नाने नहा,	मतगुरु ।	२८,	८८
, , पसारा पवन का, कोन नाम उस पवन का(२)प्रश्नो० ।		४४२,	२४
, , , माह नाम उस , का(३) ,		, ,	२५
, , मन एकत्र ह,	मासाहार ।	४१३,	१३
मन्त्र्य स्वामी स कहो,	चानक ।	३०८,	१८
मगा हमारा रामजा,	चिताननी ।	१८८,	१६०
सचु पाया सुख ऊपजा,	सतगुरु ।	२९,	९५
मनन सनेही बहुत है,	प्रेम ।	१५८,	८१
मज्जन सों सज्जन मिले,	सगति ।	९५,	६१
सत को दृष्ट मे फिर,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४३
मतजुग प्रेता द्रापरा	सव्य ।	२०८,	५६
मत जा तामा कीनिये,	सती ।	२१६,	१७
मत भर्गात सत्र सों उड़ी,	सगति ।	९८,	८६
, , है मूष ज्यों,	सारप्राही ।	३४९,	२
मत हा में मत प्रांटिये,	उपदेश ।	१९४,	१२
मतगुरु अवम उधारना,	भय ।	८५,	६०
, अमृत मोइया,	सतगुरु ।	२३,	४६
, आत्म दृष्टि है,	, ,	, ,	४३
, , ऐसा काजिये, यों भोगी मत हाय ।	गुरपा० ।	३४,	३३

सतगुरु ऐसा कीजिये,	लोभ मोह भ्रम नौहि ।	गु० पा० ।	३९,	३४
" " " जाका पूरन मन ।	" "	" "	" "	३५
" कहि नो सिप करै,	सेवक ।	१००,	१३	
" का उपदेस,	सुमिरन ।	१२५,	८५	
" का सारा नहा,	गुरुपारख ।	३४,	३१	
" किरपा फेरिया,	सतगुरु ।	२३,	४४	
" की किरपा - विना,	भक्ति ।	११४,	६४	
" सी दाया भई,	सतगुरु ।	२२,	३९	
" सी महिमा अनत,	सतगुरु ।	१७,	५	
" का मानै नहीं	"	२३,	४५	
' के उपदेस का,	"	२४,	४९	
" के परताप तें,	"	१७,	२	
" के भुज दीय हैं.	"	२२,	३८	
" के मदके किया,	"	२१;	२८	
" केरा भावता,	साधु ।	७६,	२०१	
" स्वो जो सत,	सतगुरु ।	२९,	१००	
" नो ऐसा मिला,	सतगुरु ।	२३;	४८	
' तो सत भाव है,	"	२१;	३३	
" दाता नीम के,	"	२०;	२२	
" दीन दयाल हैं,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६;	१६	
" ने तो गम कही,	गुरुपारख ।	३४;	३०	
" पारम का सिद्धा,	सतगुरु ।	२१;	३६	
" प्रहे जहान है,	"	२०,	२६	
" " दयाल है,	भरथ ।	३०५,	३६	

सतगुरु जुडे मरीच ह	सतगुरु ।	२०	२५
' सुनार ह	"	२१,	२७
" कजे मिय कर	मनन ।	१००,	१२
' रादल प्रेम क	सतगुरु ।	२२,	३१
" महन जनाइया	'	२३,	४७
" गारा तानि कर,	"	१९,	१७
गान भरि, निरखि निरखि निज ठार । "		१८	११
' कर कर धारी गूढ ।	'	"	१२
" " - , टटि गई सन जेव ।	"	१९,	१३
" " डाखा नोहि मरार ।	"	'	१४
" , रहा कलेजे भाठ ।	"	"	१५
" मारी प्रम वा,	'	१९,	१८
" मिला तु जानिये,	"	२३,	४२
' मिलि निरभय भया,	"	२१,	२९
' मिले जु सन मिले,	"	२३,	४१
" मिले तो क्या भया,	गुरुपारख ।	३४,	३२
" मरा मूरमा, नेधा मरुल परार	सतगुरु ।	१८,	९
" ' " तकि तकि मरै तार ।	"	"	१०
" माहि नियानिया,	'	२१,	३०
" सत का मद्र है,	"	२०,	२०
" सम काडे नहा,	"	१८,	४
" सम को है मगा,	'	"	३
" मन न आनहा,	'	२१,	३२
' मोचा मूरमा. नख सिख मारा पूर ।	'	१७,	७

सतगुरु माँचा सूरमा, सद्द जु ब्राह्म एक ।	सतगुरु ।	१७,	८
" " से सूधा भया,	सतगुरु ।	२०;	२३
" " सद्द उधापही,	भक्ति ।	११५;	७२
" " उलंघि कर,	संबक ।	१००;	११
" " कमान करि,	सतगुरु ।	२०;	१९
" " प्रमान,	सद्द ।	२०८;	५८
" सद्द सब घट बसै,	सतगुरु ।	२०;	२१
" हम मो भल कही,	"	२२;	४०
" " रीझि के, कयो एक परसंग ।	"	"	३४
" " " एक दिया. उपदेस ।	गु०शि०हे० ।	४१;	२०
सती जु डरपे अगनिते,	सूरमा ।	२३५;	९४
सतिया का सुख देखना,	सती ।	२१६;	२१
" सोई अस निया,	"	"	२९
सती चमाकै अगनि मं,	"	२१७;	२६
" जरन को नीकसी, चिन धरि एक विवक ।	"	२१४;	३
" " " विवका तुमिरि मनेह ।	"	"	४
" डिगै तो नीच घर,	"	२१५;	८
" न पोसै पीमना,	"	"	९
" पुकारै सर चढ़ी,	"	"	७
" विचारी मत किया, कांटीं संज विछाय ।	"	२१४;	६
" " " ले अपना वं भेव ।	"	२१६;	२३
" भई है सत कं,	"	"	२२
" मूर नन पाइया.	"	२१४,	५
" " " माहिदा,	"	२१६;	२४

सत्तनाम	कहुवा लगे,	भर्मविध्वंस ।	३४७;	५०
"	की लौं लगी,	विश्वास ।	२१०;	२
"	के पट्टरै,	गुरुदेव ।	१०;	४७-
"	को छांडिकर, करै और की आस ।	त्रि०चा० ।	२२४;	१२
"	को छांडि कै, " आन को जाप ।	"	"	१६
"	" कै, राखै करवा चौधि ।	"	"	१७-
"	" " राति जगावन जाय ।	"	२२५;	१८
"	" " करै और को जाप ।	"	२२४;	१५
सत्तनाम	छांडी नहीं,	सतगुरु ।	२६;	७४
"	जाना नहीं, माना नहीं विचार ।	विचार ।	४२२;	८
"	तिरलोक में,	परिचय ।	१४९,	१२४
"	निज औषधि, कोटिक कटै विकार ।	सुमिरन ।	११७;	१७
"	" " सतगुरु दई बताय ।	"	,	१९
"	" मूल हे,	भर्मविध्वंस ।	३४९;	६८
"	" सोय,	सतगुरु ।	२९;	१०१
"	विश्वास,	सुमिरन ।	११७,	२०
"	सुमिरन करै,	उपदेस ।	२००;	७२
"	सैं मन मिला,	विश्वास ।	२१०;	३
"	है मोतिया,	निगुरा ।	४९;	२४
सत्त भक्ति तलवार है,		भक्ति ।	११३;	५८
" मील दाया सहित,		भेष ।	८४;	५१
सद कृपालु दस परिहरन,		माधु ।	६५;	१०३
" पानी पानाल का,		लगनी ।	३६८;	२४
सदा मोन जठ में रहे,		साधु ।	७८;	२१९

सदा रहे सतोष में,	साधु ।	६५	१०५
सपने में सर्राई के,	सुमिरन ।	१२१,	५८
सत्र आये उस एक में,	पतिव्रता ।	२७०,	२९
„ आसन आसा तनै,	आसातृत्ना ।	४०१	१६
„ कछु गुरु के पास है, निसदिन चरनो लाग । गु० ।		१८,	७०
„ „ „ रहै चरन में लाग । सबक ।		१००,	१०
„ फाह्र का लीजिये,	एवता ।	३२४,	९
„ „ „	विचार ।	४२३,	१३
सत्र फौद निरहिनी पीयरी,	विरह ।	१६८,	८३
„ सूर कहाई,	मूरमा ।	२३८,	११५
„ कोई मरि जात है,	चितायनी ।	१९०,	१७६
„ को नाम सुनाइहू,	सुमिरन ।	१२१,	५२
„ „ पूछत में फिरा,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	१९
„ „ सुख दे सद्द का,	सद्द ।	२०५,	३४
„ घट भीतर राम है,	चितायनी ।	१८८,	१५८
„ „ मेरा साइया,	साक्षाभूत ।	३२२,	२
„ जग तो भरमत फिरै,	सतगुरु ।	२८,	८६
„ „ भरमा यों फिरै,	„	२५,	६१
„ „ डरैपे काल सां,	काल ।	२९९,	६९
„ „ मूना निंद भरि-	„	२९३,	६
„ ते भयो मधुकरा,	विश्वास ।	२१२,	२१
„ घरनी जगट करू,	गुरुदेव ।	११,	५७
„ वन ती चदन नहा,	साधु ।	६०,	१३७
„ तुलसा भई,	भर्मविग्रह ।	३४६,	३९

सब मंत्रन का बीज है,	सुमिरन ।	१३२;	१६०
„ रग तांति रवाव तन,	विरह ।	१६५;	५३
„ रंग पानी ते भया, सब रंग पानी सोय ।	माया ।	२८२;	४९
„ ” ” ” ” होय ।	”	”	५०
„ से हिलिये सब से मिलिये,	उपदेश ।	२०१;	८२
„ मों कहूं पुकारिके,	भक्ति ।	१११;	४२
„ हि रसायन हम करी,	सुमिरन ।	११८;	२६
„ हो तरु तर जाय के,	विरह ।	१७०;	९४
„ ही भूमि बनारसी,	मध्य ।	३१७;	२९
„ ही मार्थी कळतरो,	सूरमा ।	२३४;	८१
सबल क्षमो निर्गर्व धनो,	क्षमा ।	४२६;	९
सबै कहावै लस्कारी,	सूरमा ।	२४०;	१४३
„ खिलौने खांड के,	व्यापक ।	३२७,	२३
„ रसायन हम किया,	प्रेम ।	१५५;	५२
„ हमारे एक है,	एकता ।	३२४;	१२
सब्द उपदेश जु मैं कहूं,	सब्द ।	२०३;	१०
„ कहों ते उठत है,	प्रश्नोत्तर ।	४४०;	५
„ ” से आइया,	”	”	७
„ कहै सो कीजिये,	सब्द ।	२०३;	९
„ खोजि मन बसि करै,	”	”	१२
„ गहै सो मरद है,	”	२०९,	७४
„ गुरु का सब्द है,	”	२०३;	१३
„ जु ऐसा बोलिये.	”	२०९;	६९
„ दुगाय ना दुँ,	”	२०३;	८

सब्द न करे मुलाहिना,	सद्व ।	२०३,	३
१ " पाय सुरति राखहि,	"	"	९
" बराबर घन नहा,	"	२०२,	४
" विचारी जो चळ,	चित्रलमृतन ।	३१५,	४८
" विचारी पय चळ,	भष ।	८४,	५५
४ ब्रम्हडे ते आइया,	ग्रन्थोत्तर ।	४६१,	८
५ भेद तत्र जानिय,	सद्व ।	२०३,	११
" सुरति का तर है,	सूत्रमा ।	२३०,	१३१
" सुरति के अन्तरे,	निष्कर्ता ।	३६९,	५
" सद्व बहु अन्तरा, सार सद्व कित देहु ।	सद्व ।	२०२	२
" " " " सद्व सार का सीर ।	"	"	३
" " सत्र जोइ वदे,	"	२०३,	१४
" " " " महारे प्राणिय,	"	२००,	६७
" " " " हमार हम सद्व क,	"	२०३,	७
" " " " हमारा आदि का,	"	२०८,	६४
६ मझे मारा खिचि क,	सतगुरु ।	२०,	२४
समझा समझा एक ह, अन समझे सत्र एक ।	भेद ।	३१७,	६
" " " " " " सौ मीन ।	"	३१८,	७
" " " " " " सोई जानिये,	"	"	८
समझाये समझ नहीं,	चिनायना ।	१९७,	१०७
समझे को सैरी धनी,	सद्व ।	३१७,	५
" " " " " " कृ गृ जेने,	साधु ।	७६,	२०
समझे का ज्ञ अरे ह,	भेद ।	३२०,	३०

समझी का मत और है,	भेद ।	३२०;	३१.
” तो धरम रहै,	व्यापक ।	३२६;	१६.
समदसौं तव जानिये,	भेद ।	३२०;	२८
” सतगुरु किया, भरम भया सब दूर ।	”	३१९;	२३
” ” ” ” किया ” ” ”	”	३२०;	२४
” ” ” दीया अविचल ज्ञान ।	”	”	२५.
” ” ” भेटा भरम विकार ।	”	”	२६.
” ” ” पाया मन विश्वास ।	”	”	२७
समरथ धोरो कंध दे,	समरथ ।	३०३;	२५.
समुद्र लहरि जो घोरिया,	मन ।	२७३;	८७-
समुँद पाटि लंका गयो,	निजकर्ता ।	३७०;	१४
ससुन की सेवा करो,	वेहद ।	३४१;	३५
सरने राखौ साइया,	साधु ।	७१,	१५७
सरप हि दूध पिलाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४०;	१३
सब सोने की सुंदरी,	कनककामिनी ।	२९०;	४२
सबस सीस चढाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३४
सबर तरुवर संतजन,	साधु ।	५९;	५३
सरस सखा ऊजळ बरन,	कपट ।	४०५;	२२
सल्लि भक्त कहु ना तरै,	भक्ति ।	११४;	७०.
ससा सिंघ के धनुस का,	बेली ।	३५९;	५
सह कामी दीपक दसा,	काम ।	३९०;	९.
” कामी सुंमरन करै,	सुमिरन ।	१२७;	१०७.
सहज जलना सतिया तना,	सती ।	२१६;	२०
” ताजु आनि के,	सहद ।	२,०७,	४६५

साकट संग न बैठिये, अपना अंग लगाय ।	निगुरा ।	४९;	३
॥ संग न बैठिये, करन कुचेर समान ।	निगुरा ।	॥	३
॥ हमरे कोऊ नहि,	निगुरा ।	५०;	३
साकुट हित हुं जाय के,	आनदेव ।	३८७;	
साकुट भले हि मरजिया,	निगुरा ।	५२;	५
साकुट साकुट कहा करी,	निगुरा ।	५२;	५
साखि सख्य बहते सुना, मिटा न मनका दाग । संगति ।		९१;	२
साखि सख्य बहतेहि सुना, मिटा न मनका मोह ।	॥	९४;	५
साखी लाप बनाय के,	कयनी ।	३६२;	१
॥ सेन मही करो,	सूरममार्ग ।	३७८;	३
॥ सखी कव कही,	प्रश्नोत्तर ।	४४६;	६
॥ ॥ जव कही,	॥	॥	६
मागर उमडा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३;	२
॥ मे मानिक वसे,	पारख ।	३५६;	५
सात गांठ कीपीन की,	संतोष ।	४२९;	१
॥ दीप नी मंड में, तीन लोक ब्रह्मंड ।	दुख ।	४०६;	१
॥ दीप नी मंड में, सब से फगुवा लीन ।	क० का० ।	२९२;	६
॥ समुंद की इक लहर,	मन ।	२७५;	१०
मातों सायर मैं फिरा	निन्दा ।	३८५;	
॥ मन्द जु बाजते,	चितावनी ।	१७८;	६
साथी हमरे चलि गये,	विपर्यय ।	२६२;	६
साध सता औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।	सूरमा ।	२३०;	४
साध सती-औ सूरमा, इनका मता अगाध ।	सती ।	२१५;	१
॥ इन पदतर कोइ नाहि ।	॥	॥	१

गाव मना ओ मूरमा कवहु न फेठ पाठ । मन् ।	२१२,	११
‘ ‘ ‘ ‘ वाना ओ गनत्त । ..		१३
मातु रुहामन रुठिन हे, आग वी सुधि नौहि । मातु ।	३,	००
‘ ‘ ‘ ‘ या माड री धार ।		०१
‘ ‘ ‘ ‘ लम्बी पेन् वनू । ,	३,	००
‘ ‘ चन् रा दीनिय.	२२,	१८
‘ ‘ नदी चउ ग्रेस रम,	मातु ।	२८, ४५
‘ ‘ दया माहित मिले,	,	२५, २३
‘ ‘ उरम को नाउये, ०	,	५२, १००
‘ ‘ परनिने मद्रु में,	फारख ।	३५८, ६०
‘ ‘ यन् परमाश्री, घन च्यो जल्पे जाव । मातु ।	२८,	४०
‘ ‘ ‘ ‘ नावन् तिनक र्मा । ,	,	२०
‘ ‘ रउ मसार म	,	२७, ३८
‘ ‘ रिउ मतनाम पन्,	‘ ‘	, ३०
‘ ‘ रिहगम सुग्मरी,	,	७४, १८५
‘ ‘ भया तो क्या हुआ,	भय ।	८०, १५
‘ ‘ मलातम ना कहे,	विलारना ।	१९२, १००
‘ ‘ मिठे यहु सत्र र्ति	मातु ।	५७, ३०
‘ ‘ मिले मचु पावा,	,	७७, २६०
‘ ‘ ‘ ‘ माहित मिले, अन्तर रहा न रम्य । ‘ ‘	‘ ‘	५८, ४०
‘ ‘ ‘ ‘ ‘ ‘ ये सुख कहा न जाय । ,	,	७४, १८१
‘ ‘ मिले सुख ऊपर्ये,	,	५२, १९२
मातु मती ओ नूरमा, ठई न माटे मेंह । मातु ।	६४	०५
‘ ‘ ‘ ‘ गवा री न आट ।		०८

साधु सती औ सिध को,	साधु	६४;	९७
” साधु सब एक है,	”	”	९९
” ” मुख से कहै,	”	७२;	१७५
” ” सब ही बड़े,	”	६४;	१०१
” सिद्ध बड अन्तरा, जैसे आम बबूल ।	”	६३;	८९
” ” बहू ' साधु मता परचंड ।	”	६१;	६९
” माँप साहिय समुँद,	”	५७;	३७
” सेव जा घर नहि,	”	५७;	३६
” संग अन्तर पडे,	संगति ।	९१;	२४
” संगति गुरु भक्ति जु,	”	९८;	८०
” ” ” ” रु	”	”	८४
” संतोषी सर्वदा,	संतोष ।	४२८;	३
” सिध का इक मता,	साधु ।	६४;	९८
” हजारी कापडा,	”	६३;	८७
” हमारी आत्मा, हम साधुन के देह ।	”	५७;	४०
” ” ” ” के साँस ।	”	”	४१
” ” ” ” के जीव ।	”	”	४२
” साधुन का कुतिया भली,	”	६०,	६७
” की झुपड़ी भली,	”	”	६३
” के मैं संग हूँ,	”	५८;	४७
” के सत संग ते,	संगति ।	९१;	२७
” साधू आया पाहुना,	साधु ।	५६;	३२
” आवत देखि करि, हँसी हमारी देह ।	”	५६;	३०
” आवत देखि के, चरनों लागो धाय ।	”	”	२९

साधू आयत देखि के, मन में करे मरोर ।	साधु ।	५६,	३१
॥ ऐसा चाहिये, आई देय चलाय ।	माया ।	२८३,	५२
॥ ॥ ॥ त्रैमा फौफल भग ।	साधु ।	७३,	१७१
॥ ॥ ॥ जाके ज्ञान निवेक ।	॥	६५,	१०२
॥ ॥ ॥ जहाँ रहै तहँ गेय ।	॥	७६,	१९८
॥ ॥ ॥ , , जाना पूरन मन ।	॥	७७,	२०७
साधू ऐसा चाहिये, जामें लठन बतौस ।	साधु ।	७७,	२०९
॥ ॥ ॥ दुखे दखावै नहि ।	॥	६३,	८५
॥ ॥ ॥ जैसे सूप सुभाय ।	साधु ।	३४९,	१
॥ कौ उठि भेटिये,	साधु ।	५८,	४६
॥ के घर जाय के,	॥	७४,	१८३
॥ खारा यौ तन,	॥	७४,	१८०
॥ खोजा राम के,	॥	६०,	६१
॥ चाल जु चालई,	॥	६३,	९३
॥ जन सत्र में रमै.	साधु ।	६३,	८६
॥ तो हीरा भया,	साधु ।	६४	१००
॥ दरसन महाफल,	साधु ।	७५,	१९१
॥ भूखा भाय का,	॥	५८,	४८
॥ भौरा जग कळी	॥	६३,	८८
॥ मेरे सत्र जडे,	निवेक ।	४२१,	१०
॥ सत्र ही मूरमा,	सूरमा ।	२३९,	१२६
॥ सरजन साभरी,	साधु ।	७५,	१८९
॥ सीप ममुद्र के,	प्रेम ।	१५६,	५५
॥ सोई जानिये,	साधु ।	६४,	०४

माधु सोई मराहिये, कनक कामिनी त्याग ।	साधु ।	७३; १७०
„ सोई मराहिये, पांचो रामे चूर ।	साधु ।	७४; १८६
„ संगति परिशे	संगति ।	७७; ७४
„ मन्त्र सुलच्छना.	„	„ ७८
„ मन्त्र ममुद्र है,	साधु ।	५७; ३४
साप छलुंकर दोयकुं.	संगति ।	९६; ६९
माधु विचारा क्या करे,	गुरुदेव ।	१६; ८९
माथर मांहीं सर गया,	विपर्यय ।	२५२; ३३
सार ब्रह्मै लोहा झरै,	सूत्रमा ।	२३३; ६९
„ मन्त्र निज जानि के,	मन्त्र ।	२०७; ५१
„ मन्त्र जानै विना.	मन्त्र ।	„ ५२
„ „ को खोजिये,	„	„ ५३
„ हि मन्त्र विचारिये,	„	„ ५४
सारा बहुत पुकारिया,	„	२०५; ३०
„ लस्कर हृदिया,	निगुरा ।	४८; २२
„ मृग बहु मिले,	गु० शि० हे० ।	४१; १६
सावधान ओ मीळना,	माधु ।	६५; १०६
साहिव का बाना सही,	„	७५; १९१
„ को गति अगम है,	धोरज ।	४२५; १०
„ के दरवार में, कमी काहु को नाहि ।	सेवक ।	१०१; १६
„ के दरवार में, साँचै को सिरपाव ।	सांच ।	४३१; २०
„ को भावै नहीं,	सेवक ।	१०१; १६
„ जासों ना रुचै,	„	„ १५
„ तुम जनि वीसरो,	समरथ ।	३०४; २८

माहिब तुमहि दयाल हो,	समग्र ।	३०५;	३७
„ तेगी माहिनी;	माक्षाभूत ।	३२३,	८
माहिब दरसन कारन,	भगति ।	९९,	८७
„ पारस रूप हे,	परिचय ।	१४८,	११२
„ मिला तत्र जानिये,	माधु ।	७२,	१६५
„ मेरा एक हे,	निजकता ।	३७०,	९
„ मेरे मुझ को,	सतोष ।	४२९,	०
„ मन का वाप हे,	निजकृता ।	३७३,	३६
„ सम समर्थ नहीं,	समग्र ।	३०१,	२
„ सग राचे भँवर,	माधु ।	७४,	१८२
„ मों सत्र होत हे,	समर्थ ।	३०१,	१
साहेत्र गाम संभारता,	सुमिरन ।	११९,	३४
निदक सतूरी बाहिरा,	भर्मिधिबस ।	३४८,	६३
सिद्ध सहज ही सिर पड़ी,	नेत्री ।	३६०,	११
सिरगुन आया जीव यह,	प्रश्नोत्तर ।	४४३;	३७
सिरजन हारे सिरजिया,	निष्ठास ।	२१०;	६
सिर दीये जो पाइये,	रस ।	२६३,	८
„ राखे सिर जात है,	नूरमा ।	२३१;	४८
„ घाटे का खेल है, सो सूरन का काम । „		२३६;	१०४
„ „ „ झाँडि देय सब वान । „		२४०;	१३७
सिद्ध शक्ति मुख को जुनै,	निपर्यय ।	२४८;	१६
सिप किरपिन गुरु स्वार्थी,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४१
„ बौडा गुरु मसकल्प,	गुरुदेव ।	९,	४४
„ पूजे गुरु आपना,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	३९

निष माता चाना भया,	गुरुपारंग ।	३२,
' , गदुत किया,	' ,	३८,
' समार गनि,	भेष ।	८४,
सौम नई ममार सा,	लगना ।	३६८,
साध सुनै विचारि ले,	मद ।	२०४,
सातठ कोमठ दीनना,	परिचय ।	१४०,
' नठ पानाठ का,	भेष ।	८३,
' मद्र उचागिये,	मद्र ।	२०६,
सीतलना तत्र जानिये	सद्र ।	२०६
सीतलना मंत्रोय ले,	गूरमा ।	२३२,
साप जु तत्रग उतगता,	सतगुर ।	२८,
' नहा सायर नहीं,	परिचय ।	१४३-
' समुंदर में तसे,	सतगुरु ।	२८
सील गहै काइ सावधान,	सील ।	४२७,
' मिल्ये नाम को,	"	"
हि राखि विरक्त भये,	"	"
' क्षमा जत्र ऊपजे,	"	४२६,
सालग्रन दृढ ज्ञान मत,	साधु ।	६५
' निरमल दसा,	सील ।	४२७,
' सत्र सौ वटा,	"	"
' सुर ज्ञान मत,	सेनक ।	१०२,
साप हरन गुरु पारधी,	सतगुरु ।	२८,
सास उतारै मुँड धरे,	प्रेम ।	१५१,
काटि पासग किया,	"	१५०,

श्रीस खिसे साईं लखे,	मूरमा ।	२३४,	७८
सुकदेव सरीखा फेरिया,	निगुरा ।	४८,	२३
सुख का सागर सील है,	साठ ।	४०७,	९
के माये सिल परै,	सुमिरन ।	१२२,	६३
" के सगी स्वार्थी,	परमाग्य ।	२४३,	४
" को सागर भ रचा,	भर्मिन्चम ।	३४९,	६६
" देवे दुख को हरे,	साधु ।	५९,	५६
" मे सुमिरन ना किया,	सुमिरन ।	१२८	१२३
सुखपत मोंहों सत्र गले,	आत्मअनुभव ।	३११,	१८
सुखिया दृढत में फिर,	दुख ।	४०५,	३
" मत्र सत्तार है,	शिरह ।	१६७,	७०
सुखि पाया सुख ऊपजा,	परिचय ।	१३९,	३३
सुनिये पार जु पाइया,	साधु ।	५६,	२४
" संतो साधु मिलि,	गुरुदेव ।	१५	८२
सुपना में साईं मिठा,	लगनी ।	३६९,	२९
सुमिरन का सभे रहा,	चिन्तामना ।	१८७,	१५३
" एसो कीनिये,	सुमिरन ।	१३३,	१६२
" को सुधि यों करी, जैसे कामी क्षाम ।	"	१२५,	९१
" " " कहीं कबीर पुकारिके(३) "	"	"	९३
" " " ज्यों गागर पनिहारि ।	"	"	९२
" " " ज्यों सुरभि सुत मोंहि ।	"	"	९४
" " " जैसे दाम कगाल ।	"	१२६,	९५
" " " जैसे नाद कुरग ।	"	"	९६
" " " ज्यों मूई में डोर ।	"	"	९७

सुमिरन तूं घट में करे,	सुमिरन ।	१२७; १०५
” मन लागे नही,	”	१२६; १०२
” मारग सहज का,	”	१२५; ८९
” माँहि लगाय दे,	”	१२६; १०३;
” सुरति लगाय के,	”	” १०४
” से सुख होत है,	”	१२९; ९०
” मां मन लाइये, जैसे कोट भिरंग ।	”	१२६; ९८
” ” ” ” दीप पतंग ।	”	” ९९
” ” ” ” पानी मोन ।	”	” १००
” सो मन जब लो,	”	” १०१
सुरज किरन रोकी रहै,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९; ३७
” समाना चाँद में,	परिचय ।	१४०; ४१
सुरति उडानी गगन को,	”	१४३; ७१
” बहो मम साँइया,	विनती ।	४३७; ८
” डोकली नेज लौ,	लगनी ।	३६८; १९
” निरति दो नूँवरो,	मध्य ।	३१५; ११
” फसी संसार में,	सुमिरन ।	१३३; १६८
” समानी नाम में,	पतिव्रता ।	२१९; १८
” ” निरति में, अजपा माँहीं जाप ।	परिचय ।	१३९; ३०
” ” ” निरति रही निरधार ।	परिचय ।	१३९; ३१
” समावे नाम में,	सुमिरन ।	१२१; ५४
” सुहागिन सोइ सहि,	सेवक ।	१०३; ३६
सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।	सू०मा० ।	३७४; ३
” ” ” थाके बिस्तु महेस ।	”	”

सुरनर मुनिजन औलिया,	परिचय ।	१४५;	८५
“ मुनिजन देवता.	परिचय ।	१४५;	८६
“ मुनि सब को ठगे,	मन ।	२७४,	९१
“ रिधि मुनि सत्र फसे,	मोह ।	३९३;	९
सुरा पान अचनन करे, तामं उंग बुडग (४)	नशा ।	४१९;	२०
“ “ “ ताको करो न सग(४)	“	४१९;	२१
सुषमन डिय्यो पोत करि,	प्रकृतिगुन ।	३८७,	२
मूखन लागे केपडा,	चित्ताननो ।	१८७,	१४८
सूता साधु जगाइये,	निगुरा ।	५१,	४५
सूने मंदिर पैठौं,	निगुरा ।	५२	५५
सूम थैलि अरु स्नानसग,	लोभ ।	३९२;	७
“ सदा ही उडरै,	निर्षय ।	२५०,	२६
सूर चडे सग्राम को, गाना पढिन अनेक । सरमा ।		२३६,	९६
“ “ “ कृ अरिदल मोहि बसाय । “		२३६;	९७
“ “ “ पीछे पाप न देह । “		“	९८
“ “ “ पाप न पीछा देह । “		“	९९
“ “ “ राधे नरनम चार । गानु ।		७८	२२०
“ रडा सग्राम को,	सरमा ।	२२९,	३०
“ न सेरी ताकडे,	“	“	३३
“ निसाना गाडिया,	“	२३८,	१२२
“ रडे गुरु दान से,	“	२४१,	१५२
“ सती का सहल है,	नाप्रतमृतक ।	३३५	४०
“ “ स्वर्ग पाद है,	मती ।	१६,	२२५
“ सनाह न पहिरई मर्तो नहो शरण । नृगमा ।		२२९	३२

सूर सिलाह न पहिरई, जव रन बाजा तूर ।	सूरमा ।	२२९,	- ३१
सूरत मे मूरत वसै,	परिचय ।	१४८;	११०
सूरा कायर दुइ भला,	सूरमा ।	२३८;	११९
" के तो सिर नहीं,	पतिव्रता ।	२२१,	३९
" के मैदान में, कायर फंदा आय ।	सूरमा ।	२२८;	१९
" " " मूरा सों सूरा मिलै(३)	"	"	२०
" " " कायर भाजै पीठ दे(३)	"	"	२१
" " " तीर तुपक वरछी बहै(३)	"	"	२२
" खौडा जो गहै,	सूरमा ।	२४०;	१४२
" जूझै गिरद सों,	"	२२७;	१५
" तो बहुतक मिले,	"	२४१;	१५३
" तो सौचै मते,	"	२२८;	२८
" थोडा हां भला,	"	२२९;	२९
" नाम धराय करि,	"	२२८;	२६
" लहै कामंद है,	"	"	२५
" सनमुख सुवाहता,	"	"	२५
" सब हि निकसिया,	"	२३९;	१२५
" सोस उनारिया,	"	२२७;	१८
" सो सनमुख लडै,	"	२३९,	१२५
" सोई जानिये, पाँत्र न पीछै पेल ।	"	२३६;	१०२
" सोई सराहिये, लडै धनी के हेत ।	"	२२७.	१५
" " " अंग न पहिरै लोह ।	"	२२७;	१६
सूर सार संवाहिया,	"	२२९;	३४
सूरी उरर सर करै,	सुहृन्भागी ।	३७५;	८

रूप सुरति का मर्म है,	मूक्षमार्ग ।	३७८;	३३
उखे संयूरी बाहिरा,	मांसाहार ।	४१९,	३८
तज विछावे सुंदरी,	विभिचारिन ।	२२३;	६
सेत्रे सुती रंग रम्हा,	परिचय ।	१४६;	९४
सर दुई को ग्वाय करि,	प्रकृतिगुन ।	३८८;	४
" पांच को ग्वाय करि,	"	"	३
सेठ जु जाहो मारिये,	सूरमा ।	२३०;	४३
सेवक अपना करि लिया,	कलकत्तामिनी ।	२२०;	४६
" कुत्ता राम का,	सेवक ।	१००;	७
" मुझे कहवई,	"	९१;	३
" फल मागे नहीं,	"	९१,	५
" भाव सदा रहे,	भेष ।	८४;	५०
" सेवा में रहै, अन्त कहां नहि जाय ।	सेवक ।	९१;	१
" " " सेवक कहिये सोय ।	"	"	२
" " " सेव करे दिनरात ।	"	"	४
सेवक स्वामी, एक मत,	"	१००;	६
सेत्रे सालिग राम को,	भर्मविध्वंस ।	३४३;	१३
सेस नाग के महस फन,	चितावनी ।	१८६;	१३९
सो गुरु निमदिन बंदिये,	गुरुपारख ।	३१;	७
" दिन गया अकाज में,	साधु ।	७२;	१६३
" मन सोनो सो विषय,	मन ।	२७३;	८४
" सर मोग मन बस्या,	विरह ।	१७१;	११०
" साहिव तन में बसै,	व्यापक ।	३२६;	१४
" सो सेरी हूँ तकां,	मन ।	२७३;	८५

सोइ अक्षर सोई भनै,	विचार ।	४२३;	२०
" सोइ नाच नचाइये,	गुरुदेव ।	१४;	७४
" सद्द निज सार हैं,	सद्द ।	२०४;	२१
सोई आंसुं साजना,	विरह ।	१६६;	५६
" साधु पतिव्रतजु,	साधु ।	७२;	१६६
सोऊँ तो सपने मिल्लं,	लगनी ।	३६७;	१२
सोने रूपे घाह दई,	फसौटी ।	३७४;	५
सोया सो निस्फल गया,	सुमिरन ।	१२३;	७८
सोरा रति भर सुरति है,	प्रश्नोत्तर ।	४४५;	४९
सौ जोजन साजन वसै,	प्रेम ।	१५४;	४२
" पापन को मूल है,	माया ।	२८२;	५१
" वर्षों भक्ति करै,	बिभिचारिन ।	२२४;	१४
सौदा कीजै राम सो,	विश्वास ।	२१२;	२५
सख समुदाँ वीछुरा,	दुख ।	४०६;	९
संगत कीजै साधु को, कटी न निस्फल होय ।	साधु ।	७२;	१६२
संगति अधम असाधु की,	संगति ।	९३;	४५

सन्त मता गजराज का,	साधु ।	७६, १९९
सन्त मिले जनि व्रीहुरो,	साधु ।	६२; ८०
” ” तत्र हरि मिले, कहिये आदि रु अत । ”		७१; १५५
” मिले तत्र हरि मिले, यू सुख मिले न कोय । ”		७२; १६४
” मिले सुख ऊपने,	”	७१, १५३
” समागम परम सुख,	”	” १५२
” सुरसुरी गगनन्द,	सगति ।	९८, ८१
” मुहागी सूमा.	भक्ति ।	११५, ७१
सत सेवा गुरु बदगी,	साधु ।	७८, २२१
सन्त सन्त मत्र कोइ कह्ये,	,	७३; १७८
मंत संतोषी सर्वदा,	सद्ग ।	२०५; २८
” होन हे हेत के,	माधु ।	७८, २१७
संतन के मन भय रह्ये,	”	७३ १७३
सतो सरत्रन दे मिले,	कमोटी ।	३७३, १
सनों खाई रहत हे,	नाया ।	२८३, ५०
संतोष हि सहिदान है,	सतोष ।	४२८, १
सपति तो हरि मिलन हे,	दुख ।	४०७; १७
” देखि न हरपिये,	”	४०६ १६
मंपुट माहि समाइया.	निजकतां ।	३७०; ८
मंसारी साजट मला,	मेप ।	८३, ४५
” से प्रीनडी,	स्वारय ।	१४२; ६
ससं करों न में उरों,	परिचय ।	१३७; १६
” -काल मगीर में, त्रिप्रम काल है दूर ।	काल ।	२९८; ५४
” ” ” नारि कर मत्र दूर । ”	”	” ५८

संझे खाया मकल जग,	काल ।	२९८;	५७
," नहि साधू मिले,	पारख ।	३५४;	२८
मंस्कृत हि पंडित कहे,	भाषा ।	३७९;	२
," हि संसार में,	भाषा ।	३७९;	३
," है कूप जल,	,"	,"	१
माँई सुमिर मति डोल कर,	सुमिरन ।	१२८;	१२
माँई इतना दोजिये,	विश्वास ।	२१०;	
," केरा बहुत गुन, ओगुन कोई नहि ।	समरथ ।	३०२;	११
साँई केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदे माहि ।	समरथ ।	३०६;	४८
," को सुमिरन करै,	सुमिरन ।	१२९;	१२६
," तेरा तुझ हि में,	व्यापक ।	३३०;	५१
," दीया सहज में,	विश्वास ।	२१२;	२०
," मेरा एक तू, दूजा, साँई क्या कलं (३)	पतिव्रता ।	२१९;	२१
," मेरा एक तू, दूजा, साँई जो कलं (३)	,"	,"	२२
," मेरा बानिया,	समरथ ।	३०२;	१३
," मेरा सावधान,	विनती ।	४३७;	११
," मैं तुझ बाहिरा,	समरथ ।	३०२;	१२
," मोर सुलच्छना,	पतिव्रता ।	२१९;	१३
," यों मति जानियो,	सुमिरन ।	१२९;	१२५
," सेति न पाइये,	सूरमा ।	२३१;	९५
," सेवन जरि, गई,	विरह ।	१६४;	४३
," सों सांचा रदो,	सांच ।	४३०;	१०
मांवर हूते मवल है,	माया ।	२८१;	४०
सांच बहं, तो मारि हैं,	सांच ।	४३०;	६

स्नेह प्रेम गुरुचरन मों,	गुरुदेव ।	१४,	७७
स्याम सब्ज विधि पच जे,	आत्मानुमन ।	३१०,	९
स्वामी के सहमी पडी,	चानक ।	३०८,	१६
” सेनक से कहे,	चिताग्नी ।	१९२,	२००
” सेनक होय के,	गुंशि०हे० ।	४४;	४४
” होना सेत का,	चानक ।	३०८;	१४
” होना सोहरा,	दासातन ।	१०५,	१५
” ह सम्रह करै,	उपदेस ।	१९५;	२२
स्वार का मन को सगा,	स्वारथ ।	२४२,	१
” कु स्वारथ मिले,	”	”	३
’ सूफा छाकडो,	परमारथ ।	२४३,	७
स्वास सुरति के मध्य ही,	साक्षीभूत ।	३२३,	९
स्वाग पहिरि सोहरा भया,	भेष ।	८१;	२५
स्वांगी सब ससार है,	साधु ।	६९;	१३९
स्वर्ग मृत्यु पाताल में,	दुख ।	४०६;	१५
घम ही ते सत्र कछु ग्रं,	करनी ।	३६५,	२९
घम ही ते सत्र होत है,	करनी ।	”	३१
छोता तो घर ही नहीं,	करनी ।	३६४;	१६
थोता उक्ता कौन घर,	प्रश्नोत्तर ।	४४६.	५६

४

दृष्टि मारि हीरा लहा,	पारख ।	३५४,	२७
दृष्टी मो सत्र सुन लई,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७८,	३६
दृष्टिपारों म लोह ज्यो,	व्यापक ।	३२९,	४२

हृद जोड़ा बेहद गया,	। बेहद ।	३३७,	१
हृद छाड़ी बेहद गया, अवरन किया मिलान ।	" "	" "	३
हृद जोड़ी बेहद गया, मुन्न किया अस्थान ।	" "	" "	४
हृद छाड़ी बेहद गया, रहा निरतर हांय ।	" "	३३८,	५
हृद छाड़ी बेहद गया, तासा राम हजूर ।	" "	" "	६
" बेहद दोऊ तजी,	बेहद ।	३३७,	२
" बधा बेहद र्मी,	बेहद ।	३३८,	८
" माहीं हदका घना,	बेहद ।	" "	११
" में पीव न पाइये,	बेहद ।	" "	७
" में बैठा कथत ह,	बेहद ।	" "	९
" में रहँ सो मानया,	बेहद ।	" "	१०
हदिया सेती हृद रहो	बेहद ।	" "	१२
हनिया सोई हन्न सी,	मांसाहार ।	४१३,	१६
हम करता सत्र सृष्टि के,	निजमर्तो ।	३७२;	३४
" कु स्वामी मति कडो, हम हँ गरोत्र अधारा परिचय		१४८;	११७
" कु स्वामी मति कडो, बाजा है बलियार । परिचय ।		" "	११८
" घर जारा आपना,	गु०नि०ह० ।	४०,	११
" जाना तुम मगल हो,	भेष ।	८३,	४२
" जाने थे खाहिगे,	काल ।	२९७,	४४
" जाये तेमी मुआ,	त्रियय्य ।	२६२;	६६
" तुम्हरो सुमिरन करै,	प्रेम ।	१५५;	४४
" तो जोगी मन हि के,	भेष ।	८३;	३८
" देखन जग जात है,	गु०शि०हो० ।	४०;	१२
" भी पाहन पूजते,	भर्मवि० ।	३४३,	१५

हम वासी वा देस के, जहा पुरुष की आन । परिचय ।	१३५;	
„ वासी वा देस के, जहां वारह मास बसंत । „	„	
„ वासी वा देस के, गगन धरन टोउ नाहि । „	१३६;	
„ वासी वा देस के, जहां ब्रह्म का कूप । „	„	
„ वासी वा देस के, आदि पुरुष का खेल । „	„	१०
हम वासी वा देस के, वारह मास विलास । परिचय ।	१३६;	११
„ „ „ जाति बरन कुल नाहि । „	„	१२
„ „ „ रूप बरन कुल्लु „	१३७;	१३
„ „ „ पिंड ब्रह्मंड कह्यु „	„	१४
„ „ „ गाज रहा ब्रह्मंड । „	„	१५
हय बर गय बर सघन घन, छत्रपती की नारि । साधु ।	६०;	६५
„ „ „ „ छत्र धुजा पहराय । सुमिरन ।	१२२;	६०
हरप सोक वा घर नहीं, वेहद ।	३४०;	२४
हरा होय मुखे सही, निजकर्ता ।	३६९;	४
हरि का गुन अति कठिन है, मूरमा ।	२३७;	१०५
हरि का बना सख्य सब, एकता ।	३२४;	१०
„ किरपा तब जानिये, गुरुदेव ।	१३;	६७
„ गुन गात्रे हराष के, पंडित ।	३८३;	३२
„ घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, विपर्यय ।	२५२;	३४
हरि जन आवत देखिके, निगुरा ।	५२;	५८
„ „ ऐमा चाहिये, विवेक ।	४२१;	८
„ „ को लाता, भली, निगुरा ।	५२,	५०
„ „ को ऊँचा नये, मान ।	३९७;	१८
„ „ को सोई नही, नशा ।	४१९;	२३

हे जन केवल होत हैं,
 " " गाठि न बांधहीं,
 " " तो हारा भला,
 " " मिले तो हरि मिले,
 " " सेतो रूठना,
 रि जन मोई जानिये,
 " " हरि तो एक है,
 रि दरवारी साधु है,
 " दरिया सूभर भरा,
 " मरि है तो हमहूँ मरि है,
 " मोनियन की माल है,
 " रस पीया जानिये,
 " रस मँहंगा जन पिये,
 " " " पीनिये,
 हरि रूठै गति एक है,
 " सुमिरन साची कथा,
 " सेतो हरिजन बडे,
 " सेवा जुग चार है,
 " सो तू मनि हेत करु,
 " हीरा क्यों पाइये,
 " " जन जौहरी,
 " " मन जौहरी,
 " " सन मेहटा,
 हरिया जाने रूखड़ा,

मंगति ।	९९;	८९
विश्राम ।	२१०;	८
उपदेम ।	१९६;	३७
साधु ।	७१;	१५४
मंगति ।	९३;	४१
मद्व ।	२०६;	३६
मद ।	३९५;	४
माधु ।	५९;	५८
"	६७;	१२७
चितावनी ।	१९०;	१८३
पारख ।	३९२;	९
रस ।	२६३;	६
"	"	५
"	"	७
गुरुदेव ।	९;	४१
चानक ।	३०७;	९
माधु ।	७६;	१९६
गुरुदेव ।	१५;	८५
माधु ।	६०;	६०
जीवनमृतक ।	३३१;	९
पारख ।	३५२;	६
"	"	७
"	"	८
"	"	८
निगुरा ।	४८;	१६

हंसा तो महारान का,	पारख ।	३५५;
” देस सुदेस का,	”	३५३;
” पय को काडि ले,	सारग्राही ।	३४९;
” बगुला एक सा,	पारख ।	३५४;
हंसै न बोलै उगमुनी,	सतगुरु ।	२६;
हाँसी खेल हराम है,	साधु ।	६८;
” खेलां पिय मिले,	विरह ।	१६६;
हिन्दू कहं तो मैं नहीं,	मध्य ।	३१६;
” के दाया नहीं,	मांसाहार ।	४१६;
हिन्दू तुरका के बीच-में, मेरा नाम कवीर ।	मध्य ।	३१६;
” ” ” ” सद्ग कहं निरवान ।	”	”
” ध्यावै देहरा,	”	”
” मूआ राम कदि,	”	”
हूँ जो विरह की लाफडी,	विरह ।	१६४;
हौँ साधुन के सँग रहं,	साधु ।	७३;

११

क्षमा क्रोध को क्षय करै,
क्षमा बडन को चाहिये.

ज्ञान नीच का वर्म है,
 ज्ञान दाप परकास करि,
 ज्ञान "यान मन धनुष गति,
 ज्ञान प्रजासा गुरु मिला,
 ज्ञान भक्ति प्रराग सुख,
 ज्ञान समागम प्रेम सुख,
 ज्ञान सपूरन ना मिद्रा,
 " " ना रिधा,
 जानी अभिमाना नहीं,
 " का ज्ञाना मिले,
 " नन हें चोहरी,
 " जुक्ति सुनाय्या,
 जानी ता निरभय भया,
 जानी ध्यानी सयमा,
 जानी नमि गुरुमुख नमे,
 " भूले ज्ञान करि,
 " मूल गॅनाइया,
 ज्ञाना सुनहु मदेस,
 जानी होय सा मानही,
 जानी जाता ऋ मिळे

पारख ।	३०७,	६०
सुमिरन ।	१२७,	४८
साधु ।	७२,	१९७
गुरुदेव ।	८,	६७
आमानुभव ।	३१०,	१०
गुरुदेव ।	८,	३८
भक्ति ।	११२,	४६
भय ।	८२,	३४
सयम ।	१०२,	२९
सगति ।	९५	६०
पारख ।	३५३,	१६
आमानुभव ।	३१०,	११
"	३१२,	२८
सीर ।	४०७,	७
कपट ।	४०५,	२३
आमानुभव ।	३१०,	१०
"	३१२,	२०
सद्व ।	२०८,	५०
चिनाप्रनी ।	१९२,	१९८
पडित ।	४८३,	३३

- २० श्रीमान् महंत श्री रामदासजी माहेव, कधीरकुर्डीर-ओरम्हा. सी पी. १
- २१ " " " " श्रीरामदासजी माहेव, सरमपुर-अहमदाबाद १
- २२ " " साधु श्री रूपदासजी माहेव, " " " " १
- २३ श्रीयुक्त अमरचंद्र पोस्टल पेन्शनर, मुजवाडा-पंजाब १
- २४ " " डा. शांलाल रामजी परमार हेडमास्तर, गेड वामगामा-काठि १
- २५ " " पा. माधवलाल रंगदास, कांठणव-गुजरात १
- २६ " " मोदी प्रभुदासजी रामजीभाइकं चि. भगवानदास जोजवाडा १
- २७ श्रीमान् साधु श्री चेतनदासजी गुरु श्री गोपालदा. सा. तवडी गु. १
- २८ श्रीयुक्त भगत गंगा राम लंजमभाइ, तवडी-गुजरात १
- २९ " " कर्की जेमंगभाइ ईश्वरभाइ, कवीर पंथी, अमिधा-गुजरात १
- ३० " " धनजीभाइ जीनाभाइ, दोहद-गुजरात १
- ३१ " " मंगललाल मोतीराम, सुरत-गुजरात १
- ३२ " " पुरुषोत्तम मीठामाइ, पटेल पेन्शनर मास्तर कोथमडी-गुजः १
- ३३ " " भक्त वायरभाइ गवामाइ कवीर पंथी, तवडी-गुजरात १
- ३४ " " मीर्वा जगजीवनदास नरोत्तमदास, बडसाइ-गुजरात १
- ३५ श्रीमान् महंतश्री भगवोत्तम गुरुभवानदासजी, बडीदा-गुजरात १
- ३६ " " साधुश्री जेठोदास हरिदासजी, भूज-कच्छ १
- ३७ श्रीयुक्त भगत छीताभाइ चावडामाइ, जुनारांजुवाडिया-गुजरात १
- ३८ " " गोवरभाइ कालदास, अहमदाबाद-गुजरात १
- ३९ " " मीठामाइ मोतीभाइ, " " " " १
- ४० " " इच्छामाइ लकाभाइ, " " " " १
- ४१ " " भगत जीर्जाभाइ जोडतभाइ, हेलंबी-गुजरात १
- ४२ " " आतमदास ठेकेदार, लखन-गोवालियरस्टेट
- ४३ " " दयालजीभाइ मोगरजीभाइ पटेल, अमिका